TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

DAMAGE BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186706

UNIVERSAL
LIBRARY

शिक्षामंत्रालय, भारत सरकार की ओर से भेंट

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 301 B2SS Accession No. GH 3329

Author बार्न्ज, हैरी एलमर

Title सामाजिक विचारक

This book should be returned on or before the date last marked below.

सामाजिक विचारक

Selections from
An Introduction to the History of Sociology

संपादक

हैरी एल्मर बार्न्ज़

अनुवादक

रघुराज गुप्त

भारती भवन, देहरादून

COPYRIGHT 1948 BY THE UNIVERSITY OF CHICAGO
© १९६० हिन्दी अनुवाद : रघुराज गुप्त
भारती भवन, देहरादून; शाखा : ११ रतलज रोड, लखनऊ

Checked 1969

मुद्रक : नेशनल हेराल्ड प्रेस, लखनऊ

अनुवादक की ओर से

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा पाना सर्वथा युक्तिसंगत है, इससे हम विदेशी भाषा पर अच्छा अधिकार पाने में व्यय और विपुल श्रम की बरबादी को ही नहीं बचाते बल्कि विद्यार्थियों की चिंतनशक्ति को भी उद्दीप्त करते हैं और उन्हें उनके वातावरण के साथ संबद्ध करते हैं। यही कारण है कि संसार के सभी प्रगतिशील तथा स्वतंत्र देशों ने मातृभाषा के शिक्षा-माध्यम को ही अपनाया है। इस प्रश्न पर संकीर्ण राष्ट्रीयता से विचार करने की ज़रूरत नहीं। इसमें भी संदेह नहीं कि विद्वानों का काम केवल अपनी भाषा में उपलब्ध ज्ञान तक सीमित रहने से ही नहीं चल सकता। अतः उन्हें गवेषणा-पत्रिकाओं और पुस्तकों को तत्काल पढ़ने के लिये समृद्ध विदेशी भाषाओं का ज्ञानार्जन करना ही होगा और करना ही चाहिये। इसी के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि कम-से-कम विदेशी वैज्ञानिक साहित्य के आधारभूत ग्रंथ उनकी भाषा में उपलब्ध हों। किसी भी भाषा को समृद्ध बनाने का यह एक उचित उपाय है।

खेद का विषय है कि हिंदी के प्रबल समर्थकों ने इसकी निर्मम उपेक्षा की है। हर साल सभी वैज्ञानिक विषयों, और विशेषरूप से, समाजशास्त्र में तृतीय कोटि की तथाकथित मौलिक रचनायें छापी जा रही हैं। उनके अधिकांश लेखक केवल अक्षम ही नहीं हैं बल्कि प्रायः अच्छे साहित्य से परिचित तक नहीं हैं। वस्तुतः यह किसी भी राष्ट्र की शिक्षा के साथ अनुत्तरदायित्वपूर्ण खिलवाड़ है और उसके भावी नागरिकों को उच्चतम डिग्रियां देकर भी अशिक्षित छोड़ देने का एक दुर्भाग्यपूर्ण षड्यंत्र है। इससे निकलने का एक ही उपाय है कि विभिन्न विषयों के पंडित केवल शिकायत-शिकवा छोड़ या तो स्वयं ऐसे मौलिक ग्रंथ लिखें, जो प्रामाणिक विदेशी ग्रंथों के समकक्ष हों, अन्यथा वह कम-से-कम चुने हुए ग्रंथों का अनुवाद ही प्रस्तुत करें।

वर्त्तमान अनुवादक को विद्वत्ता का मुग़ालता तो नहीं है और न ही वह अपने को इस योग्य समझता है कि वह संसार के सभी श्रेष्ठतम विचारकों के ऊपर क़लम चला सके, फिर भी वह श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने का शौकीन है। यही हैरी एल्मर बार्न्स द्वारा संपादित और उसके तथा अन्य उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा लिखित निबंधों के अनुवाद की कैफ़ियत है, जो 'एन इंट्रोडक्शन टु दि हिस्ट्री ऑफ सोशियोलॉजी' में प्रकाशित हुए हैं। अनुवादक इसके प्रकाशक शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस और उसके संचालक श्री ए० डब्ल्यू० शग का ऋणी है कि उन्होंने उदारतापूर्वक इसके अनुवाद की अनुमति देकर इस योजना को संभव बनाया।

ऐसे गंभीर ग्रंथ का अनुवाद अवश्य ही एक कठिन कार्य है। विषय-वस्तु की जटिलता के अतिरिक्त, पारिभाषिक शब्दों की विकट समस्या है। पहले से इस दिशा में कोई सहायता प्राप्त न होने के कारण स्वयं ही मुझे इसमें दख़ल देना पड़ा। यह कार्य मुझसे अकेले संभव न था। सौभाग्य से इस विषय के अच्छे ज्ञाता और सम्मानित अध्यापक प्रोफ़ेसर ए० के० सरन और प्रो० एस० पी० नागेंद्र तथा श्री हर्षनारायण ने इसमें विशेष अभिरुचि दिखाई और मेरी पूरी सहायता की। मैं इनका हृदय से कृतज्ञ हूं। यह कहना ज़रूरी है कि कई पारिभाषिक शब्दों पर हम सहमत न हो सके। ऐसी स्थिति में मुझे पर्याप्त

मनमानी करनी पड़ी जिसके लिये मैं इन सज्जनों से क्षमाप्रार्थी हूं। अतः इसमें जो त्रुटियां ह उनका एकांत दायित्व मुझपर ही है और जो गुण हैं उनका मुख्य श्रेय इन्हीं महानुभावों को है।

कई स्थानों पर यह मतभेद बहुत अधिक था। उदाहरण के लिये कोंत के 'पॉजिटिविज़्म' शब्द को लीजिये। उसने इसका प्रयोग आधुनिक साइंसमम्मत दर्शन के लिये किया है। हिंदी में साइंस के लिये विज्ञान शब्द रूढ़ है, अतः उसके आधार पर 'पाजिटिविज़्म' को विज्ञानवाद कहा जा सकता है। किंतु उसके विरुद्ध बड़ी आपत्ति यह है कि बौद्ध दर्शन के विज्ञानवादी सप्रदाय में इस शब्द का प्रयोग 'आइडियलिज़्म' के अर्थ में हुआ है, जिसका 'पाजिटिविज़्म' से दूर का भी रिश्ता नहीं है। इस दृष्टि से शायद तथ्यवाद या अस्तिवाद या प्रत्यक्षज्ञानवाद शब्द अधिक बेहतर होता, हालांकि मैंने 'विज्ञान' की रूढ़ता को देखते हुए विज्ञानवाद का ही प्रयोग किया है। दुरखाइम के Collective representation का यदि शाब्दिक उल्था करें तो वह सामूहिक अर्थात् समूहों (Groups) का प्रतिनिधीकरण होगा, जो उसकी परिभाषा के प्रसंग में बिल्कुल भ्रांत अर्थ देगा। लोकप्रतिबिंब इस भाव के बहुत निकट है। इसी प्रकार वेबर के 'Ideal type' को लीजिये। समाजशास्त्र के सभी हिंदी लेखकों ने उसे आदर्श प्ररूप बनाकर छुट्टी ली। यहां 'Ideal' का आदर्श से कोई वास्ता नहीं। यह 'Idea' या प्रत्यय पर आधारित है। वेबर के अनुसार यह मनोवैज्ञानिक प्रकार 'Rationalization' है, अतः प्रत्यय या तर्क-प्ररूप उसके लिये उपयुक्त हो सकता है। Substantive' और 'Formal rationality' का शाब्दिक पर्याय क्रमशः आधारभूत और औपचारिक कहा जायेगा, पर वेबर की परिभाषा से यह बिल्कुल असंगत होगा। क्रमशः व्यावहारिक और सैद्धांतिक बुद्धिसंगतता उसके मूल भाव को बहुत कुछ देती है। परेटो के 'Derivations' पर आइये। इसका कठोर शब्दार्थ व्युत्पत्ति या अर्जित होता है। परेटो की व्याख्या से यह गलत होगा। यह भी मनोवैज्ञानिक अर्थ में 'Rationalisation' है। यह एक प्रकार का भ्रांत तर्क कहा जा सकता है। अतः गंभीर पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि क्या अधिक उचित होगा। इसी प्रकार अनेक अन्य शब्द हैं। इसीलिये अनुवादक ने सर्वत्र मूल फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन शब्द भी कोष्टक में दे दिये हैं। हमारी शब्दावली मूलतः आरज़ी है। मैं समझता हूं कि इस अनुवाद में बहुत त्रुटियां होंगी। आशा है हिंदी के विद्वान् समाजशास्त्र के इन आरजी शब्दों पर विचार करेंगे ताकि उनकी कमियां स्पष्ट हों और उनमें आवश्यक संशोधन किया जा सके।

उक्त पुस्तक का अनुवाद करने में मुझे अपने पूज्य पिता और विद्वान् श्री धनराज विद्यालंकार से विशेष प्रोत्साहन मिला है। श्री गिरीशचंद्र ने बड़े धैर्य से इस अनुवाद का डिक्टेशन लेकर, श्री उमाशंकर दीक्षित, प्रबंध-संचालक, नेशनल हेराल्ड और श्री एम० एम० फिलिप ने इसके छापने की सुव्यवस्था कर, श्री रामनरेश पांडेय ने इसके प्रूफ संशोधन का कष्टकर कार्य संपादित कर, श्री एम० एन० मुंशी ने अनेक प्रकार से सहायता देकर और आदरणीय श्री दीनदयालु शास्त्री, उप-शिक्षामंत्री ने स्नेहपूर्ण आतिथ्य प्रदान कर इसका प्रकाशन संभव बनाया। मैं इन सभी सज्जनों का बहुत आभारी हूं।

९ त्रिलोकनाथ मार्ग
लखनऊ ६.९.६०

—रघुराज गुप्त

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

१. ऑगस्त कोंत का सामाजिक और राजनैतिक दर्शन : विज्ञानवादी कल्पित लोक और मानवता का धर्म ९
हैरी एल्मर बार्न्ज़

२. हरबर्ट स्पेंसर और व्यक्तिवाद की विकासवादी वकालत.. .. .. ३९
हैरी एल्मर बार्न्ज़

३. लेस्टर फ्रैंक वार्ड : समाजविज्ञान द्वारा समाज का पुनर्निर्माण.. .. .. ६८
हैरी एल्मर बार्न्ज़

४. लुडविग गुम्पलोविक्ज़ का समाजदर्शन : नस्लों का संघर्ष और सामाजिक समूह ८८
हैरी एल्मर बार्न्ज़

५. फर्डीनैंड टॉनीज की समाजशास्त्रीय प्रणाली : "समुदाय" और समाज .. १०५
रुडौल्फ हेबर्ले

६. मैक्स वेबर का पूंजीवाद और आधुनिक संस्थाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण १३०
टैल्कॉट पारसंस

७. एमील दुरखाइम और उसके संप्रदाय का समाजशास्त्रवाद.. .. .. १५२
एमील बेनौयत-स्मुलियन

८. विल्फ्रेडो परेटो : अवशिष्ट, भ्रांत तर्क और अभिजातवर्ग.. .. .. १९८
डब्ल्यू० रैक्स क्रॉफोर्ड

९. लियोनार्ड, ट्रिलॉनी हॉबहाउस : प्रजातंत्र और सामाजिक सुधार में विकासवादी दर्शन.. .. .. २१३
हैरी एल्मर बार्न्ज़

१०. आर्नल्ड जोसेफ टॉयनबी : आधुनिक वेष में ओरोसियस और ऑगस्टाइन २५६
हैरी एल्मर बार्न्ज़

११. फ्रैंकलिन हैनरी गिडिंग्स के समाजशास्त्रीय सिद्धांत : सजातीयता की भावना, बहुलवादी व्यवहार, संख्याशास्त्रीय पद्धति.. .. .. २७६
क्लेरेंस एच० नॉर्थकॉट

१२. चार्ल्स हॉर्टन कूले : मनोसमाजशास्त्र में अग्रणी.. .. .. .. ३००
रिचार्ड डब्ई

१३. पीट्रिम एलग्ज़ेंड्रोविच सोरोकिन के समाजशास्त्रीय विचार : "समग्रतावादी" समाजशास्त्र.. .. .. ३२२
हैंस स्पीयर

सामाजिक विचारक

अध्याय एक

ऑगस्त कोंत का सामाजिक और राजनैतिक दर्शन वैज्ञानिक कल्पित लोक और मानवता का धर्म

हैरी एल्मर बार्नस्

१. ऑगस्त कोंत (Auguste Comte) का जीवन और कृतियां

सामाजिक प्रगति और सामाजिक न्याय के प्रश्न का समाजशास्त्र से क्या संबंध है, समाजशास्त्र के अग्रणियों के अध्ययन की प्रेरणा का यह मुख्य विषय था। कोंत और वार्ड का विचार था कि सामाजिक या सामाजिक विकासवाद (Evolution) की शिक्षा के कृत्रिम निर्देशन द्वारा सामाजिक विज्ञान सामाजिक न्याय में अभिवृद्धि और सामाजिक प्रगति को गति प्रदान कर सकता है। उनके मत में सामाजिक विज्ञानों को जो बड़ा सबक सिखाना है, वह था, कि सामाजिक प्रक्रियाओं को विश्वसनीय सामाजिक विज्ञान द्वारा संपन्न सामाजिक मन से नियंत्रित किया जा सकता है और किया जाना चाहिये। स्पेंसर, सुमनर और गुम्पलोविक्ज़ की सामाजिक विज्ञान से सामाजिक प्रगति के संबंध में उतनी ही अभिरुचि थी जितनी कि कोंत और वार्ड की, किंतु समाज के विकासवाद के ऊपर सामाजिक नियंत्रण के बारे मे उनकी स्थिति बिल्कुल उल्टी थी। उनका विश्वास था कि समाज-विज्ञान का महान् उपसंहार यह है कि मनुष्य सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में हस्तक्षेप न करे और उन्हें प्राकृतिक विकासवादी नियमों के स्वचालित कार्यों से नियंत्रित होने दे। किंतु समाजशास्त्र के सभी छः अग्रणी इस पर सहमत थे कि समाजशास्त्र का मुख्य औचित्य उन सामान्यीकरणों (Generalizations) में पाया जाता है जोकि वह सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक सुधार के विषय में प्रस्तुत करता है। सामाजिक सुधार की अपेक्षा मार्गन की सामाजिक विकासवाद की शक्तियों, कारणों और अवस्थाओं में अधिक प्रत्यक्ष अभिरुचि थी, किंतु वह पहली के प्रति भी उदासीन न था और उसकी सहानुभूति निश्चित रूप से कोंत और वार्ड की विचारधारा के पक्ष में थी।

सौ वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं जबकि ऑगस्त कोंत ने 'समाज के पुनर्संगठन के लिये अपेक्षित एक वैज्ञानिक कार्यक्रम' (*A Programme of Scientific Work Required for the Reorganization of Society*)[1] शीर्षक के अंतर्गत अपने व्यापक सामाजिक दर्शन के पूर्वरंग (Prospectus) को प्रकाशित किया। गत सवा सौ वर्षों में समाज के

अनेक एकांगी दर्शन प्रस्तावित किये गये हैं और सामाजिक सुधार की अनेक अपूर्ण योजनाएं प्रस्तुत की गई हैं। हाल के वर्षों में अनेक लेखकों ने जैसे कि एल० टी० हॉबहाउस और सी० ए० एल्वुड ने कोंत की स्थिति को अपनाया है और यह व्यक्त किया है कि हमारे पास समाज का एक विस्तृत दर्शन होना चाहिये। इसमे प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक कारकों और सामाजिक सुधार के एक कार्यक्रम का समावेश होना चाहिये जोकि प्राद्योगिक कुशलता और सामाजिक नैतिकता दोनों मे सुधार की व्यवस्था कर सके। इसके अतिरिक्त, पिछली शताब्दी मे "विशुद्ध" प्रजातंत्र के प्रति विस्तृत अविश्वास पैदा हुआ है। यह अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है कि हमे राजनैतिक और सामाजिक शक्ति के पदों पर उस बौद्धिक कुलीन वर्ग (Aristocracy) को स्थापित करने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिये जिससे कि कोत को यूरोपीय समाज के पुनर्निर्माण के लिये इच्छित नेतृत्व प्राप्त करने का विश्वास था। उक्त तथ्यों के प्रकाश मे कोत के राजनैतिक और सामाजिक दर्शन का एक सक्षिप्त विश्लेपण दर्शनशास्त्र और सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थियो के लिये व्यावहारिक और साथ ही ऐतिहासिक महत्व का सिद्ध हो सकता है।

ऑगस्त कोत का जन्म सन् १७८९ मे मौटपेलियर मे हुआ था और उसने अपनी उच्च शिक्षा इकोले पोलीटेक्नीक मे प्राप्त की थी। अपने यौवन काल के छः वर्षों मे वह प्रगतिशील फ्रेंच विचारक काउंट हेनरी द सेंट-साइमन [२] का घनिष्ट मित्र और उत्साही शिष्य था। १८२४ मे उनके सबध टूट गये, जिसने कि कोत को अपने पहले गुरु की कुछ अशोभनीय निदा करने के लिये प्रेरित किया। उनका मुख्य मतभेद इस पर था कि किस अश तक क्रातिकारी दर्शन और सामयिक प्रवृत्तियो पर भरोसा किया जाये, अपने गुरु की अपेक्षा कोत अधिक अनुदार (Conservative) स्थिति की ओर प्रवृत्त था।

कोत की सबसे प्रारभिक कृति उसके सामाजिक दर्शन का पूर्वरग थी, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है।[३] १८२६ मे उसने अपने ही नगर मे सर्वप्रथम अपने विज्ञानवादी दर्शनशास्त्र (Positivist Philosophy)* के सिद्धातो की औपचारिक व्याख्या की, जिसमे कि वह जर्मन वैज्ञानिक अलेग्जेडर फॉन हम्बोल्ट जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थिति से सम्मानित हुआ।

कोत की प्रथम महान् रचना 'विज्ञानवादी दर्शन का मार्ग' (*Cours de philosophie positive*) १८३० और १८४२ के बीच के वर्षों मे प्रकाशित हुई। १८३६ से लेकर १८४६ तक वह इकोले पोलीटेक्नीक का परीक्षक था। इस पद से बर्खास्त किये जाने के बाद उसका पालन-पोषण मुख्यत. उसके शिष्यो और प्रशसको की सहायता से चलता रहा। क्लोटिल्ड द वौ (१८४५-४६) से उसकी मैत्री ने निस्संदेह कोत को स्त्रियों की स्तुति करने को प्रेरित किया, जोकि विशेष

*इस पुस्तक में सर्वत्र 'विज्ञानवाद' शब्द आधुनिक साइंस की पद्धति पर आधारित दर्शन के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसका बौद्ध दर्शन के विज्ञानवादी संप्रदाय से कोई संबंध नही है।

रूप से उसकी 'राजनीति' (*Polity*) में प्रकट हुई। १८४८ में उसने विज्ञानवादी सभा (Positivist Society) की स्थापना की। कोंत की अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'विज्ञानवादी राजनीति के सिद्धांत' (*Systeme de politique positive*) १८५१ और १८५४ के बीच मे प्रकाशित हुई। १८५७ में उसकी मृत्यु हुई।

अपनी प्रमुख रचनाओ मे प्रथम—'दर्शनशास्त्र' (*Philosophy*) मे कोंत ने अपने प्रारभिक निबधो की अपेक्षा अधिक विस्तार से अपनी मुख्य सैद्धांतिक स्थितियों को स्पष्ट किया। इनमे विज्ञानों का पदसोपानक्रम (Hierarchy); समाजशास्त्र और उसके साथ दो प्रमुख विभागो सामाजिक स्थितिशास्त्र (Statics) और सामाजिक गतिशास्त्र (Dynamics) की आवश्यकता और स्वरूप; और प्रचुर ऐतिहासिक दृष्टातों और पुष्टि के साथ बौद्धिक प्रगति की तीन अवस्थाओं के नियम सम्मिलित है। 'राजनीति' उसके सैद्धातिक मतो का इच्छित तथ्यगत या वैज्ञानिक (Positive) राष्ट्रमडल के निर्माण मे उनके व्यावहारिक प्रयोग का ब्योरेवार विस्तार था। बहुतो का ऐसा मत है कि 'दर्शनशास्त्र' मे कोत की समाजशास्त्र को महत्त्वपूर्ण देन सम्मिलित है, किंतु ऐसा नही है। यद्यपि राजनीति शब्दाडबर, पुनरावृत्ति, उलझी हुई शैली मे लिखी गई है, कोत की लगभग समस्त स्थापनाए (Postulates) उसमे 'दर्शनशास्त्र' की अपेक्षा कही अधिक परिपक्वता और समृद्ध ब्योरे मे विकसित की गई है।

२. सामाजिक सिद्धांत को कोंत की सामान्य देन

कोत के सामाजिक दर्शन के प्रमुखतम विद्यार्थियो का सामान्यतः यह मत है कि नये और मौलिक सामाजिक सिद्धातो के विकास की अपेक्षा उसकी प्रमुख देन उसकी सश्लेषण (Synthesis) और सगठन की असाधारण योग्यता मे थी। उसने अरस्तू से लेकर सेंट-साइमन तक सामाजिक दर्शन के लेखको से बहुत कुछ ग्रहण किया। अरस्तू से उसने सामाजिक सगठन के आधार के लिये अपनी बुनियादी कल्पना, अर्थात् कार्यो का वितरण और प्रयत्नो के मेल को प्राप्त किया। ह्यम, कांट और गॉल से उसने पद्धति मे विज्ञानवाद (Positivism) की अवधारणा और शारीरिक मनोविज्ञान ग्रहण किये। ह्यूम, काट और तुर्गो (Turgot) से उसने अपने ऐतिहासिक नियतिवाद (Determinism) के विचार और बूसे, विको और द मैस्त्र से उसने अपने इतिहास के बहुत कुछ असबद्ध नियतिशासित व्यवस्था (Providential order) के सिद्धांत को लिया। तुर्गो, कौडरसैट, बूर्दिन और सेंट-साइमन से उसने मानवजाति के बौद्धिक विकास की तीन अवस्थाओं के प्रसिद्ध नियम को प्राप्त किया।

सेंट-पियर, मोटेस्क्यू, कौडरसैट और सेंट-साइमन से उसने समाजशास्त्र की यह अवधारणा ग्रहण की कि यह बुनियादी और निर्देशक विज्ञान है, जिसे राजनीति की कला

की आधारशिला बनना चाहिये। इनमे से प्रत्येक ने इस विषय मे विशेष योगदान किया था। मोंटेस्क्यू ने विशेष रूप से भौतिक वातावरण के प्रभाव पर जोर देते हुए सामाजिक प्रक्रियाओं में नियम (Law) की अवधारणा का प्रवेश कराया था। कौडरसैट ने प्रगति की अवधारणा और उसमे विज्ञान की भूमिका पर बल दिया था। सेंट-पियर और सेंट-साइमन ने समाज के ऐसे विज्ञान को जुटाने की आवश्यकता का आग्रह किया था जोकि सामाजिक और औद्योगिक पुनर्संगठन के मार्गदर्शन के लिये पर्याप्त व्यापक हो। यह कोत की महत्त्वपूर्ण सफलता थी कि वह अपने से पहली शताब्दी के प्रगतिशील विचारो की देनों का सुंदर समन्वय करे और उन्नीसवी शताब्दी[५] के यूरोपीय समाज की समस्याओ पर इस नये सामाजिक विज्ञान के प्रभाव की ओर सकेत करे।

कोंत के महत्त्वपूर्ण सिद्धातो, अर्थात् विज्ञानों की श्रेणीबद्धता का वर्गीकरण जिसमे कि समाजशास्त्र सबसे ऊपर है; इस विषय का सामाजिक स्थितिशास्त्र और गतिशास्त्र मे विभाजन; सार्वभौम सामाजिक प्रगति की तीन अवस्थाओं के नियम और समाज के सावयवी (Organic) स्वरूप की अवधारणा और उसका निष्कर्ष कि समाज एक विकासमान सावयव (Organism) है, इन्हें समाजशास्त्रीय सिद्धात की पुस्तको मे इतना अधिक दोहराया जा चुका है कि वह अत्यत साधारण तथा बाजारू बन गई है। कोंत की प्रधान रचनाओं पर एक सरसरी दृष्टि डालकर ही पाठक इस तथ्य से प्रभावित हुए बिना न रहेगा कि उक्त शीर्षको मे समझे जानेवाले योग्य सक्षेप की अपेक्षा सामाजिक सिद्धात या सास्कृतिक इतिहास मे ऐसी कम ही समस्याए होंगी जिन पर कि उसने विचार न किया हो।[६]

कोत की बुनियादी पद्धतिशास्त्रीय (Methodological) स्थिति यह है कि यदि भविष्य मे मानव-ज्ञान का विस्तार करना है तो इसे अवलोकन, परीक्षण और तुलना की वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर पूरा किया जाना चाहिए। समाज-शास्त्रीय अन्वेषण को इस शर्त्त के साथ इस सामान्य कार्यप्रणाली का अनुसरण करना चाहिए कि जब मानव-समाज की क्रमिक अवस्थाओ के अध्ययन पर तुलनात्मक पद्धति को लागू किया जा चुके, उसके बाद एक चौथी ऐतिहासिक पद्धति को भी जुटाना होगा। इससे हम विस्तृत और उत्साहवर्धक परिणामों की आशा कर सकते है। अध्यात्म-शास्त्रियो (Metaphysicians) से किसी काम की बात की आशा नही की जा सकती। उनकी पद्धति, और परिणामो की कोत की आलोचना विशेषरूप से कठोर है और बहुतों को वह उतनी ही अपील करती है।

कोंत ने विज्ञानो की एक श्रेणीबद्धता या पदसोपानक्रम (Heirarchy) का निर्माण किया जोकि गणितशास्त्र से शुरू हो और ज्योतिष, भौतिकशास्त्र, रसायन-शास्त्र और प्राणिशास्त्र से गुजरकर समाजशास्त्र के नये विज्ञान पर पहुँचकर इस क्रम को पूरा करता है। इस वर्गीकरण की बुनियादी सैद्धांतिक आधारशिलाएं थी—पहली, कि प्रत्येक विज्ञान इस श्रृंखला मे अपने से निचले पर निर्भर है; दूसरी, कि जैसे हम इस

क्रम में आगे बढ़ते है, विषय अधिक निश्चित, जटिल और वैज्ञानिक माप और पूर्वोक्ति (Prediction) के कम आधीन होते जाते है; और अंततः समाजशास्त्र की कठिनाइयाँ उचित पद्धतिशास्त्र की किसी जातीय (Generic) भिन्नता की अपेक्षा उसके द्वारा अध्ययन किये जानेवाली घटनाओं की अधिक जटिलता और इन घटनाओं को मापने की अपूर्णता के कारण है।

यद्यपि कोंत ने समाज की सावयवी अवधारणा (Organic conception) की कोई बहुत अधिक व्याख्या नही की, फिर भी यह कहा जा सकता है कि उसने तथा-कथित "सावयववादियों" के परवर्ती सप्रदाय के लिये सुझाव दिये और वह यह मानने के लिये द्रष्टव्य है कि सावयवी सिद्धात केवल एक सादृश्य (Analogy) ही नहीं, बल्कि एक यथार्थता है। सामाजिक सावयव के बजाय व्यक्ति एक प्रविवेक (Abstraction) है। अपने दर्शनशास्त्र मे प्रस्तावित सावयवी सिद्धातो को कोत ने निम्न प्रकार सक्षेप मे रखा है—व्यक्तिगत या पृथक् सावयव या पौधे से भिन्न, समाज एक सामूहिक सावयव है और उसमे सार्वभौम एकमतता (*Consensus universel*) का प्राथमिक सावयवी गुण है। सावयव और समाज दोनों मे ही सरचना और कार्य का मेल देखा जाता है, जोकि इसके भागो मे और वातावरण पर क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा समान उद्देश्य के लिये कार्य करता है। यह सतुलित विकास मानव समाज गे अपनी उच्चतम अवस्था मे पहुँचता है, जोकि सावयवी विकासवाद का अंतिम चरण है। उसने यह कहकर हरबर्ट स्पेसर की पूर्वोक्ति की कि कार्यो का बढ़ता हुआ विशेषीकरण सामाजिक प्रगति का लक्षण है और वह अवयवो के अधिक पूर्ण अनुकूलन (Adaptation) की प्रवृत्ति का परिचायक है। अतत: सामाजिक व्याघात (Disturbances) सामाजिक सावयव के रोग है और वह सामाजिक रोगशास्त्र (Pathology) का उचित विषय है।[७]

'राजनीति' मे कोत ने व्यक्ति और सामाजिक सावयव के बीच समानता को स्पष्ट किया। परिवार मे सामाजिक जीव-कोष (Cell) को देखा जा सकता है; सामाजिक शक्तियो मे सामाजिक ततुओ (Tissues) के दर्शन किये जा सकते है; राज्य (नगर) मे सामाजिक सावयवो को ढूंढा जा सकता है और विभिन्न राष्ट्रो मे प्राणिशास्त्र के सावयवो की प्रणाली को पहचाना जा सकता है। व्यक्तिगत सावयव और सामाजिक सावयव का बडा अतर इस तथ्य मे है कि पहले का गुण मूलत: अपरिवर्त्तनीय है जबकि दूसरे मे, यदि वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार चला जाय, अत्यंत सुधार किया जा सकता है। अन्य भेद यह है कि सामाजिक सावयव मे अवयवो के अधिक अंश मे एकीकरण (Co-ordination) के साथ कार्यो का कही अधिक वितरण संभव है।

कोत ने समाजशास्त्र की परिभाषा मे बताया कि यह विशिष्ट रूप से सामाजिक व्यवस्था और प्रगति का विज्ञान है और अधिक सामान्य रूप मे यह सामाजिक घटनाओं

का विज्ञान है। यह प्राणिशास्त्र से, जिसका विषय संगठन और जीवन है, घनिष्टतया संबंधित है, बल्कि समाजशास्त्र का विषय व्यवस्था और प्रगति है।

कोंत ने समाजशास्त्र को दो प्रधान विभागों में बांटा है--सामाजिक स्थितिशास्त्र या मानव समाज की प्राकृतिक व्यवस्था का सामान्य सिद्धान्त (*Theorie generale de l'ordre spontane des societes humaines*) और सामाजिक-गतिशास्त्र या मानव-जाति की प्राकृतिक प्रगति का सामान्य सिद्धात (*Theoie generale du progres naturel de l'humanite*)। वह मानता है कि सामाजिक व्यवस्था का अंतर्हित आधार कार्यो के वितरण और प्रयत्नो के मेल का सिद्धांत अरस्तू का है, यद्यपि संभवतः यह अधिक सही है कि यह प्लेटो से लिया गया है। इनमे से पहला समाज मे विशेषीकरण और श्रम-विभाजन में व्यक्त होता है, और दूसरा सरकार की संस्था द्वारा कार्यान्वित होता है।

सामाजिक प्रगति के नियंत्रक सिद्धांत की बौद्धिक उन्नति की तीन अवस्थाओ के नियम में देखा जाता है।' व्यक्ति का समुचित विकास और शिक्षा, मानव-ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र और सामाजिक विकासवाद की सामान्य प्रक्रिया को इन तीनो अवस्थाओं--दैवी-धर्मशास्त्रीय (Theological) आध्यात्मिक (Metaphysical) और वैज्ञानिक मे से गुजरना चाहिए। इनमे से किसी भी अवस्था को हटाया नही जा सकता, हालाकि बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन से प्रक्रिया को गति दी जा सकती है या बुद्धिमत्ता का प्रभाव उसे मद कर सकता है। प्रत्येक अवस्था आनेवाली अवस्था की आवश्यक पूर्ववर्ती है और कोई भी अवधि उतनी ही पूर्ण है जितनी कि समय की परिस्थिति उसे इजाजत देगी। इस प्रकार सभी सस्थाए अपनी उत्कृष्टता के अशो मे सापेक्ष है और उनमे से कोई भी सर्वथा पूर्णता प्राप्त करने की आशा नही कर सकती।

वस्तुगत रीति से विचार करने पर प्रगति को वातावरण पर मानव के बढ़ते हुए नियंत्रण में माना जा सकता है। पुन. प्रगति को तीन नियामक भागो--बौद्धिक, भौतिक, और नैतिक में विभक्त किया जा सकता है। बौद्धिक प्रगति मानसिक विकासवाद की तीन अवस्थाओ के नियम मे पाई जाती है; भौतिक प्रगति "मानव-क्रिया की ऐसी ही प्रगति मे जोकि अपनी पहली अवस्था मे विजय (Conquest), फिर सुरक्षा (Defence) और अंत मे उद्योग (Industry) मे" पाई जाती है। नैतिक प्रगति "दर्शाती है कि मानव का सामाजिक स्वभाव इसी मार्ग का अनुसरण करता है, कि पहले यह परिवार मे, फिर राज्य में और अन्त मे प्रजाति (Race) मे सतुष्टि पाती है"' प्रगति को बढ़ावा देने मे इच्छाएं और उद्वेग चालक शक्तिया है और बौद्धिक कारक निर्देशक और नियंत्रक साधन है।

अनेकों ने कोंत के इतिहास के दर्शन की अत्यत एकांगी और केवल बौद्धिक कारकों पर बल देनेवाला कहकर आलोचना की है, किंतु इनमें से अधिकांश आलोचकों ने *Polity* के उन अवतरणो की उपेक्षा की है जिनमे कि उसने मानव प्रगति

की तीन महान् अवस्थाओं को "सैनिक-धर्मशास्त्रीय" (Military-theological), आलोचनात्मक-आध्यात्मिक (Critical-metaphysical) और औद्योगिक-वैज्ञानिक (Industrial-scientific) बताकर स्पेंसर और गिडिंग्स की पूर्वघोषणा की है।"

कोंत ने परिवार पर एक बुनियादी सामाजिक संस्था के रूप में और धर्म पर समाज में सबसे महत्त्वपूर्ण नियंत्रक के साधन के रूप में बहुत बल दिया। धर्म को समाज में कार्यान्वित करने के प्रति उसका रुख उपयोगितावादी (Utilitarian) था, विज्ञानवादी मत के सिद्धांतों की व्याख्या को उसने बहुत विस्तार से *Polity* में निर्धारित किया। परिवार और धर्म के प्रति उसकी बुनियादी महत्त्व की धारणा को वार्ड ने सराहा, और यह प्रोफेसर चार्ल्स ए० एल्वुड के अधिक वैज्ञानिक विश्लेषण और प्रयोग से पुनर्जीवित हुई है।

अतः, जैसा कि लेस्टर एफ० वार्ड ने इतनी स्पष्टता से निर्देश किया है, कोंत का विश्वास था कि समाजशास्त्र का महान् व्यावहारिक मूल्य वैज्ञानिक सामाजिक सुधार में उसके उपयोग में पाया जाता है। अपनी सर्वाधिक पूर्ण रचना *Polity* में उसने बहुत अंश तक उस अंतिम प्रकार के सामाजिक संगठन को विकसित किया जो कि वह समाज अपनायेगा जो उसके संगठन और प्रगति के विज्ञान के अध्ययन और उपयोग करने में समर्थ है।

३ कोंत का सामाजिक और राजनैतिक दर्शन

(क) समाजशास्त्र और राजनीतिविज्ञान

कोंत ने राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के बीच कोई स्पष्ट भेद नहीं किया। वस्तुतः वह समाजशास्त्र को भविष्य का पूर्णताप्राप्त राजनीतिविज्ञान समझता हुआ लगता है। साथ ही, वह समाजशास्त्र को अध्यात्मशास्त्रीय पद्धतियों और अवधारणाओं से शासित पुराने राजनैतिक दर्शन से स्पष्टतः पृथक् करता है। समाजशास्त्र की पुरानी पूर्वानुभव (Priori) पद्धति से जो कि पहले राजनैतिक दर्शन की विशेषता थी, कोई समानता न थी। इसे अवलोकन, परीक्षण और तुलना की निश्चित वैज्ञानिक कार्य-प्रणाली पर आधारित होना चाहिये। यह संदेहास्पद है कि क्या कोंत यह मानता था कि समाज के सामान्य विज्ञान से पृथक् भी राज्य का कोई विज्ञान हो सकता है या नहीं। हर तरह से उसका राजनैतिक सिद्धांत उसके मनोविज्ञान, धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र और अर्थशास्त्र से जोकि उसके समाजशास्त्र में सम्मिलित है, अभिन्नतया जुड़ा हुआ है।

कोंत ने इससे इन्कार किया कि विशेष सामाजिक विज्ञान सच्चे विज्ञान हैं। उसका कहना था कि समाज को समग्र रूप में एक एकात्मक विज्ञान समाजशास्त्र द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए। कोंत के लिये राजनीतिविज्ञान उसके समाजशास्त्र का वह हिस्सा था जोकि राज्य के इतिहास और उसके संगठन के सिद्धांत और प्रयोग से संबंधित था। उसने यदि कभी किया भी तो बहुत कम ही, इन विषयों पर पृथक् विचार किया, किंतु

उसने प्रत्येक पर समग्र रूप से सामाजिक विकासवाद और संगठन के एक पहलू के रूप में विचार किया ।

(ख) राज्य का स्वरूप

राज्य के स्वरूप और समाज, राष्ट्र (Nation) और सरकार (Government) के भेद के विषय में कोंत के विचार अस्पष्ट और अनिश्चित हैं । कोंत की भविष्य के अंतिम विज्ञानवादी समाज के निर्माण में इतनी अधिक दिलचस्पी थी कि वह समकालीन राष्ट्रीय मध्यमवर्गीय राज्य के सैद्धांतिक मूलाधारों की चर्चा पर विशेष ध्यान न दे सका । अधिक से अधिक यह केवल सामाजिक संगठन का एक संक्रमणकालीन रूप था : "मानव और उसके निवासस्थान को मिलानेवाले नगर और उचित केंद्र के चारों ओर पूर्णतया विकसित महत् अस्तिता (Great Being) के विकास के बीच राज्यों के सामान्य नाम के अंतर्गत साहचर्य के अनेक माध्यमिक रूप देखे जा सकते हैं । किंतु केवल विस्तार और स्थायित्व मे भिन्न इन रूपो के अपरिभाषित रूप की उपेक्षा की जा सकती है ।" [११] कोंत की सामान्य धारणा उसके लिये राजनैतिक रूप से संगठित समाज जैसी इकाई और कम से कम व्यवहार मे उसके भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओ से पृथक् इकाई की कल्पना करना कठिन था । उसका समाज का सिद्धात अपने पारिवारिक आचारशास्त्र, धर्मशास्त्रीय पथों और राजनीति के साथ आर्थिक व्यवस्थाओं के मिश्रण के साथ इतना सर्वग्राही था कि वह राजनैतिक क्षेत्र मे स्पष्ट रूप से प्रतिपादित अवधारणाओं के अनुकूल न था ।

केवल एक बात जिसमे कि उसे निश्चित रूप से अपने मत मे स्पष्ट कहा जा सके वह यह थी कि राजनैतिक संगठन, अर्थात् सरकार के बिना कोई स्थायी प्रकार के निश्चित सामाजिक संबध नही हो सकते । वह कहता है कि विज्ञानवादी राजनैतिक सिद्धांत का पहला नियम है कि "बिना सरकार के समाज उतना ही असभव है जितना कि बिना समाज के सरकार । छोटी से छोटी और बड़ी से बडी समितियो (Associations) में राजनीति का विज्ञानवादी सिद्धात कभी भी इन दो सह-सबधी (Correlative) विचारों को ओझल नही होने देता; बिना इसके सिद्धात हमे गलत दिशा मे ले जायेगे और समाज में अराजकता फैल जायगी ।"[१२] फिर भी जब कोत अपने समाज मे सरकारी व्यवस्थाओं की चर्चा शुरू करता है, वह तत्काल सरकारी संगठनों की रूढ़िवादी धारणाओ से सर्वथा पृथक अवधारणाओं का प्रवेश कराता है । ऐसी ही उसकी पारिवारिक नैतिकता के प्रभाव द्वारा सरकारी ईमानदारी को बढ़ाने और मानवता के धर्म के पुरोहितों को प्रोत्साहित करने और उनका निरीक्षण करने के कार्यो को सुपुर्द करने की वकालत है । संक्षेप मे, ऐसा लगता है कि कोत राज्य को ऐसा साधन मानता था जिसे कि समाज की सामान्य भौतिक क्रियाओं को संचालित करना चाहिये । जबकि कोत द्वारा प्रयोग किये गये "राज्य" शब्द का प्रायः यही अर्थ है, वह प्रायः उसे राष्ट्र या सामान्यतः समाज के अर्थ में भी प्रयोग करता है ।

इस प्रश्न पर कि राज्य के क्या बुनियादी गुण है, कोंत ज़रा अधिक स्पष्ट है। वस्तुतः वह किसी राज्य या राजनैतिक समाज के अनिवार्य गुण, अर्थात् जनसख्या, भूभाग, प्रभुशक्ति (Sovereign power) और राजनैतिक सगठन से पूर्णतया सहमत है। सरकार की अनिवार्यता के संबध मे उसके आग्रह का ऊपर सकेत किया जा चुका है। अंततः किसी भी स्थिर समाज मे समुचित सामाजिक नियत्रण की आवश्यकता के वक्तव्य और इस स्वीकृति से कि राजनैतिक सगठन अंततः शक्ति पर आश्रित है, कोत यह स्पष्ट कर देता है कि वह स्थायी राजनैतिक समाज को पैदा करने और कायम रखने के लिये प्रभुशक्ति की आवश्यकता मानता है ।

राज्य मे मनोवैज्ञानिक और आर्थिक कारकों के महत्व पर जोर देकर कोत ने राजनीतिविज्ञान मे आधुनिक प्रवृत्तियों की पूर्वोक्ति भी की। निम्न अवतरण मे इन विषयों पर बहुत संक्षेप मे उसने अपनी स्थिति इस प्रकार व्यक्त की : "जब संपत्ति, परिवार और भाषा उपयुक्त भूभाग को पा जाते है और उस स्थिति तक पहुँच जाते है जहाकि वह एक निर्दिष्ट जनसख्या को एक ही, कम-से-कम एक ही आध्यात्मिक सरकार के नीचे मिला सकें, वहाँ महत् अस्तिता के केंद्र बनने की सभावना हो जाती है। ऐसा समुदाय या नगर अततः चाहे वह बडा हो या छोटा, मानवता का सच्चा साधन है।" [13] यह अवतरण इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार कोत ने राजनैतिक विचारधारा में अत्यत स्वप्नदर्शी और आलकारिक आचारशास्त्रीय और धर्मशास्त्रीय अवधारणाओं का प्रवेश कराया है।

(ग) सामाजिक और राजनैतिक सस्थाओ का उद्गम

१. सिद्धांतों का दार्शनिक विश्लेषण—कोत ने समाज, राज्य और सरकार के उद्गम के विषय पर विश्लेषणात्मक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार से विचार किया। उसने अपने विश्लेषण मे मानवजाति की जन्मजात सामाजिकता के अरस्तू के संप्रदाय की कार्यप्रणाली को आधार बनाया। उसने घोषणा की कि प्रकृति की अवस्था के राज्य की कल्पना एकमात्र अध्यात्मशास्त्रीय बेहूदगी है और राजनैतिक उद्गम के सहयोगी सविदा सिद्धात (Contract theory) का समर्थन नही किया जा सकता। उसकी मान्यता थी कि मानव अन्य पशुओं पर अपनी श्रेष्ट सामाजिकता के कारण हावी हो सका और इस महत्त्वपूर्ण सामाजिक स्वभाव के विकास मे संभवतः मानवीय शैशवकाल की दीर्घता सबसे महत्त्वपूर्ण कारक थी। यहा पर कोत ने जॉन फिस्के की धारणा को उससे पहले व्यक्त किया ।

कोत के अनुसार समाज की इकाई व्यक्ति नही, प्रत्युत् परिवार है। इतिहास मे परिवार का महान् कार्य उन बुनियादी सामाजिक और मानसिक गुणो का सृजन करना रहा है जोकि अंततोगत्वा राज्य को जन्म देते है। भाषा की वृद्धि और पूर्णता परिवार से राज्य का विकास संभव बनाने मे मुख्य कारक थे : [14]

"इसलिये समाज को व्यक्तियों में नहीं तोड़ा जा सकता, जैसे कि ज्यामितिक धरातल को रेखाओं मे या रेखा को बिदुओं मे नही मिलाया जा सकता। सरलतम समिति, अर्थात् परिवार को कभी अपने मौलिक दंपति तक घटकर समाज की सच्ची इकाई का निर्माता कहा जायगा। इससे वर्ग और नगर जैसे अधिक जटिल समूह उत्पन्न होते है।" [१५]

"प्रजाति की शिक्षा की समस्त निरंतरता में, घरेलू व्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य क्रमशः राजनैतिक व्यवस्था की रचना है। इस दूसरे से, अंततः जटिल प्रभाव उत्पन्न होते है जिनसे पारिवारिक स्नेह को उसके उच्च सामाजिक पद तक उठाया जाता है और सामूहिक स्वार्थपरता मे पतित होने से बचाया जाता है।" [१६]

जबकि मनोवैज्ञानिक अर्थो मे समाज अततः सहानुभूति पर आश्रित सामाजिक मूलप्रवृति (Instinct) पर आधारित है और मुख्यतः परिवार मे व्यक्त होता है, समाज और राज्य मे अभिव्यक्त विस्तृत और अधिक विकसित सामाजिक सगठन के रूप कार्यो के वितरण और प्रयत्नो के मेल के अरस्तू के सिद्धांत पर स्थापित है। सहानुभूति पर आधारित कार्यो का यह सहयोगी वितरण घरेलू समिति को राजनैतिक समाज से पृथक करता है।

व्यक्तिगत सावयव के ऊपर सामाजिक सावयव की श्रेष्ठता का बडा कारण है कि यह अवयवो के अधिक पूर्ण अनुकूलन के साथ कार्यो के वितरण को अधिक अशो मे सभव बनाती है। समाज मे कार्यो का पूर्ण वितरण और अवयवो का एकीकरण सामाजिक विकासवाद का अतिम लक्ष्य है। इन दो सिद्धातो के बीच विद्यमान सबधो के अध्ययन मे हम समाज और सरकारके बीच विद्यमान सच्चे सबध को ढूंढ सकते है। इसका कारण है कि अत्यधिक विशेषीकरण जोकि सकीर्ण क्षेत्रो मे अधिक कुशलता और अधिक अभिरुचि के विकास की ओर ले जाता है, समग्रता की एकता तथा व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सबधो की अवधारणा की समाप्ति के कारण समाज के विघटन मे परिणत हो सकता है। सरकार का यह कार्य है कि वह मानव क्रियाओ का एकीकरण करे और अत्यधिक विशेषीकरण की अतिशयता के खतरो मे रक्षा करे, साथ ही अपने लाभदायक प्रशासनिक कार्यो को सरक्षित करे।

जिस अनुपात मे समाज मे कार्यो का वितरण पूर्णता से कार्यान्वित होता है, उसी अनुपात मे आधीनता (Subordination) की प्राकृतिक और सहज प्रक्रिया व्यक्त होती है। सिद्धात यह है कि जो जिस पेशे मे है वह उस वर्ग के नियत्रण मे आता है जिनका कि सामान्य प्रकार के कार्यो पर, अर्थात् औद्योगिक विशेषीकरण के पदसोपान-(Heirarchy) मे अपने से ऊचे वर्ग पर नियत्रण है। स्वभावतः सरकार उन नियत्रक और सचालक शक्तियो से उत्पन्न होती है जोकि पहलेपहल समाज के छोटे और कार्यात्मक समूह मे केंद्रित है। अतीत मे युद्ध इस पहले बिखरी हुई राजनैतिक शक्ति को एक केंद्रीय साधन मे एकत्रित करने का मुख्य कारक था। आज उद्योग सामाजिक अनुशासन और सरकारी नियत्रण का अधिकाधिक साधन बनता जा रहा है। उद्योग

में पहले से ही पड़ी हुई आदेश और आज्ञापालन की आदतों को राज्य के अंतर्गत व्यक्तियों की भिन्नताओं (Divergencies) और एकताओं (Convergencies) को नियत्रित करने की शक्ति उत्पन्न करने के लिये उन्हे केवल सार्वजनिक क्षेत्र में विस्तृत करने की आवश्यकता है।[१७]

श्रम-विभाजन, प्रयत्नों के सम्मिलन, श्रेष्ठता और आधीनता के सिद्धांतों में सरकार का यह भौतिक आधार मानवता के मानसिक लक्षणो का, जोकि कुछों को आदेश देने और अन्यों को आज्ञा पालन करने को प्रेरित करते है, समन्वय स्थापित करता है। जबकि आदेश देने की सार्वभौम इच्छा को स्वीकार करना आवश्यक है, यह देखना भी कम आवश्यक नही है कि अधिकांश लोग विशेषज्ञ-निर्देशन का भार दूसरो पर डालना अधिक पंसद करते है।

किंतु राजनैतिक दर्शन की संपूर्ण प्रणाली की रचना के लिये हमे कार्यो के वितरण और प्रयत्नों के सम्मिलन मे राज्य के इस बुनियादी विश्लेषणात्मक आधार से आगे जाना होगा। सगठन के अंतिम आधार के रूप मे अरस्तू के इस सिद्धात के साथ हॉब्स की शक्ति की धारणा को भी सम्मिलित करना चाहिए· "यदि हम सरकार के आधार के रूप मे शक्ति के सिद्धात को अपनाने से झिझके तो समाजविज्ञान सदा ही अध्यात्म-शास्त्र (Metaphysics) के अधकारपूर्ण प्रदेश मे रहेगा। इस हॉब्स के मत को अरस्तू के मत से मिलाकर, कि समाज प्रयत्नो के सम्मिलन और कार्यो के वितरण से बना है, हम स्वस्थ राजनैतिक दर्शन के सिद्धांतो को पाते है।"[१८]

अरस्तू और हॉब्स के मतो मे स्वय कोंत की अधिक विशिष्ट धारणाओं को भी जोड लेना चाहिए। वह देखता है कि अभी उल्लेख की गई नई आवश्यकताओं के साथ-साथ कुशल सामान्य नियत्रक शक्ति या सामाजिक नियत्रण की प्रणाली भी अपेक्षित है। "अतएव, सूक्ष्म अध्ययन यह दर्शाता है कि समस्त राजनैतिक शक्ति के लिये भौतिक शक्ति के आधार के अतिरिक्त तीन बाते--बौद्धिक निर्देशन, एक नैतिक स्वीकृति और अतत. एक सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है।"[१९]

यह सचालक शक्ति मानवता के धर्म मे पाई जाती है और इसे पथ (Cult) के पुरोहितो (Priests) द्वारा प्रशासित होना चाहिए। इस प्रकार पूर्ण राज्य मे समाज की तीन श्रेणियां है. अनुभूति या स्नेह पर आधारित परिवार ; क्रिया पर आधारित राज्य या नगर और प्रमुखत: बुद्धिमत्ता किंतु वास्तव मे, समस्त तीनो के सश्लेषण पर आधारित चर्च--धार्मिक संगठन। समाज की ये तीन श्रेणियां मानव मस्तिष्क प्रणाली (Cereberal system) तीन बुनियादी कार्यो--अनुभूति (Feeling), क्रिया (Action) और बुद्धि (Intellect) से मिलती है और इन्ही पर आधारित है जिन्हे कोंत ने गॉल के कपालशास्त्र (Phrenology) से ग्रहण किया और उसे अपने मनोविज्ञान और बहुत कुछ समाजविज्ञान का आधार बनाया।

अंतिम तत्व, चर्च की समस्त सामाजिक क्रियाओं के अपने सार्वभौम निरीक्षण

और निर्देशन द्वारा अराजकता या उश्रृंखलता के खतरे के बिना बड़े आततायी राज्यों की समाप्ति और सामाजिक सावयव की पूर्णता संभव होगी। परंपरागत राजनैतिक राज्य के स्थान पर, जैसाकि आजकल यह विद्यमान है, मानवता के पुरोहितों द्वारा प्रशासित समान धार्मिक नियंत्रण से संयुक्त नगरों के समूह होंगे जिनमें मानवता की पूजा होगी। आखिरकार ऐसी राजनैतिक इकाइयां इतनी बड़ी बनाई जायेंगी जिनमे कि निरंकुशता या अधिनायकतंत्र का जोखिम न हो। इस प्रकार कुछ अंश तक कोंत ने प्लेटो और अरस्तू के काल्पनिक लोकों (Utopias) के स्थानवाद (Localism) और नगर के रूप को पुनर्जीवित किया और ला प्ले और आधुनिक प्रदेशवाद (Regionalism) की पूर्वोक्ति की।

"सार्वभौम चर्च की स्थापना मनुष्यों के इन वृहत् और स्थायी संग्रहों को उस प्राकृतिक सीमा तक सीमित कर उनकी क्रमिक लघुता को संभव बनायेगी, जहा कि राज्य बिना अत्याचार के जीवित रह सकता है....मनुष्यों का कोई भी सम्मिलन, यदि वह वस्तुतः स्वेच्छायुक्त नहीं है, स्थायी नहीं हो सकता; और राज्य के सामान्य (Normal) रूप पर विचार करते हुए हमे संगठन के समस्त कृत्रिम और हिंसक बंधनो से छुटकारा पा लेना चाहिए और केवल उन्हें ही कायम रखना चाहिए जोकि सहज और स्वतंत्र है। दीर्घ अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि नगर अपनी पूर्णता और घिरे हुए ग्रामो के विस्तार में वह वृहत्तम राजनैतिक संगठन है जो कि बिना आततायी बने रह सकता है..... किंतु इसके अतिरिक्त' विज्ञानवादी श्रद्धा (Positive faith) समग्र रूप मे मानव जीवन पर अपने शांत नियंत्रण द्वारा, बिना राज्य की सहायता के, जोकि केवल भौतिक एकता द्वारा यह कार्य करता है, विभिन्न नगरों को चर्च के नैतिक आध्यात्मिक सूत्र (Communion) मे एकीकृत करने के लिये पर्याप्त होगी।"

"इस प्रकार धार्मिक समाज की अंतिम सृष्टि, जिसके द्वारा महान् सावयव पूर्ण होता है, राजनैतिक समाज की सभी तीन आवश्यकताओं को पूरा करती है। बौद्धिक निर्देशन, नैतिक स्वीकृति और सामाजिक नियंत्रण, जिसेकि सरकार को अपनी भौतिक प्रकृति को संशोधित करने मे आवश्यकता होती है, सभी चर्च द्वारा, जबकि वह अपनी स्वतंत्र सत्ता प्राप्त कर लेता है, पूरी की जाती है।" [२०]

२. **सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं का ऐतिहासिक विकासवाद:**— ऐतिहासिक दृष्टिकोण से समाज और राज्य के उद्गम पर विचार करते हुए कोंत हीगल के *Weltgeist* के क्रमिक प्रवासों के विवरण का, जब तक कि वह जर्मन लोगों में अंततः बस नहीं गये, स्मरण कराता है। [२१] कोंत मानवता के इतिहास पर दृष्टि डालता है और उन अवस्थाओं को खोजता है जिनमें से कि मानवजाति अपने विकासवाद के अंतिम लक्ष्य—विज्ञानवादी समाज पर पहुंचने की तैयारी कर चुकी है। हीगल और कोंत में एक अंतर यह है कि कोंत ने हीगल की अपेक्षा इतिहास के तत्वों की अधिक सही व्याख्या प्रस्तुत की है। यदि उस समय के लिहाज़ से देखा जाय, वह किसी भी तरह

उस ऐतिहासिक जानकारी से शून्य न था जैसाकि कुछ हाल के ऐतिहासिक समालोचकों ने संकेत किया है। उदाहरण के लिये, वह गिबन, हैलम और ग्यूजोट से परिचित लगता था और उसने इतिहास के अनेक बुनियादी आंदोलनों, विशेषकर आर्थिक प्रवृत्तियों के, जोकि अनेक बाद के अधिक विद्वान् इतिहासकारों के द्वारा उपेक्षित रहीं, महत्त्व को समझा था। इतिहास में कार्य करनेवाले प्रमुख कारकों को व्यापक रूप से समझना ऐतिहासिक विकास की सही अवधारणा के लिये उतना ही जरूरी था. जितनाकि "इतिहास के वस्तुगत तथ्यों" की विस्तृत जानकारी। इस मानदंड के अनुसार कोंत उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक अत्यंत सावधान और आलोचक राजनैतिक इतिहासकारों की तुलना मे किसी भी प्रकार कम सच्चा इतिहासकार न था।

कोत के इतिहास के दर्शन को प्रस्तुत करना इस अध्याय के क्षेत्र के बाहर है। यहां पर केवल उसके बुनियादी सिद्धांतों का संक्षिप्त ववतव्य और सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं के विकासवाद से संबंधित उसकी रचनाओ के अंशों का संक्षेप देने का प्रयत्न किया जायेगा।

कोंत के इतिहास का दर्शन एक चातुर्यपूर्ण त्रयी प्रणाली (System of triads) पर आधारित है जैसाकि विको की रचना की विशेषता है।[२२] सर्वप्रथम, सामाजिक संगठन की भाति सामाजिक विकासवाद मानव को मस्तिष्क प्रणाली के तिहरे कार्यों—अनुभूति, क्रिया और बुद्धि का परिणाम है। अनूभूति या उद्वेग, जोकि नैतिकता का आधार है, तीन अवस्थाओं में से, जिनमें कि मानव का सामाजिक स्वभाव संतुष्टि पाता है, गुजरते है—पहले परिवार में, फिर राज्य में और अंत मे प्रजाति में। या जैसा कि उसने इसे दूसरे प्रकार से कहा है, प्राचीन काल मे परार्थ (Altruism) घरेलू और नागरिक है। मध्य युग मे यह सामूहिक है और विज्ञानवादी अवधि में यह सार्वभौम है। फिर भी विकासवाद के इस पहलू को बताने का दूसरा ढंग यह कहना है कि मानवता की सहानुभूति की मूल प्रवृत्तियां ममता (Attachment), आदर (Veneration) और उदारता (Benevolence) की तीन अवस्थाओं में से गुजरती है। नैतिक विकासवाद के इन भिन्न पहलुओं में एक घनिष्ट संबंध है, क्योंकि फैटिशवाद ने भी, जिसने कि परिवार की नींव डाली, ममता की भावना को विकसित किया; बहुदेववाद (Polytheism) ने, जिसने कि राज्य की स्थापना की, आदर को पुष्ट किया और एकेश्वरवाद (Monotheism) ने अपनी सार्वभौमता के साथ उदारता की भावना को प्रोत्साहित किया।

मानव का क्रियात्मक विकासवाद विजय, सुरक्षा और उद्योग की तीन अवस्थाओं मे से बढ़ता है। अंततः बुद्धि का विकासवाद दैवी-धर्मशास्त्रीय, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तीन प्रसिद्ध अवस्थाओं का अनुसरण करता है। इस प्रक्रिया में उद्वेग गत्यात्मक शक्ति है, क्रिया प्रगति का साधन है और बुद्धि मार्गदर्शक शक्ति है। अतएव जैसा

कि अनेक लेखक संकेत करते दीखते हैं, कोंत ने अपने इतिहास के दर्शन को एकांततः बौद्धिक विकासवाद के एक ही तत्व पर आधारित नहीं किया। यहाँ तक कि बौद्धिक प्रगति की तीन अवस्थाओं का लक्ष्य एक बड़ा संश्लेषण था, जिसमें कि भौतिक और आध्यात्मिक कारक सम्मिलित थे, यद्यपि धार्मिक तत्त्व का उसकी योजना में प्रमुख स्थान था। मोटी रूपरेखा में कोंत के बौद्धिक विकासवाद की अवधियां थीं, धर्मशास्त्रीय जोकि फैटिशवाद, बहुदेववाद और एकेश्वरवाद में बंटी थीं; आध्यात्मिक अवस्था या १३०० से १८०० तक की "पाश्चात्य क्रांति" की अवधि थी; और १८०० से आगे विज्ञानवादी अवधि का प्रारंभ था। इनमे से प्रत्येक अवधि को पुनः उपविभाजित किया गया था।

फैटिशवाद की अवधि में, या जिसेकि अब जीविवाद (Animism) कहा जायेगा, परिवार या व्यक्तिगत समाज का श्रीगणेश हुआ और उसके साथ ही निश्चित निवास का श्रीगणेश हुआ जिसने कि राज्य के परवर्ती विकास को संभव बनाया। प्रथम बहुदेववादी अवधि में, जोकि धर्मशास्त्रीय या अनुदारवादी बहुदेववाद की थी (अर्थात् पूर्वीय महान् साम्राज्यों की अवधि),मुख्य राजनैतिक देन नगर (अर्थात् राज्य) की स्थापना और भूमि संपत्ति की संस्था का विकास था। इसका बड़ा दोष नागरिक जीवन के पूर्ण होने से पहले ही चर्च की स्थापना का प्रयास था। इस अवधि का अन्य एक करनेवाला और अनुशासनात्मक लक्षण, जाति-प्रणाली का विस्तृत विकास था। बौद्धिक बहुदेववाद (अर्थात् ग्रीक-काल) की अगली अवधि में, निषेधात्मक अर्थों को छोड़, कोई महत्त्वपूर्ण राजनैतिक देनें न थीं। ग्रीकों की सेवा बौद्धिक थी और वह मानवता को धर्मशास्त्रीय प्रभाव से मुक्ति देकर की गई। बिना अन्य एक करनेवाले प्रभावों को जुटाए, ग्रीकों द्वारा संपत्ति और जाति पर आक्रमणों ने राष्ट्रीय एकता को हानि पहुंचाई और उनका राजनैतिक जीवन मुख्यतः भड़कानेवाले वक्ताओं (Demagogues) का शासन था। यदि ग्रीकों ने कोई राजनैतिक देन दी, तो वह पारसियों के अभियान को रोकना था।

रोमन काल या सामाजिक एकेश्वरवाद की अवधि में राजनैतिक प्रगति के अनेक पहलू थे। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण "पितृभूमि" (Fatherland) की अवधारणा का विकास था, जिसकी कि कोंत ने यह कहकर परिभाषा की—"उन समस्त नैतिक और बौद्धिक प्रभावों का स्थायी स्थान जिसके अविच्छिन्न प्रभाव से व्यक्तिगत जीवन ढलता है" [२३]....सामाजिक बंधनों को सुदृढ़ करने के लिये कोई भी चीज इतनी अनूकूल नहीं है जितनी भौतिक स्थान के चारों ओर उनका आदतन सुदृढ़ करना, जोकि निरंतरता और एकता दोनों के संबंधों के लिये बराबर उपयुक्त है।" [२४] इस प्रकार संसार समाजतंत्र (Sociocacy) की ओर प्रथम निश्चित कदम उठाने के लिये रोम का ऋणी है। रोमन कानून भी समाजतंत्र की ओर प्रवृत्त था, चूंकि कानून के प्रशासन में इसने बहुत अंश तक दैवी स्वीकृतियों के स्थान पर सामाजिक स्वीकृतियों को अपनाया।

अंततः जबकि रोमन युद्ध विजय से सुरक्षा मे परिवर्तित हुआ स्वभावतः उसने दासता को भूमिदासता (Serfdom) और साम्राज्य को लघु-राज्य प्रणाली में रूपांतरित किया। इसने सामंतवाद (Feudalism) का मार्ग प्रशस्त किया जिसके बीज बर्बर सरदारों को रोमन प्रदेशों को दे देने में देखे जा सकते हैं।

अगली अवधि सुरक्षात्मक, एकेश्वरवाद या कैथलिक सामंतवादी संक्रमण की थी। यह चर्च की स्थापना की अवधि थी जिसकी कि पूर्ववर्ती अवधियों में परिवार और राज्य की स्थापना से तुलना की जा सकती है : "दो विषमतत्वीय तत्वों के मेल द्वारा प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए मध्यकालीन सभ्यता का प्रमुख लक्षण उसके लक्ष्यों का दोतरफा स्वरूप था।" [२५] इस अवधि का सामान्य उद्देश्य जीवन को क्रमबद्ध करना था, और इसमें अधिकांश रूप में चर्च का कार्य असफल रहा। इस युग का विशेष उद्देश्य स्त्रियों और मजदूरों को, जोकि मुख्यतः सामंतवाद का कार्य था, स्वतंत्र कराना था और बहुत अंश तक यह सफल हुआ। चूंकि इस अवधि का धर्म सार्वभौम और राजनैतिक शक्ति स्थानीय थी, तब वहाँ चर्च और राज्य का अनिवार्य पार्थक्य प्रारंभ हुआ। इसी समय अंततः युद्ध आक्रमण से सुरक्षा में रूपांतरित हुआ। स्त्री-पूजा (Mariolatry), जिसमें स्त्रियों का गुणगान था, समाजपूजा या मानवता की पूजा की ओर एक प्रगति थी। मालिकों के मजदूरों से पृथक् होने, गिल्ड कार्पोरेशनों के उदय और भूमिदासों की मुक्ति द्वारा प्रगति के महान् कदम उठाए गए।

किंतु इन महत्त्वपूर्ण देनों के बावजूद, सुरक्षात्मक एकेश्वरवाद की इस अवधि मे विज्ञानवादी शासन का सूत्रपात संभव न था। "पाश्चात्य क्रांति" की अन्य अवधि को बीच मे पड़ना था। यह मानसिक विकास की आध्यात्मिक अवधि से मिलता है। इस क्रांति को लानेवाली आठ मुख्य शक्तियां थीं—स्त्रियों का प्रभाव, वैज्ञानिक उन्नति, आधुनिक औद्योगिक सुधार, कला की वृद्धि, राज्य का विकास, चर्च का पतन, विधिशास्त्रियों का कार्य और अंततः अध्यात्मशास्त्रियों के निषेधात्मक योगदान।

इस अवधि मे जैसे-जैसे कि मालिक और मजदूर अपने पारस्परिक स्वार्थ से अन्य वर्गों के विरुद्ध संगठित हुए, उद्योग सुदृढ़ हुए। सरकार ने भी उद्योग को संरक्षण देना शुरू किया क्योंकि उसने यह समझ लिया कि इसका विकास सैनिक कार्यों को चलाने के लिये आवश्यक धन जुटाने के लिये जरूरी था। शासकों पर इसकी यह प्रतिक्रिया हुई कि वे सार्वजनिक संपत्ति के उत्तरदायी प्रशासक बन गये। पाश्चात्य राजनीति में इस दोहरी प्रक्रिया मे आधुनिक राजनीति के मुख्य लक्ष्य के रूप में उद्योग का वास्तविक पदार्पण हुआ। अभी तक जो सभ्यता सैनिक थी, उसका रूप अधिकाधिक औद्योगिक बन गया। यह समस्त अवधि और विशेषकर फ्रेंच राज्यक्रांन्ति विश्रृंखलता और विज्ञानवाद की तैयारी की अवधि थी।

अगली या विज्ञानवादी अवधि के कार्यक्रम में कोंत ने यह स्वीकार किया कि

उसके समय से पहले ही महत्त्वपूर्ण प्रारंभ हो गया है। कौंडरसैट ने समाजशास्त्र की दार्शनिक आधारशिला जुटाई थी। द मैस्त्र ने मध्य युग के श्रेष्ठ तत्वों की उपासना को पुनर्जीवित किया। लेमार्क, बिचात, ब्रूसे, कैबानिस और गॉल द्वारा वैज्ञानिक प्रगति की जा चुकी थी। कोंत ने समाजशास्त्र के दो बुनियादी नियमों को खोजा और समाज-शास्त्रीय प्रणाली जोकि *Philosophie* में अत्यंत बुद्धिवादी थी, *Polity* में वह क्लोटिल्ड द वॉ से उसकी मैत्री के कारण अपने उद्वेगात्मक पक्ष में अधिक सुगढ़ता और पूर्णता से व्यक्त हुई। तब बौद्धिक पक्ष में विज्ञानवादी प्रणाली की संस्था के लिये सब कुछ तैयार था और ठीक ही इस समय १८५१ की राज्यक्रांति ने, जो बहुत अनुकूल थी, अधिनायकतंत्र की संस्था को पुनर्जीवित किया जोकि विज्ञानवाद के श्रीगणेश में राजनैतिक क्षेत्र में पहला प्रारंभिक कदम थी। कोंत स्वयं नये धर्म के सर्वोच्च पुरोहित का पद ग्रहण करने के लिये तैयार था।

इस प्रकार मनोविज्ञान और इतिहास ने मानव की बुनियादी रचना और युगों के संघर्ष द्वारा विज्ञानवादी प्रणाली को अनिवार्य बनाने की साजिश की, यह उचित भी था। सामाजिक विकासवाद की इस अंतिम अवस्था में "परिवार, राज्य और चर्च को अंततः पृथक् होना और समन्वित होना या एक दूसरे के साथ अपने उचित पारस्परिक सावयवी संबंधों में निश्चित होना था जिससे कि सदा के लिये उनकी लड़ाई या एक दूसरे के क्षेत्र पर उनके अतिक्रमण का निराकरण हो सके।"[२६]

(घ) राज्य और सरकार के रूप

जहां तक राज्य और सरकार के रूपों का संबंध है, जबकि कोंत अरस्तू के परंपरागत वर्गीकरण से परिचित था, इसके द्वारा यह अल्प और कृत्रिम महत्त्व का समझा गया। उसके लिये केवल दो बुनियादी प्रकार के समाज थे, राज्य और सरकार—धर्मतंत्र और समाजतंत्र। इनमे से पहली धर्म की ओर प्रवृत्त पुरोहितों की सरकार थी जिसमें कि लौकिक शक्ति आध्यात्मिक शक्ति के आधीन थी। दूसरी अवस्था विज्ञानवादी राज्य मे प्राप्त की जा सकती थी, जहांकि आध्यात्मिक और लौकिक शक्ति को पृथक् और समुचित रीति से एकीकृत करना था और जिसमें सामाजिक संगठन कोंत के समाजशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित होना था। अधिकांश मानव इतिहास की समस्या धर्मतंत्र से समाजतंत्र में रूपांतरित करने की रही है।

(ङ) प्रभुसत्ता (Sovereignty)

सामाजिक नियंत्रण की ऐसी प्रणाली में जैसीकि कोंत ने प्रस्तावित की थी, जिसमे कि सत्ता को नैतिक, भौतिक और बौद्धिक शक्ति में विभक्त होना और प्रत्येक को पृथक् संस्था द्वारा कार्यान्वित होना था और जिसमें कि अंतिम शक्ति यद्यपि सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण थी, फिर भी उसे समझा-बुझाकर और सुझाव द्वारा प्रशासित करना था। यह आसानी से देखा जा सकता है कि इसमें परंपरागत आधुनिक अर्थों में राजनैतिक प्रभुशक्ति जैसी

अवधारणा के लिए स्थान न था। संभवतः भौतिक क्रियाओं के संचालक अर्थात् मालिक वर्ग के नेता उस वर्ग के सबसे समीप थे जिसेकि कोंत की प्रस्तावित शासक संस्था में प्रभुशक्ति प्राप्त थी; कम से कम उन्हें सामान्य नागरिक सरकार के कार्यों को चलाना था। जहां तक कि उसने प्रभुशक्ति की समस्या की चर्चा की है, उसन इसका राजनैतिक अधिसत्ता अर्थ लगाया प्रतीत होता है।[२७]

कोंत जितना ही अधिक प्रभुशक्ति के विज्ञानवादी सिद्धांत के निकट पहुंचता है उतना ही वह हॉब्स के सिद्धांत को स्वीकार करता है कि सरकार का महत्त्वपूर्ण आधार शक्ति में है। लोकप्रिय प्रभुशक्ति की चर्चा करते हुए वह कहता है कि इस विषय पर विज्ञानवादी सिद्धांत आध्यात्मिक सिद्धांत के गलत तत्वों म से सही तत्वों को पृथक् कर देता है। यहां पर वह लोकप्रिय प्रभुशक्ति की दो भिन्न अवधारणाओं को स्वीकार करता है। एक राजनैतिक प्रसंग मे है, जोकि विशेष अवस्थाओं पर लागू है और दूसरी एक नैतिक व्याख्या है जोकि सभी अवस्थाओ के अनुकूल है। "राजनैतिक" पहलू से उसका अर्थ है कि उन अवस्थाओं मे जिनका समस्त समुदाय के व्यवहारिक स्वार्थ से संबंध है और जो सर्वसाधारण द्वारा समझी जा सकती है, जैसेकि युद्ध की घोषणाए या न्यायालयों के निर्णय, इनमे लोकमत से अपील की जानी चाहिए। दूसरी ओर, ऐसे प्रश्नो पर जोकि विशेष स्वार्थ से संबंधित है और जिनके लिये विशेष और प्रशिक्षित निर्णय अपेक्षित है, वहाँ पर समस्त जनता द्वारा निर्णय स्पष्ट ही बेहूदगी होगी। लोकप्रिय प्रभुशक्ति का नैतिक पक्ष इस प्रस्थापना में है कि समस्त समाज के प्रयत्न समान भलाई (Common good) पर केंद्रित हों, अर्थात् वह "व्यक्तिगत स्वार्थों पर सामाजिक भावना की प्रभुता" को स्थापित करने का प्रयत्न करे।"[२८]

(च) सामाजिक पुनर्निर्माण की विज्ञानवादी योजना

कोंत की सामाजिक संगठन की योजना के पूर्ण अर्थ और महत्त्व को उसके सिद्धांतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के प्रारंभिक वक्तव्य के बिना समझना कठिन है। फ्रेंच और औद्योगिक क्रांतियों के फलस्वरूप वह पुरानी सामाजिक व्यवस्था को विश्रृंखल होते देख रहा था और वह नूतन समाज की, यद्यपि जो अभी संक्रमणकालीन था, बुराइयों से भलीभांति अवगत था। कहने के लिये बेस्तियत और अन्य फ्रेंच आशावादियो से भिन्न, कोंत ने नई पूंजीवादी व्यवस्था की निंदा मे सिसमोंडी का साथ दिया। नये मध्यमवर्गीय (Bourgeois) युग की उसकी आलोचना को लूसियन लेवी-ब्रूल ने अच्छी तरह व्यक्त किया है :

"कोंत ने लुई फिलिप के राज्यकाल में मध्यमवर्ग को कार्य करते देखा और उसने उसके विरुद्ध कठोर निर्णय दिया। वह कहता है कि इसकी राजनैतिक अवधारणाएं शक्ति के लक्ष्य और प्रयोग का नहीं, किंतु विशेषकर उसकी मिल्कियत का निर्देश करती हैं। यह संसदीय शासन की स्थापना को क्रांति की समाप्ति मानता है, जबकि यह केवल एक "संदेहास्पद विश्रामस्थल" है। मध्यमवर्ग की अपेक्षा पुराने उच्चवर्ग संपूर्ण सामाजिक

पुनर्संगठन से कम भयाकुल नहीं होते। गणतंत्रीय (Republican) रूप के अंतर्गत भी, यद्यपि अठारहवीं शताब्दी की आलोचनात्मक भावना से परिपूर्ण यह धर्मशास्त्रीय प्रवंचना की प्रणाली को दीर्घता प्रदान करेगी, जिसके द्वारा जनसाधारण की सम्मानजनक आधीनता सुनिश्चित है, जबकि नेताओं पर कोई कठोर कर्त्तव्य का भार नही डाला जाता। यह मजदूरों (Proletariat) के लिये कष्टकर है जिसकी अवस्था नही सुधर रही है। यह "जो रोटी मांगते है, उनके लिये कारागार स्थापित करती है।" यह विश्वास करती है कि ये लाखों मनुष्य आधुनिक समाज मे निश्चित और सम्मानित अधिकारों के उचित रीति से बसे बिना अनिश्चित रूप से इसमें गिरफ्तार (Encamped) रह सकेगे। पूंजी, जोकि इसके हाथों मे है, मुक्ति का साधन बनने के पश्चात् अत्याचार का साधन बन गई है। इस प्रकार यह एक विरोधाभास है कि मशीनों के आविष्कार का समर्थन करना कठिन हो गया है, जिसेकि पहले ही यह माना जा सकता था कि इससे मजदूरों की अवस्था सुधरेगी। इसके विपरीत, यह उनके कष्ट का नया कारण बन गई है और इन्होने उनकी दशा को दुगना कष्टकर बना दिया है। सक्षेप मे, यहा मध्यमवर्ग और विशेषकर उसे पालनेवाली राजनैतिक अर्थव्यवस्था और मध्यमवर्ग के विरुद्ध एक भीषण अभियोग है।" [२९]

फिर भी समस्या अपने आपमें पूंजीवाद या उसके उन्मूलन की न थी। नई औद्योगिक व्यवस्था की औद्योगिक या वित्तीय प्रविधि मे दोष न था, किंतु एक नई औद्योगिक और सामाजिक नैतिकता के, जोकि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली पर उचित नियत्रण और अनुशासन कर सके, विकसित होने की असफलता थी :

"कि शक्तिशाली औद्योगिक मालिक हो, यह तभी एक बुराई है जब वह अपनी शक्ति का अपने आश्रित लोगों को सताने में प्रयोग करे। इसके विपरीत, यदि यह मालिक अपने कर्त्तव्यों को जाने और पूरा करे, यह एक अच्छी बात है। लोकहित के लिये यह महत्त्वपूर्ण नही कि पूंजी किसके हाथो मे संचित होती है, जब तक कि उसका प्रयोग सामाजिक सर्वसाधारण के लिये कल्याणकर है।"

"किंतु आधुनिक समाज के पास अभी तक अपनी नैतिकता की प्रणाली नही है। औद्योगिक संबंधों को, जोकि इसमें अत्यंत विकसित हो गये है, नैतिक नियमों के अनुसार क्रमबद्ध करने के बजाय, खतरनाक परीक्षणों पर छोड़ दिया गया है। केवल अल्पाधिक स्पष्ट घोषित युद्ध ही पूंजी और श्रम के संबंधों को नियमित करता है।" [३०]

तब एक नई औद्योगिक और सामाजिक नैतिकता की आवश्यकता थी जिसेकि विज्ञानवादी शिक्षण प्रणाली द्वारा सिखाया जा सके। यह राज्य समाजवादी योजनाओं और पितृवादी (Paternalistic) कानूनों की तुलना में कही अधिक कारगर होगी। इस प्रकार कोंत की सामाजिक पुनर्निर्माण की योजना राजनैतिक और आर्थिक आधार की अपेक्षा नैतिकता पर अधिक आश्रित थी। आधुनिक व्यवस्था का सामाजीकरण "राजनैतिक कार्यों की अपेक्षा नैतिक कार्यों पर अधिक निर्भर है। पहला

निस्संदेह औद्योगिक क्रियाओं को ठप करने का जोखिम लेकर कुछ ही हाथों में संपत्ति के संचय को रोक सकता है। किंतु यह आततायी कार्यवाहियां विज्ञानवादी आचारशास्त्र की प्राप्त संपत्ति के स्वार्थी प्रयोग की भर्त्सना की तुलना मे कहीं कम प्रभावशाली होंगी।" [३१] इसलिये सब कुछ समान नैतिक शिक्षा पर निर्भर है, जो स्वयं आध्यात्मिक शक्ति की स्थापना पर निर्भर है। विज्ञानवादी सिद्धांत की श्रेष्ठता इस तथ्य मे निहित है कि इसने इस शक्ति को पुनर्स्थापित किया है।" [३२] "एक बार आध्यात्मिक शक्ति के संचालन के अंतर्गत समान शिक्षा स्थापित हुई, पूंजीवादी वर्ग का तब फिर कोई डर न रहेगा। समृद्ध लोग अपने को सार्वजनिक पूंजी का नैतिक संरक्षक समझेंगे। यहां यह दान का प्रश्न नहीं है। जिनके पास संपत्ति होगी उनका यह कर्त्तव्य होगा कि वह पहले सबके लिये शिक्षा और फिर कार्य जुटाएं।" [३३]

कोंत की सामाजिक व्यवस्था (Dispensation) की योजना पर विस्तृत विचार करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसका मुख्य लक्ष्य नई सामाजिक नैतिकता का विकास था, क्योंकि उसका विश्वास था कि केवल यही शक्ति आधुनिक उद्योगवाद की समस्याओं का समुचित हल होगी।

कोंत का सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धांत उसके सामाजिक संगठन और इतिहास के दर्शन के सिद्धांतों की भांति अततः मानव व्यक्तित्व की अनुभूति, क्रिया और बुद्धि के तिहरे विभाजन पर आश्रित था। सबसे पहले तो हमें उसके सामाजिक शक्तियों के विश्लेपण पर ध्यान देना चाहिये। वे हैं (१) क्रिया पर आधारित और संख्या तथा संपत्ति मे व्यक्त भौतिक शक्ति; (२) चितन पर आधारित अवधारणा तथा अभिव्यक्ति मे व्यक्त बौद्धिक शक्ति; और (३) स्नेह पर आधारित और हृदय द्वारा प्रेरित आज्ञा-पालन तथा चरित्र द्वारा प्रेरित आदेश मे व्यक्त नैतिक शक्ति। सामाजिक संगठन का यह सबसे प्रमुख कार्य और साथ ही सबसे बड़ी कठिनाई इन शक्तियों को, बिना किसी एक के अनुचित प्रभुत्व के, सही अनुपात में मिलाना है।

हम देखते हैं कि राज्य मे बुनियादी सामाजिक वर्ग इसी सामान्य सिद्धांत पर स्थापित किये जाते है। "पृथक् अस्तित्व में समर्थ छोटे-से-छोटे नगरों में हम इन वर्गो को पाते हैं। पुरोहित (Priests) जोकि हमारे चितन को संचालित करते है, स्त्रियाँ जो हमारे उच्चतम स्नेह को अनुप्रेरित करती हैं; और व्यावहारिक नेता जोकि, चाहे युद्ध में या उद्योग में हमारी क्रियाओं का निर्देशन करते है।" [३४] इन तीन बुनियादी सामाजिक वर्गो को मिलाने और उनमें शांति स्थापित करने के लिये जिस साधन की जरूरत है वह सर्वसाधारण जनता या सर्वहारा में मिलता है; "चूंकि वह घरेलू सूत्रों द्वारा स्नेहिल स्त्री वर्ग से, पुरोहित वर्ग से शिक्षा और उसके द्वारा प्रदत्त परामर्श और व्यावहारिक नेताओं से समान क्रिया और उनके द्वारा प्रदत्त संरक्षण से संयुक्त है।" [३५]

स्त्रियों को छोड़कर प्रत्येक सामाजिक वर्ग को सामाजिक महत्त्व और कार्यों के विशेषीकरण के सिद्धांतों के अनुसार पदसोपानक्रम के आधार पर व्यवस्थित करना

चाहिए। "हमारा अंतिम राज्य समाज का वह वर्गीकरण प्रदर्शित करेगा जोकि मानवीय जीवन के समस्त पहलुओं में हमें ज्ञात वर्गीकरण से अधिक स्पष्ट होगा। मानवता के सर्वोच्च पुरोहित (High Priest of Humanity) से लेकर अकिंचन् श्रमिक तक, पदों के वितरण में समाज यह सिद्धांत प्रदर्शित करेगा—जैसे-जैसे जीवन की स्वाधीनता बढ़ती है वैसे-वैसे मत की साधारणता घटती है।" [१६]

कोंत के समाज में संचालक शक्ति या जिसे संभवतः सरकार का कृत्य (function) कहा जा सकता है, वह विज्ञानवादी धर्म के पुरोहितों और उद्योग के नेताओं में केंद्रित होगी। अतीत की लौकिक और सैनिक शक्ति का स्थान भौतिक नियंत्रण पर क्रियान्वित औद्योगिक क्षमता (*Capacite industrielle*) और बौद्धिक संचालन तथा नैतिक निरीक्षण पर क्रियान्वित विज्ञानवादी क्षमता (*Capacite positive*) का सिद्धांत ले लेगा।

विज्ञानवादी समाज मे सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग पुरोहितों या उन लोगों का होगा जो कि विशिष्ट विज्ञानवादी क्षमता रखते है। शुरू मे ही यह समझ लेना चाहिये कि कोंत के पुरोहित धर्मशास्त्री नहीं बल्कि समाजशास्त्री थे। अपनी विशेष योग्यता और उन समाज-शास्त्रीय सिद्धांतों से, जिन पर कि जागरूक सामाजिक नीति निर्भर है, घनिष्ट परिचय होने के कारण वह समाज के वैज्ञानिक संचालक चुने जायेगे। वे मनुष्यों के लिए धार्मिक, या यों कहे तो बेहतर होगा, विज्ञानवाद के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की, जिनका कि आधार प्रेम और व्यवस्था है तथा लक्ष्य प्रगति है, व्याख्या करेगे। विशेष प्रशिक्षण के अतिरिक्त, यह पुरोहितवर्ग साहस, लगन और बुद्धिमत्ता के श्रेष्ठ गुणो से विभूषित होना चाहिए।

विज्ञानवादी पुरोहित वर्ग के संगठन का कोंत ने बहुत ब्यौरे से विवरण दिया है, यहाँ उसकी केवल अत्यत सामान्य रूपरेखा ही दी जा सकती है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि पश्चिमी यूरोप के लिये बीस हजार पुरोहित अपेक्षित थे, जिन पर मानवता के सर्वोच्च पुरोहित की, जिसका कि पेरिस में केंद्रीय कार्यालय होता, अध्यक्षता होती। उसकी सहायता के लिये सात राष्ट्रीय प्रमुख पुरोहित होते और संसार के अंतिम पुनर्जीवन तथा विज्ञानवाद में उसकी दीक्षा के समय इनकी संख्या उनचास तक बढ़ जानी थी। पुरोहित वर्ग के बाकी सदस्य स्थानीय पुरोहित और स्थानीय मंदिरों से संयुक्त पुजारी होने थे जिन्हे कि दस हजार परिवारों पर एक के अनुपात से वितरित किया जाना था। पुरोहितों को एक निश्चित वेतन दिया जाना था, जोकि इतना कम था कि वह उन्हें इस पेशे में आर्थिक कारण से सेवा करने से दूर रखे।

यह कहना जरा कठिन है कि कोंत इस पुरोहित वर्ग के क्या बुनियादी कार्य समझता था, चूंकि अनेक स्थलों पर उसने इस वर्ग के अनेक "सर्वोच्च कर्तव्य" गिनाये हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि सामान्यतः वह उनके निम्न कर्तव्य समझता था। सबसे प्रमुख उन्हें शिक्षा का क्रमबद्ध संचालक होना था। उन्हें समाज के प्रत्येक सदस्य की योग्यता का

निर्णायक होना था और यथासंभव उन्हें सुझाव और व्यक्तिगत मत द्वारा उनके गुणों और क्षमता के अनुसार उन्हें समाज में स्थान दिलाना था। कोंत स्वीकार करता है कि यह कठिन कार्य है, क्योंकि जब तक कि एक व्यक्ति अपने कार्य में काफी आगे तक न बढ़ जाय, उस की क्षमता का निर्णय बहुत कठिन है, किंतु पुरोहित वर्ग को एक प्रारंभिक सही अनुमान लगाने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिए। पुनः पुरोहितों को मनुष्यों को प्रकृति, अतीत और अन्य मनुष्यों से उनके संबंध की शिक्षा दे विभिन्न पीढ़ियों के बीच निरंतरता और विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच एकत्व की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। फिर पुरोहितों को समुदाय का नैतिक सेसर होना चाहिए और उन्हें अपने मत की शक्ति का प्रयोग कर मनुष्यों को उनके सामाजिक कर्तव्यों से अवगत कराना चाहिये और च्युति होने पर उन्हें सावधान करना चाहिये। अंततः उन्हे उपयोगी वैज्ञानिक ज्ञान और सामाजिक परामर्श का प्रमुख स्रोत होना चाहिए। संक्षेप में, पुरोहितों को आदर्श बौद्धिक कुलीनतंत्र (Aristocracy of intellect) का निर्माण करना चाहिये, जोकि प्लेटो द्वारा इच्छित दार्शनिक—राजाओं मे भिन्न न हो। आज की भाषा में वह सरकार के "बौद्धिक संघ" (Brain trust) होंगे।

फिर भी विज्ञानवादी पुरोहित लौकिक शक्ति पाने की इच्छा न करेगा। प्राचीन काल का मुख्य दोष आध्यात्मिक और लौकिक शक्ति का मिश्रण था और यह ईसाइयत की महान् देन थी कि इसने दोनों को पृथक् किया था। इसके बजाय, पुरोहित वर्ग की शक्तियो को निम्न अतिरिक्त-वैधानिक (Extra-legal) रीतियों से प्रयोग मे लाना था : पहले तो उन्हे शिक्षा और उपदेश के माध्यम द्वारा अपने प्रभाव को प्रयोग मे लाना था। फिर उन्हें जनमत को उचित निर्देशन देना था। पुनः, वह किसी कार्य की निंदा कर सकते थे। अततः नागरिक जीवन के सभी मामलों में उनके अत्यंत महत्त्वपूर्ण परामर्श के कार्य होंगे। वह कानून के "लौकिक पक्ष" द्वारा कार्यवाही का सुझाव दे सकते है किंतु उन्हे कभी भी अपनी जिम्मेदारी और प्रेरणा पर ऐसी कार्यवाही नही करनी चाहिये। ऐसा लगता है कि अपने पूर्ववर्ती जैफरसन की भांति कोंत इस कल्पना पर भरोसा करता था कि जनता समुचित रूप से श्रेष्ठ बौद्धिक योग्यता और नैतिक ईमानदारी की प्रशंसा और आदर कर पुरोहित वर्ग के निर्देशन की स्वेच्छा से मानने के मार्ग को सुनिश्चित करेगी—यह श्रेष्ठ सिद्धांत था, किंतु इतिहास ने दर्शाया है कि इस पर व्यवहार मे भरोसा करना अभी तक बहुत कठिन है।

भौतिक या औद्योगिक शक्ति, और साथ ही नागरिक सरकार के वास्तविक कृत्यों को मालिक वर्ग में विभाजित तथा बैंकर, व्यापारिक, निर्माता और कृषकों में उपविभाजित कर, प्रत्येक को पदसोपानक्रम और सर्वग्राही "औद्योगिक क्षमता" के सिद्धांतानुसार व्यवस्थित करना था। मालिक वर्ग के सबसे अधिक प्रभावशाली और सबसे अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में बैंकरों को सबसे अधिक अधिकार या सत्ता प्राप्त होगी। मालिकों में शक्ति के केंद्रीकरण का सिद्धांत था कि उद्योग के उतने बड़े क्षेत्र के लिये जितने को कि एक

आदमी व्यक्तिगत रूप से संचालित कर सके, एक व्यवस्थापक होना चाहिए। मालिकों को यह कानूनी अधिकार होगा कि वह अपनी आय को जितना वह उचित समझें रख सकें, फिर भी वह सार्वजनिक प्रतिष्ठा की अधिक आवश्यकता और इच्छा द्वारा अत्यधिक लालच से बचेंगे। इसके अतिरिक्त, विज्ञानवादी पुरोहितों का यह कार्य था कि वह संपत्तिशालियों को *उनका सामाजिक उत्तरदायित्व अनुभव कराएं*।

इस प्रकार कोंत औद्योगिक कार्यक्षमता और सामाजिक न्याय दोनों को सुनिश्चित करने की आशा करता था। उद्योगों के नेता मजदूरों के साथ अपने संबंधों में निम्न दो सिद्धांतों को सदा ध्यान में रखेंगे—"कि प्रत्येक व्यक्ति सब समय के लिये उन समस्त वस्तुओं का जिनका कि वह निरंतर और एकांततः प्रयोग करता है, पूरा स्वामी होगा" और "कि प्रत्येक मेहनती नागरिक को अपने घरेलू जीवन को पूर्णतया विकसित करने के साधन प्राप्त होंगे।"[३७] जहां तक संपत्ति और औद्योगिक कार्यों के हस्तांतरण का संबंध है, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संभावित अवकाशप्राप्ति की तिथि से सात वर्ष पहले अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करने और इस नामजदगी को जनमत की स्वीकृति के लिये पेश करने का अधिकार होगा। सभी दशाओं में वसीयत द्वारा संपत्ति देने की अनुमति होगी।

विज्ञानवादी समाज में नैतिक सत्ता के विषय में कोंत की मान्यता थी कि घरेलू-नैतिकता स्त्रियों द्वारा संचालित होनी चाहिये और सार्वजनिक नैतिकता पुरोहित वर्ग द्वारा संरक्षित की जानी चाहिए। स्त्रियों के नैतिक प्रभाव को अविच्छिन्न एकविवाह और निरंतर-वैधव्य के विज्ञानवादी नियम द्वारा सुनिश्चित किया जाना था।

विज्ञानवादी समाज में जहां तक विदेशी संबंधो का प्रश्न है, कोंत की मान्यता थी कि विज्ञानवादी धर्म और उसके साथ उसके सार्वभौम पुरोहित वर्ग और बड़े राष्ट्रों के अनेक अत्याचारशून्य नगर राज्यों मे विलीन हो जाने की प्रवृत्ति के अपनाये जाने पर ऐसी समस्याएं बहुत कुछ समाप्त हो जायेंगी।

व्यक्तिगत स्वाधीनता और राज्य के हस्तक्षेप के सिद्धांतों पर विचार करते हुए कोंत ने अत्याचार के विरुद्ध कोई वैधानिक रुकावटें नही खड़ी की। व्यक्ति को इस संभावना पर भरोसा करना पड़ता था कि पुरोहित वर्ग के नैतिक उपदेश शासक वर्ग द्वारा सुने जायेंगे। पुनः व्यक्ति के अधिकारों का कोई निजी क्षेत्र न था जोकि समाज की संचालक शक्ति के किसी अभिकरण के आक्रमण से मुक्त हो। अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्य कोंत के राजनैतिक दर्शन के केंद्रीय लक्षण थे। वस्तुतः अपने आपमें व्यक्ति की उपेक्षा की गई थी और सामाजिक सावयव पर ध्यान केंद्रित किया गया था। यहां तक कि सार्वभौम मताधिकार और संसदीय सरकार की निंदा की गई थी। इस प्रकार कोंत ने प्रभुशक्ति और स्वाधीनता दोनों में से किसी का भी आश्वासन दिये बिना उनके समन्वय की समस्या का समाधान किया था।

इस प्रकार कोंत ने राज्य की आधारशिला के लिये धार्मिक और बौद्धिक अध्यात्मवाद

के साथ एक उदार, हालांकि अंशतः अराजनैतिक पितृवाद का, विचित्र मिश्रण प्रस्तुत किया। अन्य किसी भी बात से अधिक यह कोंत के सिद्धांतों को समाजशास्त्र के क्षेत्र में उसके उत्तराधिकारी हरबर्ट स्पेंसर के सिद्धांतों से पृथक् करता है।

(छ) जनमत (Public opinion) और सामाजिक नियंत्रण (Social control)

सामाजिक नियंत्रण के एक प्रभावकर साधन के रूप मे कोंत ने जनमत के महत्त्व पर पर्याप्त जोर दिया। उसकी मान्यता थी कि यह ही बहुत कुछ सार्वजनिक नैतिकता की एकमात्र गारंटी है और उसका मत था कि बुद्धिमत्ता से संगठित जनमत के बिना सामाजिक संस्थाओं के विस्तृत सुधार और पुनर्निर्माण की विशेष आशा नही की जा सकती। वह कहता है कि जनमत के उचित संगठन के लिये अपेक्षित अवस्थाएं हैं—पहली सामाजिक क्रिया के निश्चित सिद्धांतों की स्थापना, दूसरी जनता द्वारा उसका अपनाया जाना और विशेष मामलों मे उसके प्रयोग की स्वीकृति और अंततः सिद्धातों को बनाने और उन्हें दैनिक जीवन के व्यवहार मे कार्यान्वित करने के लिये एक मान्य संस्था का होना।"[३८] मजदूरों के क्लबों मे, जोकि उस समय उत्साही प्रारंभ के जोश (अर्थात् १८४८ की राज्यक्रांति मे) मे फल-फूल रहे थे, कोंत ने वह एक प्रमुख संभव साधन देखा जिससे कि जनता द्वारा सामाजिक आचार के नियमों को ग्रहण करवाया जा सके।

फिर भी जनमत को प्रभावकर होने के लिये एक योग्य और स्वीकृत अभिव्यक्ति का साधन होना चाहिये, चूंकि जनता द्वारा इसका सहज सूत्रीकरण और प्रत्यक्ष व्याख्या बहुत कम ही संभव और प्रभावकर हैं। पुनः एक बार, विज्ञानवाद जनमत की प्रभावकर अभिव्यक्ति के अपेक्षित समस्त साधनों के साथ उद्धार कर सकता था। इसके सिद्धांत सामाजिक आचार के उचित नियम प्रदान करते थे। सर्वहारा या श्रमिकवर्ग ने आवश्यक गत्यात्मक शक्ति प्रस्तुत की। कोंत के शासन के पुरोहित दार्शनिक समाजशास्त्री जनमत की बुद्धिमत्तापूर्ण अभिव्यक्ति के अद्वितीय साधन थे। स्वस्थ जनमत की सभी तीनों अपेक्षित अवस्थाएं विद्यमान थीं, किंतु अभी एक दूसरे के साथ उनके संबंध संतोषजनक न थे। वह अनिवार्य कदम जिसकी जरूरत थी, "दार्शनिकों और श्रमिकों के बीच दृढ़ एकता" था।[३९]

अंततः कोंत के अनुसार, भविष्य में जनमत का प्रभाव संभवतः और भी अधिक बढ़ जायेगा : "समाज की भावी अवस्था के सभी मत, व्यावहारिक लोगों और साथ ही दार्शनिक विचारकों के मत इस विश्वास पर सहमत हैं कि हम जिस राज्य की ओर बढ़ रहे है उसका प्रमुख लक्षण उसमे जनमत का बढ़ता हुआ प्रभाव होगा।"[४०] जब यह समाज का महान् नियामक बन जायेगा, यह "कर्त्तव्यों की शांतिपूर्ण परिभाषा से प्रतिस्थापित कर"[४१] क्रांतियों और हिंसक विवादों का उन्मूलन कर देगा।

यह पूर्णतया स्पष्ट है कि ऐसे समाज में, जिसकी कि कोंत ने कल्पना की है, जिसमें सरकारी कार्यकर्ताओं की श्रेणीबद्ध व्यवस्था है और उनका पैतृक हस्तांतरण है, आधुनिक राजनैतिक दल जैसी कोई संस्था नहीं हो सकती। निकटतम वस्तु जोकि संभव हो सकती

है, वह किसी निश्चित दिशा में जनमत का संचालन करने का प्रयत्न करनेवाले आंदोलन-कर्ताओं का एक समूह हो सकता है।

(ज) सामाजिक और राजनैतिक प्रगति का स्वरूप

सामाजिक विकासवाद और प्रगति को शासित करनेवाले नियमों के स्वरूप के संबंध में कोंत की स्थिति स्पेंसर और वार्ड के लगभग बीच में थी, यद्यपि वार्ड उसे "सामाजिक निर्देशन" (Social telesis) के सिद्धांत का संस्थापक मानता था। कोंत की मान्यता थी कि एक ओर सामाजिक विकासवाद की सामान्य प्रवृत्तियां और प्रगति की मूल दिशा अपरिवर्तनीय नियमों के आधीन है और कुछ निश्चित अवस्थाओं तक सीमित हैं जिन्हें कि मानवीय हस्तक्षेप द्वारा अधिक नही बदला जा सकता। साथ ही उसका कहना था कि सामाजिक विकासवाद के महान् नियमों, अर्थात् कोंत के इतिहास के दर्शन की जानकारी पर आधारित मानव जाति के बुद्धिमत्तापूर्ण सहयोग से, सामाजिक विकासको संशोधित और बहुत कुछ तीव्र किया जा सकता है।

समाज-सुधार की सभी योजनाओं को सफल होने के लिये सभ्यता के सामान्य अभियान से उनकी संगति होनी चाहिये और उन्हें अपने समय की अवस्थाओं से बहुत आगे नहीं होना चाहिए। यह समाज-विज्ञान का कार्य है कि वह अतीत में सामाजिक विकासवाद के मार्ग से संबंधित तथ्यों को इकट्ठा करे जिससे कि वर्तमान की राजनैतिक और सामाजिक नीति, विकास के सार्वभौम नियम लगनेवाले सिद्धांतों से मेल खा सके। समाज को निष्क्रियता से सामाजिक विकासवाद के नियमों की पूजा करने की आवश्यकता नही है, किंतु यह बुद्धिमत्तापूर्ण क्रिया द्वारा प्रगति को गति प्रदान कर सकता है; फिर भी यह सोचना मूर्खता होगी कि एक नये संविधान की रचना कर सामाजिक व्यवस्थाओं को एक दिन में बदला जा सकता है।

कोंत ने यह कहकर अपने प्रस्तावों का समर्थन किया कि वह उसके अपने मनमाने प्रस्ताव न थे बल्कि वह विकासवाद और समाज की भावी अवस्था के विषय मे इतिहास और समाज-विज्ञान की शिक्षाओं का वक्तव्य थे। उक्त समस्या पर कोंत की कुछ उल्लेखनीय टिप्पणिया निम्नलिखित है :

"इसलिये पिछली टिप्पणियों से ऐसा लगता है कि सभ्यता का प्रारंभिक अभियान निस्संदेह एक प्राकृतिक और अपरिवर्तनीय नियम के आधीन है जोकि समस्त विशेष मानवीय भिन्नताओं को शासित करता है···।"

"राजनीति विज्ञान को एकांततः सभ्यता की प्रगति से संबंधित समस्त विशेष तथ्यों के एकीकरण और उन्हे सामान्य तथ्यों की अल्पतम संभव संख्या मे घटा लेना चाहिये, इसका संबंध इस प्रगति के प्राकृतिक नियम को व्यक्त करना तथा इसकी तीव्रता को संशोधित करनेवाले कारणों को बाद में समझने के लिये छोड़ देना चाहिये ..।"

"किंतु समाज इस प्रकार प्रगति नहीं करता और न ही कर सकता है (अर्थात् समाज-सुधार के लिये संविधान बनाकर जैसा कि फ्रेंच राज्यक्रांति में हुआ)। कुछ ही महीनों या

सालों में एक समाज-व्यवस्था की अपने पूर्ण और निश्चित रूप में बिना किसी तैयारी के पुनर्निर्माण की प्रवंचना एक अतिशयोक्तिपूर्ण स्वप्न है जोकि मानव-बुद्धि की दुर्बलता के साथ सर्वथा असंगत है।"

"एक स्वस्थ सामाजिक प्रणाली कभी भी मानव जाति को बाध्य करने का लक्ष्य नहीं बना सकती, चूंकि वह गुरुत्वाकर्षण के नियम की भांति, यद्यपि उसे अधिक सरलता से संशोधित किया जा सकता है, अपनी उचित प्रेरणा से परिचालित होती है। किंतु यह अवश्य उसे शिक्षित कर मानव प्रगति को सरल बनाती है···।"

"सभ्यता की प्रगति का आंख मूंदकर और बुद्धिमत्ता से आज्ञापालन करने में बड़ा अंतर है। वह जिन परिवर्तनों को चाहती है वह पहली अवस्था में भी उतने ही घटित होते हैं जितने कि दूसरी में, किंतु उनमें अधिक देरी हो जाती है और इससे भी अधिक वह इन परिवर्तनों के स्वरूप और महत्त्व के अनुसार अल्पाधिक गभीर सामाजिक अशांति उत्पन्न कर पूरे होते हैं। अब सब प्रकार के व्याघात, जोकि इस प्रकार समाज में उत्पन्न होते हैं, उन्हें बहुत अंशों में उत्पन्न होनेवाले परिवर्तनों के सही ज्ञान पर आधारित कदमों को उठाकर दूर किया जा सकता है···।"

"अब इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह स्पष्टतः अनिवार्य है कि हम यथासंभव सभ्यता की प्रवृत्ति को सही रूप से समझें जिससे कि हमारा राजनैतिक आचार उससे मेल खा सके।" [४२]

(झ) सामाजिक वातावरण और सामाजिक तथा राजनैतिक सिद्धांत

कोंत के इतिहास के दर्शन का यह बुनियादी थीसिस था कि सामाजिक और राजनैतिक प्रणाली के रूप तथा तत्कालीन सामाजिक सिद्धांत में बहुत घनिष्ट संबंध है। धर्म-शास्त्रीय अवधि में समाज के वैज्ञानिक विचारों की आशा नहीं की जा सकती। इसे कोंत ने निम्न अवतरण में बड़ी स्पष्टता से व्यक्त किया है—"अपने जीवन के थोड़े समय और बुद्धि की दुर्बलता के कारण हम अपने को वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं कर सकते। स्वच्छंदतम स्वप्नद्रष्टा भी अपने स्वप्नों में समकालीन सामाजिक अवस्था को प्रतिबिंबित करते हैं।" [४३] इस बात की सर्वोत्तम समालोचना उसके प्रयत्नों के उस इतिहास में मिलती है जिन्हें कि उसने अपने समय से पहले समाज के वैज्ञानिक विज्ञान की स्थापना में किया। कोंत की रचनाओं में सर्वत्र उसके समय के सामाजिक और राजनैतिक विचारों की छाप स्पष्ट है।

(ञ) कोंत के सामाजिक विचारों का संक्षेप

कुछ लेखकों ने कोंत के समाजशास्त्र को इस विषय की "भूमिका" (Prolegomenon) कहा है। इसी प्रकार यह कहना भी गलत न होगा कि उसके अधिकांश और परवर्ती अन्य समाजशास्त्रियों के समाज और राज्य के सिद्धांत के बीच ऐसा ही संबंध विद्यमान है। राजनैतिक और सामाजिक दिशा में कोंत के मुख्य सिद्धांत जोकि बाद के विकासों

की ओर संकेत करते हैं, निम्नलिखित हैं : (१) राज्य का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण और यह थीसिस कि राजनैतिक क्रियाओं और संस्थाओं को उनके विस्तृत सामाजिक परिवेश और संबंधों के अंतर्गत अध्ययन करना चाहिये ; (२) समाज और राज्य का सावयवी सिद्धांत जिसेकि बाद में स्पेंसर, शैफल, लिलिनफैल्ड, फूले, द रोबर्टी, वौर्मस् और अन्यों ने विकसित किया ; (३) अधिक सार्वभौम समाजशास्त्रीय सिद्धांत कि राज्य उसकी उपयोगिता के बुद्धिसंगत (Rational) बोध की कृत्रिम उपज नहीं, है बल्कि वह उसकी सामाजिक आवश्यकता और ऐतिहासिक वृद्धि की प्राकृतिक उपज है ; (४) यह सिद्धांत कि समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के अध्ययन द्वारा, न कि "प्राकृतिक" नियमों की दुहाई देकर, राज्य की केवल बुद्धिसंगत सीमाओं को निर्धारित करना चाहिये ; (५) सामाजिक नियंत्रण के विस्तृत सामाजिक और अतिरिक्त-वैध पद्धतियों के सर्व-महत्त्व-पूर्ण कार्य की समुचित स्वीकृति—इस दिशा मे प्रोफेसर रौस, कूले, गिडिग्स और सुमनर जैसे लेखकों ने कार्य किया है ; (६) सामाजिक सुधार के कार्यो के लिये मानव स्वभाव के बुनियादी लक्षणों और समाजशास्त्र के सिद्धांतो के आवश्यक अंतर्संबंधों की स्वीकृति—इस विषय पर समाजशास्त्री निरंतर सामाजिक अर्थशास्त्रियों और समाज-सेवकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं; ऐतिहासिक प्रक्रिया का संश्लेपणात्मक दृष्टिकोण जिसके द्वारा वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक संगठन पर पहुंचा गया है, जोकि विशेप रूप से सैनिक से औद्योगिक आधार पर समाज और राज्य के संक्रमण पर जोर देता है—स्पेसर और बाद के लेखकों ने इसे बड़ा महत्त्व दिया है।

कोंत का तात्कालिक प्रभाव अधिक न था और उसके श्रद्धालु अनुचरों की संख्या कम थी। मैक्सीमिलियन लित्रे और कोंत के फ्रेंच शिष्यो तथा फ्रैड्रिक हैरिस और इगलैड मे उसके समूह को छोड़कर, विज्ञानवादी सामाजिक दर्शन को उत्साह से नहीं अपनाया गया।[४४] 'राजनीति' के प्रकाशन के कुछ ही वर्षो बाद डार्विनवाद का उदय हुआ। इमने स्पेंसर के विकासवाद के साथ मिलकर समाजशास्त्र को या तो गुम्पलोविक्ज और उसके संप्रदाय के सामाजिक डार्विनवाद में या शैफिल, लिलियनफैल्ड, वौर्मस् और अन्यो के प्राणिशास्त्रीय सादृश्यों के कम महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में मोड़ दिया। स्पेसर के समाजशास्त्र ने निर्हस्तक्षेप नीति (Laissez faire) की वकालत और "सामाजिक निर्देशन" (Social telesis) की निन्दा में अपनी महान् प्रतिष्ठा का योगदान दिया। कोंत के बाद फ्रेंच समाजशास्त्र मुख्यतः पद्धतिशास्त्र, सामाजिक मानवशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान के अधिक सीमित क्षेत्र में विकसित हुआ।

अमेरिका की पहली पीढी में समाजशास्त्र या तो गिडिग्स की भांति स्पेंसरवाद जर्मन वर्गसंघर्ष (*Klassenkampf*) के सिद्धांतों पर, जैसे कि स्मॉल और उसका संप्रदाय; या फ्रेंच समाज मनोविज्ञान पर जैसा कि रौस, आधारित था। केवल लेस्टर एफ० वार्ड ने कोंत को गंभीरता से लिया और वह अपने सामाजिक दर्शन की प्रणाली में कोंत से इतना अधिक पृथक् हो गया कि उसके अधिकतर पाठक फ्रेंचवासी के प्रति उसकी

श्रद्धांजलि को भूल गये। अंततः मध्यमवर्ग द्वारा पाश्चात्य समाज के प्रायः पूर्ण आधिपत्य ने उस लेखक के सिद्धांतों के प्रसार को, जोकि कोंत की भांति अनियंत्रित पूंजीवाद का समालोचक था, हतोत्साहित किया।

क्या कोंत के सदृश सिद्धांत सामाजिक पुनर्संगठन की भावी योजनाओं के निर्माण में पर्याप्त लोकप्रिय होंगे या नहीं, यह सामाजिक सिद्धांत के इतिहास की नहीं, प्रत्युत् भविष्य-वाणी की समस्या है। किंतु यह कहना उचित होगा कि सामाजिक व्यवस्था के पुनर्संगठन के लिये इससे कम विस्तृत योजना समुचित न होगी।

हाल के बौद्धिक और सामाजिक विकास, जोकि कोंत के बुनियादी विचारों से कुछ मिलेते है, धर्म की मानववादी अवधारणा हैं जिसे कि जॉन एच० डाइट्रिक, चार्ल्स फ्रांसिस पौटर और अन्यों ने प्रस्तुत किया है; प्राद्योगतंत्र (Technocracy) का आंदोलन जो कि आर्थिक जीवन को औद्योगिक इंजीनियरों के हाथ में दे देगा; यह विचार कि अभि-जातवर्ग (Elite) शासन करे, जिसका कि नोवीकोव, मोस्का और परेटो ने समर्थन किया और जिसे कि एक भद्दे और मिथ्या रूप में फासिस्टों द्वारा अपनाया गया और जेम्स बर्नहम और अन्यों द्वारा प्रस्तुत व्यवस्थापक समाज की अवधारणाएं है।

टिप्पणियां

१. इस विषय पर संक्षिप्त लेख *American Journal of Sociology*, January, 1922, pp. 510–13 मे देखिये। कोंत और उसकी रचनाओं की विस्तृत ग्रंथ-सूची के लिए देखिये H. E, Barnes and Howard Becker, *Social Thought from Lore to Science* (2 vols.; Boston, 1938), I, xIii–xlvi.

२. देखिये W. H. Schoff, "A Neglected Chapter in the Life of Comte," *Annals of the American Academy of Political and Social Science*, VIII, (1896), 491–508.

३. कोंत की रचनाओं की सूची के लिए देखिये Maurice Defourny, *La Sociologie positiviste d'Auguste Comte* (Louvain, 1902), pp. 19–22.

४. कोंत ने स्वयं और जी० एच० लेविस तथा फ़ेडरिक हैरिसन ने इस बात पर जोर दिया है। *Polity* के महत्त्व पर कठोर आक्रमण के लिए देखिये *Annals of the Academy of Political and Social Science*, VIII, (1896), 506.

५. Frank Alengry, *La Sociologie chez Auguste Comte* (Paris, 1900), pp. 389 ff., 435–76, Defourny, op. cit., pp. 350–54, Henri Michel, *L'Idee de l'etat* (Paris, 1896), pp. 451–58.

कोंत के विचारों के अध्ययन के लिए देखिये Littre, *Auguste Comte et la philsophie positive* (Paris, 1863), Depuy, *Le Positivisme d'Auguste*

Comte, (Paris, 1911)); Lucien Levy-Bruhl, *The Philosophy of Auguste Comte* (New York, 1903): G. H. Lewis, *Comte's Philosophy of the Sciences* (London 1853), Edward Caird, *The Social Philosophy and Religion of Comte* (Glasgow, 1885); A. Roux, *La Pensee d'Auguste Comte* (Paris, 1920); और Herman Gruber, *Comte der Begrunder des positivismus* (Freiburg, 1889).

६. समाजविज्ञान को कोत की देन का अच्छा मूल्याकन फ्रेंच मे डीफूर्ने और अलेंग्री ने किया है, जिनके ग्रथ उद्धृत किये गये हैं। उसके राजनैतिक विचारो के विशेष विवेचन के लिए देखिये Fezensac, *Le Systeme politique d'Auguste Comte* और L. Chiappini, *Les Idees politiques d'Auguste Comte* (Paris, 1913)। जर्मनी मे है Heinrich Waestig. *Auguste Comte und seine Bedeutung fur Socialwissenschaft* (1894)। एक सदमे बाद की विवेचना के लिए देखिये McQuilkin DeGrange. *The Curve of* Societal Movement (Hanover, 1930).

७. मिलाइये F. W. Coker, *Organismic Theories of the State* (New York, 1910). pp. 123-24. और मिलाइये L. T. Hobhouse, *Social Evolution and Political Theory* (New York, 1913). p. 204.

८. Harriet Martineau, *The Positive Philosophy of Comte*. I, 1–3. III *passim*: इसे भी देखिये L. T. Hobhouse, *Sociological Review*, 1. 262–791, कोत को त्रिक से उतना ही प्रगाढ प्रेम था जितना कि विको को। अतएव उसने बौद्धिक प्रगति की तीन अवस्थाओं, मस्तिष्क के कार्य के तीन विभाग, तीन प्रकार की सामाजिक शक्तियां, तीन प्रकार के समाज, तीन सामाजिक वर्गों धर्म की तीन अवस्थाओं और समाज मे तीन प्रकार के नियामक वर्गों को ढूंढा है।

९ *Polity*. IV. 157.

१०. *Philosophie positive*, IV, 7 ff. 578–87; *Polity*. III. 44–45 *passim*. मिलाइये W. A. Dunning. *Political Theories* from Rousseau to Spencer (New York, 1920). pp. 393–94 · "सामाजिक विकासवाद के इस विश्लेषण मे चाहे कुछ जुड़े, चाहे कुछ भी सशोधन अपेक्षित हो, इसे मानव बुद्धि की महानतम उपलब्धि माना जायेगा। एक हाल की विद्वत्तापूर्ण विवेचना के लिए देखिये Alexander Marcuse, *Die Geschichts-Philosophie Auguste Comtes*(Berlin, 1932)। A. W. Benn ने (Modern Philosophy (New York, 1913), p. 156) मे अनुचित उत्साह से इसे सार्वभौम इतिहास पर अभी तक लिखी गई सर्वश्रेष्ठ रचना घोषित किया है।

११. *Polity*, II, 241.

१२. *Ibid.*, p. 224; इसे भी मिलाइये *Philosophie positive*, IV, 485–95.

१३ *Polity*, II, 241.

१४. *Ibid*, pp. 153, 183; इसे भी मिलाइये *Philosophie positive*, IV, 447–69.

१५. *Polity*, II, 153

१६. *Ibid*, p. 183.

१७. *Ibid*, p. 246

१८. *Idid.*, p, 247.

१९. *Idid.*, p. 249.

२०. *Ibid.*, p. 251. चर्च की स्वतत्रता तभी संभव है जब कि उसके शासन का क्षेत्र राजनैतिक समूह से अधिक विस्तृत हो (*ibid.*, pp. 252–53)।

२१. मिलाइये Friedrich Dittman, "Die Geschichtsphilsophie Comtes und Hegels, ein Vergleich." *Vierteljahrsschrift fur Wissenscharfltiche Philosophie*, XXXVIII, 281–312; XXXIX, 38–81.

२२. कोंत के इतिहास के दर्शन के लिए *Philosophy* की अंतिम जिल्दे देखने के बजाय *Polity* की तीसरी जिल्द देखनी चाहिये, चूँकि उसने स्वयं पाठकों को बताया है (*polity*, III, 5) कि उसके सपूर्ण सिद्धात इस जिल्द में मिलेगे। कोंत के इतिहास के सबसे सुगढ़ सक्षेप के लिए देखिये *polity*, III. 421–22; और मिलाइये Marcuse, *op. cit*

२३. *Polity*. III, 205–6.

२४ *Ibid.*, p. 307.

२५. *Ibid.*, p. 353.

२६ Caird, *op. cit.*, p. 35. राबर्ट फ्लिट द्वारा कोंत के इतिहास के दर्शन की असहानुभूतिपूर्ण विवेचना के लिए देखिये उसकी *History of the Philosophy of History in France* (London, 1894), pp. 575–615.

२७. प्रभुसत्ता पर कोत के विचारो के लिए देखिये Rene Millot, *La Souverainete d' apres Auguste Comte* (Paris, 1905).

२८. *Polity*, I, 106–10.

२९. *The Philosophy of Auguste Comte*, pp. 320–21.

३०. *Ibid.*, pp. 328–29.

३१. *Ibid.*, p. 329.

३२. *Ibid.*, p. 331.

३३. *Ibid.*, p. 329.

३४. *Polity*, II, 291.

३५. *Ibid.*, p. 292.

३६. *Ibid.*, p. 266. यहां पर राज्य के कार्यात्मक पुनर्संगठन के आधुनिक सामाजिक राजनैतिक सिद्धांत के कुछ पुर्वानुमान हैं (F. Pocant, "Auguste Comte et Durkheim," *Revue de metaphysique et de morale*, October-December, 1921, pp. 64 ff.) कोंत के सामाजिक कार्यक्रम की व्याख्या के लिए देखिये H. D. Hutton, *Comte's Theory of Man's Future* (London, 1877).

३७. *Polity*, II, 334–35.

३८. *Ibid.*, p. 112.

३९. *Ibid.*, pp. 117–20.

४०. *Ibid.*, p. 110.

४१. *Ibid.*, p. 120.

४२. *Ibid.*, IV, 536, 558–60. सामाजिक निर्देशक की कोंत की पूर्वोक्ति की वार्ड द्वारा सराहना के लिए देखिये *Dynamic Sociology*, (2 vols., ; New York, 1883), I, 137.

४३. *Philosophie positive*, II, 11; L. M. Bristol द्वारा *Social Adaptation* (Cambridge, 1915), p. 12 में उद्धृत ।

४४. मिलाइये J. E. McGoo, *A Crusade for Humanity : The History of Organized Positivism in England* (London, 1931).

अध्याय दो

हरबर्ट स्पेंसर और व्यक्तिवाद की विकासवादी वकालत

हैरी एल्मर बार्नस्

१. स्पेंसर की दार्शनिक और समाजशास्त्रीय प्रणाली का सामान्य स्वरूप

(क) जीवन और रचनाएं

समाजशास्त्र के क्षेत्र में कोंत के कार्य को दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर (१८२०-१९०३) ने अपने हाथों में लिया और उसे अत्यंत विस्तृत कर अन्य किसी की तुलना में सबसे श्रेष्ठ रीति से उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक विचारों की मुख्य धाराओं को प्रस्तुत किया। इसका यह अर्थ नहीं कि स्पेंसर कोंत को अपना वैज्ञानिक अग्रणी मानता था। वस्तुतः बात उल्टी थी, चूंकि स्पेंसर ने अपनी प्रथम समाजशास्त्रीय रचना 'सामाजिक स्थिति-विज्ञान' *Social Statics* को जब प्रकाशित किया, उससे पहले उसे कोंत के विचारों का कोई विस्तृत ज्ञान न था और ऐसा लगता है कि बहुत अंशों में दोनों लेखकों में समानता केवल संयोगमात्र थी। दूसरी ओर, स्पेंसर के इस प्रयत्न से सर्वथा सहमत होना कठिन है जहांकि उसने कोंत और उसके विचारों से पूर्ण स्वतंत्रता और बुनियादी मतभेद सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[१] इसके बजाय हैनरी माइकेल के निर्णय को स्वीकार करना प्रायः उतना ही सत्य होगा: "जिस किसी ने भी कोंत के *Opuscules* (अर्थात् प्रारंभिक निबंधों) को पढ़ा है वह यह नही मान सकता कि 'समाजशास्त्र के सिद्धांत' *Principles of Sociology* को वस्तुतः मौलिक पुस्तक कहा जा सकता है। सभी प्रमुख विचारों यहाँ, तक कि स्पेंसर की पद्धति को भी *Opuscules* में देखा जा सकता है। कोंत ने रूपरेखा खींची, स्पेंसर ने केवल उसे भरा।"[२]

अस्वस्थ बालक स्पेंसर की शिक्षा घर में हुई थी और उसे कभी सार्वजनिक शिक्षा नहीं मिली। गृह-प्रशिक्षण के इस पहलू में वह अपने प्रसिद्ध समकालीन जॉन स्टुअर्ट मिल के सदृश था। विश्वविद्यालय में शिक्षा न पाने के कारण निस्संदेह इंगलैंड का औपचारिक शैक्षणिक क्षेत्र स्पेंसर की शिक्षाओं में दिलचस्पी दिखाने से इन्कार करता रहा और प्रारंभिक जीवन में समुचित सामाजिकता के अभाव ने वयस्क जीवन में भी उसकी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों पर कम प्रभाव नहीं डाला। इन सर्वथा व्यक्तिगत तत्वों के अतिरिक्त, अपने परिवार से स्पेंसर की परंपराविरोधी विरासत और अपने यौवन में क्रांतिकारी सिद्धांतों के विरुद्ध उसकी प्रतिक्रिया ऐसे विषय हैं जिन्हें कि उसकी दार्शनिक प्रवृत्तियों के स्रोतों और उसके बौद्धिक रुझान को समझने का प्रयत्न करते समय ध्यान में रखना चाहिये।[३]

छोटी आयु में ही स्पेंसर की यंत्रशास्त्र (Mechanics) में रुचि हो गई और १८३७ में वह लंदन और बर्मिंघम रेलमार्ग का प्रमुख इंजीनियर बन गया। १८४८ में *Economist* का उपसंपादक बनने के लिये उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और जिन चार वर्षों तक वह यह कार्य करता रहा, उसने १८५० में समाजशास्त्र को अपनी पहली महत्त्वपूर्ण देन *Social Statics* दी। अगले आठ वर्षों में उसने अपने संश्लेषणात्मक दर्शन की प्रणाली के बुनियादी सिद्धांतों को विकसित किया और उन्हें १८६३ में 'प्रारंभिक सिद्धातों' *First Principles* में प्रकाशित किया। कोई भी स्पेंसर के दर्शन को नहीं समझ सकता यदि उसने यह रचना नही पढ़ी है, जैसे कि कोई भी कोंत के बुनियादी विचारों को नहीं समझ सकता, यदि उसने उसके प्रारंभिक निबंध नहीं पढ़े हैं।

इस ग्रंथ में स्पेंसर ने अध्यात्मशास्त्रीय (Metaphysical) धर्मशास्त्र को अन्तिम अज्ञात के क्षेत्र में डालकर, अपने सार्वभौम सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत की और मानव ज्ञान की समग्रता में उसके प्रयोग की मुख्य दिशाओं का संकेत किया। जैसा कि प्रायः कहा गया है, उसने विज्ञान और दर्शन की पुनरोवित के लिये डार्विन के सिद्धांतों के प्रयोग का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत् उसने इस क्षेत्र पर अपने विकासवादी (Evolutionary) सिद्धांत को लागू किया, जोकि डार्विन से पहले और उससे स्वतन्त्र प्रतिपादित किया गया था तथा सर्वथा पृथक्, यद्यपि संगत बुनियादी प्रस्थापनाओं पर निर्मित किया गया था।[1]

(ख) स्पेंसर का समाज का दर्शन

स्पेंसर की प्रणाली के गुणों पर सपूर्ण रूप से अंतिम निर्णय देने के प्रयत्न करने का यह स्थान नही है। इसने निश्चित रूप से आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के सामान्य दृष्टिकोण अर्थात् विकासवादी दृष्टिकोण की ओर सकेत किया, जोकि समग्ररूप से मूलतः सही लगता है, हालांकि स्पेंसर के विकासवाद का विशेष दृष्टिकोण परवर्ती विशेषीकृत आगमनात्मक (Inductive) और परिमाणात्मक अध्ययनों के परीक्षण में असफल हो सकता है। पुनः यह कहना पर्याप्त सही होगा कि अरस्तू के समय से लेकर यह प्रणाली एक मानवे मस्तिष्क की सर्वाधिक प्रभावशाली उपज है। पुनः इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि जन्मजात मानसिक सृजनशक्ति में स्पेंसर का आधुनिक लेखकों से कोई मुकाबला नही। उदाहरण के लिये, मनोविज्ञान पर वुंट की पुस्तकों को तैयार करने के लिये, जिनमें कि लेखक अपने विशेष विषय की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण रचना से भली भांति परिचित दीखता है, एक असाधारण प्रतिभा की आवश्यकता है। यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसी रचना अधिक मूल्यवान् हो सकती है, फिर भी इसके लिये एक अमेरिकन पब्लिक स्कूल के प्राथमिक औसत शिक्षक से भी कम औपचारिक मनोविज्ञान को पढ़कर अपने ही मस्तिष्क से स्पेंसर जैसे 'मनोविज्ञान के सिद्धांत' *Principles of Psychology* को तैयार करने में स्पेंसर से कम प्रतिभा अपेक्षित है।

संक्षेप में, आनेवाली वैज्ञानिक प्रगति द्वारा स्पेंसर की प्रणाली का जो कोई अंश भी नष्ट हो जाय—और ऐसा लगता है कि उसका बहुत कुछ अंश अब अलंकार के क्षेत्र में पड़ गया है—फिर भी वह इस सम्मान का दावा कर सकता है कि उसने विकासवाद की अवधारणा को निर्देशक सिद्धांत बनाकर वैज्ञानिक अध्ययन के प्रायः सभी पहलुओं को और अधिक उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त किया है। स्वर्गीय विलियम ग्रैहम सुमनर ने समाजविज्ञान में स्पेंसर के विकासवादी सिद्धांत के महत्त्व को अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।

अपने साहित्यिक जीवन के प्रारंभ में ही स्पेंसर ने समाजशास्त्र के विषयों पर विचार किया। इन विषयों की खोज ने उसे निरंतर अधिक बुनियादी और दार्शनिक सिद्धांतों को खोजने पर बाध्य किया। अंत में वह विकासवादी दर्शन के सिद्धांतों पर पहुंचा। फिर उसने इन सिद्धांतों को अन्य विज्ञानों के आगमनों (Inductions) द्वारा विस्तृत, परीक्षित, पुष्ट और संशोधित किया और अंत मे वह पुनः वैज्ञानिक पद्धति से लैस होकर, जोकि वह ग्रहण कर चुका था, समाजशास्त्र की ओर लौटा। जैसा कि हम अच्छी तरह जानते है, शक्तिशाली और सही पद्धति को पाना आधी से अधिक लड़ाई जीत लेना है। जब इतना कुछ सुरक्षित हो, तब खोजें करने, समस्या सुलझाने, भूलों का निराकरण करने और परिणामों का परीक्षण करने का प्रश्न केवल न्यासों (Data) को संग्रहीत और उन पर अधिकार पाने के लिये समय और शक्ति का प्रश्न है।"[५]

इस प्रकार प्राकृतिक और समाजविज्ञानों को प्रतिगामी और परित्यक्त प्रवृत्तियों से निकाला गया है जिनसे कि वह तभी से अल्पाधिक निराशापूर्ण सघर्ष कर रहे थे जब से कि चर्च के पादरियों ने आगमन और अनुभववाद (Empiricism) को, धार्मिक सत्ता और विश्वास द्वारा पुष्टि और स्वीकृत "सत्य" के सिद्धांतों पर आक्रमण करनेवाले वैज्ञानिक तथ्यों की खोज के विरोध से जकड़ दिया था।[६]

चूकि स्पेंसर के समाजविज्ञान की समस्त प्रणाली उसके विकासवाद के सामान्य नियमों पर निर्मित थी, अतः उसकी इस विषय में निहित बुनियादी प्रस्थापनाओं को समझना आवश्यक है। यह स्पेंसर के सावयवी सादृश्य (Organic analogy) के विकास की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उसके समाजशास्त्र के अधिकांश व्याख्याताओं और समालोचकों ने मुख्यतः दूसरी बात पर जोर दिया है।

अपने पूर्ण विकास में स्पेंसर के सार्वभौम विकासवाद के नियम *First Principles* के द्वितीय भाग में मिलते है। पहले उसने तीन बुनियादी सत्य या प्रस्थापनाएं खोजी है। इनमें से शक्ति के स्थायित्व का नियम (Law of persistence) बुनियादी है, जिसका अर्थ है उस अंतिम कारण का विद्यमान और स्थायी होना जोकि ज्ञान का अतिक्रमण कर जाता है। अन्य दो सिद्धांत पदार्थ की अनाशवानता (Indestructibility of Matter) और गति की निरंतरता (Continuity of motion) हैं; ये दोनों ही शक्तियों के बीच संबंधों, शक्ति के स्थायित्व के सिद्धांत से उद्भूत हैं। फिर चार गौण प्रस्थापनाएं हैं। पहली स्थायित्व या नियम की एकता है। दूसरी शक्तियों का

रूपांतरण और समानता है, अर्थात् यह कि शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, वह केवल रूपांतरित हो जाती है। तीसरा नियम है कि प्रत्येक चीज अल्पतम प्रतिरोध (Least resistance) या अधिकतम आकर्षण की दिशा में चलती है। चौथा और अंतिम नियम लय या गति के परिवर्तन (Rhythm or alternation of motion) का है।

इस प्रणाली को पूरा करने के लिये कोई नियम खोजा जाना चाहिये जोकि विकासवादी प्रक्रिया में इन भिन्न कारकों के मिश्रणों पर शासन करे। यह आवश्यकता इस नियम से पूरी होती है कि पदार्थ के एकीकरण के साथ गति नष्ट हो जाती है और पदार्थ के विभेदीकरण (Differentiation) से गति जज़्ब हो जाती है। परिणामतः विकासवाद की प्रक्रिया में असंगत एकतत्वीयता (Homogeneity) से संगत और एकीकृत बहुतत्वीयता (Heterogeneity) में परिवर्तन परिलक्षित होता है। इन स्थापनाओं से स्पेंसर ने अपने सार्वभौम विकासवाद के संपूर्ण नियम को निम्म प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया: "विकासवाद पदार्थ का एकीकरण और गति का सहवर्ती विनाश है जिसमें कि पदार्थ अपेक्षतया अनिश्चित, असंगत एकतत्वीयता से अपेक्षतया संगत बहुतत्वीयता की ओर बढ़ता है और इस बीच में रुकी हुई गति में एक समान प्रकार का रूपांतरण होता है।"

उसकी विकासवादी प्रणाली की बुनियादी नीव मे जब हम ऐसे महत्त्वपूर्ण स्वयंसिद्ध निष्कर्ष (Corollary) जोड़ते है जैसे कि विषम शक्तियों के प्रभाव से एकतत्वीयता की अस्थिरता, विभेदीकरण के कारकों का ज्यामितिक अनुपात मे विस्तार, विभेदीकृत भागों की समान इकाइयों द्वारा संग्रहीत होकर पृथक् होने की प्रवृत्ति और अंतिम संतुलन (Equilibrium) में विकासवाद की सभी प्रक्रियाओं की अंतिम सीमा, तब स्पेंसर के विकासवाद की प्रणाली की रूपरेखा पूर्ण होती है। विकासवाद के विपरीत विशृंखलता (Dissolution) है, जिसमे कि प्रक्रिया मे अवस्थाओं के विपरीत हो जाने से विकासवाद की उपलब्धियां नष्ट हो जाती है।[७]

स्पेंसर ने इस विकासवादी सूत्र को संक्षेप मे *First Principles* के बाकी अंश मे सब घटनाओं पर लागू किया, और उसमें पड़ जानेवाली सामाजिक प्रक्रियाओं पर उनका प्रयोग स्पेंसर की समाजशास्त्रीय प्रणाली का सजीव अंश है। 'प्राथमिक सिद्धांतों' मे पाई जानेवाली इस प्रारंभिक रूपरेखा का विस्तृत विस्तार स्पेंसर के "संश्लेषणात्मक दर्शन" (Synthetic Philosophy) का निर्माण करता है।

प्राथमिक सिद्धांतों मे दिये हुए स्पेंसर के समाजशास्त्र के औपचारिक विवेचन के अतिरिक्त, यह समाजशास्त्र के अध्ययन मे जोकि इस विषय का एक प्रकार का परिचय है और अभी भी अनिवार्य परिचय समझा जाता है और *Principles of Sociology* की तीन जिल्दों में पाया जाता है। जबकि स्पेंसर ने अपनी संपूर्ण दार्शनिक प्रणाली का सुंदर संक्षेप दिया है, वह अपने समाजशास्त्रीय सिद्धांत का स्पष्ट संक्षेप प्रस्तुत करने में असफल रहा। प्रोफेसर गिडिग्स ने इस आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया

और इस कार्य को इस प्रकार किया जोकि स्पेंसर को संतोषप्रद लगा । उसका स्पष्ट और विस्तृत संक्षेप निम्न है :

"समाज सावयव (Organisms) या अति सावयवी समूह हैं।

समाजों और वातावरणीय निकायों (Bodies) के बीच प्रकृति के अन्य निश्चित समूहों की भांति शक्ति का एक संतुलन है। एक समाज और दूसरे समाज के बीच, एक समूह और दूसरे समूह के बीच, एक सामाजिक वर्ग और दूसरे सामाजिक वर्ग के बीच एक संतुलन होता है ।

एक समाज और दूसरे समाज तथा समाजों और उनके वातावरण के बीच संतुलन समाजों में जीवित रहने के संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। विरोध समाज की स्वभावगत क्रिया बन जाता है ।

इस जीवनसंघर्ष में जीवित और मृतकों का भय उत्पन्न होता है। विरोध के साथ जीवितों का भय राजनैतिक नियंत्रण का मूल बन जाता है। मृतकों का भय धार्मिक नियंत्रण का मूल बन जाता है ।

राजनैतिक और धार्मिक नियंत्रण से संगठित और संचालित स्वभावगत विरोध सैनिकवाद (Militarism) बन जाता है। सैनिकवाद चरित्र और आचार तथा सामाजिक संगठन को स्वभावगत युद्ध के लिये अनूकूल बनाता है।

सैनिकवाद छोटे समूहो को बड़ों मे, उनको क्रमशः और बड़े समूहों में मिलाता है। यह सामाजिक एकीकरण संपन्न करता है। यह प्रक्रिया उस क्षेत्र को विस्तृत करती है जिसमे कि जनसंख्या का अधिकाधिक बड़ा अनुपात स्वभावतः शांतिपूर्वक रहता और उद्योगों में लगा रहता है।

स्वभावगत शांति और उद्योग शांतिपूर्ण, मैत्रीपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण जीवन के लिये चरित्र, आचार और सामाजिक संगठन को ढालते है ।

शांतिपूर्ण प्रकार के समाज मे दमन घट जाता है, सहजता और व्यक्तिगत स्वतंत्र कार्यक्षमता बढ़ जाती है। सामाजिक संगठन नमनीय बन जाता है और व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर सामाजिक एकता को नष्ट किये बिना आदिकालीन शक्ति के स्थान पर सहानुभूति और ज्ञान के तत्वों द्वारा अपने सामाजिक संबंधों को परिवर्तित करते हैं ।

सैनिकवाद से उद्योगवाद में परिवर्तन किसी निर्दिष्ट समाज और उसके पड़ोसी समाजों, किसी निर्दिष्ट प्रजाति और अन्य प्रजातियों के समाजों, सामान्य रूप से समाज और उसके भौतिक वातावरण के बीच शक्ति के संतुलन की मात्रा पर आश्रित है। शांतिपूर्ण उद्योगवाद अंततः तब तक स्थापित नही हो सकता जब तक राष्ट्रों और प्रजातियों के बीच संतुलन स्थापित नहीं हो जाता।

अन्य सीमित समूहों की भांति समाज में समस्त विकासवादी प्रक्रिया के विभेदीकरण (Differentiation) और संपूर्ण जटिलता की मात्रा एकीकरण की दर पर

आश्रित है। यह दर जितनी कम होगी विकासवाद उतना ही पूर्ण और संतोषजनक होगा।"[८]

विकासवाद के नियमों के अनुसार स्पेंसर की समाज की व्याख्या की उपेक्षा, यद्यपि उसकी प्रणाली से यह उतना महत्त्वपूर्ण रीति से संबंधित नहीं है, समाज और सावयव के बीच उसके सादृश्य (Analogy) का विकास अधिक ज्ञात है। स्पेंसर के लिये यह सादृश्य किसी भी प्रकार मौलिक न था, चूंकि यह प्लेटो, अरस्तू, पॉल और अनेक प्रारंभिक ईसाई फादरों में पाया जाता है। समस्त मध्यकाल में यह बहुत प्रचलित था और बाद में यह दूसरों के साथ कोंत, क्रॉस और एहरंस द्वारा पर्याप्त परिष्कृत किया गया। फिर भी इस सिद्धांत का प्रथम क्रमबद्ध विकास स्पेंसर को ही प्रस्तुत करना था।[९]

स्पेंसर ने समाज और सावयव के बीच छः बुनियादी समानताएं गिनाई है। पहली, दोनों ही अपने जीवन के अधिक भाग में आकार और दृश्य-वृद्धि के बढ़ने से जड़ पदार्थ से भिन्न हैं। दूसरी, जैसे-जैसे दोनों आकार में बढ़ते है, उनकी संरचना की जटिलता बढ़ती जाती है। तीसरी, दोनों में संरचना के बढ़ते हुए विभेदीकरण के साथ तद्रूप कार्यों का विभेदीकरण होता है। चौथी, विकासवाद समाज और पशु सावयवों में केवल भिन्नताएं ही नही, अपितु वह दोनों को संभव बनानेवाले प्रकार की निश्चित संबद्ध भिन्नताएं भी स्थापित करता है। पाँचवीं, समाज और सावयव के बीच सादृश्य तब और भी अधिक स्पष्ट होता है जबकि इसके विपरीत यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक सावयव एक समाज है। अंत मे, समाज और सावयव दोनों में समूह का जीवन नष्ट हो सकता है, पर इकाइयां कुछ समय तक जीवित रहेंगी।

दूसरी ओर, समाज और सावयव के बीच तीन महत्त्वपूर्ण भिन्नताएं द्रष्टव्य हैं। सबसे पहले तो एक पृथक् सावयव में रचयिता अंग एक ठोस संपूर्ण का निर्माण करते हैं और जीवित इकाइंयां घनिष्ट संपर्क से बंधी रहती है, सामाजिक सावयव मे रचयिता अंग विभक्त (Discrete) संपूर्ण का निर्माण करते है और जीवित इकाइंयां स्वतंत्र और अल्पाधिक बिखरी हुई होती है। पुनः इससे भी अधिक बुनियादी भेद है कि जहाँ पृथक् सावयव में कार्यों का ऐसा विभेदीकरण है कि कुछ अंग अनुभूति और विचार का स्थान और अन्य व्यवहारतः असंवेदनशील बन जाते है, सामाजिक सावयव मे ऐसा कोई विभेदीकरण नहीं है; समाज को बनानेवाले व्यक्तियों के अतिरिक्त वहां कोई सामाजिक मन या संवेदन-केन्द्र (Sensorium) नहीं है। दूसरी भिन्नता के परिणामस्वरूप, तीसरे भेद को देखा जा सकता है, अर्थात् जबकि सावयव में इकाइयां संपूर्ण की भलाई के लिये जीवित रहती हैं, समाज में सपूर्ण सदस्यों की भलाई के लिये जीवित है।[१०]

स्पेंसर की समाज की प्राणिशास्त्रीय व्याख्या का अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू जनसंख्या की प्रवृत्तियों का उसका प्रसिद्ध सिद्धांत था, जो सर्वप्रथम १८५२ में प्रस्तुत किया गया। उसका मत था कि "व्यक्तीकरण" (Individuation) और सृष्टि (Genesis) के बीच बुनियादी विरोध है। जैसे-जैसे सभ्यता अधिक जटिल हुई, प्रजाति को प्राप्त

शरीरक्रियात्मक शक्ति का अधिकाधिक अंश व्यक्तिगत विकास और अभिव्यक्ति से संबंधित क्रियाओं में व्यय हो जाता है। इसलिये प्रजननात्मक रुचियों और क्रियाओं के लिये अल्प शक्ति बाकी रह जाती है। संक्षेप में, उन्नत और परिपक्व सभ्यताएं उच्च प्रजनन दर के प्रतिकूल प्रतीत होती है। यह सिद्धात माल्थसवाद की अंतर्हित आलोचना थी। संयुक्त राज्य में हैनरी सी० कैरी ने इसे अपनाकर माल्थस और क्लसिकल अर्थशास्त्रियों के सामाजिक दर्शन के नैराश्यवाद को दूर करने में उसका उपयोग किया।

समाज के यह दो बुनियादी सिद्धांत—विकासवादी और सावयवी—समाजशास्त्र को स्पेंसर की दो प्रमुख सैद्धांतिक देनें है। समाजशास्त्र पर उसकी बाकी विपुल रचनाएं मुख्यत: विवरणात्मक हैं, यद्यपि अनेक स्थलों पर उनमे सामाजिक प्रक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

भविष्य मे स्पेसर की समाजशास्त्रीय प्रणाली का क्या स्थान होगा यह बताना कठिन है जबकि अधिक सशोधित संख्याशास्त्रीय (Statistical) और जातिशास्त्रीय (Ethnological) अध्ययन समाजशास्त्रीय सिद्धांत के सामान्य विषयों को बहुत कुछ अंतिम रूप प्रदान कर देगे। यह मानना सुरक्षित होगा कि समाज की एक भौतिक व्याख्या के रूप मे, सामान्य रूपरेखा के तौर पर उसकी प्रणाली इस विषय का अंतिम वक्तव्य रहेगी। एक रोचक आलंकारिक विवरण के रूप मे सावयवी सादृश्य निस्संदेह स्वीकार किया जायेगा किंतु सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्याओं के रूप में उसे मूल्यवान् न समझकर त्याग दिया जायगा। उसके ऐतिहासिक समाजशास्त्र का कितना अंश बच रहेगा, इस समय इसका अनुमान लगाना कठिन है। अभी भी जर्मनी मे प्रोफेसर एहरन-राइख, फ्रांस मे प्रोफेसर दुरखीम, ह्यूबर्ट, और मॉस, इगलैंड में प्रोफेसर रिवर्स और मैरेट तथा अमेरिका में प्रोफेसर बोआस और उनके शिष्यों जैसे समालोचक जातिशास्त्रियो की गवेषणाओ ने मानवशास्त्र के क्लसिकल स्कूल की प्राय: यांत्रिक विकासवादी प्रणालियों को, जिसका कि स्पेसर सर्वाधिक पक्का व्याख्याता था, सख्त चुनौती दी है। अब प्रोफेसर टी० एन० कार्वर के साथ इस पर सहमत नही हुआ जा सकता कि अन्य किसी पुस्तक की अपेक्षा की तुलना मे स्पेंसर के *Principles of Sociology* का न पढना कही अधिक बड़ी बाधा है।[11] फिर भी समाजशास्त्र के ऐतिहासिक विकास के दृष्टिकोण से देखने पर यह कहना सभवत: सही होगा कि अपने प्रभाव मे स्पेंसर की देन अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। प्रोफेसर ए० डब्ल्यू० स्मॉल ने स्पेंसर की स्थिति के महत्त्व को, विशेष रूप से जैसी कि वह *Principles of Sociology* में प्रस्तुत हुई है, बड़ी सुंदरता से संक्षेप मे रखा है।

"स्पेंसर की योजना मानव-साहचर्य (Association) के सार्थक कारकों को नाम, स्थान और महत्त्व देने का एक प्रयास है। यह काल्पनिक अवधारणाओं की प्रणाली नहीं है। यह समाज के वास्तविक तथ्यों को, उन संबंधों मे जिनमें कि वे वस्तुत: घटित होते हैं, भाषा मे रखने का प्रयास है। यह ऐसी विधि है जिसके द्वारा कि, जिस अनुपात

में इसे अपने लक्ष्य के लिये अपनाया जाता है, हम, उदाहरण के लिये संयुक्त राज्य की जनता के जीवन के बारे में बिना ऐसे विवरण की सहायता की अपेक्षा कहीं अधिक सही रूप से, कहीं अधिक विस्तार से और कहीं अधिक गहराई से समझ सकेंगे। यह पूछना सही परीक्षा न होगी कि क्या इस योजना में सामाजिक व्याख्या के रूप में कुछ भी नहीं छूटा है, बल्कि क्या यह बिना ऐसी व्याख्या के दीखनेवाले समाज के विषय में अधिक आवश्यक सत्य को उद्‌घाटित करती है; यह नहीं कि क्या बाकी को समझना शेष है, किंतु क्या इन प्रतीकों के अनुसार इससे पहले खोजी गयी योजना की अपेक्षा इसमें दैनिक जीवन की अधिक अस्तव्यस्तता प्रगट होती है। इस परीक्षा द्वारा जांचने पर स्पेंसर की योजना निश्चय ही सत्य के प्रति एक दृष्टिकोण है।" [१२]

२. स्पेंसर के प्रमुख सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांत

(क) समाजशास्त्र का राजनीतिविज्ञान से संबंध और राज्य का अध्ययन

जहां तक समाजशास्त्र का राजनीतिविज्ञान से संबंध है, स्पेंसर का मत कोंत से भिन्न था। वह मानता था कि विशेष समाजविज्ञान पृथक् हैं किंतु वे समाजशास्त्र की एकीकृत शाखाएं हैं और इस हैसियत से वह विज्ञान का वैध अंग हैं। फिर भी समाजशास्त्र और विशेष समाजविज्ञानों के क्षेत्र के बीच की भिन्नता को उसने स्पष्टता से नहीं रखा। समाजशास्त्र के साथ राजनीतिविज्ञान के संबंध और समाजशास्त्र द्वारा राजनैतिक समस्याओं पर अपने विचारों का संक्षेप उसने *Study of Sociology* के "समाजशास्त्र का क्षेत्र" शीर्षक अध्याय में प्रस्तुत किया है। अब सामान्यतः राजनीतिविज्ञान द्वारा विचार किये जानेवाले क्षेत्र पर पूर्णतः, यद्यपि स्पष्ट ही समाजशास्त्रीय दृष्टि से, विचार किया है, वह यहां कहता है :

"इसके बाद समाजशास्त्र को राजनैतिक संगठन के उस उदय और विकास का विवरण देना और उसे समझाना है, जोकि व्यक्तियो की क्रियाओं को कबायली या राष्ट्रीय आक्रमण या सुरक्षा के लिये मिलता है, और जोकि उन्हे एक दूसरे के साथ अपने व्यवहार और साथ ही अपने साथ उनके व्यवहार को नियंत्रित करता है। इस एकीकरण करने वाले और नियंत्रक यंत्र को घेरे हुए क्षेत्र, जनसंख्या के परिमाण और वितरण तथा संचार के साधनों को ढूंढ़ना है। इसे विभिन्न कबायली और बसे हुए, सैनिक और औद्योगिक सामाजिक प्ररूपों के इस संस्था द्वारा प्रस्तुत विभिन्न रूपों की भिन्नताओं को दर्शाना है। इसे इस अनुत्पादक नियंत्रक संरचना और उत्पादन करनेवाली संरचनाओं के बीच विद्यमान परिवर्तित संबंधों का वर्णन करना है। इसे नागरिक सरकार चलानेवाली संस्थाओं और सरकारी संस्थाओं के साथ धार्मिक और आनुष्ठानिक संस्थाओं के बीच विद्यमान संबंधों और उनके पारस्परिक प्रभावों को भी प्रस्तुत करना है। और फिर इसे उन संशोधनों पर जोकि सामाजिक इकाइयों के रूप पर निरंतर राजनैतिक निरोध डाल रहे हैं, साथ ही इसे राजनैतिक संगठन पर इन परिवर्तित प्रतिक्रियाओं द्वारा हुए संशोधनों पर भी ध्यान देना है।" [१३]

यह स्पेंसर के राज्य के समाजशास्त्रीय सिद्धांत की यदि पूर्ण नहीं तो कम-से-कम एक श्रेष्ठ रूपरेखा है जिसे कि उसका समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण कहा जा सकता है। *Principles of Sociology* के "राजनैतिक संस्थाओं" से संबंधित अध्याय और अनेक निबंधों तथा अन्य रचनाओं के अंशों में स्पेंसर का यह कार्य, गुम्पलोविक्ज़ और रैट्जनहोफर के संभव अपवाद को छोड़ किसी भी समाजशास्त्री द्वारा राजनैतिक समस्याओं पर निस्संदेह सर्वाधिक विस्तृत विवेचन है।

(ख) बुनियादी राजनैतिक अवधारणाएं और परिभाषाएं

ऐसा लगता है कि स्पेंसर ने समाज और राज्य की अवधारणाओं के भेद को पर्याप्त निश्चित रूप से पृथक् किया है, यद्यपि उसने इस बहुत कुछ शैक्षणिक विषय पर औपचारिक विचार करने का प्रयास नहीं किया। वह निस्संदेह राज्य को राजनैतिक रूप से संगठित समाज समझता है। वह समग्र रूप से समूह से संबंधित समाज की सहकारी क्रियाओं के चेतन संगठन को राज्य मानता है। वह कहता है कि "राजनैतिक संगठन को सामाजिक संगठन का वह भाग समझना चाहिये जोकि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये निर्देशन और निरोध के कार्यो को जान-बूझ कर पूरा करता है।" [१४]

इस प्रकार स्पेंसर राज्य को समाज की भांति विस्तृत या समाज का अधिक संशोधन नहीं कहता, बल्कि राजनैतिक इकाई के रूप मे संगठित होने पर इसे समाज मानता है। समग्र रूप से समाज दो प्रकार के सहयोग से सहारा पाता है : सहज निजी सहयोग; जो कि उन मामलो से संबधित है जो परोक्ष रीतियों को छोड़ एक इकाई के रूप मे समूह को प्रभावित नहीं करता; और विचारयुक्त (Consciously devised) सहयोग जोकि समग्र रूप मे समूह की सार्वजनिक क्रियाओ से संबंधित है। केवल दूसरा ही राज्य को उत्पन्न करता और चलाता है।

फिर भी वह इतनी स्पष्टता से राज्य और सरकार का भेद नही करता—एक अंग्रेज के लिये यह जरा कठिन है, चूंकि इंगलैंड मे वैध प्रभुसत्ता (Sovereignty) और कानून बनानेवाली शक्ति एक ही शक्ति में निहित है। साथ ही यह भी पर्याप्त स्पष्ट दीखता है कि स्पेसर सरकार की उस विशेष तौर पर परिभाषा करता जोकि राजनैतिक संगठन किसी भी समय या स्थान पर ग्रहण कर सकता था; दूसरे शब्दों में, प्रशासन के यंत्र के रूप में सरकार की यह सही धारणा थी। सावयवी सादृश्य के अर्थों में, राज्य वह प्रणाली है जिसका कार्य सामाजिक सावयव का नियमन है : वह अवयव जोकि इस कार्य को करते है "सरकार" समझे जाते है। जहां तक "राज्य" और "राष्ट्र" शब्दों के भेद का संबंध है, ऐसा लगता है कि स्पेंसर ने "राष्ट्र" शब्द को राज्य के वस्तुगत राजनैतिक और भौगोलिक पहलुओं—इस शब्द के परंपरागत प्रयोग के अर्थों में प्रयुक्त किया है, यद्यपि राजनीतिविज्ञान की कठोर शब्दावली इसे यह अर्थ प्रदान नहीं करती।

स्पेंसर इस प्रचलित अवधारणा से सहमत है कि जहाँ तक भूभाग, जनसंख्या और राजनैतिक संगठन का संबंध है, यह राज्य के बुनियादी गुण हैं किंतु, उसे असीमित प्रभुसत्ता

की धारणा से घृणा है। स्पेंसर-जैसे कट्टर व्यक्तिवादी के लिये समाज में अनियंत्रित शक्ति की अवधारणा, जिसके विरुद्ध व्यक्ति को प्रतिरोध का कोई वैध अधिकार नहीं है, सर्वाधिक अग्राह्य है। स्पेंसर ने हॉब्स, बेंथम और ऑस्टिन पर उतना ही कठोर आक्रमण किया है जितना कि बेंथम ने ब्लैकस्टोन पर : "उसके अभ्युपगम का विश्लेषण कीजिए, और ऑस्टिन का सिद्धांत सिद्ध करता है कि उसका आधार हॉब्स से बेहतर नही है। स्वीकृत दैवी अवतरण या नियुक्ति की अनुपस्थिति में न तो अकेला शासक, न अनेक शासक ऐसे प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर सकते-हैं जैसा कि असीमित प्रभुशक्ति के दावे में अंतर्हित है।" [१५]

प्रभुसत्ता के बजाय प्राकृतिक या, यह कहना अधिक ठीक होगा कि व्यक्तिगत अधिकार स्पेंसर के राजनैतिक सिद्धांत की आधारशिला थे। किंतु स्पेंसर द्वारा कल्पित व्यक्तिगत अधिकार न तो अध्यात्मिक (Metaphysical) आचारशास्त्र द्वारा मान्य, न ही सरकारी एजेंट द्वारा प्रदान किये गये कृत्रिम अधिकार थे। वे वह अपरिहार्य अधिकार हैं जिन्हें कि व्यक्तियों को गारंटी देनी चाहिए जिससे कि समाज जीवित रह सके और समुचित रीति से कार्य कर सके। प्राकृतिक अधिकारों का ऐसा सिद्धांत सर्वथा उचित है और जैसा कि अर्नेस्ट बार्कर का कहना है, वह सामाजिक सावयव के सिद्धात से सर्वथा असंगत नही है। मुख्यतः स्पेसर द्वारा आग्रह किये गये इन प्राकृतिक अधिकारों की अतिशय मात्रा पर आपत्ति की जा सकती है, न कि समस्या के सैद्धातिक पहलू पर।

(ग) राजनैतिक राज्य की आधारशिलाएं और औचित्य

स्पेसर ने राज्य और सरकार के उद्गम के प्रश्न पर विश्लेषणात्मक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से विचार किया है। दोनों ही अर्थो मे राजनैतिक नियंत्रण का आधार, जिसने कि विभिन्न कालों मे इसकी उपस्थिति को संभव बनाया है, जीवितो का भय है; जिस प्रकार की मृतकों का भय धार्मिक नियंत्रण की आधारशिला है। [१६] बेशक, यह बुनियादी भेद पूर्ण नही है, क्योंकि कुछ दशाओ मे मृतको के भय से राजनैतिक नियत्रण बढ़ जाता है, जैसे कि जब यह विश्वास किया जाता है कि मुखिया अपने पूर्वजों के प्रेतों के नियंत्रण में समर्थ है, और इसी प्रकार विद्यमान धार्मिक पदसोपानक्रम (Ecclesiastical heirarchy) प्रभावकर धार्मिक नियत्रण का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। किंतु सामान्यतः इसे विभेदीकरण का एक सत्य सिद्धात समझना चाहिए।

विश्लेषणात्मक अर्थों में राज्य और सरकार इसलिये उत्पन्न होते है कि समाज इनके बिना समुचित रीति से कार्य नही कर सकता। केवल अनेक व्यक्तियों के शारीरिक सामीप्य से समाज स्थापित नहीं होता। यह तभी निर्मित होता है जबकि इन इकाइयों में सहयोग की एक संगठित प्रणाली हो। राज्य और सरकार दो में से एक महान् प्रकार के सहयोग को ही नहीं जुटाते, जोकि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये समग्ररूप से समूह को नियंत्रित करते हैं, बल्कि वे निजी सहयोग के विकास को भी बढ़ावा देते है। वह व्यक्तियों में विरोध को नष्ट करते है और ऐसे समूह के आकार को बढ़ाते है जिनमे सहयोग रह सके। समूह जितना बड़ा होगा उतनी ही अधिक मात्रा में संभव श्रम-विभाजन और विशेषीकरण होगा। इसी

प्रकार कानूनी अधिकार और उनका लागू करने का दार्शनिक औचित्य इस तथ्य में है कि केवल राजनैतिक संरक्षण में ही समाज जीवित रह सकता है और समुचित रीति से कार्य कर सकता है। सावयवी सादृश्य के शब्दों में, राज्य की कैफियत सिद्धांतत: एक-सी है, चूंकि किसी पूर्ण सावयव में एक शक्तिशाली नियंत्रक प्रणाली होनी चाहिये, जिससे कि जीवन-रक्षक और वितरण प्रणालियों का समुचित कार्य सुनिश्चित हो सके।

इसी प्रकार सरकार की संरचना का सरलता से विश्लेषण किया जा सकता है। मानवजाति की जन्मजात भिन्नताओं के कारण एक प्राकृतिक त्रयी संरचना है। चाहे, हम एक आदिवासी कबीले या एक आधुनिक राज्य की परीक्षा करें, सरकारी उद्देश्यों के लिये संगठन को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है. (१) नेता (Leader); (२) योग्य और प्रतिष्ठित मनुष्यों की अल्पसंख्या, अर्थात् परामर्श-समिति (Consulting body), (३) अनुभवशून्य और अल्पबुद्धि नागरिकों का विस्तृत समूह, जोकि नेता और परिषद्, अर्थात् प्रतिनिधि-समिति (Representative body) के कार्यों और मतों को केवल सुनते है और उसमे सहमत या असहमत होते है। निरकुशतंत्र, अल्पजनतंत्र (Oligarchy) और प्रजातंत्र सरकार के तीन रचयिताओं मे से किसी एक की अनुचित प्रभुता को प्रतिबिंबित करता है। राजनैतिक शक्ति के पीछे छिपी महान् शक्ति और वह विशेष सरचनाएं जिनके द्वारा यह व्यक्त होती है "समुदाय (Community) की भावना" है। कुछ अंशों तक यह वर्तमान समस्याओं के प्रति समुदाय की प्रतिक्रिया पर आधारित है। किंतु उससे भी अधिक मात्रा मे यह प्रथा और परंपरा मे व्यक्त सामाजिक विरासत पर आश्रित है। राजनैतिक संगठन केवल इस "सामुदायिक भावना" को कार्यान्वित करने का सार्वजनिक साधन है। इस प्रकार मृतको ("मृत हाथ") का अज्ञात भय, जोकि प्रथा का मनोवैज्ञानिक तत्व है, राजनैतिक नियत्रण को कायम रखने मे जीवितों के भय को बढ़ाता है। स्पेंसर ने इस धारणा को निम्न प्रकार सक्षेप मे प्रस्तुत किया है :

"हम 'मृत हाथ' के विचार से जोकि सपत्ति के उपयोग मे जीवित व्यक्तियों के कार्यों को नियंत्रित करते हैं, परिचित है, किंतु स्थापित राजनैतिक प्रणाली द्वारा अधिकतर जीवन के व्यवस्थापन पर "मृत हाथ" का प्रभाव अपरिमित रूप से अधिक है। यह प्रत्येक देश में चाहे वह निरंकुशता से शासित हो या अन्य रीति से, राजनैतिक क्रिया को संभव बनाने के लिये हर समय आज्ञापालन को उत्पन्न करता है, और परपरा द्वारा पवित्र तथा पूर्वजों से प्राप्त संस्थाओं के प्रति अनुभव की जानेवाली संचित और संगठित भावना है।" [७]

(घ) सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं का ऐतिहासिक विकासवाद

सामाजिक और राजनैतिक संगठन के ऐतिहासिक विकासवाद का स्पेंसर का विवरण बहुत ही विस्तृत है, किंतु उसके निष्कर्ष उतने ही सदेहास्पद है जितना कि उसका संस्थाओं के विकासवाद का विवरण। उसकी पद्धति क्लसिकल मानवशास्त्रियों की थी, जिसे कि अब अधिकांश विद्वान् और आलोचक जातिशास्त्रियों (Ethnologists) ने त्याग दिया

है। अपने वृहद् *Descriptive Sociology* से किसी विशेष संस्था के विकासवाद को स्पष्ट करने के लिए संबंधित सामग्री को, उन सामाजिक समूहों के संपूर्ण सांस्कृतिक संकुल (Complex) से जिनसे कि सूचना ली गई थी, उनसे विशेष क्रिया का क्या संबंध है या *उसके थीसिस को पुष्ट करने में संस्कृति की भिन्न अवस्थाओं की साक्षियों पर बिना ध्यान* दिये, उसने उन्हें संकलित किया था। इस प्रकार पुनर्जागरण (Renaissance) के समय में शोशोनियन इंडियनों और इटली के नगरों को सामाजिक विकासवाद की विशेष प्रक्रिया या "अवस्था" (Stage) को पुष्ट करने की साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था। पाठक को प्रदत्त विपुल सामग्री, उसका व्यक्त विस्तार तथा समस्त विश्व और समस्त कालों से उनका लिया जाना और जिस अतुलनीय तार्किक कुशलता से स्पेंसर अपनी साक्षी को प्रस्तुत करता है, इन सबों ने वर्षों तक स्पेंसर के ऐतिहासिक समाजशास्त्र को अपने विषय का अपरिहार्य ग्रंथ बना दिया।[१८]

जातिशास्त्र मे अधिक परिष्कृत पद्धतियों के प्रयोग और योग्य जातिशास्त्रियों द्वारा सांस्कृतिक क्षेत्रों के गहन मौलिक अन्वेषण से प्राप्त साक्षी ने स्पेंसर के अनेक सामान्यीकरणों पर आपत्ति की। उसकी दोषपूर्ण पद्धति के अतिरिक्त, मानवशास्त्र के क्लसिकल संप्रदाय जिसका कि वह प्रमुख सदस्य था, उसकी सांस्कृतिक गुणों (Traits) की सार्वभौमता और संस्थागत विकासवाद के क्रमबद्ध (Orderly) प्रगति के सामान्य अभ्युपगमों को बाद की खोजों ने गंभीर चुनौती दी है। जातिशास्त्रियों द्वारा अब यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि किसी विशेष सास्कृतिक क्षेत्र का योग्यता से अन्वेषण करने के लिये लगभग चार विशेषज्ञों की आवश्यकता है, सामाजिक विकासवाद के समस्त मार्ग के सर्वेक्षण के प्रयत्न का तो जिक्र ही न करना चाहिए। सही ऐतिहासिक समाजशास्त्र केवल सुदूर भविष्य मे ही लिखा जा सकता है जबकि विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये प्रतिवेदनों में विशेष क्षेत्रों और विशेष अवधियों के विषय में जातिशास्त्रियों और सांस्कृतिक इतिहास-कारों की खोजों का संक्षेप होगा। इसके बावजूद भी, यह संदेहास्पद है कि स्पेसर की पद्धतियों द्वारा कोई उससे बेहतर तार्किक निष्कर्षों पर पहुंच सकता और उसके निष्कर्षों के संबंध में जो उचित संदेह हो सकता है उसे स्पेसर के समाज के इतिहास में प्रदर्शित रचनात्मक तर्क और कल्पना की तीक्ष्णता के प्रति उच्चतम सम्मान दिखाने से वंचित नहीं करना चाहिये।

सामाजिक और राजनैतिक संगठन के विकासवाद के संबंध में स्पेंसर के मुख्य निष्कर्षों को निम्न प्रकार संक्षेप में दिया जा सकता है : सबसे पहले यह कल्पित किया जा सकता है कि समाज एक अविभेदीकृत और असंगठित गिरोहों (Hordes) के रूप में विद्यमान था। सार्वजनिक अधिसत्ता और राजनैतिक संगठन का प्रारंभ युद्धकाल मे नेता के नीचे समूह की स्थायी आधीनता थी। युद्ध में नेता की प्राकृतिक कुशलता को प्रायः उसकी प्रेतों को नियंत्रित करने और उनसे सहायता प्राप्त करने की शक्ति के साथ जोड़ दिया जाता था और इस प्रकार उसके शासन को एक अलौकिक स्वीकृति प्रदान की जाती थी।

समाज की जटिलता के बढ़ने के साथ-साथ उचित समय पर, युद्ध की अधिक अवधियों और सैनिक क्रियाओं के बेहतर संगठन ने इस स्थायी युद्धनेता को एक मुखिया या राजा के रूप में विकसित किया जोकि अपने जीवनकाल के लिये शक्ति को संचालित करता था। बाद में, नेता की मृत्यु और उत्तराधिकारी के चुनाव की अवधि में होनेवाली कठिनाइयों और अव्यवस्था ने आनुवंशिक नेतृत्व के सिद्धांत को स्थापित किया। इस प्रकार नेतृत्व में स्थिरता और स्थायित्व आया। शासक के इस विकास के साथ-साथ परामर्शदात्री और प्रतिनिधि समितियों का समानांतर उद्विकास हुआ। सर्वप्रथम आवश्यकता के समय पर होनेवाली यह सहज समितियां थीं, जो बाद में औपचारिक परिषदों और विधानसभाओं में विकसित हो गईं।

राजनैतिक संगठन और साथ ही सामान्यतः विकासवाद के विकास में एकीकरण और विभेदीकरण की प्रतिक्रियाएं प्रदर्शित होती है। सैनिक क्रियाओं की लंबी अवधि ने जोकि राजनैतिक विकासवाद की पूर्ववर्ती अवस्थाओं का लक्षण थी, छोटे कबायली समूहों और उनके भूभागों को एक किया। चूंकि अंतर्समूही संघर्ष में श्रेष्ठ संगठित समूह ही जीतते थे, इसलिये समाज का एकीकरण और सफल राज्य की शक्ति के क्षेत्र का विस्तार एक संचयात्मक प्रतिक्रिया थी। प्रयोग के क्षेत्र और नियंत्रण में विस्तार, दोनों से राजनैतिक सत्ता के एकीकरण के साथ, विभेदीकरण और एकीकरण की तदनुरूप वृद्धि हुई। समाज में विभेदीकरण, जोकि परिवार से शुद्ध होता है, प्रारंभिक राजनैतिक प्रगति को दर्शानेवाली विजय की अवधियों मे विस्तृत होता है, जब तक कि वह धनिक शासकों, सामान्य स्वाधीन लोगों, भूमिदासों और दासों के वर्गो का निर्माण नही कर लेता। जब राजनैतिक शक्ति एक निश्चित शासक वर्ग में केंद्रित हो जाती है और उसका क्षेत्र बढ जाता है तथा वह अधिक बड़े भूभाग पर लागू होती है, उसे कुशलता से प्रशासित करने के लिये दूसरों को देना पडता है। मंत्रिमंडलों के साथ आधुनिक सरकार की विस्तृत मशीनरी, उसकी स्थानीय शासक संस्थाएं, उसकी न्यायिक, राजस्व और सैनिक प्रणालियां, मुखिया-परिषद् और विधानसभा की सरल त्रयी रचना में व्यक्त सरकार के प्रारंभिक बुनियादी अंगो का अधिक विभेदीकरण और एकीकरण है।

सर्वप्रथम राज्य अपना समस्त ध्यान सैनिक संगठन, विजय और प्रादेशिक विस्तार के ऊपर केंद्रित करता है। किंतु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, उसका ध्यान अधिकाधिक उद्योग के विकास की ओर जाता है। इस क्षण से राजनैतिक विकासवाद की प्रक्रिया सैनिक राज्य की औद्योगिक राज्य में रूपांतरण की प्रक्रिया बन जाती है। यह प्रक्रिया अभी भी जारी है। यह विशुद्ध औद्योगिक राज्य भी सामाजिक विकासवाद का अंतिम लक्ष्य नहीं है। अंतिम अवस्था जिसकी कि आशा की जानी चाहिये वह है जिससे कि विकसित उद्योगवाद के साधनों को, मानव चरित्र के नैतिक आचार को अधिक उच्च और अधिक सत्य सामाजिक पहलुओं की ओर पूर्णता प्रदान की जा सके और इस प्रकार आचारवान (Ethical) राज्य की स्थापना की जा सके।

राजनैतिक संगठन की विभिन्न शाखाओं के सूक्ष्म उद्गम और विकास की चर्चा के बावजूद, स्पेंसर ने एक संबद्ध और संपूर्ण रूप में कहीं भी राज्य और प्रभुशक्ति के विकासवाद का स्पष्ट चित्र नहीं दिया है, और इस असफलता ने निस्संदेह बहुत अंशों में स्पेंसर को राज्य के वास्तविक महत्त्व को समझने और स्वीकार करने में असमर्थ बना दिया।

(ङ) राज्य और सरकार के रूप

राज्य के रूपों की अपनी विवेचना में स्पेंसर ने राजनैतिक विश्लेषण के लिये राज्यों के परंपरागत वर्गीकरण को त्याग दिया है और अपना ध्यान उस वर्गीकरण की ओर लगाया है जोकि संगठित राजनैतिक समाज के कार्यों की ओर उन्मुख है। स्पेंसर देखता है कि इतिहास के अभियान ने राजनैतिक समाज के दो विशिष्ट लक्ष्यों के लिये सैनिक आक्रमण और औद्योगिक विकास के लिए कार्य किया है। कोंत ने ऐसे विभेदीकरण की ओर संकेत किया था, यद्यपि उसने प्राथमिक सैनिक और प्राथमिक औद्योगिक युगों के बीच अधिक सही तौर पर एक गंभीर और क्रांतिकारी अवधि को रखा था। यह दो अवधियां जोकि सिद्धांतः बिल्कुल विभेदीकृत हैं, ऐतिहासिक अर्थों में एक दूसरे को ढक लेती हैं। वर्तमान युग, यद्यपि मूलतः औद्योगिक रूप में प्रारंभ हो रहा ह, अभी भी उसमें सैनिक शासन के अनेक अवशेष बाकी है।" इसके बावजूद, सूक्ष्म विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि इनमें से प्रत्येक प्रणाली के साथ निश्चित सिद्धात जुड़े हुए हैं और वह अपने नागरिकों में इस प्रकार का चरित्र निर्माण करते हैं जोकि दूसरे में पाये जानेवाले चरित्र से प्रायः सर्वथा विपरीत हैं।

सैनिक प्रकार के समाज में एकात्मक क्रिया आवश्यक है और सबो को इस कार्य में भाग लेना चाहिये। समाज की समस्त शक्ति सैनिक कुशलता को बढाने में लगती है, और जो नही लड सकते वे योद्धावर्ग के लिये आवश्यक सामग्री जुटाने में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार निरंकुश सरकारी सगठन द्वारा, जोकि सैनिक क्रिया के साथ समाज का अति विशेषीकृत समायोजन उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है, व्यक्ति समाज के आधीन हो जाता है।

बड़े क्षेत्र और पर्याप्त बडी जनसख्या के ऊपर इस निरंकुश नियत्रण के समुचित प्रशासन के लिये समाज का पूर्ण सैनिकीकरण (Regimentation) होना चाहिये जोकि शासक से लेकर निम्नतम प्रजा तक विस्तीर्ण हो। निरंकुश और नौकरशाही प्रणाली द्वारा प्रशासित नियमन भावात्मक भी है और निषेधात्मक भी। सैनिकीकरण की यह प्रणाली लादे गये विशेषीकरण के कारण समाज में कठोरता विकसित करती है, जोकि समाज में व्यक्ति के लिये अपने स्थान को बदलना कठिन बना देती है। वस्तुतः सैनिक युग में व्यक्ति की स्थिति केवल पद (Status) की है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये, जोकि युद्ध के समय में इतनी मूल्यवान् है, समाज संरक्षणवाद (Protectionism) की कट्टर नीति पर चलता है। चंकि युद्ध में सफलता समाज का सर्वोच्च लक्ष्य है, वीरता और शक्ति को प्रमुख नैतिक गुण बना दिया जाता है जिसकी ओर

महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति बढ़ें। एक स्वार्थपरक राष्ट्रवाद जोकि एक विशेष समूह या राष्ट्र की जीत को सामाजिक क्रिया का मुख्य लक्ष्य मान लेता है, सैनिक राज्य की प्रबल भावना है। व्यक्तिगत स्वतंत्र प्रेरणा पर नौरकशाही अधिकारतंत्र का निर्जीवता-उत्पादक प्रभाव पड़ता है और यह विश्वास दृढ़ होता है कि सार्वभौम सरकारी क्रियाएं अनिवार्य हैं, और यह समाज को प्रगति और सामाजिक विकासवाद के विकाससादी कारकों की अवधारणा से अंधेरे में रखता है।

औद्योगिक प्रकार के समाज को उसमें होनेवाले उद्योग की मात्रा से ही सैनिक समाज से पृथक् नही किया जा सकता, क्योंकि सैनिक राज्य भी बहुत उद्योगी हो सकते हैं। उसे उद्योग के विकास का मुख्य लक्ष्य बनाकर पूर्णतः पहचाना जा सकता है, चूंकि समाजवादी और साम्यवादी राज्यों का भी यही लक्ष्य बताया जाता है। इसके बजाय, औद्योगिक प्रकार का समाज वह है जिसमे कि व्यवस्था और न्याय की सीमाओं के अंतर्गत औद्योगिक विकास के साथ व्यक्तिगत उपक्रम (Initiative) की पूर्ण स्वतंत्रता मिली होती है। औद्योगिक प्रकार के समाज में अब कोई सर्वव्याप्त अनिवार्य राजनैतिक क्रिया नही होती, जो थोड़ा अनुशासन रहता भी है उसका उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उपक्रम और स्वतत्रता मे अनावश्यक हस्तक्षेप का निराकरण है। इस प्रकार के समाज के लिये एक प्रतिनिध्यात्मक, न कि निरंकुश, सरकार अपेक्षित है और ऐसी सरकार का कार्य न्याय का प्रशासन या, दूसरे शब्दों में, यह देखना है कि समाज का प्रत्येक सदस्य अपने श्रम के प्रत्यक्ष अनुपात मे पुरस्कार प्राप्त करे।

भावात्मक और निषेधात्मक तौर पर नियंत्रक होने के बजाय, जैसा कि सैनिक राज्य मे होता है, अब सरकार केवल निषेधात्मक तौर पर नियंत्रक है। व्यक्ति की स्थिति पद से सविदा (Contract) में बदल जाती है। व्यक्तिगत क्रिया और स्वेच्छापूर्ण सहयोग प्रोत्साहित किये जाते है। औद्योगिक शासन मे समाज नमनीय है और परिवर्तन के अधिक अनुकूल है। अंततः चूंकि अब आर्थिक आत्मनिर्भरता की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती, कठोर संरक्षण नीति समाप्त हो जाती है, और राष्ट्रीयता की आर्थिक दीवारें क्रमशः विलीन हो जाती है। सरकार के क्षेत्रीय रूप या सरकारों के संघ को राजनैतिक संगठन का लक्ष्य माना जा सकता है। यहां तक कि समाज के गुणों पर औद्योगिक युग की प्रतिक्रिया का संबंध है, राष्ट्रवाद अधिक परिष्कृत बन जाता है, समाज सरकारी हस्तक्षेप की निर्दोष कुशलता में अपनी श्रद्धा खो देता है और वैयक्तिकता अधिक शक्तिशाली, अधिक व्यक्त और अधिकारों का परस्पर सम्मान करती है। यद्यपि उद्योगवाद अभी तक बहुत अपूर्णता से कार्यान्वित हुआ है, इसे समाज के विकासवाद का अंतिम लक्ष्य नहीं समझना चाहिए। औद्योगिक शासन के पूर्ण हो जाने के बाद मनुष्य की आचारवान् प्रकृति के विकास में मुख्यतः संलग्न नये युग की आशा की जा सकती है। तब सामाजिक और राजनैतिक संगठन का अंतिम रूप आचारवान् राज्य है।

स्पेंसर ने सरकार के रूपों के प्रश्न को अधिक स्थान नहीं दिया है। "राजनैतिक रूपों" के विकास का उसका विस्तृत विवरण मुख्यतः प्रायः ज्ञात सरकार के विभागों के विकास के विश्लेषण से संबंधित है। स्पेंसर का दावा है कि सरकार के इन विभागों और सरकार के विभिन्न रूपों के बीच घनिष्ट संबंध विद्यमान है, चूंकि उसने इस पुराने क्लसिकल सिद्धांत को पुनर्जीवित किया है कि राजतंत्र (Monarchy) वह सरकार है जिसमें कि एक नेता की अनुचित प्रभुता होती है ; अल्पजनतंत्र (Oligarchy) वह प्रकार है जिसमें कि परिषद् साधारण रूप से प्रमुख होती है और प्रजातंत्र वह है जिसमें कि प्रतिनिध्यात्मक कारक अत्यंत अधिक अनुपात में शक्तिशाली बन जाता है। यद्यपि स्पेंसर ने इन तीन प्रकार की सरकारों की उपस्थिति को स्वीकार किया है, फिर भी वस्तुतः उसका विश्वास है कि केवल दो विशुद्ध रूप हैं—राजतंत्र और प्रतिनिध्यात्मक सरकार, दूसरे का अर्थ है प्रजातंत्र।

इन दो विरोधी कल्पनाओं पर आधारित दो अतियों मे से, कि समाज एक व्यक्ति की इच्छा का पालन करे या उसके सदस्य अपनी इच्छाओं से शासित हों, इनमें अनेक भिन्न श्रेणी की मिश्रित सरकारें हैं। जबकि तर्क के दृष्टिकोण से यह मिश्रित रूप की सरकारें बेहूदा हैं, वे व्यवहार में पर्याप्त अच्छी है, चूंकि उनकी असंगतियां कठोर सैनिक राज्य से नमनीय और औद्योगिक राज्य में समाज के संक्रमण से मेल खाती है : "इसके बावजूद कि वे मिश्रित सरकारें जिनमें कि दो परस्पर-विनाशात्मक पूर्वकल्प (Hypotheses) सम्मिलित हैं, सिद्धाततः अबौद्धिक है, उन्हे आवश्यकता के कारण तब तक विद्यमान रहना चाहिए जब तक कि वह अंशतः अनुकूलित मानव की मिश्रित रचना से मेल खाती है।" [२०]

स्पेंसर ने "समान स्वाधीनता के नियम के अनुसार रचित राजनैतिक संगठन के रूप में प्रजातंत्र की परिभाषा की है।" [२१] या पुनः उसने इसे "ऐसी एक प्रणाली कहा है जो कि मुख्यतः राष्ट्र को एक परामर्श समिति बनाकर और विधायक सभा को एक कार्यकारिणी में परिवर्तित कर, शासक शक्ति की उपस्थिति से पूरी तरह संगत स्वशासन को संचालित करती है।" [२२]

यह स्वीकार करते हुए कि राजतंत्र और निरंकुशता का अपना ऐतिहासिक कार्य था, स्पेंसर किसी भी समाज में जिसमें नागरिक पर्याप्त उच्च नैतिक और बौद्धिक विकास प्राप्त कर चुके है कि उन्हें इस प्रकार की सरकार के प्रशासन सौंपा जा सके, पूर्णतः प्रजातंत्र के पक्ष में था। प्रत्येक समाज प्रजातांत्रिक सरकार को चलाने के योग्य नहीं है। आचार को या तो आंतरिक या बाह्य निरोध से शासित किया जाना चाहिए; इसलिये उन लोगों में जिनमें कि नैतिक भावना समुचित आंतरिक निरोध जुटाने में पर्याप्त विकसित नहीं हुई है, प्रजातंत्र का स्थान नहीं है और वहां अधिक दमनात्मक प्रकार की आवश्यकता है। प्रजातंत्र को व्यावहारिक बनाने के लिये नागरिकों में उच्च नैतिक भावना ही नहीं चाहिए, बल्कि उनमें पर्याप्त अंश में बुद्धि और स्वाधीनता के मूल्य के महत्त्व को

समझने की क्षमता होनी चाहिये जिससे कि नागरिक उसके अतिक्रमण को जानने में सावधान हों और मताधिकार के प्रयोग में समर्थ हों। जब ऐसी अवस्थाएं विद्यमान हों, प्रजातंत्र आदर्श प्रकार की सरकार है। किसी भी दशा में हमे किसी विशेष प्रकार की सरकार में अपनी श्रद्धा नही रखनी चाहिए। सर्वोत्कृष्ट के लिये स्थान नही है और उन लोगों को छोड़कर जिनका राष्ट्रीय चरित्र अनुभव द्वारा उन्हें इस रूप के लिये योग्य ठहराता है, इसके असफल होने की आशंका है :

"कोई भी जोकि इन तथ्यों और इनसे संबद्ध तथ्यों को इनमें अंतर्हित सत्य के लिये देखता है, वह देख सकता है कि सरकार के रूप वहीं मूल्यवान् है, जहां कि वह राष्ट्रीय चरित्र की उपज है। कोई भी चतुरता से गढ़ी गई राजनैतिक व्यवस्थाएं अपने आपमें कुछ नहीं कर सकती। इन व्यवस्थाओं के उपयोग से संबंधित ज्ञान की कितनी भी मात्रा पर्याप्त न होगी। इन व्यवस्थाओं से अनुकलित उद्वेगात्मक प्रकृति (Emotional nature) वह प्रकृति जिसने कि सामाजिक प्रगति में इन व्यवस्थाओ को उद्विकसित किया है—को छोड़ कोई भी चीज पर्याप्त नही है।" [२३]

(च) प्रभुसत्ता (Sovereignty) स्वाधीनता और राजनैतिक अधिकारों का समाजशास्त्रीय सिद्धांत

वैध प्रभुसत्ता के सिद्धांत के लिय स्पेंसर के मन में अधिक सम्मान न था। यह संपूर्ण अवधारणा ही उसके लिये घृणित थी। परिणामतः वह इसके उद्गम को ढूंढने या इसके गुणों की परिभाषा करने के प्रयत्न से बचता रहा। उसकी मुख्य अभिरुचि इस सिद्धांत के समर्थकों का खंडन और प्रभुसत्ता के ऊपर तार्किक और ऐतिहासिक आधार पर लगाये गये नियत्रणो को उचित ठहराना थी।

स्पेंसर यह स्वीकार करने के लिये तैयार था कि कोई ऐसी चीज है जिसे कि डाइसी ने "राजनैतिक प्रभुसत्ता" कहा है, किंतु उसका कहना था कि सत्ता की आधीनता के लिये कोई श्रेष्ठ औचित्य ढूंढ़ना चाहिए। इस खोज मे उसने अपने अंतिम निबंध *Man versus the State* का उपयोग किया है जिसे कि उसने "महान् राजनैतिक अंधविश्वास" का शीर्षक दिया है, जिसका अर्थ है कि विधानमंडल की प्रभुसत्ता के सिद्धांत ने राजा की प्रभुसत्ता के परित्यक्त सिद्धांत का स्थान ले लिया है। अल्पमत द्वारा बहुमत की आधीनता के सैद्धातिक औचित्य को ठहराने के लिये स्पेसर ने इस काल्पनिक प्रश्न को प्रस्तुत किया है कि नागरिकों का बहुमत किस प्रकार के समझौते में सहयोग देगा जिसमे कि पर्याप्त अंशों में एकमतता हो। यह रूसो की राजनैतिक सत्ता को स्थापित करने और साथ ही व्यक्ति की स्वाधीनता को संरक्षित करने की प्रसिद्ध समस्या का स्मरण दिलाता है।

इस प्रश्न के उत्तर में स्पेसर देखता है कि व्यवहारतया सभी बाह्य आक्रमण से अपने प्रदेश की रक्षा करने और आंतरिक हिसा और धोखेबाजी के विरुद्ध व्यक्ति और संपत्ति को संरक्षित करने के लिये सहयोग करने में सहमत होगे। इसलिये इस सीमा तक अल्प

संख्या की आधीनता उचित और वैध है, इस सीमा से परे ऐसी आधीनता अनुचित और अवैध है।

इस प्रकार स्वाधीनता और सत्ता की समस्या के समाधान के रूप में एक काल्पनिक संविदा (Contract) वास्तविक संविदा के पुराने सिद्धांत का स्थान ले लेता है। जब हमें यह याद है कि लॉक के संभव अपवाद को छोड़कर, संविदा संप्रदाय के कुछ ही क्लसिकल लेखक सामाजिक संविदा की वास्तविक ऐतिहासिकता में विश्वास रखते थे, स्पेंसर का समाधान, चाहे उस सिद्धांत से उसके निगमनात्मक निष्कर्ष (Deductions) कितने ही भिन्न क्यों न हों, उनके सिद्धांतों से बहुत भिन्न नहीं दीखता।

जहाँ तक कि व्यक्ति के बुनियादी अधिकारों के उद्गम का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, स्पेंसर ने बेंथम और सामान्यतः आधुनिक राजनीतिशास्त्रियों के विरुद्ध यह कहा है कि वे ऐतिहासिक रूप से सरकारी क्रिया से उत्पन्न नही हुए हैं, प्रत्युत् वह वस्तुतः सरकार से पहले विद्यमान थे। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अपरिहार्य रीतियां हैं जिन्हें कि सामान्य और निरंतर सामाजिक जीवन के लिये युगों के अनुभव द्वारा आवश्यक पाया गया है। वह वैध कानून बनने से पहले एकमात्र सामाजिक आवश्यकता द्वारा जीवित थे। और सरकार ने केवल यही कार्य किया कि उसने प्रथा और प्रयोग में पूर्वस्थित इन अधिकारों को संहिताबद्ध और लागू किया।

प्राकृतिक या व्यक्तिगत अधिकारों का ऐसा सिद्धांत, चाहे वह अपने ऐतिहासिक औचित्य में कितना ही भ्रांतिपूर्ण क्यों न हो, तर्कतः सामाजिक सावयव (Organism) के सिद्धांत से असंगत नहीं है। स्पेंसर का प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत कि वह पूर्वानुभवी तर्काभास (Priori rationalization) से उत्पन्न होने के बजाय सामाजिक अनुभव की उपज है, उचित है। उसके सिद्धांत की सबसे अधिक प्रभावपूर्ण आलोचना यह है कि जिसे उसने प्रजाति के अनुभव से उत्पन्न कल्पित किया, वह प्राय. प्रजाति का क्या अनुभव होना चाहिए इससे संबंधित उसकी समृद्ध कल्पना की उपज थी।

(छ) राज्य की क्रिया का उचित वैध क्षेत्र

उसके कट्टर मत के इस सभव अपवाद को छोड़कर कि प्रत्यक्ष वैधानिक कदमों ही से सामाजिक सुधार की आशा नही की जा सकती, स्पेंसर के राजनैतिक सिद्धांत की सबसे प्रसिद्ध मद राज्यक्रिया के वैध क्षेत्र का उसका विश्लेषण था। जैसा कि एक प्रतिष्ठित समाजशास्त्री ने कहा है, स्पेंसर जीवन भर इस सिद्धांत को प्रस्तुत करने में कि राज्य को क्या न करना चाहिए इतना अधिक व्यस्त रहा कि वह राज्य का कोई संगत और भावात्मक (Positive) सिद्धांत विकसित करने में असफल रहा। ऐसा लगता है कि स्पेंसर का विस्तृत राज्य क्रिया या भावात्मक सुधार के सामाजिक कानून का विरोध दो मुख्य कारकों पर आधारित था : (१) स्वचालित सामाजिक विकासवाद के कट्टर संप्रदाय जोकि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य और अगले पच्चीस वर्षों में प्रचलित थे और

(२) उसके स्नायु-रोग से पीड़ित शरीर के गुण जिन्होंने उसके लिये राज्य की अधिसत्ता को घृणित बनाया ।

यह विचार कि सामाजिक विकास और सामाजिक प्रक्रिया का उचित संचालन स्वचालित और सहज कार्य है, इसे स्पेंसर के समय से बहुत पहले स्वीकार किया जा चुका था। अपने प्रारंभिक आधुनिक रूप में यह अठाहरवीं शताब्दी के समाजविज्ञान पर न्यूटन के ब्रह्मांड के यंत्रशास्त्र (Cosmic-Mechanics) की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ था। इंगलिश प्राकृतिक धर्म को माननेवाले (Deists) और फ्रेंच विश्वकोष-निर्माता दार्शनिकों ने इस धारणा को विकसित किया कि सामाजिक संस्थाएं भी उन्हीं "प्राकृतिक नियमों" से शासित होती हैं जिन्हें कि न्यूटन ने भौतिक ब्रह्मांड पर शासन करते हुए दिखाया था। उनकी इस अभ्युपगम को फ्रेंच फिजिओक्रैट और क्लसिकल अर्थशास्त्रियों ने ग्रहण किया और समाजविज्ञान में समाविष्ट किया; क्लसिकल अर्थशास्त्रियों ने इसका औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न नई पूंजीवादी प्रणाली की दार्शनिक कैफियत मे उपयोग किया। यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी के प्रारंभ मे ही रे, हॉडगिन और सिसमोंडी ने इस अवधारणा को गलत बताया फिर भी यह सामान्यतः संपूर्ण शताब्दी में मानी जाती रही ।

विकासवादी पूर्वकल्प (Hypotheses) के विकास के साथ, एक नया "प्रकृतिवाद" (Naturalism) प्रस्तुत किया गया। यह माना जाता था कि पशु-जीवन के अत्यंत संगठित प्ररूप निम्न रूपो से एक स्वचालित और स्वतंत्र रूप में विकसित हुए हैं। सावयवी और सामाजिक विकासवाद के बीच सादृश्य बताना सरल था। और यह कहना बहुत सरल था कि विकासवाद पूर्णतः सहज प्रक्रिया है जिसेकि कृत्रिम मानवीय हस्तक्षेप किसी भी प्रकार तेज़ नही कर सकता प्रत्युत् वह उसे घातक बाधा पहुंचा सकता है या उसकी दिशा को बदल सकता है। अन्य किसी लेखक की अपेक्षा स्पेंसर ने राज्यक्रिया के विरुद्ध युक्ति के रूप मे सामाजिक विकास के इस मत को लोकप्रिय बनाया—इस स्थिति को लेस्टर एफ० वार्ड, ल्योनार्ड टी० हॉबहाउस, लुडविग स्टाइन और एलबियन डब्ल्यू० स्मॉल ने गंभीर चुनौती दी ।

ऐसा लगता है कि स्पेंसर ने इसे किसी ऐसे स्रोत से प्राप्त किया जिसे कि आधुनिक गत्यात्मक मनोवैज्ञानिक अतिशय "सत्ताविरोधी संकुल" (Antiauthority complex) कहेंगे। यह उसके प्रारंभिक जीवन के विषय में ज्ञात, विशेषकर पुरुष संबंधियों द्वारा उसके शासन और उसकी पुष्ट स्नायुरोगी प्रवृत्तियों के साथ उसके सरकारी क्रिया के विस्तार के विरुद्ध स्थायी और बढ़ते हुए विरोध, संभवतः उसकी अचेतन स्नायुक प्रतिक्रिया की प्रेरणा का फल था। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि स्पेंसर एक विद्रोही परिवार से आया था और उसी वातावरण में पला था। ऐसा प्रतीत होता है कि समग्र रूप से सरकार के प्रति उसकी धारणा की गहरी उद्वेगात्मक बुनियाद थी, चूंकि यह वस्तुतः उसके सामान्य दर्शन की कई प्रमुख पूर्वावयवों से व्यक्त होती है । यह विरोध उसे

निरंतर कष्ट दे रहा था और उसे राजनैतिक व्यक्तिवाद और समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के बीच समझौता कराने में पर्याप्त श्रम लगा।

जो कुछ भी हो, राज्यक्रिया के प्रश्न के प्रति उसकी धारणा का संकेत मिल सकता था और वह उसके जीवनकाल की राजनैतिक अवस्थाओं से प्रचुर रूप में पुष्ट हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के क्रांतिकारी विचार, शीघ्र और हिंसक राजनैतिक सुधार के सिद्धांतों की प्रभावशीलता, तथा औद्योगिक क्रांति द्वारा पुराने सामाजिक नियंत्रण के विघटन से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिये प्रस्तावित सुधारक कानून स्पेंसर जैसी भावनाओं को जगाने और उनके प्रबल न होने देने के अत्यंत अनूकूल थे।[२४]

इस विषय पर स्पेंसर ने अपना पहला निबंध "सरकार का उचित क्षेत्र" शीर्षक से १८४२ में प्रकाशित किया और आठ वर्ष बाद वह उसके प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रंथ *Social Statics* में निकला। इस रचना का बुनियादी सिद्धांत स्पेंसर का समान स्वतंत्रता का नियम है, जोकि रूसो की स्वाधीनता की परिभाषा की पुनरोक्ति है। वह कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उस अंश तक पूर्ण स्वतंत्रता भोगनी है जिस अंश तक वह अन्य व्यक्तियों के समान विशेषाधिकार से संगत है। इस रचना में स्पेंसर ने अपने राज्य के प्रसिद्ध सिद्धांत को प्रस्तुत किया है कि यह व्यक्तियों के पारस्परिक संरक्षण के लिये एक संयुक्त पूंजी की कंपनी है तथा यहां उसने उन कार्यों की सूची को जिनसे कि राज्य को बचना चाहिए, अपनी स्थिति के समर्थक विचारों के विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है। उसकी निषिद्ध या टैबू क्रियाओं में निम्न क्रियाएं सम्मिलित हैं, इनमें से कुछ तो चौंकानेवाली है। व्यापारिक नियमन, राज्य की धार्मिक संस्थाए, प्राकृतिक चुनाव मे बाधक दान की क्रियाएं, राज्यशिक्षा, राज्य का औपनिवेशीकरण, सफाई के कार्य, मुद्रा का नियमन और ढालना, डाकसेवा प्रकाशस्तंभों और बंदरगाहों के सुधार की व्यवस्था। राज्य का वास्तविक कर्त्तव्य न्याय का प्रशासन है, जिसमे कि सिद्धांततः समान स्वतंत्रता के नियम को कायम रखना और व्यवहारतः आंतरिक लूटमार तथा धोखेजनी और वाह्य आक्रमण से नागरिकों के जीवन और संपत्ति का संरक्षण सम्मिलित है।

स्पेंसर ने राजनैतिक निर्हस्तक्षेप नीति के संबंध मे अपनी बुनियादी धारणाओं को *Study of Sociology*, १८७३, विशेषकर "समाजविज्ञान की हमारी आवश्यकता" के प्रथम प्रसिद्ध अध्याय और "राजनैतिक पूर्वाग्रह" (Bias) के वैसे ही उत्तम अध्याय में दोहराया है। अपनी *Study of Sociology* के एक अवतरण[२५] में स्पेंसर ने "भूले हुए मानव के संबंध में जोकि राज्य की क्रिया का अधिकतम आर्थिक बोझ उठाता है और इस कानून से अल्पतम लाभ पाता है, सुमनर के विचारों की पूर्वोक्ति की है। *Principles of Sociology* में व्यक्त उसके राजनैतिक सिद्धांत, सैनिक और औद्योगिक समाज की भिन्नताओं के अपवाद को छोड़कर मुख्यतः ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक हैं। तथा वह केवल प्रसंगवश ही राज्य की क्रिया के वैध क्षेत्र के प्रश्न की चर्चा करते हैं। १८५० और १८८४ के बीच, जबकि स्पेंसर ने *Man versus the State* प्रकाशित की, निर्हस्तक्षेप

के विषय पर बहुत-से लेख लिखे। अधिकांश रूप में इन्हें उसके *Essays, Scientific, Political, and Speculative* (१८९१) की तीसरी जिल्द में संकलित किया गया है। संभवतः इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उसका "विशेषीकृत प्रशासन" (१८७१) है जोकि प्रोफेसर हक्सले के निबंध "प्रशासनात्मक अराजकतावाद" (१८७०) में स्पेंसर के सिद्धांतों पर किये गये आक्रमण के उत्तर के रूप मे लिखा गया था। "विशेषीकृत प्रशासन" के सिद्धांत से स्पेंसर का तात्पर्य सरकार द्वारा मानवीय क्रियाओं के भावात्मक नियमन के कार्य का त्याग और उसके निषेधात्मक नियमन के कार्य को पूर्ण करना था। उसने "स्वतंत्रता से दासता की ओर" शीर्षक के अंतर्गत समाजवाद के विरुद्ध एक कटु आलोचना प्रकाशित की *Man versus the State* का दूसरा निबंध "आनेवाली दासता" भी मुख्यतः समाजवादी प्रस्थापनाओं का विरोध है।

अंततः *Man versus the state* और *Justice* में हम इस विषय पर स्पेंसर के अंतिम मत को देख सकते हैं। पहले में उसने अपने युग की समाजवादी प्रवृत्तियों और राज्यक्रिया के क्षेत्र मे परिवार के आचारशास्त्र के विस्तार के प्रयास पर आक्रमण किया है। उसने बहुमत के प्रतिनिधि के रूप में संसद (Parliament) की प्रभुसत्ता के समकालीन कटट्र मत का खंडन किया। यहां पर वर्णित, सरकार के उचित क्षेत्र के संबंध में उसका सिद्धांत है कि यह शारीरिक आक्रमण से सुरक्षा, संविदा की स्वतंत्रता और उनके लागू करने तथा विदेशी आक्रमण से व्यक्ति की रक्षा करने की व्यवस्था तक सीमित होना चाहिए, दूसरे शब्दों मे वह केवल निषेधात्मक नियमों से संबंधित होना चाहिए। *Man versus the state* के अंतिम संस्करण के अंत मे उसने यह स्वीकार किया है कि राज्यक्रिया का उसका सिद्धांत अपने युग से बहुत आगे है और वह आनेवाली अनेक पीढ़ियों तक नही अपनाया जायेगा, किंतु इस आधार पर अपनी निष्ठा का समर्थन करता है कि समाज की मुक्ति के लिये एक आदर्श होना चाहिए।

अनेक लेखकों, विशेषकर डी० जी० रिटची ने स्पेंसर के सामाजिक सावयव के सिद्धांत और उसके इस निष्कर्ष की असंगति कि समाज के और अधिक विकासवाद के साथ सरकार की नियंत्रक संरचना क्रमशः विशृंखल हो जायेगी, पर्याप्त आलोचना की है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यहां पर एक असंगति है जिसकी कि स्पेंसर की कुशलता भी कैफियत न दे सकी, किंतु इस घोषणा के साथ कि सरकार का कार्य अधिकाधिक सर्वग्राही बनना चाहिए, सावयवी सिद्धांत की तार्किक पूर्णता बिल्कुल संतोषजनक न थी। इस प्रकार के समाज में जिसमें कि बुद्धि कानून का मार्गदर्शन करती है, जैसा कि कोंत और बाद में वार्ड ने कल्पना की थी, राज्यक्रिया के विस्तार द्वारा प्रगति की आशा की जा सकती थी, किंतु आधुनिक राजनैतिक प्रणालियों में सामान्यतः सरकारी अधिकारियों के बुद्धि और नैतिक चरित्र के वर्तमान स्तर को देखते हुए, अधिकांश लेखक स्वैच्छिक संगठन की प्रभावशीलता पर अधिक भरोसा करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूलतः स्पेंसर का विचार था।

जहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय मामलों में राज्य की क्रिया का संबंध है, यह पहले ही बताया जा चुका है कि स्पेंसर का विश्वास था कि राज्य को आक्रांताओं के आक्रमण से नागरिकों की रक्षा करनी चाहिए। स्पेसर का निष्क्रिय आधीनता के सिद्धांत में विश्वास न था। हालांकि उसने अनाक्रमण के सिद्धांत की जोरदार वकालत की थी। उसका अंतर्राष्ट्रीय पंचनिर्णय (Arbitration) के सिद्धांत मे विश्वास था और उसने यह भविष्यवाणी की कि एक समय अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने की यह सार्वभौम रीति होगी। उसने सुदूर भविष्य में कठोर राष्ट्रीय सीमाओं के सामान्य विलयन को और सार्वभौम सरकार या सरकारों के संघ की संस्था को देखा। स्पेंसर ने अंतर्राष्ट्रीय पंचनिर्णय में अपने विश्वास का अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापना के लिये कार्य करनेवाली शांतिसभा के व्यक्तिगत कार्य को प्रोत्साहित कर अनुसरण किया, और अपनी आत्मकथा में उसने बताया है कि इस क्षेत्र में किये गये श्रम से उसके स्वास्थ्य को कितनी हानि पहुची।

स्पेंसर नये पूंजीवादी साम्राज्य का भी, जोकि उन्नीमवी शताब्दी के सातवे दशक के बाद इंगलैड और संसार मे सामान्यतः विकसित हुआ, कठोर आलोचक था। अपने "साम्राज्यवाद और दासता" शीर्षक एक अंतिम लेख में स्पेसर ने बोअर युद्ध मे ब्रिटिश नीति की आलोचना की कि वह पूर्णतः श्रेष्ठ शक्ति के सिद्धात पर आधारित थी, जोकि उसके अनुसार नये साम्राज्यवाद का प्रबल सिद्धांत था। उसने आगे कहा कि साम्राज्यवाद अवश्यंभावी रूप से सैनिकवाद की ओर ले जाता है, देश मे और बाहर दोनों जगह प्रजातंत्र को नष्ट करता है और कर के भार को अत्यत बढा देता है। इस प्रकार वह हॉबहाउस और हॉब्सन जैसे नवउदारवादियो की स्थिति के बहुत निकट आ गया, उसका मुख्य मतभेद यह था कि उसने यह शिकायत न की कि साम्राज्यावद पर हुए व्यय स्वदेश मे सामाजिक कानून के लिये उचित व्यय को घटा देते है।

उपसंहार में, ऐसा लगता है कि राज्यक्रिया के वैध क्षेत्र के स्पेसर के सिद्धांत के विषय में चाहे कोई कुछ भी क्यों न सोचे, कोई विचारवान् व्यक्ति उन कल्पनाओं से सरलता से असहमत नही हो सकता जिन्होने कि राज्यकीय हस्तक्षेप के विरुद्ध कम-से-कम उसके आधे विरोध को उत्पन्न किया था : (१) राजनैतिक नैतिकता का वर्तमान निम्न स्तर, (२) सरकारी कार्यकर्ताओं की सामान्य बुद्धिमत्ता या, कम-से-कम विशेष योग्यता का अभाव; (३) मतदाताओं की अपने प्रतिनिधियों के चुनाव में बुद्धिमत्ता की कमी और (४) सरकार के प्रति धारणा मे वर्तमान पतन कि वह एक लक्ष्य का साधन होने के बजाय स्वयं एक लक्ष्य है। उसकी मान्यता थी कि ये सब कमियां मिलकर हमारी सरकारी मशीनरी को आधुनिक सभ्यता की जटिल समस्याओं से निपटने के सर्वथा अयोग्य बनाती है। इस दशा में दो प्रकार सुधार किया जा सकता है—सरकार के कार्यो में कमी कर या उसकी कुशलता में वृद्धि कर। अधिकांश समकालीन लेखकों द्वारा दूसरा मार्ग अधिक उचित बताया गया है, किंतु स्पेंसर इसकी इतनी अल्प संभावना समझता था कि उसने पहले पर

विश्वास करना पंसद किया। अपनी इस धारणा के लिये उसके पास कुछ उचित आधार थे, यह खेदपूर्वक स्पष्ट है।

(ज) प्रगति, सामाजिक सुधार और राज्यक्रिया

समाज-सुधार के विषय पर स्पेंसर के लेख उतने ही समृद्ध और जोशीले हैं जितने कि राज्यक्रिया के उचित क्षेत्र से संबंधित उसकी रचनाएं। वस्तुत: ये प्रश्न एक ही समस्या के विभिन्न पहलू है। जिस प्रकार राज्यक्रिया से संबंधित उसके सिद्धांत की बुनियाद समान स्वतंत्रता, प्राकृतिक अधिकार और निषेधात्मक नियमन थे, उसी प्रकार सामाजिक सुधार के विषय में उसका केंद्रीय वक्तव्य था कि परिणाम अपने साधनों के अनुपात मे नहीं होते।

स्पेंसर ने सामाजिक सुधार की आवश्यकता या समस्त राजनैतिक संरचना के अनुदार बनने और परिवर्तन के प्रतिरोध की प्रवृत्ति से इन्कार नही किया। स्पेंसर ने अपने *Principles of Sociology* मे एक शिक्षाप्रद विवेचना दी है कि किस प्रकार अन्य सामाजिक सस्थाओं की भाति राजनैतिक संगठन परिवर्तन के प्रतिरोध में प्रवृत्त होता है। उसने सुधार की आवश्यकता पर आपत्ति नही की, बल्कि उस समय प्रस्तावित सुधार के सिद्धांतों और पद्धतियों की प्रभावशीलता पर आपत्ति की।

स्पेंसर इस बात पर जोर देना चाहता था कि किसी भी कदम के, जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य एक विशेष परिस्थिति को सुधारना है, तब तक सफल होने की आशा नहीं की जा सकती जब तक कि वह उस सामान्य सास्कृतिक संकुल को, जिसका कि वह विशेष दोष एक अग है, ध्यान मे न रखे और सामाजिक शक्तियों और संस्थाओं की अंतर्निर्भरता को स्वीकार न करे। लेखको ने स्पेंसर पर आक्षेप किया है कि उसने "सीधे मनुष्यों" (Straight men) पर विचार किया है और एक "राजनैतिक गणित" को सूत्रबद्ध किया है, किंतु कम-से-कम समाज-सुधार के इस क्षेत्र में वह समाज-सुधारक के सम्मुख आनेवाली वास्तविक अवस्थाओं के प्रति पर्याप्त जागरूक था। इस सिद्धांत का उसका शास्त्रीय वक्तव्य Study of Sociology के निम्न अवतरण मे है:

"आप देखते है कि यह लोहे की तख्ती बिल्कुल सपाट नही है; यह जैसा कि कहने में आता है, तनिक बाई ओर ऊपर को उठी हुई है। हम इसे कैसे चपटा करेगे? आप कहेगे, स्पष्ट निकले हुए भाग पर चोट करके। अच्छा, यहां एक हथौड़ा है और आप जैसी सलाह देते है, मै तख्ती पर चोट करता हूं। आप कहते है, जरा जोर से। फिर भी कोई असर नहीं। एक चोट और, अच्छा, एक फिर, और फिर एक। आप देखेगे कि उभार रहता ही है; बुराई पहले की तरह ही कायम है या कुछ बढ़ गई है। यही नही है। जरा दूसरे छोर के समीप तख्ती के उभार पर देखिए। जहा यह पहले चपटा था, वहा अब मुड गया है। हमने अच्छी खासी गडबड़ी कर दी। मूलदोष को ठीक करने के बजाय, हमने एक दूसरा दोष पैदा कर दिया। यदि हम, जैसा कि कहा जाता है कि प्लेट बैठानेवाले अनुभवी दस्तकार से पूछते, वह हमे बताता कि इससे कुछ भला न होगा, निकले हुए हिस्से पर चोट कर केवल गड़बड़ ही होगी। वह हमें बता सकता था कि किस प्रकार अन्य स्थान पर विभिन्न दिशाओं की

ओर अन्यत्र हथौड़ी की विशेष रूप से सधी हुई चोट की जाती; इस प्रकार बुराई पर प्रत्यक्ष नहीं, बल्कि परोक्ष क्रियाओं से आक्रमण करना चाहिए था। यह अपेक्षित प्रक्रिया, जैसा कि आपने सोचा था, उससे कठिन है। यहां तक कि एक धातु की परत पर भी उन सामान्य बुद्धि की पद्धतियों से, जिनपर कि आपको इतना अधिक विश्वास है, सफलता से कार्य नहीं किया जा सकता। तब हम समाज के विषय में क्या कहेंगे? "क्या आप सोचते हैं कि मुझे बांसुरी से भी अधिक सरलता से बजाया जा सकता है?" हैमलट पूछता है—"क्या मानवता को एक लोहे की तख्ती से भी अधिक सरलता से सीधा किया जा सकता है?"[२६]

इसके बावजूद, स्पेंसर निर्हस्तक्षेप नीति का पूर्ण और असंदिग्ध वकील न था। वह सामाजिक बुराइयों के लिये कानून की प्रभावक्षमता में पूर्ण विश्वास की प्रचलित प्रवृत्ति से लड़ने का प्रयास कर रहा था। विरोधी संप्रदाय का उत्साही वकील होने की हैसियत से वह सहज ही बहुत आगे बढ़ गया। वह समाज पर यह प्रभाव डालना चाहता था कि एक व्यक्ति या यहाँ तक कि एक पीढ़ी भी सामाजिक विकासवाद की दिशा को बदलने में बहुत कम ही सफलता की आशा कर सकते हैं। उसकी इच्छा न थी कि वह सुधार की दिशा में व्यक्तिगत या सामूहिक प्रयास को हतोत्साहित करे, बशर्ते कि वह ऐसी क्रिया के क्षेत्र और परिणामों की आवश्यक सीमितताओं को स्वीकार करें। उसने इस स्थिति को निम्न अवतरण में दिया है :

"इस प्रकार यह स्वीकार करते हुए कि एक मदांध के लिये कुछ असाधारण प्रत्याशा एक प्रेरक के रूप में अपेक्षित है, और उसकी विशेष प्रकृति और विशेष कार्य के अनुरूप उसके भ्रम की उपयोगिता स्वीकार करते हुए, उच्च प्रकार का मानव अक्षय प्रयास करते हुए भी अत्यंत सामान्य प्रत्याशाओं से संतुष्ट होगा। उसे देखना है कि अपेक्षतया अल्प ही किया जा सकता है, फिर भी वह उस अल्प को करने योग्य समझता है और इस प्रकार वह परार्थी शक्ति के साथ दार्शनिक शांति को संयुक्त करता है।"[२७]

आज बहुत कम ही लोग ऐसी अतिशय निर्हस्तक्षेप नीति का समर्थन करेंगे या विकासवाद के सुधार के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये विकासवाद के निर्वैक्तिक नियमों की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे जैसे कि स्पेंसर ने उन्हें स्वीकार किया और जैसा कि वह करने के लिये तैयार था। फिर भी हम उसकी इस सलाह की बुद्धिमत्ता पर संदेह नहीं कर सकते कि हम कानून द्वारा प्रगति के निर्माण की संभावना के सिद्धांत से सावधान हों जो कि अंतर्ग्रस्त समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के विस्तृततम ज्ञान पर आधारित न हो। यह वह सबक है जोकि समाजशास्त्री अभी भी अच्छी नीयतवाले किंतु अविवेकी परोपकारियों को समझाने की चेष्टा कर रहे हैं।[२८]

(झ) राजनैतिक संगठन के वैधेतर (Extra-legal) पहलू

स्पेंसर ने राजनैतिक क्रिया और संगठन के वैधेतर पहलुओं पर अनेक विचार व्यक्त किये। यह पहले ही संकेत किया जा चुका है कि उसने ठीक ही जनमत या "समुदाय की

भावना" को सरकारी क्रिया के पीछे एक सजीव शक्ति कल्पित किया जोकि उसे ताकत और प्रभावक्षमता प्रदान करती है और उसका विश्वास था कि कोई भी सरकार तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि वह अपने समय की जनभावना से मेल न खाए। जनमत के निर्माण में प्रथा और परंपरा के महत्त्वपूर्ण कार्य के उसके विश्लेषण का जिक्र किया जा चुका है। जहां तक राजनैतिक दलों का संबंध है, स्पेंसर की मान्यता थी कि उनका प्रभाव मुख्यतः निषेधात्मक है। वह अपने पूर्वाग्रह द्वारा किसी भी राजनैतिक स्थिति में वास्तविक मसलों को एक या दूसरी दिशा में छिपा देते हैं।

सामाजिक नियंत्रण के वैधेतर रूपों के सामान्य विषय पर यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक संगठन के साथ सामान्य सामाजिक संगठन का सहसंबंध स्थापित कर और यह दिखाकर कि राजनैतिक सुधारकों द्वारा बिना यह देखे कि राज्य का समाज के साथ क्या संबंध है और सामाजिक शक्तियों तथा स्वार्थों पर राजनैतिक क्रिया की बुनियादी निर्भरता है, किसी भी सुधार या परिवर्तन की आशा करना व्यर्थ है, स्पेंसर ने राजनैतिक और सामाजिक विचारधारा की वास्तविक सेवा की है। इस संबंध में उसने वह मुख्य सेवा की है जोकि समाजशास्त्री राजनीति के सिद्धांत और व्यवहार की कर सकते हैं। इस विचार के महत्त्व को प्रोफेसर स्मॉल ने, जिसे कि वह स्पेंसर के दर्शन की केंद्रीय धारणा मानता है, अच्छी तरह व्यक्त किया है। "बहुत प्रारंभिकतम अवस्थाओं से ही समाज के सदस्य अपने को बहुत कुछ स्थायी रूपों में व्यवस्थित करते हैं; विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप इन रूपों की पुनर्व्यवस्था होती है; कार्य और कारण दोनों प्रकार से यह रूप समाज का निर्माण करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित है. इस प्रकार वह ऐसे कारक है जिन्हें कि वास्तविक जीवन को समझने के प्रयास में बाहर नहीं छोड़ा जा सकता।[१९]

(ङ) स्पेंसर के सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांतों का संक्षेप

स्पेंसर के प्रमुख सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांतों का निम्न संक्षेप किया जा सकता है : (१) उसने राजनैतिक सत्ता के औचित्य को दार्शनिक रीति से सिद्ध करने के लिये करार या संविदा (Contract) के सिद्धांत को पुनर्जीवित किया; (२) उसने व्यक्तिवादी राजनैतिक दर्शन का एक शक्तिशाली समाजशास्त्रीय वक्तव्य प्रस्तुत किया, जिसमें कि राज्य पूर्णतः व्यक्ति के आधीन था और उसे केवल व्यक्ति के लिये अधिक अंशों में स्वतंत्रता प्राप्त करने का साधन समझा जाता था जोकि, अन्यथा मानव-आचार के साथ इसके निषेधात्मक हस्तक्षेप के बिना संभव न था, (३) उसने प्रत्यक्ष सुधारक कानून (कम-से-कम जिस प्रकार से वह सहमत था) द्वारा सामाजिक प्रगति प्राप्त करने की संभावना से इन्कार किया और घोषणा की कि स्थायी प्रगति को लाने के लिये समाज को विकासवाद के सामान्य नियमों के स्वचालित कार्य की प्रतीक्षा करनी चाहिए; (४) उसने समाज के सावयवी (Organism) सिद्धांत की सर्वाधिक सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की; (५) उसने उन उद्देश्यों के लिये, जिनके लिये संगठित समाज कार्य करता है, राजनैतिक विकासवाद के दर्शन को विकसित किया; यह उद्देश्य पहले सैनिक विस्तार,

फिर औद्योगिक विकास और अंत में आचारशास्त्रीय सुधार है; (६) अंततः विस्तृत सामाजिक प्रक्रियाओं में राज्य की स्थिति और कार्यों का अनुमान लगाने के प्रयास में स्पेंसर ने राज्य और समाज का सहसंबंध स्थापित कर महत्त्वपूर्ण देन दी।

संक्षेप में, स्पेंसर ने समाजशास्त्री के व्यापक दृष्टिकोण से सार्वजनिक समस्याओं पर विचार किया, चाहे, इन समस्याओं के समाधान में उसके सामाजिक दर्शन के सिद्धांतों का प्रयोग अनेक बार कितना ही असंगत और अपर्याप्त क्यों न रहा हो।

टिप्पणियां

1. Spencer's *Essays, Scientific, Political and Speculative* (New York, 1891), pp. 118-149 में "Some Reasons from Dissenting from the Philosophy of M. Comte" शीर्षक निबंध।

2. Henri Michel, *L'Idee de l'etat* (Paris, 1896), p. 462 (लेखक का अनुवाद); Eugene de Roberty, *Auguste Comte et Herbert Spencer* भी देखिये।

३. स्पेंसर की सिद्धांतों के स्रोतों के संक्षिप्त विवरणके लिए देखिए Earnest Barker, *Political Thought in England from Herbert Spencer to the Present Day* (New York, 1915), pp. 86–901 प्रारंभिक वर्षों के उसके अपने विवरण के लिए देखिए उसकी *Autobiography* (2 vols.; New York, 1904), I, 48-142. स्पेंसर पर अधिक विस्तृत साहित्य के लिये देखिए H. E. Barnes और Howard Becker, *Social Thought from Lore to Science* (2 vols.; Boston, 1938), I, xIix-li.

४. A. G. Keller, Societal Evolution (New York, 1931), pp. 12 ff. *Principles of Biology*, (1864-67), *The First Principles* के बाद *The Principles of Psychology* (1872), *The Study of Sociology* (1873), *The Principles of Sociology* (1876 96), *Principles of Ethics* (1879-93), *Man versus the State* (1884) प्रकाशित हुई। इन क्रमबद्ध रचनाओं के अतिरिक्त, स्पेंसर ने बड़ी संख्या में लेख प्रकाशित किये जोकि निबंधो की अनेक जिल्दों मे संकलित किये गये। स्पेंसर की रचनाओ की पूर्णसूची के लिए *Encyclopaedia Britannica* के ग्यारहवें संस्करण मे "Spencer" शीर्षक लेख और W. H. Hudson, *An Introduction to the Philosophy of Herbert Spencer* (New York, 1894), Appendix, pp. 231-34 देखिये।

स्पेंसर ने यह प्रचुर सामग्री उन परिस्थितियों मे पैदा की जोकि इसके कार्यकुशल और शीघ्र संपादन के अनुकूल न थी। अपनी समाजशास्त्रीय प्रणाली के विवरण की संपूर्ण अवधि में वह न्यूरिस्थेनिया का रोगी रहा और उसके आर्थिक साधन इतने पर्याप्त न थे कि वह अपनी योजनाओं की सामान्य प्रगति को जारी रख सकता।

१८९६ में प्रकाशित *Principles of Sociology* तीसरी जिल्द की जिसमें, कि यह रचना पूरी हुई और जिसमें कि उसका प्रायः समस्त जीवन खप गया, भूमिका में उसने लेखक की कठिनाइयों का उल्लेख किया है और अपनी अंतिम सफलता पर संतोष प्रकट किया है।

५. William Graham Sumner, *The Forgotten Man and Other Essays* (New Haven, 1918), pp. 401.

६. स्पेसर की दार्शनिक प्रणाली के विवेचन के लिए अच्छी रचनाएं हैं: Hudson, *op. cit.*; Josiah Royce, *Herbert Spencer : An Estimate and Review* (New York, 1904); Hector Macpherson, *Spencer and Spencerism* (New York, 1900); और H. Elliott, *Herbert Spencer* (New York, 1916)। समग्र रूप से उसकी प्रणाणी का अधिकृत और स्वीकृत संक्षेप मिलता है, F. H. Collins की *An Epitome of the Synthetic Philosopy* (New York, 1889) के अंत में। किसी को भी तब तक स्पेंसर मे पूर्णतः परिचित नही समझना चाहिए जब तक कि उसने उसकी *Autobiography* जोकि उसकी मृत्यु के पश्चात् दो जिल्दों मे १९०४ मे प्रकाशित हुई और David Duncan की *Life and Letters of Herbert Spencer* (2 vols.; New York, 1908) न पढ ली हो।

७. अपनी प्रणाली के सक्षेप के लिए कौलिस मे स्पेसर की भूमिका देखिये *op. cit.*,pp. viii–xi; इसे भी निलाइये Robert Mackintosh, *From Comte to Benjamin Kidd* (London), 1899), chaps. viii–ix.

८. Franklin H. Giddings, *Sociology : A Lecture* (New York, 1908).

९. *The Social Organism* (1860); *Specialized Administration* (1871). *Principles of Sociology*, Vol. I, Part I. *Principles of Sociology* के उद्धरण १८९६ के न्यूयार्क सस्करण से लिये गये है।

१०. *Principles of Sociology*, Vol. I, Part II, chaps. ii–ix, विशेषकर chap. ii स्पेसर की समाज के सावयवी सिद्धांत के विस्तृत विश्लेषण F. W. Coker, *Organismic Theories of the State* (New York, 1910), pp. 124-39; और Ezra T. Towne, *Die Auffassung der Gessellschaft als Organisumus, ihre Entwickelung und ihre Modifikationen* (Halle, 1903), pp. 41-48 में मिलता है।

११. इस पुस्तक की समीक्षा F. G. Peabody, *A Readers' Guide to Social Ethics and Allied Subjects*,p. 29 में देखिये।

१२. A. W. Small, *General Sociology*, pp. 130. समाजशास्त्र मे स्पेंसर के महत्त्व के लिए देखिए F. H. Giddings, *Principles of Sociology* (New York, 1896) Book I, chap i., और उसकी समस्त रचनाओं में उसके संक्षेप;

Ward, *Dynamic Sociology*, I, 139—219 ; Small *op. cit.*, pp. 109-53 ; E. A. Ross, *Foundations of Sociology* (New York, 1905), pp. 42—47 ; और सबमें प्रमुख Leopold Von Wiese, *Zur Grundleyung der Gesellschaftslehre; Eine kritische Untersuchung von Herbert Spencer's System der synthetischen Philosophie* (Jena, 1906).

१३. *Principles of Sociology*. Vol. I, sec. 210, p. 438. *Study of Sociology*, pp. 380-81 भी मिलाइये। स्पेंसर के राजनैतिक सिद्धांतों के कुछ पहलुओं के श्रेष्ठ विश्लेषण के लिए D. G. Ritchie, *Principles of State Interference* (London, 1891); Barker, *op. cit.* ; Chap. iv ; और Coker, *op. cit.* ; pp. 124-39 हैं।

१४. *Principles of Sociology*, II, 247.

१५. *Man versus the State* (संक्षिप्त और संशोधित *Social Statics*, New York, 1892), pp. 380-81 के साथ। जैसा कि रिटची ने निर्देश किया है प्रभुशक्ति की समस्या के संबंध मे स्पेंसर के भ्रम का आंशिक कारण उसकी अमूर्त दार्शनिक अवधारणा को साकार करने की प्रवृत्ति थी।

१६. *Principles of Sociology*. I. 437.

१७. *Ibid.*, II, 317.

१८. अपनी पद्धति के स्पेसर के स्वयं अपने विवरण के लिए *Autobiography*, Vol. II, chap. xlvii, विशेषकर pp. 325-37.

१९. *Principles of Sociology*. II, 568-605 ff.

२०. *Social Statics* (*Man versus the State* (New York, 1892) के साथ संक्षिप्त संस्करण), pp. 248-49.

२१. *Ibid.*, p. 105.

२२. *Ibid.*, p. 248.

२३. *Study of Sociology* (New York, 1876). p. 275 ; इसे भी मिलाइथे *Principles of Sociology*, II, 230-43

२४. अपने राजनैतिक सिद्धांतों के विकास के स्वयं स्पेंसर के अपने विवरण के लिये देखिए *Autogiogrpahy*, II, 431-36.

२५. *op. cit.*, pp. 285-86.

२६. *Ibid.*, pp. 270-71.

२७. *Ibid.*, p. 403.

२८. मध्यकाल और आधुनिक अंग्रेजी इतिहास की समस्त अवधि में तथाकथित "सुधारात्मक कानून" के प्रभाव के अध्ययन की स्पेंसर की महत्त्वाकांक्षी योजना के स्पेंसर के विवरण के लिए देखिए *Various Fragments* (New York, 1898), pp. 136-40, "*Record of Legislation*". शीर्षक निबंध।

२९. *General Sociology*, p. 153.

अध्याय तीन

लेस्टर फ्रैंक वार्ड : समाजविज्ञान द्वारा समाज का पुनर्निर्माण

हैरी एल्मर बार्नस्

१. वार्ड की समाजशास्त्रीय प्रणाली की सामान्य विशेषताएं

यह कहा जा सकता है कि अमेरिका के लेखकों मे लेस्टर एफ० वार्ड (Lester F. Ward) १८४१-१९१३ ने समाजशास्त्र की सर्वाधिक प्रभावपूर्ण और विस्तृत प्रणाली को जन्म दिया और वह सबसे पहला क्रमबद्ध अमेरिकन समाजशास्त्री था। उसका 'गत्यात्मक समाजशास्त्र' *Dynamic Sociology* जिसेकि अनेक समालोचक उसका महानतम ग्रंथ समझते है, स्पेसर के *Principles of Sociology* की पहली और अंतिम जिल्दो के प्रकाशन के लगभग बीच १८८३ मे प्रकाशित हुआ। पत्रिकाओं मे अनेक लेखों के अतिरिक्त वार्ड की समाजशास्त्रीय प्रणाली छः महत्त्वपूर्ण जिल्दों में संग्रहीत थी।[१]

समाजशास्त्र के इतिहास मे वार्ड के स्थान के सबध मे भविष्य का चाहे जो भी अनुमान हो, यह निश्चित है कि किसी भी अन्य समाजशास्त्री ने इतने अधिक वैज्ञानिक ज्ञान से युक्त हो अपने विषय पर विचार नही किया जिसका कि वार्ड से मुकाबला किया जा सके। हरबर्ट स्पेसर की *Synthetic Philosophy* मे तीक्ष्ण तर्कशक्ति और अधिक तर्कयुक्त साक्षी के संयोजन की योग्यता प्रदर्शित हो सकती है, किंतु उसका वैज्ञानिक ज्ञान वार्ड की तुलना मे बहुत अल्प था।

वार्ड का औपचारिक वैज्ञानिक जीवन एक पुरा-वनस्पतिशास्त्र (Paleo-botany) के सरकारी विशेषज्ञ का था। उसने पुरा-वनस्पतिशास्त्र को जो देने दी उनका महत्त्व समाजशास्त्र में उसके कार्य से कुछ ही कम था[२] समाजशास्त्र मे पुरा-वनस्पतिशास्त्र की शब्दावली के प्रवेश कराने की वार्ड की प्रवृत्ति ने उसके समाजशास्त्र की रचनाओं को एक विचित्र क्लिष्ट और अरुचिकर रूप दिया जैसा कि कट्टर "सावयववादियों" (Organicists) की रचनाओं मे मिलता है। उसके कुछ वैज्ञानिक शब्दों को, जैसे कि वट-शाखात्मक विकास (Sympodical-development), सहकार्यशक्ति (Synergy), "सृजनात्मक, संश्लेषण", (Creative synthesis) "स्त्रीतंत्र" (Gynaecocracy) और "सामाजिक निर्देशन" (Social telesis) पर्याप्त कुशलता से गढ़े गये है और उन्हें परंपरागत समाजशास्त्रीय विचार और अभिव्यक्ति में पर्याप्त विस्तार से ग्रहण कर

लिया गया है। वार्ड की समाजशास्त्रीय प्रणाली की पूर्ण व्याख्या स्पष्ट ही प्रस्तुत पुस्तक के क्षेत्र में असंभव है। यहाँ पर बुनियादी देनों पर ही ध्यान केंद्रित किया जायेगा।

समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के बारे में वार्ड[3] कहता है : "मेरा थीसिस है कि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु मानव की सफलताएं हैं। मनुष्य क्या है, यह नही बल्कि वे क्या करते है ? यह संरचना (Structure) नहीं बल्कि कृत्य (Function) है।"[3] चूंकि लगभग सभी प्रारंभिक समाजशास्त्रियों ने मुख्यतः सामाजिक संरचना का विश्लेषण किया है, वार्ड का दृष्टिकोण नया और युगातरकारी था। समाजशास्त्र के दो विभाग हैं: विशुद्ध (Pure) और प्रायोगिक (Applied)। विशुद्ध समाजशास्त्र सैद्धांतिक है और विज्ञान के सिद्धांतों को स्थापित करना चाहता है। प्रायोगिक समाजशास्त्र व्यावहारिक है और सामाजिक उन्नति के लिये विशुद्ध समाजशास्त्र के संभव प्रयोग की ओर निर्देश करता है। यह "प्रकृति की सहज प्रक्रियाओं को गति देने के कृत्रिम साधनों पर विचार करता है।"[4]

इसी के अनुसार वार्ड ने अपनी समाजशास्त्रीय प्रणाली को "सृष्टि" (Genesis) और "निर्देशन" (Telesis) में विभक्त किया है। पहली सामाजिक संरचनाओं के कार्यों के जन्म और सहज विकास पर विचार करती है और दूसरी समाज के विचारयुक्त सुधार पर विचार करती है। सामाजिक सृष्टि के विभाग मे वार्ड की सबसे महत्त्वपूर्ण देनों को संक्षेप मे निम्न शीर्षकों के अतर्गत दिया जा सकता है : वटशाखात्मक विकास (Sympodial development) सृजनात्मक संश्लेपण (Creative synthesis), मितव्ययता का नियम (Law of parsimony), मन के कार्य और प्राणिशास्त्रीय उद्गम, सामाजिक स्थितिशास्त्र (Statics) और गतिशास्त्र (Dynamics) और सामाजिक शक्तियो का वर्गीकरण।

समाज का प्राकृतिक या प्रजननात्मक (Genetic) विकास 'वटशाखात्मक" (Sympodial) है। इससे वार्ड का तात्पर्य उस प्रकार के विकास से है जोकि कुछ पौधो में पाया जाता है जिनमे कि तने मे कुछ बढने के बाद एक शाखा (Sympode) निकल आती है, जोकि उस समय से तब तक व्यवहारतः तना बन जाती है। जब तक कि अन्य शाखा उसका स्थान नही ले लेती। सृजनात्मक संश्लेषण के सिद्धांत को, जिसे वार्ड ने जर्मन मनोवैज्ञानिक विलहैल्म वुंट से ग्रहण किया, इस प्रकार समझाया है "कि प्रत्येक सम्मिलन अपने घटक (Component) कारकों के केवल योग से कुछ अधिक है।"[5] प्रकृति का प्रत्येक संश्लेषण रासायनिक मिश्रण की भांति एक नई सृष्टि है। संभवतः समाजशास्त्र के विशुद्ध विज्ञान को वार्ड की यह सबसे उपयोगी देन है। सहकार्यशक्ति (Synergy) शब्द अंशतः वनस्पतिशास्त्र और अंशतः हीगल की द्वंद्वात्मक प्रणाली (Dialectic) से लिया गया है तथा इसकी "प्रकृति की विरोधी शक्तियों के क्रमबद्ध और सावयवी सहकारी सहकार्य"[6] के रूप में परिभाषा की गई है। यह समाज के सहज विकास के सिद्धांत की बुनियादी अंतर्हित अवधारणा है। अंततः "मितव्ययता के

नियम" को जोकि सामाजिक यंत्रशास्त्र का बुनियादी नियम है, प्राकृतिक शक्तियों की अल्पतम प्रतिरोध (Least resistance) या अधिकतम आकर्षण की दिशा में चलने की प्रवृत्ति कहा गया है।[9] स्पेंसर के अंल्पतम प्रतिरोध की दिशा में गति के सिद्धांत से इसकी समानता स्पष्ट है।

वार्ड ने अपने विशिष्ट साहस और आत्मविश्वास के साथ जीवन के उद्गम और मन के प्राणिशास्त्रीय आधार का विवरण दिया। जीवन मिश्रित जीवीकरण (Zoism) की प्रक्रिया से उत्पन्न हुआ, जोकि सर्वाधिक ज्ञात रासायनिक गुणों का पुर्नमिश्रित रूप धारण करनेवाला एक सृजनात्मक संश्लेषण था।[8] मन भी मिश्रित जीवीकरण की सृजनात्मक उपज है। यह अवगतता (Awareness) के तथ्य से उद्भूत हुआ और इसका अक्षय तत्व वातावरण से प्राप्त दुःख और सुख के उद्दीपन को पहिचानने और भेद करने की क्षमता है।[9] अनुभूति और इच्छा, जोकि बुद्धि से पहले उत्पन्न हुई, मन की गत्यात्मक और प्रेरक शक्तियां हैं, बुद्धि जो परवर्ती और उच्चतम उपज है, निर्देशक योग्यता है।[10]

वार्ड ने सामाजिक स्थितिशास्त्र और सामाजिक गतिशास्त्र के अपने भेद और इनमें से प्रत्येक की प्रकृति की विवेचना को अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक देन समझा। सामाजिक स्थितिशास्त्र सामाजिक संतुलन (Equilibration) और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, सामाजिक संरचनाओं के निर्माण पर विचार करता है।[11] सामाजिक व्यवस्था का विकास, जीवित रहने के संघर्ष की अपेक्षा "संरचना के लिये संघर्ष" है। श्रेष्ठतम संरचनाएं जीवित रहती है। सामाजिक संरचनाओं की वृद्धि में सामाजिक सहकार्यशक्ति (Synergy) सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। शक्ति ही समस्त संरचनाओं को पैदा करती और समस्त संगठन की व्याख्या करती है। सहकार्य-शक्ति के इस सिद्धांत द्वारा प्रकृति में प्रक्रियाओं के निम्न क्रम में विरोधी शक्तियों में सहयोग उत्पन्न किया जाता हे, संघात (Collision), संघर्ष (Conflict), शत्रुता (Antagonism), विरोध (Opposition), एंटीथीसिस, प्रतियोगिता, अंतर्क्रिया (Interaction), समझौता (Compromise), सहकर्म (Collaboration), सहयोग (Cooperation), और संगठन (Organization)।

सामाजिक व्यवस्था के विकास में सहकार्य शक्ति (Synergy) मुख्यत: इस प्रक्रिया द्वारा जिसे वार्ड ने सामाजिक फलीकरण (Social karyokinesis) कहा है, घटित होती है। यह प्राणिशास्त्रीय क्षेत्र में फलीकरण (Fertilization) की सामाजिक उपमा है और यह विभिन्न सामाजिक-समूहों के संपर्क (Contact), मिश्रण (Amalgamation) और सात्मीकरण (Assimilation) में व्यक्त होती है। उपरोक्त क्रम में गिनाई गई सभी अवस्थाएं इस प्रक्रिया में जोकि एकतत्वीय राष्ट्र के सृजन में समाप्त होती हैं, प्रदर्शित होती है। यहाँ पर वार्ड ने राज्य के निर्माण के मुख्य कारक के रूप में "प्रजातियों (Races) और सामाजिक समूहों के संघर्ष" से संबंधित रैटजनहोफर और गुम्पलोविक्ज़ का अनुसरण किया है।

सामाजिक गतिशास्त्र सामाजिक प्रगति या सामाजिक संरचना में परिवर्तन पर विचार करता है।[१३] सामाजिक गतिशास्त्र में तीन आधारभूत सिद्धांत हैं—निहित संभावनाओं (Potential) की भिन्नता, नवप्रवर्तन (Innovation) और चेष्टना (Conation)। निहित संभावनाओं की भिन्नता संस्कृतियों के सम्मिलन में व्यक्त होती है, जोकि सामाजिक सात्मीकरण और मिश्रण द्वारा होता है। असम तत्वों के मिश्रण से प्रगति होती है। नवप्रवर्तन जोकि सावयवी (Organic) संसार में क्रीड़ा (Sport) या उत्परिवर्तन (Mutation) की सामाजिक उपमा है, मानसिक उद्रेक की उपज है। चेष्टना या सामाजिक प्रयास सामाजिक शक्ति का प्रयोग है जिससे सफलता होती है। यह सफलता इच्छा की पूर्ति, जीवन की सुरक्षा और वातावरण के संशोधन का रूप धारण कर लेती है।

वार्ड ने सामाजिक शक्तियों को व्यक्तिचरितमूलक (Ontogenetic) या संरक्षणात्मक (Preservative), प्रजातिमूलक (Phylogenetic) या संतानोत्पादक (Reproductive) और सामाजिक प्रजननात्मक (Sociogenetic) या आध्यात्मिक (Spiritual) के रूप में वर्गीकृत किया है।[१४] प्रजातिमूलक शक्तियों की चर्चा करते समय वार्ड ने "स्त्रीतंत्र" (Gynaecocracy) के प्रसिद्ध सिद्धांत को विकसित किया, जिसके अनुसार उसका मत है कि स्त्री जाति प्रकृति मे मूल जाति थी और जब तक मनुष्य ने शिशु के साथ अपने संबंध को खोजने के बाद उस पर सामाजिक नियंत्रण लगाकर उसे आधीन नहीं किया, वह सबसे महत्त्वपूर्ण थी।[१५]

सामाजिक निर्देशन (Telesis) के सिद्धांत की व्याख्या में वार्ड ने यह आधारभूत प्रस्थापना प्रस्तुत की कि यदि विकासवाद को लाना है तो शक्ति को नियंत्रित करना चाहिए। नियंत्रण के दो संभव साधन हैं—सृष्टि (Genesis) में व्यक्त प्रकृति का अचेतन (Unconscious) नियंत्रण तथा चेतन संचालन निर्देशन में अंतर्ग्रस्त मन में व्यक्त होता है।[१५] मन द्वारा चेतन नियंत्रण की पद्धति स्पष्ट ही प्रकृति के अचेतन नियंत्रण से श्रेष्ठ है। प्रकृति प्रचुर कच्ची सामग्री जुटाने और प्राकृतिक चुनाव द्वारा उसे बहुत धीरे-धीरे सुधारने के लिये छोड़ती है और वह इस प्रकार बर्बादी करती है। मन की प्रवृत्ति दूरदर्शिता और लक्ष्य के साथ साधन का समायोजन कर मितव्ययता की है। लक्ष्य और साधन के समायोजन द्वारा प्रकृति और समाज की गत्यात्मक शक्तियों के नियंत्रण को वार्ड ने "टेलीसिस" कहा है।

सामाजिक शक्तियों की चेतन या टेलिक नियंत्रण की प्रक्रिया में मानव या समाज द्वारा उठाए गए कदमों में राज्य का विकास सबसे महत्त्वपूर्ण कदम था।[१६] इसके बावजूद कि राज्य वह प्रमुख साधन है जिसके द्वारा सामाजिक प्रक्रिया का चेतन नियंत्रण किया जायेगा, समाज इस चेतन नियंत्रण को तब तक पूर्ण नहीं कर सकता जब तक कि प्रकृति के संबंध में सामाजिक शक्तियों के संचालन में पर्याप्त विस्तृत ज्ञान विकसित करने की कोई संस्था स्थापित नहीं होती। इसलिये इस आवश्यक ज्ञान के सार्वभौम प्रसार को

संभव बनाने के लिये तथा सामूहिक या सामाजिक निर्देशन के संपूर्ण विकास के लिये एक शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था अनिवार्य शर्त है।[१७]

उपसंहार में, यह सरलता से कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र को वार्ड की उल्लेखनीय देन ब्रह्मांडीय (Cosmic) और सामाजिक विकासवाद के संबंध का ज्ञान और सामाजिक प्रक्रियाओं के अचेतन नियत्रण पर चेतन नियंत्रण की श्रेष्ठता का सिद्धांत था। इनमे अन्य कोई समाजशास्त्री उसका मुकाबला नही कर सकता।[१८] इन दो आधारभूत देनों मे से, दूसरी इसलिये अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पहली अधिक से अधिक एक आकर्षक और जोरदार अनुमान है और वह तब तक ऐसा ही रहेगी जब तक कि मानवज्ञान की सीमा बहुत अधिक विस्तृत नही हो जाती। दूसरी, संभवतः समाजशास्त्र की मानव विचारधारा को सबसे महत्त्वपूर्ण अकेली ही देन है, और वार्ड का महत्त्व मुख्यतः इस तथ्य पर आधारित है कि समाजशास्त्र द्वारा अभी तक प्रस्तुत इस अवधारणा की उसकी व्याख्या सर्वाधिक प्रभावकर है। वार्ड के प्रणाली के इस पक्ष को प्रोफेसर एफ० एच० गिडिग्स ने अपनी विशिष्ट स्पष्टता के साथ इस प्रकार रखा है:

"वार्ड की रचनाओं मे सर्वत्र एक प्रबल और सगठित विचार व्याप्त है। मानव-समाज, जैसा कि हम उसमे रहनेवाले जानते है, अचेतन शक्तियो की निष्क्रय उपज नही है। यह सृष्टि के नियमों के अंतर्गत है, इसी प्रकार मानव-मन भी, और मानव के इस मन ने जान-बूझकर कुशलता से अपने सामाजिक वातावरण को अनुकूल और पुनरनुकूल बनाया है और चितनशील बुद्धि द्वारा वह उसे ऐसे यत्र के रूप मे ढाल रहा है जिससे कि मानव की इच्छा पूर्ण हो सके। मानव अपनी दूरदर्शी बुद्धि से इसे तब तक पूर्ण करता रहेगा जब तक कि वह समस्त उपयोग के लिये पर्याप्त और अनुकूल न बन जाय। यह वह शून्य में विकसित होनेवाली सृजनात्मक वृत्ति से नही, बल्कि रचनात्मक बुद्धि से करेगा जोकि परीक्षित वैज्ञानिक ज्ञान की प्रचुर सामग्री का निर्माण करेगी। तब से वैज्ञानिक ज्ञान मानव जाति की संपत्ति बन जायगा। शिक्षा को केवल मन को ही प्रशिक्षित नही करना चाहिए, इसे ज्ञान से भी युक्त और समृद्ध करना चाहिये।"

"इस महान् विचार को डॉ० वार्ड ने समझा, व्यक्त किया, व्याख्या की, स्पष्ट किया और अपने पाठको के मन मे ऐसा बैठाया जैसाकि कोई भी प्राचीन या आधुनिक लेखक न कर सका। समाजशास्त्र को यह उसकी स्थायी और ठोस देन है।"[१९]

२. सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांत को विशिष्ट देन

(क) समाजशास्त्र का राजनीतिविज्ञान से संबंध

समाजशास्त्र से राजनीतिविज्ञान के संबंध की वार्ड की अवधारणा उसके समाजशास्त्र और विशेष सामाजिक विज्ञानों के संबंध की सामान्य धारणा से स्पष्ट है। विशेष सामाजिक विज्ञान उन न्यासों (Data) को जुटाते है जिन्हे कि अधिक व्यापक समाजविज्ञान समाजशास्त्र एकीकृत करता है और अपने सामान्यीकरण के आधार के रूप मे

प्रयोग करता है। किंतु समाजशास्त्र केवल विशेष समाजविज्ञानों का योगमात्र नहीं है। यह रासायनिक मिश्रण की भांति एक सच्चा सृजनात्मक संश्लेषण, एक नया पदार्थ और अपनी घटक इकाइयों से उच्चकोटि का पदार्थ है। एक विशेष समाजविज्ञान के रूप में राजनीतिविज्ञान उन सामान्यीकरणों के न्यासों को देता है जो समाजशास्त्र राजनैतिक समस्याओं के लिए प्रस्तुत करता है। समाजशास्त्र की प्रकृति और विशेष समाजविज्ञानों से उसके संबंध के विषय में वार्ड का प्रसिद्ध और अधिकारपूर्ण वक्तव्य उद्धृत करने योग्य है:

"यह कहना ही पर्याप्त नहीं है कि यह उन सबका (विशेष समाजविज्ञानों) का संश्लेषण है। यह उनमें से एक नहीं है और उनमें से सब भी नहीं है। यह वह विज्ञान है जिसे वे सहज रूप से उत्पन्न करते है। यह एक प्रजननात्मक वस्तु है, विज्ञान के उत्पादन में अंतिम चीज़ है। विशेष समाजविज्ञान उस समूह की इकाइयां हैं जोकि सावयवी रूप से मिलकर समाजशास्त्र को उत्पन्न करती हैं, किंतु वे रासायनिक इकाइयों की भांति अपनी वैयक्तिकता को उतनी ही पूर्णता से समाप्त कर देती हैं, और परिणत वस्तु पूर्णतः उनसे भिन्न और उच्चकोटि की होती है। यह सब किसी भी जटिल विज्ञान के लिये सत्य है, किंतु समस्त क्रम के ऊपर समाजशास्त्र प्रकृति के समस्त सत्यों से समृद्ध होता है और समस्त सत्य को आबद्ध करता है। यह विज्ञानों का विज्ञान है।"[क]

(ख) अवधारणाओं की परिभाषा

"समाज", "राज्य", सरकार", "राष्ट्र" शब्दों के बीच वार्ड के भेद, यदि उन्हें भेद कहा जा सके, बहुत अस्पष्ट और असंतोषजनक हैं। उसने निश्चय ही राजनीतिविज्ञान की शब्दावली को स्पष्ट करने के लिये थोड़ा ही कार्य किया। उसने उपरोक्त किसी भी शब्द को क्रमबद्ध या एक प्रकार से प्रयोग नहीं किया, न ही उसने किसी स्थान पर एक निश्चित अर्थ मे उनकी परिभाषा की।

"समाज" को साहचर्ययुक्त जीवन के जातीय (Generic) तथा मानव साहचर्य के उन्नत रूपों को बताने में भी प्रयोग किया गया है। वह "राज्य" (State), "सरकार" (Government) और "राष्ट्र" (Nation) शब्दों के भेद को आधारभूत न समझता था, यह निम्न अवतरण से स्पष्ट है: "यदि कोई सरकार शब्द के प्रयोग पर आपत्ति करे, तो कोई कारण नहीं कि उसे राष्ट्र या राज्य शब्द से प्रतिस्थापित न किया जा सके। नाम अनिवार्य नहीं है।"

समाज के आधारभूत राजनैतिक संगठन को दर्शाने के लिये वार्ड ने शब्दों के प्रयोग में कितनी ही असावधानी क्यों न की हो, किंतु वह इसके महत्त्व के संबंध में तनिक भी अस्पष्ट न था।[२०] वह सदैव आग्रह करता है कि राज्य या सरकार सर्वाधिक महत् सामाजिक संस्था है। उसने बारंबार सावयवी सादृश्य के महत्त्व पर जोर दिया जिसमें राज्य को सामाजिक सावयव का मस्तिष्क कहा गया है। निम्न अवतरण, जिसकी भावना

प्रायः हीगलियन है, वार्ड की राज्य की अवधारणा को श्रेष्ठतः संक्षेप में प्रस्तुत करता है :

"हम इस प्रकार देखते है कि राज्य यद्यपि अपने मूल में जननिक है, वह अपनी पद्धति में निर्देशात्मक (Telic) है; इसका एक ही उद्देश्य, कार्य या मिशन है, वह है समाज का कल्याण करना; इसकी कार्यप्रणाली व्यक्तियों के समाजविरोधी कार्य का निराकरण है; ऐसा करने में वह, जब तक कि वह कार्य समाजविरोधी नहीं है, मानवीय कार्य की स्वाधीनता को बढ़ाता है; इसलिये राज्य मूलतः नैतिक और आचारयुक्त है; उसके अपने कार्य भी अनिवार्यतः आचारयुक्त होने चाहिये; कि एक प्राकृतिक उपज होने के नाते विस्तृत अर्थ मे यह प्रतिनिध्यात्मक होना चाहिए; कि तथ्यतः यह सदैव उतना ही अच्छा होगा जितना कि समाज उसे होने की अनुमति देगा; कि समाज के इतिहास में अभी तक राज्य ने बहुत कम ही ऐसे कार्य किये है जिनसे मानव जाति की उन्नति हुई हो; यह समस्त सफलता की शर्त रही है जिससे कि समस्त सामाजिक औद्योगिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्य संभव हुए है जोकि राज्य के अंदर और उसके संरक्षण में होते है। ऐसी कोई अन्य संस्था नही जिससे राज्य की तुलना की जा सके, फिर भी यह सब देखते हुए, वह मानव संस्थाओं मे सबसे महत्त्वपूर्ण है।" [२१]

वार्ड ने प्रभुसत्ता (Sovereignty) की समस्या की कोई औपचारिक चर्चा नहीं की। उसने स्वाधीनता की "इच्छा के अनुसार कार्य करने की शक्ति" [२२] के रूप मे परिभाषा की है। मानव जाति मे स्वाधीनता का प्रेम सहज और सार्वभौम रहा है। फिर भी वास्तव मे सरकार ने उच्छृंखलता का नियंत्रण कर कुछ स्वतंत्रता का अपहरण कर उसे अधिक स्वतंत्रता खोने से बचाया है। सरकार द्वारा पूर्ण स्वाधीनता के नियंत्रण ने मानव की बौद्धिक शक्तियो के विकास को संभव बनाया है, जिससे अंततः वह पूर्ण मौलिक स्वाधीनता, किंतु अज्ञान पर आधारित स्वाधीनता न पा सके। भविष्य की स्वाधीनता मनुष्य के समाज से संबंधों के बुद्धिमत्तापूर्ण ज्ञान पर आधारित होगी और उसके उपभोग से वंचित करने के लिये समाज को विशृंखल करने के भय से बचाने के लिए कठोर कृत्रिम नियंत्रणो की आवश्यकता न होगी।

वार्ड ने राजनैतिक दलों की अपनी व्याख्या को निश्चित रूप से अपने सामाजिक यंत्रशास्त्र (Mechanics) के सिद्धांत से संयुक्त किया है। उस विभिन्न राजनैतिक दलों में संघर्ष का अंतर्हित आधारभूत सिद्धांत उसकी "सामाजिक सहकार्यशक्ति" की समाजशास्त्रीय व्याख्या है। वस्तुतः दलीय विरोध प्रकट रूप मे विरोधी शक्तियो के बीच सहयोग स्थापित करता है और उस लक्ष्य की ओर, जिससे वह बेखबर है, साथ कार्य करने को संभव बनाता है :

"दो शक्तियों की सजीव अंतर्क्रिया (Interaction) जोकि शत्रुता, विरोध और संघर्ष के सदृश दीखती है, जोकि गति (Force) को शक्ति (Energy) और शक्ति को गति में रूपांतरित करती है तथा राजनैतिक और सामाजिक संरचनाओं का

निर्माण करती है। और उनके निर्माण के बाद वही प्रभाव उन्हें रूपांतरित करते हैं और यही सामाजिक प्रगति का निर्माण करता है, राजनैतिक संस्थाएं—प्रत्येक देश के कानून इस राजनैतिक सहकार्यशक्ति की उपज हैं, राजनैतिक दलों द्वारा बनाये विधानमंडलों की संगठित क्रिया की उपज है।" [२३]

इसलिए इसी प्रकार प्रजातियों और समूहों के बीच संघर्ष समाज और राज्य को जन्म देते है; राज्य के अंदर राजनैतिक दलों का संघर्ष राज्य को रूपांतरित करता है और राजनैतिक प्रगति लाता है। प्राविधिक की अपेक्षा नैतिक प्रश्न राजनैतिक विषयों के बहुत अनुकुल हैं। प्रगतिशील और उदार दल, जोकि सरकारी क्रिया के विस्तार का समर्थन करते हैं, व्यक्तिवाद और स्वाधीनता के सच्चे मित्र हैं। वार्ड कहता है, स्पेंसर के शब्दों मे "आनेवाली दासता" अनुदार और पूंजीवादी दलों द्वारा समाज और राजनैतिक संगठन के धनिकतंत्रीय (Plutocratic) और निर्हस्तक्षेप नीति (laissez faire) के नियंत्रण के रूप मे आ चुकी है। सामूहिक कार्य के समर्थक प्रगतिशील दल दासता और शोषण से मुक्त कराने का प्रयत्न करनेवाली शक्ति है।

(ग) समाज और राज्य का उद्‌गम तथा राजनैतिक विकास की अवस्थाएं

प्रोफेसर स्मॉल ने ठीक ही कहा है कि *Dynamic Sociology* के प्रकाशन तथा अपनी मृत्यु के बीच वार्ड ने अपने समाजशास्त्रीय विचारों में बहुत ही कम संशोधन किया, किंतु उसके राज्य के उद्‌गम के सिद्धात के विषय मे ऐसा नही है।

Dynamic Sociology मे प्रतिपादित सिद्धांत विचित्र था, वह वस्तुतः हॉब्स की प्रकृति की पूर्वसामाजिक (Presocial) अवस्था और रूसो की सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्तियों की कुशलता द्वारा राज्य के उद्‌गम की अवधारणा का मिश्रण था। [२४] सर्वप्रथम यहां पर वार्ड ने समाज की चार व्यापक अवस्थाओं की कल्पना की। पहली, एकाकी या "स्वशासी" (Autarchic) अवस्था थी, जिसमें मनुष्य अकेला और सामाजिक अवस्था से उतना अधिक दूर था जितना कि अपनी जाति को उत्पन्न करने और पालने के लिये पर्याप्त थी। इस प्रकार मनुष्य की प्रारंभिकतम अवस्था, यदि समाज-विरोधी नहीं तो, पूर्वसामाजिक थी। सामाजिक विकासवाद की दूसरी अवस्था "अराजक" (Anarchic) या "आबद्ध समूह" (Constrained aggregate) की थी। सामाजिक समूह प्राकृतिक या जननिक वृद्धि से फैले थे, किंतु सरकार के बिना वे "अत्यधिक स्वाधीनता और अत्यधिक स्वच्छंता" की अवस्था में रहते थे। तीसरी अवस्था को उसने "राष्ट्रीय" या "राज्यशासी" (Politarchic) अवस्था कहा है, जो-कि सरकार के भोंडे रूप के उद्‌गम से पहचानी जाती थी। इन प्रथम राष्ट्रीय समूहों बीच हुए के युद्धों ने अधिक बड़े राजनैतिक समूहों का निर्माण किया और जो अंत में सामाजिक विकासवाद की चौथी या अंतिम अवस्था के विकास की ओर ले जायेंगे। यह अंतिम, अवस्था जिसे उसने अंतर्राष्ट्रीय (Cosmopolitan) या सार्वभौमशासी

(Pantarchic) कहा है, जब आयेगी तब सामाजिक एकीकरण विश्वराज्य को उत्पन्न करेगा।

Dynamic Sociology में राज्य के उद्गम के विशिष्ट विवरण को वार्ड ने आदिकालीन (Primitive) मानव की समाजविरोधी प्रकृति के सर्वथा भ्रांत सिद्धांत से प्रारंभ किया। उसने मानव की सामाजिकता के संबंध में अरस्तू की परंपरा की सत्यता से इन्कार किया। चूंकि आदिम मानव का क्रोध भीषण था और उसे संतुष्ट करने के साधन सीमित थे, अतः जीवन की अवस्था संघर्ष की रही होगी और राजनैतिक नियंत्रण और संरक्षण का विकास होने तक व्यवस्थित समाज संभव न था। समाज और सरकार का उद्गम सहवर्ती रहा होगा। किंतु मानव-जाति सामाजिक संविदा द्वारा आदिम अराजकता की अवस्था से मुक्त नहीं हुई। समग्र रूप से लोगों ने सरकार को नहीं चाहा; सरकार सदैव स्वयं उत्पन्न हुई। सरकार कुछ विशेष महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों द्वारा, जोकि श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता से युक्त थे और सामाजिक शक्ति तथा पद चाहते थे, प्रारंभ की गई। उन्होंने दुर्बलों और शोषितों की रक्षा के लिये हस्तक्षेप करने का दावा कर अपने असली इरादों को छिपाया—पीड़ितों का संरक्षण और पीड़कों को दंड इस योजना का वास्तविक लक्ष्य बताया गया होगा। जैसा कि सरकार के संस्थापकों की बुद्धिमत्ता ने देखा, यह उनकी सत्ता को पुष्ट करेगी और उन्हें अनुचर प्रदान करेगी।" [२५] राजनैतिक सत्ता के इस घृणित और अत्याचारी उद्गम के कारण मानव उसी समय से सरकार द्वारा लादे गये भार से बचने के लिये प्रयत्नशील है। किंतु, सरकार के विकास से संयुक्त अनेक बुराइयां राजनैतिक नियंत्रण के सिद्धांत के प्रयोग का परिणाम नहीं हैं; वे मानव-जाति द्वारा स्वस्थ और बुद्धिमान् सरकार के पतन का परिणाम है।

वार्ड *Dynamic Sociology* और *Pure Sociology* के प्रकाशन की मध्य अवधि में फरग्यूसन, स्पेंसर, बेगहॉट, गुम्पलोविक्ज़ और रैट्जनहोफर के अब सामान्यतः स्वीकृत इस सिद्धांत से परिचित हुआ कि राजनीतिविज्ञान द्वारा परिभाषित राज्य सामूहिक संघर्ष, मिश्रण और सात्मीकरण की प्रक्रियाओं से उत्पन्न हुआ। वार्ड ने इस सिद्धांत को बड़े उत्साह से स्वीकार किया। इसके विषय में वह कहता है कि "यह राज्य के उद्गम और उसकी सच्ची रचना के विषय में प्रथम वैज्ञानिक या कम-से-कम, संतोषजनक सिद्धांत है। इस सिद्धांत को पूर्णतः समझे जाने पर राज्य के विषय में अन्य सब पुरानी धारणाएं निकम्मी हो जाती हैं, और राज्य की प्रकृति के विषय में कोई भी रचना, जो इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करती और उससे शुरू नहीं होती, उथली और व्यवहारतः निरर्थक है।" [२६]

(घ) सरकार के भेद

सरकार के भेदों के सामान्य वर्गीकरण के रूप में वार्ड ने "निरंकुशतंत्र" (Autocracies), "कुलीनतंत्र" (Aristocracies) और प्रजातंत्र" (Democracies) नामकरण प्रस्तावित किये है। प्रजातंत्र के सामान्य वर्गीकरण के अंतर्गत वार्ड ने तीन

स्पष्ट भेद किये हैं : "प्रकृतितंत्र" (Physiocracy) "धनिकतंत्र" (Plutocracy) और "समाजतंत्र" (Sociocracy)। प्रकृतितंत्र सरकार का वह रूप है जोकि पाश्चात्य यूरोप में फीजिओक्रेटों और एडम स्मिथ तथा विलहैल्म, फॉन, हम्बोल्ट और स्पेंसर जैसे व्यक्तिवादी लेखकों की शिक्षाओं के परिणामस्वरूप विकसित हुआ। यह उस प्रकार की निर्हस्तक्षेप सरकार है जोकि ईमानदारी से युक्त किंतु भ्रांत व्यक्तिवादी राजनैतिक दर्शन पर आधारित है।

धनिकतंत्र प्रकृतितंत्र का वह पतन (Perversion) है जोकि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पूंजीवाद के भ्रष्ट और स्वार्थी विनिहित स्वार्थों द्वारा अपने अधिकार की स्थिति में कायम रहने के उद्देश्य से व्यक्तिवादी राजनैतिक दर्शन के शोषण का परिणाम था। इस सिद्धांत के समर्थक सरकारी निष्क्रियता के लिये व्यक्तिवादी अपील का व्यापक प्रयोग करते है और सरकार के विरुद्ध जनसाधारण के मूलबद्ध द्वेष का उपयोग करते हैं जिससे वह समाज का शोषण करते रहें। व्यक्तिवाद का यह पतन, जोकि एक शताब्दी पहले आरंभ हुआ, अभी भी समकालीन राजनैतिक सिद्धांत और संगठन का वर्त्तमान रूप है।

समाजतंत्र राजनैतिक विकासवाद की अगली तार्किक अवस्था है। वस्तुतः यह आदर्श प्रजातंत्र है जिसमे कि दलबंदी, अज्ञान, प्रवंचना और मूर्खता समाप्त की जा चुकी है। संक्षेप मे, यह समाज द्वारा सार्वजनिक हित में सरकार का प्रशासन है और विशेष दल या समूह के स्वार्थों के लाभ के लिये समाज का वर्तमान में शोषण नहीं है। समाजतंत्र मुख्यतः सरकार के बाह्य रूप पर जोर नहीं देता, बल्कि "तह में जाता है और बताता है कि चाहे यह किसी भी रूप में संगठित हो, समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह ईमानदारी और बुद्धिमत्ता से अपने स्वार्थों के संरक्षण और अपने भाग्य के निर्देशन की दिशा मे बढे, जैसा कि इस प्रबुद्ध युग के लिये समीचीन है।" [२७] समाजतंत्रीय सरकार के अंतर्गत "समाज बिना भय, पक्षपात या पूर्वाग्रह के एक व्यावसायिक रीति से उसके कल्याण से संबंधित प्रत्येक बात की जाँच करेगा, और यदि उसे बाधाएं मिलेंगी, वह उन्हें दूर करेगा और यदि उसे अवसर मिलेगे, वह उन्हें सुधारेगा। सारांश में, समाज वही करेगा जोकि वैसी परिस्थितियों मे एक बुद्धिमान् व्यक्ति करता। वह समस्त संभव रीतियों से अपने लाभों को बढ़ायेगा।" [२८]

(ङ) राज्य के कार्य

राज्यक्रिया के कार्य और क्षेत्र के सिद्धांतों के सबंध में वार्ड अपने समय के समाजशास्त्रीय लेखकों में स्पेंसर और सुमनर के निर्हस्तक्षेपयुक्त व्यक्तिवाद का अत्यंत कठोर और निरंतर विरोधी था। [२९] वस्तुतः इस विषय का वार्ड का विवेचन उसके सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांतों का सबसे संतोषजनक और महत्त्वपूर्ण भाग था। समकालीन राजनैतिक प्रणालियों के दोषों और बुराइयों की निंदा में कोई भी लेखक इतना अधिक कटु न था। वार्ड ने सावधानी से सरकार की संस्था और उसके पतन में भेद किया। पतित

रूपों के प्रति उसे असीम घृणा थी, किंतु उसने समाज सुधार के साधन के रूप में सरकार की प्रभावशीलता में, यदि उसे वैज्ञानिक आधार पर चलाया जा सके और भ्रष्टाचार और मूर्खता से मुक्त किया जा सके, कभी अपनी श्रद्धा नहीं खोई।

वार्ड ने सरकार के चार मुख्य कार्य गिनाए है: निरोध (Restraint), संरक्षण (Protection), समवस्थापन (Accommodation) और समाज का सुधार (Amelioration)।[३०] इनमे से पहला कभी भी वैध कार्य नहीं रहा है; दूसरा तभी तक आवश्यक रहेगा जब तक कि मनुष्य अपने साथियों को हानि पहुंचाने से विरत नही होते; तीसरा सदैव सरकार का अनिवार्य कार्य रहेगा; जबकि चौथे को, जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, बहुत कम ही प्रयोग में लाया गया है।

सरकार द्वारा नागरिकों का निरोध समुदाय के हित मे संचालित न होकर शासक वर्गों को उनका शोषण करने की छूट देता है। कब समाज सरकार के इस कार्य से मुक्त होगा, यह सामाजिक बुद्धिमत्ता और प्रबुद्धता की वृद्धि पर निर्भर होगा। सरकार के "संरक्षणात्मक" कार्य से वार्ड का तात्पर्य "पुलिस" कार्य से है, जो धोखेजनी और हिंसा के निवारण से संबंधित है। जब तक कि प्रबुद्धता और बुद्धिमत्ता की समान्य प्रगति से समाज में धोखेबाज़ और हिसक तत्वों को समाप्त नही किया जाता, इसे नही त्यागा जा सकता। समवस्थापन के कार्य की भी कभी निरर्थक होने की संभावना नही है।

"मानव न तो सर्वव्यापी है न सर्वद्रष्टा, न सर्वशक्तिमान्, अतः जिन स्थानों में वह नही जा सकता, वहां कार्य निपटाने के लिये उसे मध्यस्थ की आवश्यकता है; प्रजा में कुशलता और चतुरता अर्जित करने के लिये, जिसके लिये हर एक व्यक्ति समय नही निकाल सकता और संगठन द्वारा कर्तव्यों के पालन के लिये जिन्हे कि स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले व्यक्ति संपादन करने की शक्ति नही रखते, उसे मध्यस्थो की आवश्यकता है। संक्षेप मे अपने प्रतिनिधित्व के लिये समाज को एक संगठित एजेंसी की आवश्यकता है और सदा रहेगी।"[३१]

अपने निरोधक, संरक्षणात्मक और समवस्थापन के कार्यो को करते हुए सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से प्रगति को प्रोत्साहन नही किया है। यद्यपि इसमे कोई प्रत्यक्ष प्रगतिशील तत्व नहीं रहा है, फिर भी यह प्रगति की अनिवार्य शर्त रही है। यदि विधायक केवल समाज-वैज्ञानिक बन सकें तो सरकार समाज की अवस्था को चेतन या निर्देशक (Telic) रीति से प्रत्यक्ष सुधार सकती है। जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रकृति के भौतिक नियमों को खोजता है और अपने ज्ञान को प्राकृतिक नियमों के नियंत्रण और प्राद्योगशास्त्र (Technology) की सेवा में उन्हें लगाता है, उसी प्रकार जब तक कि विधायक सामाजिक शक्तियों के नियंत्रण की प्रकृति और साधनों का ज्ञान प्राप्त नहीं करते, तब तक कोई वैज्ञानिक सरकार नही बन सकती, न ही सरकार के सुधार के कार्य का कोई महत्त्वपूर्ण विकास हो सकता है।[३२]

समाज में प्रगति के सर्वाधिक प्रभावकर साधन के रूप में वार्ड द्वारा सरकार की वकालत मुख्यतः उपरोक्त ईमानदार और बुद्धिमान् सरकार तथा उसके अतीतकालीन और वर्तमान पतित रूपों के भेद पर निर्भर है। जहां तक उद्गम का संबंध है, विद्यमान सरकारें प्रायः सार्वभौम रूप से शोषण से उत्पन्न हुई। वह उनके द्वारा स्थापित हुई जोकि शासन और शोषण करना चाहते थे और जिन्होने स्वार्थो को सिद्ध किया। बुद्धिमत्ता से निर्मित सरकार उन लोगों द्वारा स्थापित की जानी चाहिए और उनके हित में संचालित होनी चाहिये, जोकि शासित होना चाहते है। पुनः जबकि हमारी वास्तविक सरकारों में जनता सरकार को अपना स्वामी और सरकार नागरिकों को प्रजा समझती है, बौद्धिक राजनैतिक प्रणाली मे सरकार के अधिकारियों को सार्वजनिक सेवक माना जायेगा और वह हटाये जाने के भय से अपने निर्धारित कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये बाध्य होगे। एक आदर्श सरकार में शासक और शासित को पृथक् करनेवाली दूरी का उन्मूलन कर दिया जायेगा। जनता यह समझेगी कि वह ही राजनैतिक सत्ता का स्रोत है और सरकार केवल उसकी एजेंट है। आजकल सरकारे संयुक्त पूंजी की बडी कंपनियों के सदृश हैं जिन्हें कि उनके अधिकारियों के स्वार्थ न कि उनके हिस्सेदारो के लाभ के लिये संचालित किया जाता है। सरकार की पूर्णता की दिशा में प्रगति सर्वप्रथम "समाज के प्रत्येक सदस्य को इस संस्था की विशेष प्रकृति से अवगत कराने तथा उसके संचालन में उसकी व्यक्तिगत अभिरुचि की अवधारणा को अधिक जागृत करने की दिशा मे" होनी चाहिए।

वार्ड ने "सरकार की भ्रांत धारणाए" [३३] निबध मे उन दुर्भाग्यपूर्ण परिणामों की ओर निर्देश किया है जोकि सरकार के सच्चे सिद्धांतो और वास्तविक व्यवहार में भेद न करने से उत्पन्न हुए है। निरकुशता की प्रारंभिक अवधियों मे सरकार के प्रति जनता का गहरा अविश्वास बहुत लाभकर था, किंतु सरकार के वर्तमान प्रजातंत्रीकरण ने राजनैतिक नियंत्रण और निर्देशन के प्रति इस संदेहपूर्ण और इस भ्रांत धारणा को हटा दिया है, तथा इसकी स्थिरता हानिकर है। यह अच्छे लोगों को सार्वजनिक जीवन मे आने से रोकती है; यह सरकार के असली उद्देश्य की धारणा को विकृत करती है; यह लूट-खसोट के पहलू पर ज़ोर दे, दलीय संघर्ष को बढ़ाती है; यह राजनीतिज्ञ को उसकी अप्रिय प्रतिष्ठा के अनुरूप रहने के लिये प्रोत्साहित कर, सरकार को निकृष्ट बनाती है; और अंततः यह सरकार के संरक्षणात्मक कार्य को दुर्बल कर उसको अपनी उपयोगिता से वंचित करती है।

"सरकार की इन भ्रांत धारणाओं को" हटाना आवश्यक है। जनता को सरकार की सही अवधारणा समझना और अपने हित में उसकी बुराइयों को दूर करने के लिये उचित कदम उठाना चाहिए। तदनुसार वार्ड ने उन "दुःशासनवादियों" (Misarchists) की बाधक कहकर कठोर आलोचना की है, जिनमें कि समाजशास्त्रियों में हरबर्ट स्पेंसर, डब्ल्यू० जी० सुमनर और जैक्स नोवीकोव सरकार की इस "विकृत धारणा" को कायम रखने के निरंतर प्रयास में सर्वाधिक प्रमुख हैं। फिलहाल संगठित संपत्ति द्वारा

समाज का शोषण सरकार का हस्तक्षेप चाहता है, जिस प्रकर व्यक्तियों, आततायियों, दरबारियों और गुंडों के शोषण से रक्षा की आवश्यकता ने सरकार के संरक्षणात्मक कार्य को जन्म दिया।

(च) राज्य, शिक्षा और सामाजिक सुधार

वार्ड के समाजशास्त्र के बुनियादी सिद्धांत कहीं भी इतनी श्रेष्ठता से प्रदर्शित नहीं हुए जितने कि सरकारी क्रिया की मध्यस्थता द्वारा सामाजिक समस्याओं और विषमा-योजन (Maladjustment) के समाधान से संबंधित सिद्धांतों में—दूसरे शब्दों में, सामूहिक या सामाजिक निर्देशन के मुख्य साधन के रूप में सरकार के विवेचन में।

सरकार को सामाजिक प्रक्रिया के नियंत्रण का स्थान होना चाहिए, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि केवल इसी को व्यक्तिगत सावयव में मस्तिष्क का सामाजिक समकक्ष समझा जा सकता है। सरकार के कार्यकर्ताओं और क्रियाओं की वर्तमान मूर्खता इस प्रचलित युक्ति का आधार है कि सरकार कभी भी उपयुक्त बुद्धिमत्ता का प्रमाण नहीं दे सकती। जब सामाजिक बुद्धिमत्ता का सामान्य स्तर उठ जाय, तब यह न मानने का कोई कारण नहीं कि सरकार को नियंत्रकों का ज्ञान उसी अनुपात में बढ़ जायगा।[१४]

वार्ड ने अपने "सभ्यता के मानसिक कारक" *Psychic Factors of Civilization*[१५] में उन अनिवार्य शर्तों को संक्षेप में बताया है जोकि सरकार के साधन द्वारा सामाजिक या सामूहिक निर्देशन के सफल कार्य के लिये अनिवार्य हैं। विधायकों को या तो समाजवैज्ञानिक होना चाहिये या उन्हे समाजशास्त्रियो के सहयोग से कार्य करना चाहिये। प्रचलित भ्रांतिउत्पादक विधायक पद्धतियों को समाप्त कर देना चाहिये। यह समिति प्रणाली के प्रयोग के विस्तार और कार्यकारिणी को कानून बनाने में भाग लेने का अधिकार देकर श्रेष्ठता से किया जा सकता है। अंततः संख्याशास्त्र (Statistics) का अधिकाधिक उपयोग होना चाहिए और वैज्ञानिक कानूनों के बनाने मे उसके न्यासों को आधार बनाना चाहिए।[१६]

कोंत की भांति, जिसका कि वह अनेक राजनैतिक सिद्धांतों और अधिकांश राजनैतिक शब्दावली का ऋणी था, वार्ड ने वैज्ञानिक सरकार के विस्तृत विस्तार के लिये समाजशास्त्र पर एक सूचना के स्रोत के रूप में मुख्यतः भरोसा किया। विज्ञानवादी (Positivists) शासन के पुरोहितों की भांति वार्ड के विधायकों को प्रशिक्षित समाजशास्त्री होना था। अतएव, सामाजिक सुधार के लिये सरकारी क्रिया के वैज्ञानिक विकास और प्रयोग से पहले आधारभूत समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के ज्ञान का प्रसार होना चाहिये। विधायकों को सामाजिक शक्तियों की प्रकृति और नियंत्रण की पद्धतियों से पूर्णतः अवगत होना चाहिए। चालू भाषा में, वार्ड "बुद्धिसंघ" (Brain Trust) द्वारा शासन का प्रबल समर्थक और "सामाजिक नियोजन" के कार्यक्रम का महान् समाजशास्त्रीय अग्रणी था। दुर्भाग्य से, समाजशास्त्रीय ज्ञान अभी अपने आपमें बहुत अपूर्ण और अविकसित अवस्था में है। वार्ड के अनुसार १९०३ में वह विकास की उसी अवस्था में था जिसमें

कि भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र पंद्रहवीं शताब्दी में थे। इस अनिवार्य समाज-शास्त्रीय ज्ञान को सुधरी हुई शिक्षा-प्रणाली द्वारा दिया जाना चाहिये।

शिक्षा के सामाजिक कार्य की चर्चा करते हुए वार्ड ने अपना मतभेद प्रगट करते हुए यह थीसिस प्रस्तुत किया कि सामाजिक शक्तियों को तभी सुरक्षित और उपयोगी दिशाओं में संचालित किया जा सकता है जबकि उनकी प्रकृति और नियंत्रण के साधनों को समझ लिया जाय। शिक्षा के मूल्य को उसी अनुपात में आंकना चाहिये जिसमें कि "यह अपने अधिकर्ता को जीवन, समाज और प्रकृति से उसके संबंधों के विषय में सही दृष्टिकोण देती है।" वह शिक्षा पद्धति जिसमें कि यह उपयोगी सूचना सम्मिलित हैं, राज्य द्वारा संचालित और सार्वभौम होनी चाहिये। उसने शिक्षा की संपूर्ण समाजशास्त्रीय समस्या और महत्त्व को निम्न विशिष्ट अवतरण में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है :

"यह प्रश्न है कि क्या सामाजिक प्रणाली सदा प्रकृति के हाल पर छोड़ दी जायगी, सदा जननिक और सहज रहेगी, तथा निरुद्देश्य भटकने के लिये, इसे विकसित करनेवाले और वर्तमान अवस्था तक पहुंचानेवाले किसी भी अर्थ में सदैव प्रगतिशील न रहनेवाले प्रभावों के सुपुर्द रहेगी या कि उसे कला का उचित विषय माना जायेगा तथा मानव-बुद्धि द्वारा विवेचन किया गया एक अन्य प्राकृतिक पदार्थ समझा जायगा और इस शब्द के उचित अर्थों में ही उसे प्रकृति से श्रेष्ठ बनाया जायगा, जैसेकि अन्य कृत्रिम पदार्थ प्राकृतिक पदार्थों से अधिक श्रेष्ठ है।" [३७]

जब यह संशोधित और सार्वभौम शिक्षा-प्रणाली कार्यान्वित की जाती है, सरकार, जोकि तब समाजतंत्रीय होगी, वस्तुतः वैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा संचालित की जा सकती है और तब वह "सामाजिक आविष्कार" और "आकर्षक कानून" की परोक्ष या निर्देशनात्मक पद्धति द्वारा प्रगति को बढ़ाने की स्थिति मे होगी। सच्चे सामाजिक आविष्कार में "ऐसे समायोजन सम्मिलित हैं जोकि मनुष्यों को समाज के लिये सबसे अधिक हितकर रीति से कार्य करने को प्रेरित करेंगे।" ये समायोजन अवश्य ही "आकर्षक कानून" का रूप धारण कर वर्तमान समय के भ्रांत और दमनयुक्त कानून का स्थान ले लेंगे।

वार्ड ने "आकर्षक कानून" के सिद्धांत को निम्न प्रकार समझाया है : "मनुष्यों की इच्छा, वासनाएं और अभिरुचियां" समाज की महान् प्रेरक शक्तियां है। उनमें अच्छाई और बुराई दोनों की विस्तृत संभावनाएं विद्यमान हैं। दमनयुक्त कानून जो आधुनिक कानूनों की बहुसंख्या का निर्माण करता है, बिना कोई लाभ उठाए इस शक्ति को दबाता है। "आकर्षक कानून" समाज की इस महत्त्वपूर्ण शक्ति का निरोध नहीं करेगा, इसके बजाय वह इसे हानिकर अभिव्यक्तियों से हटाकर रचनात्मक दिशाओं मे संचालित करेगा। नये गत्यात्मक मनोविज्ञान के अर्थों में, यह सामाजिक कार्यशक्ति के ऊर्ध्वीकरण (Sublimating) की बौद्धिक पद्धति होगी।

भविष्य की वैज्ञानिक राजनीतिज्ञता को उसी प्रकार सामाजिक शक्तियों और कार्यशक्ति के उपयोग और संचालन का प्रयास करना चाहिये जिस भांति आज के प्रायोगिक

वैज्ञानिक प्रकृति की भौतिक कार्यशक्ति को नियंत्रित तथा उपयोग करते हैं। "आकर्षक कानून" और सामूहिक निर्देशन के सिद्धांतों पर आधारित राजनैतिक शासन की आधारभूत विशेषताएं वार्ड के निम्न अवतरणों में दी गई हैं, जोकि साथ ही उनके संपूर्ण सामाजिक दर्शन का पर्याप्त पूर्ण संक्षेप है :

"एक वैज्ञानिक अन्वेषक की हैसियत से विधायक अपने सम्मुख उन शक्तियों को, जो कि बुरे परिणाम उत्पन्न कर रही हैं, हानिरहित करने तथा जो बेकार जा रही हैं, उन्हें उपयोगी बनाने के साधनों के खोजने का कार्य रखेगा। केवल वर्तमान निषेधात्मक कानून, जो प्रत्यक्ष या पाशविक पद्धति से अपने उद्देश्य को पूरा करता है, उसी का स्थान प्रत्यक्ष या बौद्धिक पद्धति से अपने उद्देश्यों को पूर्ण करनेवाला "आकर्षक कानून" ही न लेगा और इस प्रकार विरोधियों के संघर्ष की अपार हानि को बचाकर सरकार के संरक्षणात्मक् कार्यो को ही पूरा न करेगा, प्रत्युत् समवस्थापन (Accommodative) कार्य अब इस अवस्था मे होगे कि वे वस्तुतः सुधार (Ameliorative) स्थिति की ओर आगे ले जा सकें।"

"सर्वप्रथम पूर्णतः एकीकृत चेतना से युक्त समाज अंत में अपने हित को कार्यान्वित करने के लिये उसी प्रकार अपने स्वतंत्र कार्यक्षेत्र को बनाने की ओर आगे बढ़ेगा जैसे एक बुद्धिमान और मेधावी व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों पर बढता है। केवल संरक्षण और समवस्थापन ही बिना स्वाधीनता की हानि और समाज को यथासंभव अल्पतम मूल्य पर प्राप्त न होंगे, बल्कि मानव-सुख के संगठन करनेवाले प्रत्यक्ष प्रगतिशील कदमों को उठाया जायेगा।"

"समाज के सच्चे प्रगतिशील अभिकरणों की विशेषता और कार्यप्रणाली को अच्छी तरह समझते हुए, सरकार केवल इन्हे पुष्ट और सरक्षित ही नही करेगी, बल्कि वह उनको और उनके प्रभाव को तीव्र करेगी और बढ़ायेगी। समग्र रूप से उसकी यह सदेह न करते हुए कि प्रगति बुद्धिमत्ता की सार्वभौमता के अंश के अनुपात में होगी, प्रत्येक नागरिक को समान और पर्याप्त उपयोगी ज्ञान की मात्रा प्रदान करने में कोई प्रयत्न या व्यय में कसर न रखी जायेगी।" [३८]

वार्ड की स्वप्नदर्शिता भविष्य के वैज्ञानिक कानून की इस आकर्षक चित्र में ही पूर्णतः समाप्त नहीं हो गई। उसने यह भविष्यवाणी करने का साहस किया कि और अधिक सुदूर भविष्य में बुद्धि की पूर्णता और ज्ञान की पूर्णता के साथ राज्य और सरकार समाप्त हो सकते हैं। यह वार्ड के उपरोक्त वक्तव्य का कि समाज कभी भी सरकार के समवस्थापन कार्य की आवश्यकता से छुटकारा न पा सकेगा, खंडन लगता है।

३. वार्ड के सामाजिक विचार का संक्षिप्त मूल्यांकन

सामाजिक विचार को लेस्टर एफ० वार्ड की देनों का संक्षेप प्रस्तुत करते हुए यह कहना ठीक है : (१) वार्ड ने एक समाजशास्त्री के रूप में प्राकृतिक और समाजविज्ञान की अवधारणाओं को जोड़ने में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास किया; (२) डार्विनोत्तर-

काल में वह प्रथम उल्लेखनीय समाजशास्त्री था जिसने कि प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक विकासवाद के बीच विद्यमान भेद पर जोर दिया और यह कहा कि सामाजिक विकासवाद को सामाजिक और मानसिक नियंत्रण में लाया जा सकता है; (३) उसने सावयवी विकासवाद की जननिक पद्धति और सामाजिक विकास की निर्देशनात्मक प्रक्रियाओं के बीच स्पष्ट भेद किया; (४) उसने राज्य के हस्तक्षेप और सरकारी नियोजन की दिशा में बढ़ती प्रवृत्ति की पूर्वोक्ति की और प्रेरणा दी कि इन्हें यथार्थवादी सामाजिक शिक्षा द्वारा सचालित किया जाय; (५) इस प्रकार जहां तक कि सार्वजनिक उन्नति और सामाजिक प्रगति से यह संबंधित है, वह "सामाजिक अध्ययन" के अंदोलन का जन्मदाता था; (६) उसने अनेक पीढ़ियों पहले शिक्षा पर प्रचलित सामाजिक बल की पूर्वोक्ति की। और (७) उसने इस तथ्य पर जोर दिया कि समाजविज्ञान के न्यास और नियम मुख्यतः सामाजिक कल्याण को बढ़ाने और आदर्श राज्य पर शीघ्र पहुंचने में मुख्यतः उपयोगी है, जिसे कि अन्यथा प्रकृतिवादी विकासवाद की मंद और विनाशपूर्ण पद्धतियों द्वारा प्राप्त किया जायेगा।[३९]

टिप्पणियां

१. *Dynamic Sociology* (2 vols. ; New York, 1883); *The Psychic Factors of Civilization* (Boston, 1893) ; *The Outlines of Sociology* (New York, 1889) ; *Pure Sociology* (New York, 1903) ; *Applied Sociology* (*Boston* 1904). उसकी *Pure Sociology* संक्षिप्त और स्पष्ट रूप मे J. Q. Dealey और L. F. Ward, *Textbook of Sociology* (New York, 1905) द्वारा प्रकाश में आई। वार्ड की गौण रचनाये ओर उसकी मुख्य रचनाओं की सूचनाये "Mental Autobiography," *Glimpses of the Cosmos* (8 Vols. ; New York, 1913) में संकलित है।

Dynamic Sociology इन रचनाओं में से उसकी संपूर्ण सामाजिक दर्शन की सबमे विस्तृत श्रेष्ठ व्याख्या है। *Outlines of Sociology* के दूसरे भाग में इसका स्पष्टतर ओर सक्षिप्त विवेचन मिलता है। *Pure Sociology* उसकी समाजशास्त्रीय प्रणाली की अधिकारपूर्ण व्याख्या है जो स्वयं और अधिक स्पष्टता से Dealey और Ward, *Textbook of Sociology* में प्रस्तुत की गई है। उसका समाज मनोविज्ञान *Psychic Factors of Civilization* में सबसे अच्छी प्रकार संकलित है जबकि उसकी *Applied Sociology* उसकी सामाजिक निर्देशन की अवधारणा की शास्त्रीय व्याख्या है।

उसकी *Pure Sociolofy* की H. H. Bawden ने *American Journal of Sociology*, IX, (1903-4), 408-15 में समीक्षा की थी; A. W. Small ने

उसकी *American Journal of Sociology*, IX, (1903–4), 404–7, 567–75, 707–7 में विस्तार से आलोचना की और J. M. Gillette ने *American Journal of Sociology*, XX (1934–15), 31–38 में उसका समालोचनात्मक विश्लेषण किया।

प्रतिष्ठित समाजशास्त्रियों द्वारा समाजशस्त्र के लिए वार्ड के महत्त्व के अनुमान *American Journal of Sociology*, X (1904–5), 643–53 ; XIX (1913–14), 61–78 ; XXI (1915–16), 748–58, 824 में प्रकाशित हुए हैं।

एक मानव वैज्ञानिक और समाजशास्त्री के रूप में वार्ड के सबसे पूर्ण विवेचन के लिए Samuel Chugerman लिखित *Lester F. Ward : The Amrican Aristotle* (New York, 1939) पुस्तक देखिए। Clement Wood. *The Substance of the Sociology of Lester F. Ward* (New York, 1930) में वार्ड की समाजशास्त्रीय रचनाओं का अच्छा संकलन है। जीवन की घटनाओं के विस्तार के लिए देखिए E. P. Cape, *Lester F. Ward : A Personal Sketch* (New York, 1930)।

२. उसका शैक्षणिक जीवन अनेक विश्वविद्यालियों के ग्रीष्म सत्रो में व्याख्यान देने तथा ब्राउन विश्वविद्यालय में छः वर्ष (१९०६–१२) तक समाजशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर कार्य करने तक सीमित था। वार्ड के जीवन को प्रभावित करनेवाले अनुभवों के लिए देखिए B. J. Stern, *Young Ward's Diary*, (New York, 1935).

३. *Pure Sociology*, p. 15.

४. *Ibid.*, pp. 3, 431.

५. *Ibid.*, p. 79.

६. *Ibid.*, p. 171.

७. *Ibid.*, p. 161.

८. *Ibid.*, pp. 115–19.

९. *Ibid.*, pp. 119–35.

१०. *Ibid.*, pp. 97, 99 ff., 142, 467 ff.

११. *Ibid.*, pp. 175 ff.

१२. *Ibid.*, pp. 221 ff.

१३. *Ibid.*, p. 261.

१४. *Ibid.*, pp. 296 ff., 336 41, 345.

१५. *Ibid.*, pp. 463 ff.

१६. *Ibid.*, p. 551.

१७. *Ibid.*, pp. 573–75; *Dynamic Sociology*, Vol. II, chaps xiv; *Applied Sociology, passim. Pure Sociology* पर आधारित वार्ड के समाजशास्त्र

की इस रूपरेखा के साथ *Dynamic Sociology* की भूमिका में दिये गये उसके अपने संक्षेप से तुलना कीजिए।

१८. मिलाइये A. W. Small, *American Journal of Sociology*, XXI (1915–16), 752; F. H. Giddings, *American Journal of Sociology*, XIX (1913–14), 67-68.

१९. Giddings, *loc. cit.* यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह मूलत: स्पेंसर के थीसिस का खंडन है और यही दोनों व्यक्तियों के दर्शनका मुख्य भेद था। इन व्यक्तियों का समाजशास्त्र में वही स्थान था जोकि इतिहास में नीबुर और रांके का और अर्थ-शास्त्र में तुर्गो और एडम स्मिथ का है।

१९. क *Pure Sociology*, p. 91.

२०. *Psychic Factors of Civilization*, p. 297; मिलाइये *Pure Sociology*, p. 188 जहां पर परंपरागत मत के विरुद्ध वह युक्ति देता है कि समाज द्वारा सरकार की संस्था ने राज्य की आवश्यकता पैदा की और उसे जन्म दिया।

२१. *Pure Sociology*, p. 255.

२२. *Dynamic Sociology*, II, 233.

२३. Ward, "The Sociology of Political Parties", *American Journal of Sociology*, XIV (January, 1908), 440–41.

२४. जैसा कि रूसो के प्रसिद्ध *Second Discourse* में व्यक्त किया गया है। वार्ड के अपनी राज्य के प्रारंभिकतम सिद्धांत के पुराने और ग़लत स्वरूप की अपनी स्वीकृति के लिए देखिए "Sociology and the State," *American Journal of Sociology*, XVI (March, 1910), 679–80.

२५. *Dynamic Sociology*, II, 224. राजनैतिक नियंत्रण में कुछ युक्तियों द्वारा शासन करने की प्रवृत्ति का गिडिंग्स ने वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, वह इसे "आदितंत्र" (Protocracy) का सिद्धांत कहता है देखिये उसकी *Responsible State* (Boston, 1918), pp. 19 ff.

२६. Ward, *American Journal of Sociology*, VII (1901–2), 762; इसे भी मिलाइये *ibid.*, XV (1909–10), 679–80; *Pure Sociology*, pp. 204 ff. चूंकि वार्ड राज्य के उद्गम केविषय में गुम्पलोविक्ज़ और रेट्जनहोफर से सर्वथा सहमत है, अत: उनके सिद्धांतों के उसके विवरण को दोहराने की ज़रूरत नहीं।

Pure Sociology के संकेत के अतिरिक्त वार्ड की राज्य के उद्गम की गुम्पलो-विक्ज़-रेट्जनहोफर की व्याख्या का सर्वोत्तम संक्षेप *American Journal of Sociology* (1904–5), 643–54; और *Publications of the American Economic Association* (3d ser., 1904), V, No. 2, 187 ff में है। समूह-संघर्ष द्वारा

राज्य के उद्गम के विरुद्ध जो आलोचनाएं की जा सकती हैं उन्हें J. Novicow ने अपनी *La Critique de Darwinisme Social* (Paris, 1910); और E. C. Hayes ने *An Introduction to the Study of Sociology* (Philadelphia, 1915), pp. 538 ff. में सबसे अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।

२७. *The Psychic Factors of Civilization*, pp. 311, परिचयात्मक टिप्पणी।

२८. *Ibid.*, p. 337.

२९. विशेष रूप से देखिये, उसकी *Glimpses of the Cosmos*, III, 301–5; में "Professor Sumner's Social Classes," और "The Political Ethics of Herbert Spencer, " *ibid.*, V, 38–66.

३०. *Dynamic Sociology*, II, 212, 217, 231.

३१. *Ibid.*, pp. 241–42.

३२. *Ibid.*, pp. 245–50; *Pure Sociology*, pp. 568–69; *Outlines of Sociology*, pp. 187–89; *Psychic Factors of Civilization*, pp. 309–12. तब तक वार्ड प्लेटो और कोंत के इस सिद्धांत को मूलतः अपना चुका था कि पूर्ण सरकार केवल तभी आ सकती है जबकि समाज और सरकार समाजशास्त्रियों द्वारा नियंत्रित और संचालित हों।

३३. *Dynamic Sociology*, II, 243.

३४. *Outlines of Sociology*, pp. 187–89, 268–76, *Pure Sociology*, p. 565; और *Psychic Factors of Civilization*, p. 297.

३५. pp. 309–12.

३६. Glimpses of the Cosmos, II, 168–71 मे पुनर्मुद्रित वार्ड के लेख से "The Way to Scientific Law-making" (1877) मिलाइये। यह वैज्ञानिक कानून निर्माण मे संख्याशास्त्र के महत्त्व पर सबसे पहले और स्पष्टतम वक्तव्यो मे से है और उसने पांच वर्ष पहले इस विषय पर शास्त्रीय व्याख्या *The State in Relation to Labour* (London, 1882) मे जेवंसकी को रखा; इसे भी मिलाइये, Graham Wallas, *Human Nature in Politics* (Boston, 1909), pp. 121ff., 132. ff.

३७. *Dynamic Sociology*, II, 632-33; इसे भी मिलाइये *Applied Sociology, passim.* शिक्षा के समाजशास्त्रीय महत्त्व पर वार्ड का सर्वश्रेष्ठ सक्षिप्त वक्तव्य *Glimpses of Cosmos*, VI, 333–40 मे उद्धृत उसके भाषण "Education

and Progress" में मिलता है । E. P. Kimball, *Sociology and Education* (New York, 1932) से भी मिलाइये।

३८. *Dynamic Sociology*, II, 249–50.

३९. समाजविज्ञान में वार्ड के महत्त्व पर अधिक प्रामाणिक सामग्री के लिए देखिए H. W. Odum (ed.), *American Masters of Social Science* (New York, 1927), Chap. III में J. Q. Dealey, "Lester Frank Ward".

अध्याय चार

लुडविग गुम्पलोविक्ज़ का सामाजिक दर्शन : नस्लों और सामाजिक समूहों का संघर्ष

हैरी एल्मर बार्नस्

१. लुडविग गुम्पलोविज़ की समाजशास्त्रीय प्रणाली की सामान्य प्रकृति

समाजशास्त्रीय सिद्धांत के विकास का एक अग्रणी और तथाकथित "विरोध-संप्रदाय" (Conflict School) का नेता अस्ट्रियन पत्रकार और समाजशास्त्री लुडविग गुम्पलोविक्ज़ (१८३८–१९०९) था। उसने बहुत लिखा, उसका ज्ञान, यदि पूर्णतः आलोचनात्मक न था, फिर भी बहुत विस्तृत था। लेस्टर एफ० वार्ड के संभव अपवाद को छोड़, अन्य कोई समाजशास्त्री अपने सिद्धांन्त की अंतिम निश्चितता के बारे में इतना अधिक प्रभावित न था, और हम इस मत से नहीं बच सकते कि उसके द्वारा प्रस्तुत यदि अधिकांश नहीं तो अनेक प्रस्थापनाएं जिन्हें वह अंधे "प्राकृतिक नियम" से पुष्ट या "ब्रह्मांड की प्रक्रिया (Cosmic Process) की अवश्यंभावी प्रवृत्तियां" अभिव्यक्तियाँ बताता था, वे विचारग्रस्त समस्या पर केवल गुम्पलोविक्ज़ की रायें थीं। विरोधी समूहों की अंतर्किया (Intraction) के रूप में सामाजिक प्रक्रिया का उसका पूर्ण विश्लेषण समाजशास्त्र द्वारा अब तक प्रस्तुत आधारभूत अवधारणाओं में से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और महानतम स्थायी मूल्य की देन है। सामाजिक प्रक्रिया की प्रकृति की अपनी विशिष्ट व्याख्या के अतिरिक्त, संभवतः गुम्पलोविक्ज़ पहला स्वघोषित समाजशास्त्री था जिसने कि एक विकासशील प्रक्रिया के रूप में साहचर्य (Association) और समाजीकरण (Socialization) की सामान्य समाजशास्त्रीय अवधारणा के महत्त्व पर जोर दिया—गुम्पलोविक्ज़ के देश-वासियों जनरल गुस्टेव रैट्ज़नहोफर, और उसके प्रमुख शिष्य प्रोफेसर एल्बियन डब्ल्यू० स्मॉल ने इस समाजशास्त्रीय विचारधारा का बहुत विस्तार किया है।

गुम्पलोविक्ज़ के अनुसार समाजशास्त्र सामूहिक समूहों के अंतर्संबंधों का विज्ञान है। समाजशास्त्र का यह कार्य है कि वह यह दर्शाये कि सामाजिक घटनायें मापी जा सकती हैं और उन्हें जाँचे जानेवाले नियमों में बाँधा जा सकता है, "समाजशास्त्र का कार्य यह दर्शाना है कि सामाजिक घटनाओं पर सार्वभौम नियम लागू होते हैं, सामाजिक क्षेत्र में उनके द्वारा उत्पन्न किये गये विशेष प्रभावों को बताना और अंततः विशेष सामाजिक नियमों का सूत्रीकरण करना है।"[१]

गुम्पलोविक्ज़ ने सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की संकीर्ण व्याख्या की है और यह बताया है कि यह "समूहों और मनुष्यों के योग द्वारा एक दूसरे पर क्रिया करने से" प्रकट होती है। तदनुसार समस्त इतिहास में सामाजिक प्रक्रिया बहुतत्वीय (Heterogenous), सामाजिक समूहों के संबंधों और पारस्परिक क्रियाओं में व्यक्त हुई है। बाद में सामाजिक नियम सहजात (Syngenetic) सामाजिक समूहों की अंतर्क्रिया और विकास के नियम बन जाते है। इस प्रकार गुम्पलोविक्ज़ के समाजशास्त्र की संपूर्ण प्रणाली उसकी पूर्वस्थापनाओं से सीमित और बहुत कुछ विकृत हो गई; किंतु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसने अपने कल्पित पूर्ववयवों (Premises) से ह्वॉब्स सदृश तर्क और स्पष्टता से निर्भय हो अपने निष्कर्ष निकाले।

गुम्पलोविक्ज़ की समाजशास्त्रीय प्रणाली को बहुत समय से एक लेखक के सिद्धांतों पर उसके सामाजिक और राजनैतिक वातावरण के प्रभाव का शास्त्रीय उदाहरण माना जाता रहा है। आस्ट्रिया-हंगरी मे प्रायः अनुपम प्रजातीय (Ethnic) और सांस्कृतिक विविधता तथा राष्ट्रीय समूहों और सामाजिक वर्गों के निरंतर संघर्ष ने तथा दुहरे राजतंत्र के दोनों राज्यों में एक अल्पसंख्या द्वारा राजनैतिक सत्ता के नियंत्रण ने संपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रणाली को यदि पूर्णतः निर्धारित नहीं किया तो भी उसकी मुख्य दिशाओं को निस्संदेह प्रभावित किया, जो प्रजातीय विविधता और वर्ग-संघर्ष तथा शासक अल्पसंख्या की राजनैतिक प्रभुशक्ति (Sovereignty) के पूर्ववयवों और राष्ट्रीय स्वतंत्रता, सांस्कृतिक सात्मीकरण और प्रजातीय मिश्रण पर आधारित थीं। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि सार्वभौम प्रयोग के समाजशास्त्रीय नियमों की गुम्पलोविक्ज़ की प्रस्थापनाओं की सत्यता को आंकते समय इसे ध्यान में रखना चाहिये।

समाजशास्त्रीय अन्वेषण की एक इकाई के रूप में सामाजिक समूहों और उनके विरोधों पर अत्यधिक ज़ोर देने के अतिरिक्त, गुम्पलोविक्ज़ की समाजशास्त्रीय प्रणाली में व्यक्ति के महत्त्व की अस्वीकृति और समग्र रूप से मानवता को जांची जानेवाली मानव प्रगति की उपस्थिति से इन्कार करना दो अन्य महत्त्वपूर्ण प्रस्थापनायें थीं। कोई भी अन्य समाजशास्त्री—यहां तक कि तार्दे, दुरखीम, सिघेल, ला बॉन या ट्रॉटर भी—व्यक्ति के महत्त्व को घटाने और समूह द्वारा व्यक्ति पर शासन की सीमा को बढ़ाने में गुम्पलोविक्ज़ जितने आगे नहीं बढ़े। एक अवतरण में, जोकि उद्धृत होते-होते तार-तार हो गया है, उसने कहा: "व्यक्ति केवल प्रिज्म का पार्ट अदा करता है जोकि किरणों को ग्रहण करता है, उन्हें निश्चित नियमों के अनुसार विलीन कर देता है और पुनः उन्हें एक पूर्वनिर्धारित दिशा तथा एक पूर्वनिर्धारित रंग के साथ पुनः गुज़रने देता है।" इस तथ्य के बावजूद कि व्यक्ति को उसके जीवन-प्रतिमान (Life- Patterns) और चिंतन की आदतें बनाने में व्यक्ति पर समूह की पूर्ण प्रभुता होती है, समूह, कम-से कम जनता के समूह, अपने आपमें आक्रांता नेताओं की कृपा पर निर्भर हैं। जैसा कि

उसने इसे अपनी *Sozialphilosophie im Umriss* में व्यक्त किया है:

"ऐसा लगता है कि इकट्ठे होने का सरल तथ्य ही मानव प्राणियों के भेड़ सदृश चरित्र को स्पष्ट करता है, क्योंकि जहां कहीं भी हम बड़ी सभायें देखते हैं, चाहे वह सार्वजनिक सभाओं में हों या संसद में, चाहे हिस्सेदारों की सभा हो, संघों की या विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोह, सर्वत्र ही हम देखते हैं कि बहुसंख्या अकेले व्यक्तियों के नेतृत्व को स्वीकार कर संतुष्ट है, वह अब अपने विश्वासों के अनुसार कार्य नहीं करती बल्कि नेताओं द्वारा प्रयोग में लाये गये शब्दों की गुलाम बन जाती है।" [क]

यह स्पष्ट है कि यह धारणा भीड़ों और संसदों के व्यवहार के संबंध में मूलत: ला बॉन और सिघेल से मिलती है।

समाजशास्त्रियों में, सामान्यत: स्वीकृति से दूर, गुम्पलोविक्ज़ समग्ररूप से मानवता की पर्याप्त प्रगति से इन्कार करता है। विशेष कालों और विशेष समाजों में सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति को स्वीकार करते हुए भी उसने समग्ररूप से मानव-समाज में किसी स्थायी सुधार की उपस्थिति पर संदेह व्यक्त किया है और कहा कि ऐतिहासिक प्रक्रिया वृद्धि और पतन के चक्रीय (Cyclical) मार्ग का अनुसरण करते हुए, असंख्य परवर्ती सभ्यताओं के उत्थान और पतन का लेखा है। इस प्रकार गुम्पलोविक्ज़ ने अनंत प्रगति की संभावना के संबंध में केवल तुर्गो, कौडरसेत, गॉडविन, कोंत और वार्ड के सिद्धांत को ही अस्वीकार नहीं किया बल्कि उसने विको के इस दबे हुए मत को भी, कि प्रगति ने गोलाकार (Spiral) रूप धारण किया, मानने से इन्कार किया। मेकियावेली और ला० बॉन के साथ उसने भी इतिहास के अभियान की चक्रीय प्रकृति के सिद्धांत को, जोकि क्लसिकल काल मे बहुत प्रचलित था और जिसे तब पौलीबियस ने सर्वश्रेष्ठता से व्यक्त किया था, अपनाया।

गुम्पलोविक्ज़ के सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धांत हमें सीधे उसके सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं के विश्लेषण की ओर ले जाते हैं। उसने समूह-विरोध के अपने सिद्धांत को राज्य की प्रकृति, विकास और कार्य की व्याख्या में प्रयुक्त किया और उसे राजनैतिक क्रिया और सिद्धांत के हरेक पहलू को समझाने के लिये पर्याप्त समझा। [ख]

२. सामाजिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं के आधार के रूप में सामाजिक समूहों के संघर्ष के गुम्पलोविक्ज के विचार

(क) समाजशास्त्र का राजनीतिशास्त्र से संबंध

समाजशास्त्र के अन्य विशेष समाजविज्ञानों से संबंध की गुम्पलोविक्ज़ की अवधारणा स्पष्ट और तर्कसंगत है; "मानव-समाज और सामाजिक नियमों का विज्ञान होने के नाते समाजशास्त्र स्पष्ट ही मानव-समाज के भागों पर या साहचर्ययुक्त जीवन की विशेष अभिव्यक्तियों पर विचार करनेवाले समस्त विशेष सामाजिक विज्ञानों का आधार है।" [ग] समाजशास्त्रीय अन्वेषणों ने राजनैतिक संस्थाओं के वैज्ञानिक अध्ययन को

सर्वप्रथम संभव बनाया, क्योंकि समाजशास्त्र द्वारा प्रकट किये गये सामाजिक विकास और सामाजिक प्रक्रियाओं के नियमों पर आधारित होकर ही राजनैतिक घटनाओं का विश्लेषण एक वैज्ञानिक रूप धारण कर सकता है।

(ख) राज्य का स्वरूप

गुम्पलोविक्ज़ का राज्य के स्वरूप का सिद्धांत उसके समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के ठीक अनुरूप है और स्पष्ट ही राज्य की एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है। वह कहता है : "राज्य सामाजिक तत्वों से मिलकर बनी एक सामाजिक घटना है जो सामाजिक नियमों के अनुसार कार्य करती है।"[७] इसी के साथ राज्य को समाज से सावधानी से पृथक् करने की ज़रूरत है। "समाज शब्द को किसी भी मानव-जाति की संगठित इकाई के अंतर्गत विरोधी स्वार्थ-समूहों (Interest groups) के संग्रह के लिये प्रयोग किया जा सकता है, किंतु "जन" (Folk) शब्द ऐसी सांस्कृतिक इकाई के विवरण के लिये अधिक उपयुक्त है। अधिक सही अर्थों में, समाज "एक या अधिक समान अभिरुचियों के निकट केंद्रित समूह है।"[८] दूसरी ओर राज्य प्रभुसत्ता-संपन्न अल्पसंख्या द्वारा संगठित और नियंत्रित मानव-जाति का एक अंश है:

"यदि परिभाषा में केवल प्रत्येक राज्य के सार्वभौम और अनिवार्य लक्षणों को ही सम्मिलित किया जाय, तो आसानी से एक समझौता हो सकता है, क्योंकि ऐसे केवल दो ही (लक्षण) हैं। पहला, अन्यों पर कुछों की प्रभुशक्ति को सुनिश्चित करने के लिये कुछ संस्थाये हैं; दूसरा, प्रभुसत्ता सदैव अल्पसंख्या द्वारा प्रयोग मे लाई जाती है। इसलिये राज्य बहुमत के ऊपर अल्पमत का संगठित नियंत्रण है। यही एकमात्र सही और सार्वभौम परिभाषा है, यह प्रत्येक दशा में उपयुक्त है।"[९]

गुम्पलोविक्ज़ की अवधारणा के अनुसार, राज्य "अचारवान् प्राणी" से बहुत अधिक दूर है। इसे कभी भी न्याय को सुरक्षित करने या सामान्य कल्याण में वृद्धि करने के लिये नही स्थापित किया गया है। समस्त राज्यों के निर्माण की एकमात्र प्रेरणा शोषण के उद्देश्य से प्रभुसत्ता की स्थापना की इच्छा रही है। पुनः नैतिकता के प्रश्नों पर राज्य के स्वरूप और क्रियाओं की चर्चा में बुद्धिमत्ता से विचार नहीं किया जा सकता। राज्य बहुतत्वीय सामाजिक समूहों पर कार्य करनेवाले "अंधे प्राकृतिक नियमो" की एक अवश्यंभावी उपज है। इसलिये यह एक प्राकृतिक घटना है। यह "नैतिकता के ऊपर" नही है, बल्कि इसका आचार से वैसा ही संबंध है जैसा कि भूचाल या तूफान से।

(ग) समूहों के विरोध और उनके अधिकाधिक मिश्रण के रूप में उत्पन्न राज्य का उद्गम और विकास

राज्य के उद्गम और विकास के सिद्धांत द्वारा गुम्पलोविक्ज़ ने सामाजिक और राजनैतिक शास्त्र को अपनी सबसे बड़ी देन दी। यद्यपि कुछ ही व्यक्ति पूर्णतः विजय और विरोध द्वारा राज्यों के उद्गम की सार्वभौमता के विषय में उसके सिद्धांत की

तफ़सीलों या उसके असंयत निष्कर्षों से सहमत होंगे, फिर भी सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि उसके द्वारा अत्यंत उत्साह और स्पष्टता से दिया गया राजनैतिक उद्गमों का विवरण अभी तक प्रस्तुत राज्य के उद्गम की सबसे संतोषजनक और आधारभूत कैफ़ियत है। अन्य किसी अकेले सिद्धांत की अपेक्षा राजनैतिक उद्गमों की समस्या को स्पष्ट करने में संभवतः यह सबसे आगे है और समाजशास्त्रियों में इसे इतनी सामान्य स्वीकृति मिली है कि इसे प्रायः राज्य के उद्गम का समाजशास्त्रीय सिद्धांत कहा जा सकता है।[१०]

और अधिक विश्लेषण के मार्ग-निदशन के लिये राजनैतिक उद्गमों के विषय में गुम्पलोविक्ज़ के सिद्धांत को निम्न प्रकार संक्षेप में दिया जा सकता है : ऐसा कल्पित किया जाना चाहिये कि मानव-जाति का बहुजननिक (Polygenetic) उद्गम है, जिससे अनेक भिन्न और बहुतत्वीय सामाजिक समूह उत्पन्न हुए हैं। ये समूह समस्त व्यक्तियों और समूहों की अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने और अपनी इच्छाओं की संतुष्टि के साधनों को बढ़ाने की स्वाभाविक और अनिवार्य प्रवृत्ति द्वारा एक दूसरे का विरोध करने को प्रेरित हुए। एक समूह की सबसे प्रारंभिक विजयों के परिणामस्वरूप विजित प्रायः सर्वथा नष्ट कर दिये गये किंतु देर या सबेर से यह क़त्लेआम भौतिक और राजनैतिक दासता में परिवर्तित हो गया, और वहां राजनैतिक प्रभुसत्ता और राज्य की संस्थायें उदित हुईं। पहला भोंडा और प्राथमिक राजनैतिक समाज शीघ्र ही विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक वर्गों के उद्गम से, जिनमें से प्रत्येक समाज की कुछ विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति के लिये उत्पन्न हुआ, जटिल हो गया। विरोध की प्रक्रिया जिसने पहले-पहल अंतर्समूहिक विजयों का रूप धारण किया, तद्नुसार राज्य के अंतर्गत विभिन्न वर्गों के विरोध में रूपांतरित हो गई। इस प्रक्रिया ने राज्य के अंतर्गत विभिन्न तत्वों को सामान्य रूप से मिलाया और एकरूप किया और क्रमशः जनसाधारण को राजनैतिक मुक्ति दी। अपनी पूर्णता के प्राप्त होने पर एक लोक राज्य या राष्ट्र—सामाजिक विकासवाद की सर्वोच्च उपज—पूर्णतः उत्पन्न हुआ। अब राज्य के उद्गम और विकास की इस व्याख्या में अंतर्निहित मुख्य अवस्थाओं और प्रक्रियाओं का संक्षेप में विश्लेषण करने की ओर ध्यान दिया जा सकता है।[११]

वार्ड की कार्यप्रणाली से सर्वथा भिन्न, जिसमें कि "अराजकता" (Chaos) की अवधि से पूर्व विद्यमान अवस्थाओं का साहसपूर्ण विश्लेषण किया गया था, गुम्पलोविक्ज़ का मत है कि समाजशास्त्री समाज के मूल उद्गम को नहीं खोज सकता किंतु उसे सामाजिक प्रक्रियाओं को उत्पन्न करने के लिये सामाजिक समूहों की उपस्थिति की कल्पना कर संतुष्ट हो जाना चाहिये। वह बराबर इस स्थिति पर नहीं टिका रहा किंतु उसने बहुजननवाद (Polygenism) के इतने उग्र मत के समर्थन का प्रयत्न किया है कि व्यवहारतः वह बहुजननवादी स्थिति को बेहूदगियों में बदलने में सफल रहा है। संक्षेप में उसका मत है कि "प्रागैतिहासिक" (Prehistoric) अवधि की

विशषता बहुतत्वीय सामाजिक समूहों का उद्गम और विभेदीकरण (Differentiation) थी, जबकि ऐतिहासिक युग ने उनके एकीकरण, सम्मिश्रण (Amalgamation) और सात्मीकरण (Assimilation) को देखा है। फिर भी इस बात की कुछ साक्षी है कि अपने जीवन के अंतिम समय में १९०३ में लेस्टर एफ० वार्ड द्वारा भेंट के परिणामस्वरूप उसने अपने अतिशय उग्र बहुजननवादी सिद्धांतों में संशोधन किया। उस समय उसने यह स्वीकार किया कि मानव-जाति का एक उद्गम भी हो सकता है और वह बाद में अनेक समूहों में बंट गया होगा।

साहचर्य-युक्त मानव-जीवन की समस्त अवधि में कुछ शक्तियों ने समूह की एकता और सुदृढ़ता को बल दिया है जिन्हें समग्ररूप में सामान्य संज्ञा "सहसृष्टि" (Syngenism) से बताया जा सकता है। इसकी उसने यह परिभाषा की है : "वह घटना जिसमें कि यह तथ्य निहित है कि जीवन की साहचर्ययुक्त रीति में सदैव मनुष्यों के निश्चित समूह समान हितों से घनिष्टतया बंधे होने की अनुभूति के कारण प्रभुता स्थापित करने के संघर्ष में एक तत्व के रूप में कार्य करने का प्रयास करते हैं।" [१२] यह विभिन्न कालों और विभिन्न सामाजिक समूहों में भिन्न अनुपातों में भौतिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक शक्तियों का संकुल है। प्राचीनतम समूहों में समरक्तता (Consanguinity) सबसे ताकतवर सामाजिक बंधन थी, किंतु जैसे-जैसे समाज विकसित हुआ आर्थिक और मनोवैज्ञानिक शक्तिया अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण हो गई।

फिर गुम्पलोविक्ज़ कल्पना करता है कि सामाजिक और राजनैतिक विकास के प्रारंभ में बड़ी संख्या मे छोटे सामाजिक समूह या झुंड (Hordes) थे, इनमें से प्रत्येक समरक्तता और आर्थिक हितों की समानता से संयुक्त था और सामाजिक कामाचार (Promiscuity) और समान सामाजिक स्थिति का जीवन व्यतीत करता था। सामाजिक विकासवाद की यह प्रारंभिक अवधि युद्ध और अंतर्सामूहिक विरोध के उद्गम से भग्न हो गई और इस प्रकार सामाजिक संघर्ष की वह शाश्वत प्रक्रिया शुरू हुई जिसका कभी अंत नही हो सकता। बाहरी संबंधों में राज्यों ने निरंतर अधिक विजय करने के प्रयास किये हैं। और प्रत्येक वर्धमान राजनैतिक समाज में सदा बढ़ती हुई संख्या में प्रतियोगी स्वार्थ-समूहों और वर्गों के बीच एक अनवरत संघर्ष चल रहा है। समस्त इतिहास में सामूहिक विजय की आधारभूत प्रेरणा आर्थिक स्थिति के सुधार की इच्छा रही है :

"जैसा कि देखा जा चुका है कि आदिकालीन (Primitive) राजनैतिक संबंधों की स्थापना की प्रेरक शक्ति आर्थिक थी; भौतिक कल्याण अधिक चाहा गया। किंतु यह शक्ति कभी असफल नहीं होती; मनुष्य की अंतरतम प्रकृति इसे निरंतर सक्रिय रखती है, राज्य के स्थापित होने पर उसके विकास को बढ़ावा देती है। किसी भी राजनैतिक क्रांति के कारणों को खोजिये और उसका परिणाम सिद्ध करेगा कि सामाजिक प्रगति सदैव

आर्थिक कारणों से पैदा होती है। वस्तुतः इससे भिन्न हो भी नहीं सकता, चूंकि मनुष्य की भौतिक आवश्यकता उसके व्यवहार की मुख्य प्रेरक है।" [१३]

सामाजिक संघर्ष के सबसे पहले काल में विजित लोगों का वध कर दिया जाता था, किंतु धीरे-धीरे सामाजिक विकास में वह आधारभूत रूपांतरण हुआ जिससे कि क़त्लेआम दासता और आर्थिक शोषण में बदल गया। एक सामाजिक समूह के ऊपर दूसरे सामाजिक समूह के आधिपत्य की इस प्रक्रिया और निर्बलों की इस आधीनता और शोषण में प्रभुसत्ता और राज्य के उद्‌गम को देखा जा सकता है। गुम्पलोविक्ज़ का कहना है कि कोई भी राज्य एक समूह और प्रजातीय स्कंध (Ethnic Stock) द्वारा दूसरों की विजय को छोड़ अन्य किसी रीति से उदित नहीं हुआ है। राज्य सदैव ही बहुतत्वीय नस्ली (Racial) और सामाजिक तत्वों का मिश्रण है। "कोई भी राज्य प्रजातीय बहुतत्वीयता के बिना उत्पन्न नहीं हुआ; उसकी एकता सामाजिक विकास की उपज है।" [१४] प्रारंभिक राज्यों में राजनैतिक संबंध नये मिश्रित समाज की आर्थिक बुनियादों के अनुरूप थे। प्रभुसत्ताप्राप्त अल्पसंख्या विजित बहुसंख्या का शोषण करती थी और इस प्रकार राज्य के दुहरे संगठन थे; एक ओर प्रभुसत्ता का, दूसरी ओर शासित श्रमिकों का :

"इस प्रकार प्रकृति ने मानवीय आवश्यकताओं और भावनाओ में प्रजातीय दृष्टि से मिश्रित राज्यों की नींव रखी। मानवश्रम के आवश्यक होने के कारण अपने संबंधियों और कबीलों से सहानुभूति तथा अपरिचितों के प्रति प्रबल घृणा ने विदेशी युद्धों को जन्म दिया, इसलिये विजय और विजितों के द्वारा आवश्यकताओ की संतुष्टि मूलतः प्रागैतिहासिक काल से लेकर कांगो राज्य की सबसे आखिरी योजना भिन्न रूपो में मानव-इतिहास का महान् विषय रही है।" [१५]

विजेताओं का अल्पमत सबसे पहले अपनी श्रेष्ठ एकता और अनुशासन के कारण विजितों को आधीन करने और बाद में उनका शोषण करने मे समर्थ हुआ। एकता और अनुशासन सामाजिक समूहों की शक्ति के मुख्य स्रोत हैं।

जैसे ही सामूहिक विजय द्वारा प्रथम राजनैतिक संबंध स्थापित हुए और परिणामस्वरूप प्रभुशक्तिप्राप्त अल्पमत द्वारा आधीन बहुमत का शोषण हुआ, सामाजिक संघर्ष की प्रक्रिया समूहों या राज्यों के बाहरी संघर्ष से राज्य के अंतर्गत विद्यमान वर्गों के संघर्ष में रूपांतरित हो गई। आधारभूत आर्थिक प्रेरणा के अतिरिक्त, समूहांतर्गत (Intra-group) विरोध "महत्त्वाकांक्षा की संतुष्टि, यश के प्रेम, वंश के स्वार्थों और विभिन्न अन्य आदर्शों की आवश्यकता और मानवशास्त्रीय दृष्टि से भिन्न गिरोहों के बीच जीवन-मरण का संघर्ष सामाजिक समूहों, वर्गों, विभागों और राजनैतिक दलों का विरोध बन जाता है।" [१६] प्रारंभिकतम वर्ग संघर्ष प्रभुसत्ताप्राप्त और आधीन वर्गों के बीच समायोजन (Adjustment) का संघर्ष था। किंतु इस अपेक्षतया सरल प्रक्रिया में शीघ्र ही विदेशी व्यापारियों के वर्ग के विकास से बाधा पड़ी, जिनका उदय

हमारी जनसंख्या में अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व मध्यमवर्ग (*Bourgeoisie*) के उदय को दर्शाता है। विकासमान राज्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के फलस्वरूप इन शासकों, व्यापारियों और शोषित जनता के प्राथमिक और मौलिक वर्गों में से पुरोहित वर्ग, पेशेवर वर्ग और दस्तकारों जैसे माध्यमिक या आगत (Derived) वर्ग विकसित हुए; "वर्ग-निर्माण की घटनाओं को सार्वभौम नियम (Universal law) के अंतर्गत रखा जा सकता है, प्रत्येक आवश्यकता अपनी संतुष्टि के साधन उत्पन्न करती है। जहां तक कि एक वर्ग एक सामाजिक आवश्यकता को संतुष्ट करने में समर्थ है, यह अपरिहार्य है।" [१७]

जहां तक कि सामाजिक प्रक्रिया राज्य के आंतरिक मामलों तक सीमित थी, वह अब अपने-अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिये विभिन्न वर्गों द्वारा राज्य की नीति के नियंत्रण के लिये एक जटिल और दीर्घ संघर्ष बन गई : "राज्य के घटक भागों, सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष उतना ही अपरिहार्य है जितना कि गिरोहों और राज्यों के बीच। एक-मात्र प्रेरक स्वार्थ है.....सामाजिक संघर्ष का उद्देश्य एक सामाजिक समूह द्वारा अन्य समूहों को हानि पहुँचाकर अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये समुचित संस्थाओं की स्थापना करना है।" [१८]

राज्य के अंदर समूहों और वर्गों के संघर्ष ने इतिहास को गतिशीलता प्रदान की है। प्राचीन समय में प्लीबियन पैट्रीशियन लोगों के विरुद्ध लड़े थे। मध्य युग में राजा पादरियों और कुलीन तथा पौरजन (Burghers) राजाओं के विरुद्ध, और कृषक दोनों के विरुद्ध लड़े थे। आधुनिक काल के प्रारंभ में राजा और मध्यमवर्ग सामंतवाद को कुचलने के लिये एक हो गये, किंतु शीघ्र ही श्रमिक वर्ग (Proletariat) की सहायता से मध्यमवर्ग निरंकुश राजाओं का विरोध कर रहा था। अत में मजदूर मध्यमवर्ग के विरुद्ध उठे और उन्होंने प्रजातंत्र और समाजवाद स्थापित करना चाहा।

राज्य के अंदर इस संघर्ष को जारी रखने के लिये समुचित यंत्रों की आवश्यकता थी। विधान-निर्माण मे भाग लेना सामाजिक और राजनैतिक संघर्ष का सबसे प्रभावशाली साधन पाया गया। यह राज्य के कानून-निर्माण के कार्यों में भाग लेने का अधिकार पाने के लिये मध्यमवर्ग और समाचारपत्रों के बीच लंबे संघर्ष को और साथ ही शासकवर्गों द्वारा दृढ़तापूर्वक अन्यों को इस विशेषाधिकार से वंचित करने के प्रयत्नों को बताता है। मूल विजेताओं से निर्मित शासक जाति ने आज्ञापालन और वफ़ादारी की आदत की सहायता से जनसाधारण के श्रम पर अपना नियंत्रण रखा। मध्यमवर्ग ने भौतिक वस्तुओं पर अपने नियंत्रण द्वारा, जिसके लिये कि वह श्रम या उसके समकक्ष वस्तु की मांग कर सकता था, राजनैतिक शक्ति प्राप्त की। पुरोहितवर्ग मनुष्यों के मन और इस प्रकार उनकी सेवाओं पर नियंत्रण द्वारा राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने में समर्थ हुआ। शोषित जनसाधारण, जिनकी सेवायें समस्त राजनैतिक शक्ति का आधार थीं, किन्हीं भी नागरिक अधिकारों के उपयोग से वंचित रहे, जब तक कि उन्होंने राजनैतिक स्वतंत्रता का लंबा और कठोर संघर्ष नहीं किया।

क़ानूनों के निर्माण में हिस्सा लेने और राज्य के अंदर वर्ग-संघर्ष जारी रखने की प्रक्रिया में प्रतिनिध्यात्मक सरकार के उदय के पश्चात् राजनैतिक दल सबसे लोकप्रिय साधन बन गये। गुम्पलोविक्ज़ उन पहले समाजशास्त्रियों में से था जिसने कि राजनैतिक दल को एक "स्वार्थ-समूह" (Interest group) कल्पित किया। यह राजनैतिक दलों के सिद्धांत को एक उल्लेखनीय समाजशास्त्रीय देन थी। उसका मत था कि एक दल में जितने अधिक संख्या में पारस्परिक स्वार्थ होंगे वह दल उतना ही शक्तिशाली और स्थायी होगा। सामान्यतः भौतिक स्वार्थ दल के प्रबलतम बंधन हैं, किंतु एक-सी परंपरायें और विश्वास ही दलीय संगठन और कार्यों को सुदृढ़ करते हैं। जैसा कि हम पहले निर्देश कर चुके हैं, गुम्पलोविक्ज़ का विश्वास था कि दलों की सभाओं और सम्मेलनों पर चुस्त नेताओं की पूर्ण प्रभुता होती है। इस प्रकार उसने रॉबर्ट मिकेल्स के राजनैतिक दलों के अल्पजनतंत्रीय (Oligarchical) स्वरूप की अवश्यंभाविता के विचार और प्रोफ़ेसर गिडिंग्स की "आदितंत्र" (Protocracy) की धारणा की पूर्वोक्ति की।

शासक जाति द्वारा प्रदान की गई पहली रियायतों ने निम्न वर्गों में अधिकारों के विचार को जन्म दिया। मध्यमवर्ग ने सबसे पहले "स्वाधीनता और समता के सार्वभौम मानवीय अधिकारों" की अपील की। उसने जनसाधारण के हितों को बढ़ाने का ढोंग किया और इस प्रकार उनका समर्थन प्राप्त किया। यद्यपि जनसाधारण उस सीमा तक पुरस्कार न पा सके जिस सीमा तक कि मध्यमवर्ग ने विश्वास दिलाया था, फिर भी उन्होंने राजनैतिक स्वतंत्रता के संघर्ष को जारी रखने की पद्धतियों में अनुभव प्राप्त किया और देर या सबेर से वे राजनैतिक कार्यों को करने और राजनैतिक सत्ता में हाथ बंटाने में सफल हो सके। जब शासक जाति को बाहर के शत्रुओं का भय हुआ और अपनी प्रजाति की वफादारी और एकता के लिये उन्हें संतुष्ट करने की आवश्यकता हुई, राजनैतिक स्वतंत्रता की प्रक्रिया बहुत तेज़ और सुविधाजनक हो गई। गुम्पलोविक्ज़ कहता है कि राजनैतिक अधिकार आध्यात्मिक (Metaphysical) इकाइयां नहीं हैं। बल्कि केवल "असमान तत्वों के साथ-साथ रहने के लिये बनाये गये नियम और व्यवहार द्वारा नियमों और सिद्धांतों में परिवर्तित विधान (Regulations) हैं।"[१९] वे किसी राजनैतिक समाज में एक समय पर विद्यमान वास्तविक संबंधों के क़ानूनी वक्तव्य मात्र हैं। इसलिये जन्मजात या आध्यात्मिक "प्राकृतिक अधिकारों" के सिद्धांत का कोई आधार नहीं है।"

"अहस्तांतरणीय 'मानवीय अधिकारों' का पूर्ववयव (Premise) मानव की सबसे अनुचित आत्म-स्तुति और मानव-जीवन के मूल्य को बढ़ाकर आंकने तथा राज्य के एकमात्र संभव आधार की पूर्णतः भ्रांत धारणा पर टिका हुआ है।[२०]..... अधिकार न्याय पर आधारित नहीं हैं। इसके विपरीत, न्याय केवल राज्य में वस्तुतः विद्यमान अधिकारों से उत्पन्न होता है.... यह राजनैतिक अधिकारों का सरल प्रविवेक (Abstraction) है।"[२१]

राजनैतिक और आर्थिक विकास की इस प्रक्रिया के समानांतर और इससे तथा इस पर निरंतर अंतर्क्रिया करनेवाली सामाजिक एकता स्थापित करनेवाली मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्रक्रियाएं हैं। सात्मीकरण (Assimilation) या मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें सबसे अधिक तेज़ी से कार्य करती हैं। पहला कदम विजेताओं की भाषा को अपनाना है। बाद में उनके धर्म, रीतियों और प्रथाओं को स्वीकार किया जाता है और एक सांस्कृतिक एकता का निर्माण किया जाता है। अंत में अंतर्जातीय विवाह या सम्मिश्रण (Amalgamation) की भौतिक प्रक्रिया होती है और एक प्रजातीय (Ethnic) एकता उत्पन्न होती है। एकीकृत और एकतत्वीय सामाजिक समूह लोक राज्य या राष्ट्र सामाजिक और राजनैतिक विकासवाद के अंतिम फल का निर्माण करता है।

राजनैतिक और सामाजिक विकासवाद के जिस सामान्य विवरण का हमने ऊपर संक्षेप किया है, वह वस्तुतः अत्यंत सरल है, चूंकि बड़ा और अति विकसित राज्य बहुत कम या कभी भी एक विजय का परिणाम नहीं होता, बल्कि सामान्यतः वह विजय और आंशिक या पूर्ण सात्मीकरण और सम्मिश्रण की कई प्रक्रिया का मिश्रित परिणाम होता है। एक एकीकृत लोक राज्य बहुत कम ही पर्याप्त समय तक ऐसा रहता है, चूंकि गुम्पलोविक्ज़ मैकियाविली, ट्रीटस्के और अन्यों के समान यह दावा करता है कि राज्य में बढ़ने या गिरने की एक अपरिहार्य प्रवृत्ति है। नई विजयें बहुतत्वीय तत्वों के अन्य वर्ग को लाती हैं और जिस प्रक्रिया की रूपरेखा ऊपर दी गई है वह पुनः प्रारंभ होती है। राज्य के संभव या इच्छित विस्तार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। राज्य की बढ़ने की स्वाभाविक प्रवृत्ति तब तक क़ायम रहती है जब तक कि बाह्य विरोध या आंतरिक विशृंखलता से उसकी शक्ति ही नष्ट न हो जाय। जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया था, गुम्पलोविक्ज़ मानता है कि विस्तार की प्रक्रिया में राज्य के व्यवहार में आचार के विचारों से कोई संबंध नहीं होता। राज्य प्रकृति की उपज है और वह प्रकृति के क़ानूनों से शासित और संचालित है और इसलिये वह आचारशास्त्रीय निर्णय के अंतर्गत नहीं आता। वस्तुतः यह पुराने मैकियाविलियन सिद्धांत की, जिसे मिथ्या–डार्विनियन समाजशास्त्र से कुछ सजा दिया गया है, पुनरावृत्ति है।

(घ) राज्य का कार्य और सामाजिक प्रगति

गुम्पलोविक्ज़ की सामाजिक प्रगति की नैराश्यपूर्ण अस्वीकृति और सामाजिक नियतिवाद (Determinism) के सिद्धांत का विश्लेषण किया जा चुका है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की अवधारणा किसी प्रकार के सामाजिक उपक्रम (Initiative) को स्थान नहीं देती; और यद्यपि गुम्पलोविक्ज़ ने अधिकांश मार्क्सवादी पूर्ववयवों को अपनाया है उसने सामूहिक क्रिया द्वारा समाज और राज्य के रूपांतरण की संभावना के विषय में किसी भी समाजवादी निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया। समाज और राज्य उन प्राकृतिक शक्तियों की उपज हैं जो समस्त मानवीय निर्देशन से स्वतंत्र हैं। वे "अंधे

प्राकृतिक क़ानूनों" से विकसित होते हैं जिन्हें बदलने में मानव जाति असहाय है। इसके अतिरिक्त उसकी समाज-विकास की चक्रीय प्रकृति की अवधारणा किसी भी ऐसे विचार, जैसे कि ज्ञान की वृद्धि और "सामूहिक निर्देशन" के विकास द्वारा मानव और समाज की अनंत पूर्णता के विचार, को कोई स्थान नहीं देती। समाज और व्यक्ति दोनों को अपने भाग्य पर संतोष करना चाहिये, क्योंकि वह उसे बदलने में असमर्थ है। वस्तुतः गुम्पलोविक्ज़ का दावा है कि उसके समाजशास्त्र का व्यावहारिक मूल्य यह है कि यह समाज सुधार की निरर्थक काल्पनिक योजनाओं में मानवशक्ति के विनाश को रोकेगा। फिर भी यह मानने का कारण है कि वार्ड की १९०३ में गुम्पलोविक्ज़ से उपरोक्त भेंट का गुम्पलोविक्ज़ पर कुछ प्रभाव पड़ा और वह कुछ अंशों में सफल संस्थागत विकास और योग्य सरकारी नियोजन की संभावना को स्वीकार करने के लिये प्रेरित हुआ।[२२]

३. गुम्पलोविक्ज की सामाजिक विकासवाद की व्याख्या का प्रभाव और ऐतिहासिक महत्त्व

समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र तथा वर्तमान यूरोपीय इतिहास में सैनिकवाद और प्रजातीय अहंकार के विकास के लिये गुम्पलोविक्ज़ का महत्त्व आंकते समय उसकी प्रणाली में से स्थायी मूल्य के तत्वों को उन तत्वों से, जोकि स्वयं उसी के गुट के समाज-शास्त्रियों द्वारा त्यागे जा चुके हैं, पृथक् करना आवश्यक है।

यद्यपि मानवशास्त्र के कुछ ही अधिकारी विद्वान् आज मानव-प्रजाति की विभिन्न शाखाओं के संबंध में गुम्पलोविक्ज़ के बहुजननवादी (Polygenetic) उद्गम के कट्टर सिद्धांत को स्वीकार करेंगे, फिर भी सामान्यतः वे इस पर सहमत हैं कि उसकी प्रमुख देन को राज्य और प्रभुसत्ता (Sovereignty) के उद्गम के सिद्धांत की सिलसिलेवार व्याख्या के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, हालांकि अधिकांश समालोचक यह मानेंगे कि उसने शांतिपूर्ण और सहकारी कारकों के महत्त्व को, जिनका कि इस प्रक्रिया में कुछ योगदान था, बहुत कम आँका। उसकी अन्य महत्त्वपूर्ण और स्थायी देन एक राज्य के अंदर समान स्वार्थ और नीति के सिद्धांत पर निर्मित विभिन्न समूहों और वर्गों के बीच अनवरत संघर्ष और निरंतर समायोजन (Adjustment) और पुनर्समायोजन की प्रक्रिया के रूप में राजनैतिक क्रियाओं का विश्लेषण है। एक स्वार्थ-समूह (Interest-group) के रूप में राजनैतिक दल की अवधारणा की पुनरावृत्ति और स्पष्टीकरण पिछले पचास वर्षों में राजनीतिशास्त्र द्वारा व्याख्या की गई संभवतः सबसे समृद्ध धारणा के विश्लेषण में एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। क़ानून और संसदीय व्यवहार में समुचित रीति से स्वीकृत और समाविष्ट होने पर अन्य किसी बात की अपेक्षा इसने राजनैतिक सरकार को सबसे अधिक बोधगम्यता, औचित्य और स्पष्टता प्रदान की। ड्यूइट, दुरखीम और बिनौयत जैसे फ़्रेंच लेखकों और विशेषकर आस्ट्रियन समाजशास्त्री रैट्जनहोफ़र ने इस विचार को स्वीकार किया और उसे बढ़ाया। प्रोफ़ेसर एल्बियन डब्ल्यू० स्मॉल

ने अपनी आलोचनात्मक व्याख्या और विश्लेषण द्वारा अपने अमेरिकन पाठकों को रैट्जनहोफ़र की प्रणाली की व्याख्या की और ए० एफ़० बेंटले ने अमेरिकन सरकार के कार्य के विश्लेषण में इसका प्रयोग किया जिसे कि कालहाउन की 'सरकार पर टीका' *Disquisition on Government* [२३] के प्रकाशन के बाद किसी अमेरिकन लेखक द्वारा सरकार की अधिक बुनियादी प्रक्रियाओं के विश्लेषण में निस्संदेह सबसे मूल्यवान् देन समझा जाता है ।

दुर्भाग्य से गुम्पलोविक्ज़ के विनाशात्मक पहलू कम और अस्पष्ट नहीं हैं । गण्य-मान्य समाजशास्त्रियों में वह सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्या में डार्विन के भ्रांत और विकृत प्राणिशास्त्र के असंशोधित प्रयोग का सबसे उग्र प्रवक्ता था और वह राज-नैतिक भाग्यवाद (Fatalism) या "अंधे प्राकृतिक क़ानूनों" के सामने मानवीय वैधानिक क्रियाओं की निरर्थकता का भी, जो मानव-कर्म को व्यर्थ बना देती है, उतना ही प्रबल समर्थक था । राजनैतिक विकास के प्रमुख साधन और राष्ट्रीय संस्कृति के दावों के एकमात्र विश्वसनीय निर्णायक के रूप में युद्ध के चित्रण पर सैनिकवादी उत्साह से झपटे और गुम्पलोविक्ज़ की तुलना में कहीं कम वैज्ञानिक और वस्तुगत लेखकों ने, जैसे कि जर्मनी मे मोल्टके और बर्नहार्डी, इंग्लैंड में जे० ए० क्रैम्ब और लार्ड रॉबर्टस्, फ़्रांस मे देरूलेद और अमेरिका मे मैहन ने इसे अपने राष्ट्र, वर्ग और दल के स्वार्थो की सिद्धि के लिये एक विश्वसनीय मिथ्या वैज्ञानिक वेष के रूप में प्रयोग किया। इस प्रकार के सिद्धांतों का मन की उस स्थिति को उत्पन्न करने में, जिसने कि १९१४ और १९३९ की दु:खांत घटनाओं को शीघ्र लाने में सहायता की, सामान्यत: स्वीकार किया जाता है, और गुम्पलोविक्ज़ को अपने उत्तरदायित्व के भाग का भार उठाना चाहिये । इसके अतिरिक्त, उसकी यह बारंबार घोषणा कि एक प्राकृतिक घटना की भाति नैतिकता राज्य के समस्त कर्त्तव्यों से मुक्त है, एक अनुकूल सिद्धांत था जिसेकि जर्मनी मे और अन्यत्र *Machtpolitik* और *Realpolitik* व्याख्याताओं ने आगे बढ़ाया ।

गुम्पलोविक्ज के समय से अब तक समूह-संघर्ष के सिद्धांत की प्रगति

गुम्पलोविक्ज़ की प्रणाली की सबसे अच्छी समालोचना के लिये संभवत: गुम्पलोविक्ज़ के समय से, जबकि उसने अपने सिद्धांतों को *Rassenkampf* और *Grundriss* में प्रस्तुत किया, अब तक तथाकथित "संघर्ष संप्रदाय" (Conflict School) के सदस्यों के सिद्धांतों के प्रकाश में उसकी परीक्षा होगी। इस संप्रदाय का अन्य कोई प्रमुख सैद्धांतिक प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक विकासवाद के बीच उसकी नग्न समानता को नहीं मानता था या उसके इस विचार को कि नस्लों राज्यों और सामाजिक समूहों को बिना रुके या हल्का किये संघर्ष जारी रखना चाहिये पसंद, नहीं करता । उनमें से सभी यह युक्ति देते हैं कि क्रमश: संघर्ष भोंडे प्रारंभिक भौतिक स्तर से उच्च स्तर की प्रतियोगिता में रूपांतरित हो जाता है या उनका कहना है कि अंतत: विरोध की समाप्ति अनुकूलन (Adaptation) और सहयोग में होती है । लोरिया, वैकारो और ऑपनहाइमर ने समूहों के बीच प्राचीन

शारीरिक संघर्ष की प्रवृत्ति को एक आर्थिक संघर्ष में रूपांतरित हो जाने पर ज़ोर दिया है।[३४] नोविकोव ने बताया कि सामाजिक विकासवाद का अध्ययन इस तथ्य को प्रकट करता है कि समूहों के मिलने और संगठित होने तथा शारीरिक संघर्ष के स्थान पर बौद्धिक प्रतियोगिता द्वारा आदिम शारीरिक संघर्ष क्रमशः घटता जाता है।[३५] तार्दे और सिघेल ने अत्यंत बुद्धिमत्ता के साथ मानसिक संघर्षों और समायोजनों के इस क्षेत्र का अन्वेषण किया है।[३६] डि ग्रीफ़ के अनुसार, सामाजिक विकासवाद क्रमशः अधिक आदिमयुगों को क्रूर शक्ति के स्थान पर संविदा (Contract) और सहमति द्वारा क्रमिक प्रतिस्थापन की प्रक्रिया है।[३७] स्पेंसर और तार्दे, किंतु विशेष रूप से वैकारों ने इस थीसिस के आधार पर कि संघर्ष अंततोगत्वा एक संतुलन (Equilibrium) या अनुकूलन में समाप्त होता है, समाजशास्त्र की प्रणालियों का निर्माण किया है।[३८] अंत में रैट्जनहोफ़र और स्मॉल ने इस पर ज़ोर दिया है कि समाजीकरण (Socialization) द्वारा संघर्ष निरंतर मंद पड़ जाता है और सहयोग में रूपांतरित हो जाता है तथा प्रारंभिक समय के विजय-राज्य (Conquest state) का स्थान आधुनिक युग का "संस्कृति-राज्य" लेलेता है।[३९]

इसलिये "संघर्ष" सिद्धांत के अनुयायी भी सामान्यतः इस पर सहमत हैं कि संघर्ष का मेल और सहयोग में रूपांतरण सामाजिक विकासवाद का परिणाम दीखता है और वह इस धारणा का समर्थन करेंगे कि युद्ध के बाद अंत में एक अंतर्राष्ट्रीय समायोजन होना चाहिये जो कुछ समय में शारीरिक युद्ध की भोंडी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति का दमन कर सके।

टिप्पणियां

१. १८८२ के बाद ग्राज़ विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर। गुम्पलोविक्ज़ के जीवन और कृतियों की संक्षिप्त रूपरेखा *American Journal of Sociology*, XV (November 1909), 405–13 में मिलती है।

२. *The Outlines of Sociology*, अनुवादक, F. W. Moore (Philadelphia, 1899), pp. 82-83.

३. *Ibid.*, p. 83.

४. *Ibid.*, p. 157. निम्न अवतरण भी मिलाइये : "व्यक्तिवादी मनोविज्ञान की सबसे बड़ी भूल यह कल्पना है कि मनुष्य विचार करता है.....यह भूल है। जैसे वह शरीर में स्वनिर्मित नहीं है वैसे ही मन में भी नहीं है। उसके मन और विचार उसके सामाजिक माध्यम, जिनसे वह पैदा हुआ और जिसमें वह रहता है उसके सामाजिक तत्व की उपज हैं" (*ibid.*, p. 156, 760)। या पुनः, समाजशास्त्र अपने अध्ययन की पद्धति की वेदी पर मनुष्य की बलि देता है। वह सृष्टि का स्वामी है, जैसा कि इतिहासकार सोचते हैं, ऐतिहासिक घटनाओं का कर्ता है, जो एक राजा या मंत्री की

भांति अपनी इच्छानुसार लोगों के भाग्य का संचालन करता है.....समाजशास्त्र में एक निरर्थक चिन्ह में विलीन हो जाता है। इतिहासकारों के चित्रण से सर्वथा विपरीत, समाजशास्त्री के दृष्टिकोण से सबसे शक्तिशाली राजनीतिज्ञ भी सामाजिक समूह के अदृश्य किंतु सर्वशक्तिमान् हाथों में एक अंधा औज़ार है, जो स्वयं प्रकृति के अनवरुद्ध नियम का पालन करता है (*Soziologie und Politik* (*Leipzig*, 1892), p. 54; जी० एल० बर द्वारा *American Historical Review*, January, 1917, p. 269 में उद्धृत और अनूदित)।

मानव वैयक्तिकता और स्वाधीनता के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के रूप में इतिहासकारों और राजनैतिक वैज्ञानिकों द्वारा गुम्पलोविक्ज का चुनाव ऐतिहासिक पद्धतिशास्त्र और निश्चितता के उदाहरण के रूप में समाजशास्त्रियों द्वारा फ़्राउड और लामारतीन के चनाव से पूर्णतः मिलता है। स्पेंसर, नोवीकोव और डब्ल्यू० जी० सुमनर जैसे समाजशास्त्रियों का अभाव नहीं है जिन्होंने अतिशय व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की वकालत की, और जो व्यक्ति गुम्पलोविक्ज की अतिशयोक्तियों से घबरा गये हों वे प्रोफ़ेसर सी० एच० कूले की रचनाओं के अध्ययन से बहुत संतोष और आश्वासन पा सकते हैं। उसने निस्संदेह व्यक्ति और समाज के अंतर्संबंधों की किसी भी समाजशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक लेखक द्वारा प्रस्तुत सर्वश्रेष्ठ व्याख्या की है। फिर भी गुम्पलोविक्ज का एकतरफ़ा सिद्धांत संभवतः सत्य के उतना ही निकट है जितना कि फ़िश्टे के विरोधी विचार, जिसकी भावना ने अंशतः आधुनिक वैज्ञानिक इतिहासवृत्त के संस्थापकों को अनुप्रेरित किया था।

४. क *Sozialphilosophie im Umriss* (*Graz*, 1900), p. 124.

५. समाजशास्त्र और राजनैतिक सिद्धांतों पर गुम्पलोविक्ज की विपुल रचनायें हैं। किसी अन्य समाजशास्त्री ने राजनैतिक और क़ानूनी सिद्धांतों का इतना अधिक खुलासा नहीं दिया। समूहों और वर्गों के संघर्ष पर केंद्रित उसके बुनियादी सिद्धांत १८७५ और १९१० के बीच लगभग एक दर्जन ग्रंथों और अनेक निबंधों में प्रकाशित हुए, और वह सात से कम पृथक् पुस्तकों की निश्चित सामग्री नहीं है। विस्तार के अतिरिक्त उसने अपनी पहली रचनाओं में व्यक्त सिद्धांतों में कुछ नहीं जोड़ा, उन्हीं की पुनरावृत्ति और पुनरोक्ति पाठक को प्रभावित करने की अपेक्षा उसे और उबा देती है। "समूह-संघर्ष" के सिद्धांत का उसका सबसे पहला वक्तव्य *Rasse und Staat* (Vienna, 1875) में प्रकाशित हुआ। इस सिद्धांत का प्रथम क्रमबद्ध सूत्रीकरण *Der Rassenkampf* (Innsbruck, 1883) में हुआ। इस सिद्धांत की और अधिक व्याख्या की गई और उसे क्रमबद्ध किया गया और उसे *Grundriss der Sociologie* (Vienna, 1885), *The Outlines of Sociology* नाम से अनूदित, में समाजशास्त्रीय सिद्धांत का एक संगत अंश बनाया गया। यह रचना उसके समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का सर्वोत्तम वक्तव्य है। *Soziologie und Politik* और *Die soziologische Startsidee*

(Innsbruck, 1902) में बिना कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन या विस्तार किये उसके समाजशास्त्रीय सिद्धांत का राजनैतिक संस्थाओं पर प्रयोग किया गया। *Sozial-philosophie im Umriss* में जो उसकी मृत्यु के पश्चात् १९१० में प्रकाशित हुई उसकी, संपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रणाली को सुविधापूर्वक संक्षेप में दिया है। उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त, गुम्पलोविक्ज़ की प्रमुख रचनायें थीं : *Philosophisches Staatrecht* (1877); *Verwaltungslehre* (1882); *Das osterreichische Staatsrecht* (1891); *Rechtstaat und Socialismus* (1881), *Soziologische Aussatze* (1889); *Geschichte der Staatstheorien* (1905); *Das allgemeine Staatsrecht* (1907).

६. *Outlines of Sociology*, p. 90.

७. *Ibid.*, p. 116.

८. *Ibid.*, pp. 136–38.

९. *Ibid.*, p. 118; मिलाइये La Luttee des races (*Der Rassen-fampf*, Charles Baye द्वारा संशोधित संस्करण का अनुवाद (Paris, 1893) pp. 218, 222–23.

१०. लेस्टर एफ़० वार्ड द्वारा इस सिद्धांत का एक उत्साहयुक्त समर्थन *American Journal of Sociology*, VIII (May, 1902), 762. F. H. Giddings, *Principles of Sociology*, p. 316; और E. C. Hayes, *An Intorduction to the Study of Sociology* (Philadelphia, 1915) pp. 538 ff. में मिलता है। Jacques Novicow ने *War and Its Alleged Benefits* (New York, 1911) और *La Critique du Darwinisme Social* (Paris) इसकी कटु आलोचना की है और उसे सर्वथा अस्वीकार किया है। अधिकांश समाजशास्त्री और इतिहासकार भी राजनैतिक उद्गमों के उसके सिद्धांतों के आवश्यक तत्वों के बजाय उसके निगमनात्मक निष्कर्षों को त्यागते हैं।

११. अगला विश्लेषण *Der Rassenkampf*, Book, IV और *Grundriss*, Part III में राज्य के उद्गम पर प्राप्त गुम्पलोविक्ज़ के सर्वाधिक विस्तृत विवेचन पर आधारित है। इसी सिद्धांत के कुछ संक्षिप्त रूपांतर *Soziologie und Politik*, pp. 72–78; *Die soziologische, Staatsidee*, pp. 88–134; और *Sozialphilosophie im Umriss*, pp. 58–68 में मिलते हैं।

१२. "Le phenomene consistant en ce que toujours, dans la vie sociale, certains groupes d'hommes, sentant qu'ils sons entroite-ment relies entre eux, cherchent a agir comme un seul facteur dans la lutte pour la domination" (*La Lutte des races*, pp. 241-42).

१३. *Outlines of Sociology*, p. 123. यद्यपि गुम्पलोविक्ज़ इतिहास की आर्थिक व्याख्या के मार्क्सवादी सिद्धांत का प्रबल समर्थक था, फिर भी उसने समाज-सुधार में प्रमुख कारक के रूप में राज्य-क्रिया के समाजवादी मत का त्याग किया।

१४. *Ibid.*, pp. 119. अपनी रचना के अन्य भाग के लिये गुम्पलोविक्ज़ ने कुछ नाराज़ी से यह स्वीकार किया है कि यह संभव है कि कुछ अत्यंत विरल उदाहरणों में राज्य श्रम के शांतिपूर्ण विभाजन और वर्गों के विभेदीकरण से उत्पन्न हुआ हो; किंतु उसका आग्रह है कि ऐसे उदाहरणों में भी, विभिन्न हितों के संघर्ष का उसका परवर्ती इतिहास वैसा ही होगा जैसा कि समूह-संघर्ष से उत्पन्न होने पर होता है (*ibid.*, p. 136).।

१५. *Ibid.*, p. 121.

१६. *Ibid.*, pp. 123-24.

१७. *Ibid.*, p. 132.

१८. *Ibid.*, p. 145 ; pp. 125, 132, 144–46.

१९. *Ibid.*, p. 178.

२०. *Ibid.*, p. 180.

२१. *Ibid.*, p. 181.

२२. *La Lutte des races*, pp. 350–52. गुम्पलोविक्ज़ और वार्ड के बीच हुए रोचक वार्तालाप के विवरण के लिये, जिसमे गुम्पलोविक्ज़ ने ज़ाहिरा तौर पर वार्ड की साामाजिक प्रगति और "सामूहिक निर्देशन" (Telesis) को कुछ अंश में स्वीकार किया, देखिये *American Journal of Sociology*, XI (March, 1905), 647–51.

२३. A. F. Bentley, *The Process of Government* (Chicago 1908).

२४. A. Loria, *The Economic Foundations of Society* (New York, 1899) ; M. A. Vaccaro, *Les Bases sociologiques du droit et de l'etat* (Paris, 1898) ; F. Oppenheimer, *The State* (Indianapolis, 1914).

२५. J. Novicow, *Les Luttes entre societes humaines* (Paris, 1893) ; *La Federation de l'Europe* (Paris, 1901).

२६. G. Tarde, *L'Opposition universelle* (Paris, 1897); *Social Laws* (New York) ; S. Sighele, *Psychologie des sectes* (Paris, 1898).

२७. G. de Geef, *Introduction a la sociologie* (2 vols. ; Paris, 1911).

२८. H. Spencer, *First Priniciples*, Part II ; G. Tarde, *La Logique sociale* (Paris, 1895); Vaccaro, *op. cit.* विशेषकर Intod., pp. v–vii, और 78 ff. यह खेद का विषय है कि एल० एम० ब्रिस्टल ने अपनी उपयोगी पुस्तक

Social Adaptation (Cambridge, 1915) में वैकारो की विवेचना को सम्मिलित नहीं किया है, जिसने कि अन्य किसी समाजशास्त्री की तुलना में एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में "अनुकूलन" की अवधारणा को विकसित करने में सबसे अधिक कार्य किया था।

२९. G. Ratzenhofer, *Wesen und Zweck der Politik* (3 vols.; Loipzig, 1893); और *Die sociologische Erkenntnis* (Leipzig 1898); A. W. Small, *General Sociology* (Chicago, 1905), pp. 190 ff.

अध्याय पांच

फर्डीनैंड टॉनीज की समाजशास्त्रीय प्रणाली : "समुदाय" और "समाज"

रुडौल्फ हैबर्ले

ल्यूज्याना यूनिवर्सिटी

टॉनीज के जीवन और शैक्षणिक जीवन से संबंधित मुख्य तथ्य

फर्डीनैंड टॉनीज (Ferdinand Tonnies) का जन्म स्लैसविग-हाल्सटाइन के पश्चिमी तट पर ईडर्सटेट के एक फार्म पर १८५५ में हुआ था। उसके पितृपक्ष के पूर्वज मूलतः डच प्रवासी थे, और उस प्रदेश में दो सौ वर्ष से भी अधिक से खेती करते थे। फ़िजियन प्रदेश में, जहां कि भूमिदास प्रथा विकसित नहीं हुई थी और जहां प्राचीन जर्मन ग्राम-समुदाय के अनेक तत्व संरक्षित थे, टॉनियों का परिवार प्रमुख था। उसकी मां पूर्वी हाल्सटाइन के एक ग्राम-परिवार से आई थीं, जिसने कि इस देश को अनेक लूथरियन पादरी और अनेक पेशों मे प्रतिष्ठित व्यक्ति दिये थे।

१८६४ में यह परिवार हुसुम के छोटे नगर में चला गया। यहां पर तरुण टॉनीज ने अपने से आयु मे कही बड़े कवि थ्योडर स्टॉर्म से मैत्री की, जोकि उसके जीवन में एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव बन गई।[१] वह १८७२ में जिम्नेजियम से स्नातक बना। अभी उसकी आयु सत्रह वर्ष की भी न थी, उसने जेना विश्वविद्यालय और बाद में लिपजिग, बौन, बर्लिन और ट्यूबिनजन में, जहां कि उसने १८७७ में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि प्राप्त की, शास्त्रीय भाषाशास्त्र और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। उसके बाद से टॉनीज ने अपनी सहज बौद्धिक अभिरुचि का अनुसरण करते हुए अपने को सामाजिक दर्शन और समाजविज्ञानों में लगा दिया। उसकी बाद की रचनाओं में भी भाषाशास्त्रीय प्रशिक्षण का प्रभाव पर्याप्त द्रष्टव्य है।

उनमें से जिन्होंने कि शिक्षा-काल में टॉनीज के ऊपर अपनी सर्वाधिक अमिट छाप छोड़ी थी, उसके देशवासी प्रसिद्ध दार्शनिक फ़्रेडरिक पॉल्सन, अर्थशास्त्री एडौल्फ वैगनर और समाजमनोवैज्ञानिक विलहेल्म वुंट थे।[२] वैनगर ने राज्य द्वारा सामाजिक-जीवन के अधिकाधिक नियमन के विचार द्वारा टॉनीज के चिंतन को राज्य-समाजवाद की दिशा में प्रभावित किया। वुंट की तर्कसम्मत इच्छा (*Zweckwille*) और सहज

---

*American Sociological Review Vol. II, No. I (Feb, 1937) का संशोधित और परिवर्धित पुनःमुद्रण।

इच्छा (*Triebwille*) के साध्य (Theorem) ने स्पष्ट ही उसके विचारों पर अपनी छाप छोड़ी।

१८७७ तक टॉनीज टॉमस हॉब्स में, जोकि राज्य की सर्वशक्तिशालिता का सबसे स्पष्ट प्रवक्ता था, अभिरुचि लेने लगा था।[३] उसके हॉब्स के अध्ययन ने उसे राजनैतिक दर्शन और प्राकृतिक कानून तथा हाल के समाजविज्ञानों के क्षेत्रों में विस्तृत अध्ययन को प्रेरित किया। उसने जर्मन और अंग्रेजी साहित्य का पूर्ण ज्ञान और कुछ कम अंशों में फ्रेंच साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया। व्यक्तिगत अध्ययन के इन प्रारंभिक वर्षों में उसका मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक कानून के बुद्धिपरक (Rational) संप्रदाय और उसके विरोधी ऐतिहासिक और रोमांटिक सिद्धांतों के सही अर्थों को समझना था। उसे ऐसा लगा कि "विचार के समस्त अबुद्धिसंगत और अल्पबुद्धिसंगत रूप.... वह केवल अनुचित ही न थे किंतु उनका विशिष्ट अर्थ था जोकि अंततः मानव इच्छा (Will) की उपज था।"[४] उसके लिये सामाजिक सिद्धांत स्वयमेव समाजशास्त्रीय न्यास (Data), सामाजिक गति की अभिव्यक्ति और वास्तविक सामाजिक अवस्थाओं के प्रतिबिंब थे। यह उसे स्पष्ट हो गया कि साम्यवाद और समाजवाद जैसे विचारों को कल्पनामात्र सुविचारित कल्पित लोक (Utopia) समझकर, वास्तविक सामाजिक जीवन के रूप समझना चाहिये। उसका विश्वास था कि हाल के जातिशास्त्रीय (Ethnological) अध्ययनों ने आदिकालीन साम्यवाद की सत्ता को सिद्ध कर दिया है और मानव जाति के इतिहास को टॉनीज मौलिक सरल साम्यवाद से व्यक्तिवाद की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरकर और अंततः राज्य और अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद की ओर अभियान समझने लगा था।[५] यह विचार १८८७ में अब उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'समुदाय और समाज'—*Gemeinschaft und Gesellschaft* में प्रस्तुत किये गये थे।

इससे छः वर्ष पहले टॉनीज कील विश्वविद्यालय मे लेक्चरर बन गया था, जिससे कि वह १९३३ तक संयुक्त रहा जब तक कि राष्ट्रीय समाजवादियों ने उसे हटा नहीं दिया। यद्यपि कील विश्वविद्यालय से टॉनीज का संबंध आधी शताब्दी से भी अधिक काल तक रहा, वहां वह एक अर्थ में सदा ही एक बाहरी व्यक्ति रहा। केवल आठ वर्षों तक ही जिनमें कि छः वर्ष युद्ध के थे, जबकि विश्वविद्यालय प्रायः खाली थे, टॉनीज पूर्ण प्रोफेसर के पद पर रहा। इससे यद्यपि तरुण पीढ़ी पर उसका कम प्रभाव रहा, किंतु इससे उसे काम करने का अवकाश और यात्रा की स्वाधीनता मिली और उसने सहर्ष लंबी यात्रायें कीं।[६]

टॉनीज यद्यपि स्वभाव से अनुदार था, फिर भी उसने अपने समय के सभी प्रगतिशील आंदोलनों में भाग लिया। संगठित श्रम-आंदोलन की दो शाखाओं—उपभोक्ताओं की सहकारी समितियों और श्रमिक संघों—से उसे विशेष सहानुभूति थी। इनमें उसने उस प्रारंभ को देखा जिससे कि श्रेष्ठ समाज विकसित हो सकता है।

टॉनीज जर्मन समाजशास्त्रीय सभा के संस्थापकों में से था और वह अनेक वर्षों तक उसका सभापति रहा; वह अमेरिकन सोशियोलॉजिकल सोसायटी का भी माननीय सदस्य था। अपने समय के प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषों से उसके घनिष्ट पेशेवर संपर्क और व्यक्तिगत मैत्री थी; इनमें अनेक विद्वान्, लेखक, कलाकार और राजनीतिज्ञ सम्मिलित थे। यद्यपि उसके जीवन में नाटकीय पहलुओं का अभाव है फिर भी उसका जीवन समृद्ध और गहन था तथा अपने समय की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से उसका घनिष्ठ संबंध था।

अस्सी वर्ष से अधिक आयु में १९३६ में टॉनीज की मृत्यु हुई। वह हमारे युग के उन अंतिम विद्वानों में से था जिसे कि मानवीय और सांस्कृतिक तथा समाजविज्ञानों में सार्वभौम ज्ञान से संपन्न कहा जा सकता है।

२. टॉनीज की प्रमुख रचनायें

फर्डीनैंड टॉनीज की रचनायें इतने अधिक विषयों और समाजशास्त्र, समाजदर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति के इतने विस्तृत क्षेत्रों पर विचार करती हैं कि एक दृष्टि में तो एक छोटे-से निबंध में उस व्यक्ति के जीवनकार्य के साथ न्याय करना, जिसकी आयु अस्सी को भी पार कर गई हो, प्रायः असंभव दीखता है। फिर भी यह कार्य इसलिये हल्का हो जाता है कि टॉनीज की चिंतनप्रणाली का लक्ष्य उन अवधारणाओं में अंतर्हित है जोकि सर्वप्रथम 'समुदाय और समाज' में प्रकट हुईं। इस सिद्धांत पर ही टॉनीज की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति आधारित है। विचारों की प्रौढ़ता और शैली की सुंदरता में लेखक की अनेक बाद की रचनाओं में से कोई भी 'समुदाय और समाज' को मात न कर सकी। इसमे टॉनीज की योजना की समाजमनोवैज्ञानिक आधारशिलायें और बुनियादी समाजशास्त्रीय श्रेणियां भलीभांति और सच्चाई से रखी गई।

अपनी बाद की रचनाओं में टॉनीज ने अधिकांश में सामाजिक जीवन की विशेष घटना जैसे कि उदाहरण के लिये, नैतिकता और जनरीतियों (Folkways) [७] या जनमत पर 'समुदाय और समाज' [८] की बुनियादी अवधारणाओं का "प्रयोग" किया है सामान्य पाठक टॉनीज को केवल 'समुदाय और समाज' के लेखक के रूप में ही जानते हैं किंतु इस पुस्तक के साध्य और उसके प्रयोग के साथ उसके वैज्ञानिक जीवन-कार्य को मिलाना अनुचित होगा, चूंकि एक ओर उसकी समाजशास्त्रीय प्रणाली केवल बाद के वर्षों में ही पूर्णतः विकसित हुई थी और दूसरी ओर समाजविज्ञानों में उसकी उपलब्धियां सैद्धांतिक समाजशास्त्र के संकीर्ण क्षेत्र को पार कर बहुत दूर तक चली जाती हैं।

बहुत वर्षों तक समग्ररूप से टॉनीज की समाजशास्त्रीय प्रणाली केवल उसके अपने छात्रों को ही मालूम थी। वस्तुतः यह कभी भी *Einfuhrung in die Soziololgie* में कुछ छोटे निबंधों को छोड़कर पर्याप्त रूप में प्रकाशित नहीं हुई। यह पुस्तक उसकी

प्रौढ़ आयु की रचना थी किंतु इसे 'समुदाय और समाज' की शास्त्रीय प्रसिद्धि प्राप्त न हुई। फिर भी *Einfuhrung* टॉनीज के सिद्धांत को समझने के लिये सर्वथा अपरिहार्य है और अपनी सरल शैली के कारण समाजशास्त्र के पढ़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

टॉमस हॉब्स के कानून के दर्शन और राज्य के सिद्धांत के अध्ययनों ने टॉनीज के मन में समाजशास्त्रीय समस्याओं के प्रति अभिरुचि जगाई, और जैसा कि हम देखेंगे, कि जब तक इन प्रारंभिक अध्ययनों को ध्यान में नहीं रखा जाता उसके समाजशास्त्र को ठीक तरह नहीं समझा जा सकता या पूर्णतः नहीं सराहा जा सकता। हॉब्स पर अपनी पुस्तक और हॉब्स के दर्शन से अल्पाधिक घनिष्ठता से संबंधित समस्याओं पर अपने अनेक परवर्ती लेखों में टॉनीज ने आधुनिक राज्य के सिद्धांत और कानून के दर्शन को मल्यवान् देनें दी है। टॉनीज की विशुद्ध समाजशास्त्रीय रचनाओं के अतिरिक्त, उनका महत्त्व भी स्वीकार किया जाना चाहिये।

टॉनीज का तीसरा और सबसे कम ज्ञात पहलू उसकी अनुभवात्मक (Empirical) खोजों का है, जिसमे कि उसने अपने जीवनकार्य का पर्याप्त भाग लगाया। इन अध्ययनों में से निम्न अध्ययनों का यहां पर जिक्र किया जा सकता है : हैम्बर्ग और अन्य बंदरगाहों के दूर यात्री नाविक और सामान्य नाविकों की समाजार्थिक अवस्था के सर्वेक्षण, जिसे कि हैम्बर्ग में बड़ी हड़ताल होने के बाद उसे करने को कहा गया था,[१०] स्लैसविग-हॉल्सटाइन में कुछ नैतिक घटनाओं और समाजार्थिक अवस्थाओं के बीच विद्यमान संबंध का एक अध्ययन; [११] स्लैसविग-हॉल्सटाइन में अपराधवृत्ति उस प्रांत के मुख्य कारागारों में संकलित सामग्री पर आधारित एक लेखमाला; [१२] स्लैसविग-हॉल्सटाइन में आत्म-हत्या का एक अध्ययन; [१३] विवाह की दरों में चक्रीय (Cyclical) परिवर्तनों और विशिष्ट आर्थिक न्यासों के संबंध में स्त्री और पुरुषों के जन्म के अनुपात पर एक निबंध [१४] जोकि दुर्भाग्य से प्रथम महायुद्ध के पहले वर्ष में प्रकाशित हुआ था। व्यावसायिक चक्रों के अनुभवात्मक अध्ययन में यह जर्मनों की पहली देन थी। इन अन्वेषणों के लिये उसने सहसंबंध (Correlation) की एक प्रणाली विकसित की जिसका कि उसने स्वयं आविष्कार किया था।[१५]

३. टॉनीज के समाजशास्त्रीय सिद्धांत की प्रमुख अवस्थायें

(क) समाजशास्त्रीय सिद्धांत और गवेषणा ; समाजशास्त्र के तीन क्षेत्र

अमेरिका में टॉनीज के मूल्यांकन के लिये यह हानिकर था कि जिस समय जर्मनी में 'समुदाय और समाज' विस्तृत जनता द्वारा पढ़े जा रहे थे, तब वहां इन अध्ययनों ने ध्यान आकृष्ट न किया। अमेरिकन समाजशास्त्रियों की, जिसे वह आरामकुर्सी का समाजशास्त्र (Armchair sociology) कहते थे, बहुत कम दिलचस्पी थी। फिर भी टॉनीज ने समाजविज्ञानों में 'निश्चित' (Exact) पद्धतियों की संभावना में दृढ़ विश्वास

करते हुए कभी भी समाजशास्त्रीय सिद्धांत को अपने आपमें एक लक्ष्य या उसे गवेषणा से पृथक् नहीं समझा। टॉनीज ने समाजशास्त्र के तीन पृथक् शास्त्र किये हैं [१५] जोकि प्रत्येक के लिये अनिवार्य पद्धति के अनुसार अपने ज्ञानमीमांसात्मक (Epistemological) पहलुओं में पृथक् हैं :

१. विशुद्ध या सैद्धांतिक (*Reine, theoretische*) समाजशास्त्र ।

२. प्रायोगिक (Applied : *angewandte*) समाजशास्त्र ।

३. अनुभवात्मक (Empirical : *empirische*) समाजशास्त्र या समाजवृत्त (Sociography) ।

यह विभाजन संकीर्ण अर्थों में समाजशास्त्र से संबंधित है । इसके अतिरिक्त टॉनीज ने समाजशास्त्र की एक विस्तृत अवधारणा की सत्यता की घोषणा की, जिसे कि जर्मनी के बाहर सामान्य स्वीकृति मिल चुकी थी और जिसमें सामाजिक प्राणिशास्त्र, जनसंख्या-शास्त्र और समाजमनोविज्ञान सम्मिलित थे ।

टॉनीज का "विशुद्ध" समाजशास्त्र का विचार सामान्यत: अब स्वीकृत अर्थों में लगभग "सामान्य समाजशास्त्र" [१७] से मिलता है । यह स्थिर (Static) अवस्था में "सामान्य" (Normal) या सामाजिक इकाइयों—*Soziale Wesenheiten* ("Social entities") के तर्क प्ररूप—Ideal types (मैक्स वैबर के अर्थों में) की अवधारणाओं की एक तार्किक पद्धति है । अनुभवात्मक सामाजिक घटनाओं [१८] के विवरण देने और उन्हें समझने के लिये अवधारणाओं की ऐसी प्रणाली एक आवश्यक साधन है ।

ठोस ऐतिहासिक समाजों (*Kulturen*) और सामाजिक विकासवाद की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण और व्याख्या के लिये इन "विशुद्ध" अवधारणाओं का "प्रयोग" प्रायोगिक समाजशास्त्र का क्षेत्र है । [१९] यहां पर इतिहास के वैज्ञानिक दर्शन के रूप में समाजशास्त्र के मौलिक अर्थ को लिया गया है, जैसी कि लौरेंज स्टाइन और ए० कोंत ने कल्पना की थी । टॉनीज ने आधुनिक समाजवाद के विकास पर एक विस्तृत ग्रंथ की योजना बनाई थी, जिसे कि वह 'समुदाय और समाज' का पूरक बनाना चाहता था । उसने समाज में प्रगति और विकासवाद (*Progress and Evolution in Society*) [२०] पर कुछ लेख प्रकाशित किये और उसकी मृत्यु से छ: माह पहले वृहत्तर ग्रंथ के प्रथम खंड के रूप में *Geist der Neuzeit* शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हुआ । "विशुद्ध" और "प्रायोगिक" समाजशास्त्र का अंतर केवल समाज के स्थिर और गत्यात्मक सिद्धांत का अंतर नहीं है किंतु वह मुख्यत: रचनात्मक और निगमनात्मक (Deductive) दृष्टिकोण का अंतर भी है । प्रायोगिक समाजशास्त्र में "समुदाय" (Gemeinschaft) से "समाज" (Gesellschaft) की ओर विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार अनुभवात्मक न्यासों को क्रमबद्ध किया जाता है और उनकी व्याख्या की जाती है । [२१]

वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं और प्रक्रियाओं का समाजवृत्तशास्त्रीय अध्ययन या अनुभवात्मक समाजशास्त्र का कार्य आगमनात्मक (Inductive) या अनुभवात्मक पद्धतियों [२१] से चल सकता है, चूंकि इस क्षेत्र में प्राय: किन्हीं भी अपेक्षित न्यासों को जुटाया जा सकता है या वह प्राप्त होते हैं, किंतु इन अनुभवात्मक अध्ययनों में भी "तथ्यों" (Facts) [२२] को चुनने और संगठित करने के लिये विशुद्ध समाजशास्त्र की अवधारणाओं का प्रयोग किया जायेगा। समाजवृत्त की यह अवधारणा ठोस समुदाय या समूहों में समाजशास्त्रीय दृष्टि से संगत तथ्यों के वैज्ञानिक चित्रण के रूप में बहुत हाल के प्रकार के अमेरिकन सामाजिक सर्वेक्षणों और परिस्थितिशास्त्रीय (Ecological) अध्ययनों से मिलती है। विशेष अर्थों में समाजशास्त्र की इस त्रयी प्रणाली में समाज के विषय पर मुख्य दृष्टिकोणों को एक सावयवी (Organic) एकता में मिला दिया गया है, जिन्होंने विभिन्न और बाह्यत: कभी न मिलनेवाले समाजशास्त्रीय विचारधारा के विरोधी संप्रदायों को [२४] विकसित किया है।

(ख) समुदाय (Gemeinschaft) और समाज (Gesellschaft)

टॉनीज की प्रणाली की आधारशिला मानव संबंधों या सामाजिक इकाइयों (*Soziale Wesenheiten*) के सिद्धांत में अंतर्हित है। यह सिद्धांत *Gemeinschaft* और *Gesellschaft* की दो बुनियादी अवधारणाओं के भेद पर आधारित है। समाजविज्ञानों के लिये इस साध्य का ऐतिहासिक महत्त्व इसमे समाज की बुद्धिसगत (Rational) और रोमांटिक अवधारणाओं के संश्लेषण मे निहित है। सामाजिक जीवन की दो अवधारणायें को जो अरस्तू के समय से समाजदार्शनिकों में चर्चा का प्रमुख विषय रही है, सामाजिक जीवन की वास्तविकता का एकतरफा चित्र माना गया है। मूल देन केवल दो विरोधी अवधारणाओं की रचना नहीं है (हम देखेंगे कि उन्हें बिल्कुल भी पूर्णत: विरोधी नहीं माना गया है) प्रत्युत् वह दो बुनियादी प्रतिमानो का स्पष्ट अवधारणात्मक भेद है, जो ठोस सामाजिक रचनाओं की विरोधी संभावनाओं को दर्शाता है, और इसके अतिरिक्त यह स्वीकार करता है कि समाजदर्शन के इन दो संप्रदायों मे भेद होने का कारण यह तथ्य है कि इनके समर्थकों ने समस्त सामाजिक यथार्थता की अपनी अवधारणाओं में दो क्षेत्रों में से केवल एक ही को लिया है।

यह सही है कि हम हॉब्स के साथ प्राकृतिक और राजनैतिक राष्ट्रमंडलों के भेद में इस स्वीकृति का बीज पाते है। किंतु *Gemeinschaft* और *Gesellschaft* की अवधारणाओं में इसका स्पष्ट प्रतिपादन केवल तभी संभव हुआ जबकि राज्य और समाज के रोमांटिक सिद्धांत ने इसका मार्ग तैयार किया; उन्नीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक मानवशास्त्र तुलनात्मक भाषाशास्त्र और तुलनात्मक कानून के अध्ययनों द्वारा आदिकालीन जनसमूहों के सामाजिक जीवन का ज्ञान भी इसके लिये आवश्यक था।

इस अध्याय की सीमा में टॉनीज पर रोमांटिक संप्रदाय के जर्मन प्राकृतिक अधिकारों के समर्थक दार्शनिकों और विचारकों और इससे भी अधिक अंग्रेजी और अमेरिकन विद्वानों (अर्थात् मार्गन की *Ancient Society*) के प्रभाव को विस्तार से खोजना संभव नहीं है। *Gemeinschaft und Gesellschaft* में टॉनीज ने विशेषरूप से यह स्वीकार किया है कि उसे सर हेनरी मेन के पद (Status) और संविदा (Contract) के विरोध [२५] से निर्णायक प्रेरणा.

Gemeinschaft और *Gesellschaft* का सामाजिक समूहों की आधारभूत अवधारणाओं के रूप में भेद सावयवी (Organic) और यांत्रिक (Mechanical) सामाजिक इकाइयों के भेद (टॉनीज ने भी कभी-कभी केवल सादृश्य के रूप में इन चित्रों का प्रयोग किया) या स्वभावतः सहानुभूति की भावनाओं तथा जान-बूझकर और निश्चित उद्देश्य के लिये बनाये गये संबंधों के बीच विद्यमान भेदों का स्मरण करता है।

टॉनीज के सिद्धांत के मूल सूत्र निम्नलिखित हैं :

१. समस्त सामाजिक संबंधो को मानव इच्छा (Will) की उपज समझना चाहिये। वह केवल व्यक्तियों के साथ मिलने की इच्छा के द्वारा ही सामाजिक तथ्य के रूप में विद्यमान है।

२. यह इच्छा और इसके साथ मिलनेवाले व्यक्तियों के आंतरिक संबध अत्यंत भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। एक समूह या संबंध की इसलिये इच्छा की जा सकती है कि या तो इससे एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा है (इसमे उदाहरण के लिये, एक व्यवसायी सहयोग में साझीदारों के प्रति पूर्ण उदासीनता या यहां तक कि विरोध भी होता है), या साझीदारों के साथ सहानुभूति होने के कारण यह समझा जाता है कि संबंध अपने आपमें मूल्यवान् (उदाहरण के लिये मैत्री) है। टॉनीज ने दो प्रकार की इच्छा को सहज इच्छा (*Wesenwille*) और तर्कयुक्त इच्छा (*Kurwille*) नाम दियाहै। [२६] *Kurwille* का अर्थ तर्कयुक्त इच्छा (Rational will) है जोकि साधन और लक्ष्य के बीच भेद करती है (यह अवधारणा मैक्स वैबर के *Zweckrationale* व्यवहार की अवधारणा से बहुत कुछ मिलती है)। सहज इच्छा *Wesenwille* का अर्थ इच्छा की कोई भी प्रक्रिया है जोकि व्यक्ति के स्वभाव और चरित्र से उत्पन्न होती है, चाहे उसका मूल रुझान, आदत या विश्वास में हो। [२७]

३. इसलिये *Wesenwille* किसी भी प्रकार अनिवार्यतः अतर्कयुक्त नहीं है। इसके विरुद्ध, *Wesenwille* और उससे उत्पन्न "समुदायों" के बीच तर्कयुक्तता की विभिन्न मात्राओं का भेद किया जा सकता है। इसका माप उनसे जिनमें कि प्राणिक दृष्टि से संबंधित व्यक्तियों की सहज सहानुभूति जोकि व्यक्तिगत इच्छा को निर्धारित करती है।" इससे लेकर विशिष्ट मूल्यों के प्रति एकमात्र समान निष्ठा से उत्पन्न संबंध (उदाहरण के लिये रक्तसंबंध, पड़ोस, मैत्री, परिवार, समुदाय, गिल्ड) तक विस्तृत है।

Gemeinschaft [२८] के पूर्णतः मानसिक रूप (अवस्थायें) *Gesellschaftlichen* संबंधों के, जोकि विशुद्ध रूप से मानसिक हैं, समीपतम हैं। [२९]

Gemeinschaft और *Gesellschaft* की दो श्रेणियों का पारस्परिक संबंध इतना जटिल है कि इसे समालोचक सदा नहीं समझ पाते। यह आपत्ति उठाई गई है [३०] कि एक ओर यह अवधारणायें सर्वथा विरोधी (Antithetical) अवधारणात्मक श्रेणियां हैं और दूसरी ओर ऐतिहासिक विकास की अवस्थायें हैं और वह भी केवल वर्गीकरण की अवधारणायें हैं। इनमें से अंतिम अर्थ निस्संदेह टॉनीज का नहीं है। यद्यपि उसने कभी-कभी परिवार या गांव को *Gemeinschaft* और नगर या राज्य को *Gesellschaft* का नाम दिया है। यह केवल एक उदाहरण के रूप में कहा है। उसके लिये *Gemeinschaft* और *Gesellschaft* तर्क प्ररूपों की विशुद्ध अवधारणायें हैं जोकि अपने आपमें अनुभवात्मक (Empirical) संसार में विद्यमान नहीं हैं। इसीलिये वर्गीकरण की अवधारणाओं के रूप में उनका प्रयोग नही हो सकता। इसके बजाय उन्हें गुणों की भांति समझना चाहिये जोकि विभिन्न अनुपातों में अनुभवात्मक इकाइयों में मिलते है। उदाहरण के लिये यदि कोई *Gemeinschaft* के रूप में परिवार की परिभाषा करे तो उससे समाजशास्त्रीय जानकारी का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा; यह समाजशास्त्री का विशिष्ट कार्य है कि वह यह पता लगाये कि एक ठोस परिस्थिति में एक परिवार (उदाहरण के लिये एक बड़े नगर में मजदूर का परिवार) अन्य स्थिति में एक परिवार की अपेक्षा (उदाहरण के लिये ग्राम मे) किस सीमा तक *Gesellschaft* के प्ररूप में मिलता है। [३१] यदि इस अर्थ में अवधारणाओं को लिया जाय तो तर्क की प्रणाली को हानि पहुंचाये बिना उन्हें ऐतिहासिक घटनाओं पर लागू करना संभव होगा।

एक विशिष्ट कठिनाई इस तथ्य में निहित है कि यह दो श्रेणियां कठोर रूप में विरोधी नहीं हैं। टॉनीज के लिये सामाजिक जीवन की विशुद्ध *Gesellschaftliche* अनुभवात्मक अवस्था अकल्पनीय है; चूंकि मनुष्य अपने व्यवहार में कभी भी एकमात्र बुद्धि और तर्क से प्रेरित नहीं होता किंतु, सामाजिक विकास की चाहे कोई भी अवस्था हो वह रुझान और उद्वेगों से, अर्थात् मूलतः सहज इच्छा (*Wesenwillen*) और केवल अंशतः तर्कयुक्त इच्छा (*Kurwillen*) से प्रेरित होता है, अतः समस्त अनुभवात्मक "साहचर्यों" या समितियों (Association) का एक *Gemeinschafts* या "सामुदायिक" आधार होना चाहिये। [३२]

(ग) सैद्धांतिक (विशुद्ध) समाजशास्त्र; सामाजिक समूह

सामाजिक इकाइयों को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है: (१) सामाजिक संबंध (*Verhaltnisse*), (२) सामाजिक समष्टियां (*Samtschaften*) और (३) सामाजिक निगम (Corporations : *Korperschaften*)। इन सामाजिक इकाइयों को अवधारणात्मक दृष्टि से प्राकृतिक और मानसिक संबंधों से पृथक् समझना चाहिये। समान रक्त द्वारा प्राकृतिक संबंध अपने आपमें एक सामाजिक संबंध नहीं

बनता। एक सामाजिक संबंध "जिस अंश में मानसिक संबंध केवल अपने आपमें अनुभव ही नहीं किया जाता बल्कि उसके विद्यमान और कायम रहने की इच्छा की जाती है, और उस सीमा तक जहां तक कि भाग लेनेवालों के कुछ समान और पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य इससे उत्पन्न होते हैं (उदाहरण के लिये विवाह में परिणत होनेवाली कोर्टशिप) मानसिक संबंध से उत्पन्न होती है।

इस प्रकार एक सामाजिक संबंध को, यदि वह गुप्त संबंध नहीं है, केवल भाग लेनेवालों द्वारा ही नहीं, बल्कि अन्य व्यक्तियों द्वारा भी एक "प्रमाणित" (Valid) वस्तु समझा जाता है। फिर भी वह इसकी प्रामाणिकता को मानने से इन्कार कर सकते हैं (उदाहरण के लिये यदि माता-पिता अपनी लड़की की मंगनी को मानने से इन्कार कर दें)। दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सामाजिक संबंधों के एक संकुल को "एक सामाजिक क्षेत्र" (*Sozialer Kreis*) उदाहरण के लिये मित्रों का क्षेत्र कहा जाता है। यह सामाजिक संबंध और सामाजिक समष्टि (*Samtschaft*) के बीच की कड़ी है।

समष्टि या *Samtschaft* के अंतर्गत हम व्यक्तियों के एक समूह को लेते है जो समान प्राकृतिक या मानसिक गुणों के कारण इकाई समझे जाते है (नस्ल या भाषा-समूह)। सामाजिक *Samtschaften* ऐसे प्राकृतिक या मानसिक समूह हैं, जोकि सहयोगी व्यक्तियों द्वारा ऐसी इकाइयों के रूप में, जिन्हें कि उनकी सहमति प्राप्त है और जिन्हें वह कायम रखने की इच्छा रखते है, स्वीकार किये जाते है। एक राष्ट्र प्राकृतिक और मानसिक समान गुणों पर आश्रित समष्टि (*Samtschaft*) का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। राजनैतिक दल को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक या मानसिक समष्टि (*Samtschaft*) का एक उदाहरण माना जा सकता है।

"निगम" (Corporations)—सामाजिक संस्थाओं या सामाजिक संघों—को पहली दो श्रेणियों से पृथक् करना चाहिये चूंकि इनमे एक संगठन है, अर्थात् विशिष्ट व्यक्ति निश्चित कार्य कर सकते है, जिन्हें निगम के सदस्यों और बाहर के लोगों द्वारा भी निगम के कार्य समझा जाता है। निगम को एक व्यक्ति माना जाता है जिसके पास तर्कसंगत इच्छा है, जिसे वह अपने अंगों या कार्यकर्ताओं द्वारा सत्यता प्रदान कर सकता है। इस प्रकार निगम की अवधारणा मे सामाजिक इकाई का विचार पूर्ण अभिव्यक्ति पाता है।

एक निगम सामाजिक समष्टि (*Samtschaft*) पर आधारित हो सकता है, जैसे कि चर्च भक्तों के समुदाय पर आश्रित है, या यह सामाजिक समष्टि से उत्पन्न हो सकता है जैसे कि एक दल का संगठन उस समूह से जो यह अनुभव करते है कि वह समान राजनैतिक लक्ष्य से बंधे हुए हैं।

Soziale Wesenheiten की तीनों श्रेणियों की मुख्यतः सहज इच्छा (*Wesenwillen*) या तर्कसंगत इच्छा (*Kurwillen*) द्वारा इच्छा की जा सकती है और

इसलिये जैसी भी दशा हो, वह मुख्यतः समुदाय (*Gemeinschaft*) या समाज (*Gesellschaft*) प्ररूप से मिलती हैं।

यद्यपि समाज-दर्शन में सदैव ही केवल निगमों को एक "व्यक्तयतीत" (Super-individual) गुण प्रदान किया जाता है, इस दशा में प्रायः कानूनी (Juristic) व्यक्ति की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है, टॉनीज के सिद्धांत का यह मूल लक्षण है कि "सामाजिक संबंध" को भी साझीदारों की इच्छा का परिणाम कल्पित किया गया है, जोकि उनकी चेतना में एक वस्तुगत रूप में विद्यमान है और जिसके प्रति साझीदार कुछ निश्चित कर्त्तव्य स्वीकार करते हैं और जिनसे वह कुछ अधिकार प्राप्त करते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि "क से मेरी मैत्री मुझ यह करने या न करने के लिये बाध्य करती है।" उदाहरण के लिये जब सामाजिक संबंध कानून द्वारा स्वीकृत होते है, जैसे कि विवाह में या मालिक या मजदूर का संबंध, तब सिद्धांतः निगम से उनकी जीवन-रीति की सामानता स्पष्ट होती है। और इससे हम उस सीमा की परिभाषा करते है जिस पर कि समाजशास्त्र और समाज-मनोविज्ञान के उद्देश्य पृथक् हो जाते है। समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के प्रकारों पर विचार करता है, न कि संबंधित व्यक्तियों की विशिष्ट मनोवैज्ञानिक धारणाओं पर।

प्राचीनतम समय से ही सबसे महत्त्वपूर्ण निगम के रूप मे राज्य दार्शनिक और समाजशास्त्रीय कल्पनाओं और सिद्धांतों का विषय रहा है। जहां तक कि वह *Sein* पर और *Sollen* पर नही विचार करता, अर्थात् वह विद्यमान राज्यों पर न कि राज्य के आदर्शों पर विचार करता है, टॉनीज तथाकथित *Allgemeine Staatslehre* को समाजशास्त्र का एक भाग समझता है।[३३] उसकी कई महत्त्वपूर्ण रचनायें राज्य के सिद्धांत की समस्याओं से संबंधित है और प्रथम महायुद्ध में टॉनीज ने इंगलिश और जर्मन राज्य पर एक श्रेष्ठ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।[३४]

(घ) सामाजिक मान (Norms) और मूल्य (Values)

केवल समूहों में साथ-साथ रहने से पृथक्, मानव प्राणी के सामाजिक जीवन का मानदंड, जैसा कि अन्य पशुओं मे भी है, आदर्शी व्यवस्था (Normative order) के अंतर्गत है। इस कारण सामाजिक मानों (Norms) और सामाजिक मूल्यों का सिद्धांत—जिनसे कि यह मान अपना अर्थ ग्रहण करते हैं—सामाजिक इकाइयों के सिद्धांत का आवश्यक पूरक है। टॉनीज की सदा सामाजिक मानों के सिद्धांत में विशेष अभिरुचि थी, और इसीलिये हम उसे उसकी रचनाओं मे सामाजिक मूल्यों के सिद्धात की अपेक्षा अधिक क्रमबद्ध रीति से विकसित पाते है।[३५]

इस निबंध में टॉनीज के मान (Norms) के सिद्धात की केवल प्रारंभिक विश्लेषतायें ही प्रस्तुत की जा सकती है। सामाजिक मानों की सामाजिक इकाई में परस्पर बंधे व्यक्तियों के लिये सामान्य रूप से सत्य समस्त आदेशों और निषेधों के रूप में, जोकि एक दूसरे के प्रति तथा बाहरवालों के प्रति उनके आचार का नियंत्रण

करते हैं, परिभाषा की गई है। यह नियंत्रण या नियम व्यक्तियों की व्यक्त या अंतर्निहित सहमति से औचित्य प्राप्त करते हैं; ये स्वतंत्र (Autonomous) या विविधनियमाश्रित (Heteronomous) मान हो सकते हैं और इनका इनकी सच्चाई में विश्वास कर या आज्ञा उल्लंघन के हानिकर परिणामों से बचने के लिये पालन किया जा सकता है।

टॉनीज ने (१) मानों के तीन वर्ग बताये हैं : व्यवस्था (Order), कानून (Law) और नैतिकता (Morality) (२) निम्न प्रकार की सामाजिक इच्छा (Will) जिससे कि (इच्छा के विषय के रूप में) मान उत्पन्न किय जाते हैं :[१६] (क) सामाजिक इच्छा के सामुदायिक (*Gemeinschaftliche*) रूप; (i) समस्त समान इच्छा करने के सामान्य गुण के रूप मे एकमतता या मेल, जोकि पहले सामुदायिक प्ररूप पर आधारित संबंधों में, जिनका कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है, अपने आपमें स्वाभाविक और आवश्यक लगता है, (ii) समान आदतों पर आधारित प्रथा, (iii) अलौकिक शासक-शक्तियों में विश्वास पर आधारित धर्म; (ख) सामाजिक इच्छा के समाजीय (*Gesellschaftliche*) रूप; (i) परंपरा, (ii) कानून, (iii) समानहित पर आधारित जनमत।

व्यवस्था मानों का सबसे सामान्य संकुल है, जो मुख्यत: मेल या परंपरा पर आधारित है। यह कहा जा सकता है कि इसमे वह मान सम्मिलित है जोकि तथ्यों की मान्यशक्ति द्वारा सत्य है।

कानून उन मानों का संकुल है जिसकी व्याख्या और प्रयोग, उनके प्रति विचार के अनुसार, कानूनी निर्णय द्वारा होता है। कानून या तो प्रथा से या सैद्धांतिक और इच्छित "कानूनों के निर्माण" (Legislation) से उत्पन्न होता है।

नैतिकता उन मानों का संकुल है जिनकी व्याख्या और प्रयोग एक काल्पनिक न्यायाधीश (ईश्वर या अंतरात्मा) का कार्य माना जाता है। नैतिकता के मान अल्पाधिक धर्म या जनमत से स्वीकृत होते हैं।

यह समस्त भेद विशुद्ध अवधारणात्मक प्रकार के हैं; वस्तुत: विभिन्न प्रकार के मानों के बीच परिवर्तन विद्यमान है और प्रत्येक श्रणी में अन्यों के तत्व सम्मिलित है। विभिन्न सामाजिक इकाइयों के मानों की प्रणालियां व्यवस्था, कानून और नैतिकता के मानों से मिलकर बनी हैं।[१७]

टॉनीज को प्रथा की अवधारणा सामान्य अवधारणा से कुछ भिन्न रीति से परिभाषित की गई है। उसके लिये प्रथा समस्त मानों की मौलिक एकता (या समान उद्गम) नहीं है, जिससे कि संस्कृति के उच्चतर स्तर पर कानून और नैतिकता विकसित होते हैं। पुन:, प्रथा मानों का निश्चित विधान नहीं है। समान आदतों में मूलबद्ध सामाजिक इकाई की इच्छा (Will) द्वारा ही निश्चित मान अपना सार (Content) और सत्यता प्राप्त करते है।

प्रथासम्मत कानून और विधान-निर्माण द्वारा कानून का भद संहिताबद्ध (Codified) कानून और अलिखित कानून के भेद के समान नहीं है, चूंकि प्रथासम्मत कानून भी विधान-निर्माण द्वारा संहिताबद्ध और स्वीकृत हो जाता है। किंतु निरंतर उत्पन्न होनेवाली नई अवस्थाओं के नियंत्रण के लिये आधनिक राज्यों को ऐसे कानून बनाने पड़ते हैं जोकि किन्हीं "पवित्र प्रथाओं से स्वीकृत न हो केवल सामान्यतः उपयुक्त या विशिष्ट हितों को पूरा करने के कारण स्वीकार किय जात ह, जैसे कि उदाहरण के लिये, आधुनिक यातायात के अधिकांश नियम और सड़क पर चलने के कानून।

इस प्रकार कानून का क्रमबद्ध सिद्धांत, जहां तक कि कानून तथ्यतः कारगर हैं और इसलिये इसे अनुभवात्मक (Empirical) पद्धतियों से अध्ययन किया जा सकता है, विशुद्ध समाजशास्त्र का एक आवश्यक अंग है। किंतु टॉनीज के लिये मानवसमाज की समस्त अवस्थाओं के अंतर्गत कानून और कानूनों के उद्गमों के वह विचार भी जो "प्राकृतिक कानूनों" (Natural Law) के सिद्धांत का निर्माण करते हैं, रजनैतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होने के कारण वह भी समाज-शास्त्रीय सिद्धांत के अनिवार्य विषय बन जाते है। टॉनीज ने प्राकृतिक कानून के सुपरिचित तर्कसंगत (Rationalistic) सिद्धांत में—जिसका कि वह हॉब्स को शास्त्रीय दार्शनिक मानता है—आधुनिक "प्रकृति के सामुदायिक कानून" (Community-law of nature) के सिद्धांतों को जोड़ा।

अरस्तू के मनुष्य के इस विचार को लेकर कि वह स्वभाव से ऐसा प्राणी है जिसे समुदायों में रहना होगा, प्राकृतिक परार्थवाद (Altruism) पर, न कि बुद्धि द्वारा नियंत्रित विरोधी हितों पर आधारित कानून की व्यवस्था की अवधारणा का निर्माण किया जा सकता था। परस्पर सहानुभूति और उससे उत्पन्न कर्त्तव्य की भावना पर आधारित प्रत्येक सामाजिक संबंध में एक कानून की प्रणाली की कली छिपी रहेगी, जिसे "समुदाय का प्राकृतिक कानून" [३८] कहा जा सकेगा। कानून की यह प्रणाली अपनी प्रत्येक संस्था में समुदाय के अंदर एकता और अधिकारों और कर्त्तव्यों की तात्कालिक अंतर्निर्भरता के सिद्धांत को व्यक्त करेगी। यह विशेष रूप से भूमि और प्राथमिक महत्त्व के अन्य उत्पादन के साधनों मे पहले से ही समान स्वामित्व और यहां तक कि इसके समान उपयोग की कल्पना करेगी। [३९] केवल जनता की समान भलाई की भावना से प्रेरित इस प्रकार का कानून, कानून और नैतिकता के बीच किसी प्रकार की विषमता की अनुमति न देगा। इन विचारों और विशेष रूप से *Einfuhrung* [४०] में वर्णित मजदूरों के कानूनी दर्जे से संबंधित विचारों और उनकी व्याख्या ने, राष्ट्रीय समाजवादी शासन द्वारा उनकी विकृतियों के बावजूद, पर्याप्त वास्तविकता प्राप्त की; यह अमेरिकन सामाजिक सुधारकों के लिये भी रोचक हो सकते हैं, चूंकि यह कानून के व्यक्तिवादी दर्शन के विरुद्ध, जोकि

समाज-सुधार के रास्ते में रुकावट डाल सकता है, युक्तियां प्रदान करते हैं। टॉनीज के अनसार, जहां तक कि कानून प्रजातांत्रिक कार्यप्रणाली द्वारा विधान-निर्माण का परिणाम है, वह जनमत की अभिव्यक्ति है।

(ङ) टानीज का जनमत का सिद्धांत

जनमत (Public opinion) का तथ्य टॉनीज के लिये विशेषरूप से आकर्षक था। उसने दस वर्षों से अधिक सैद्धांतिक और ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात १९२२ में इस विषय पर एक विस्तृत ग्रंथ प्रकाशित किया। *Kritik der offentlichen Meinung* [४१] की प्रथम पुस्तक में जनमत का सिद्धांत है; दूसरी पुस्तक में जनमत के लक्षणों, अंतर्वस्तुओं और कार्यों पर अनुभवात्मक "प्रयोग" और अवलोकन द्वारा प्राप्त मत दिये गये है; तीसरी पुस्तक में सामाजिक समस्याओं पर जनमत और प्रथम महायुद्ध से संबंधित जनमत पर विचार किया गया है। प्रस्तुत चर्चा सैद्धांतिक अंश तक सीमित है। टॉनीज ने स्वयं ही अपने सैद्धांतिक देनों का संक्षेप निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है :

१. एक देश या राष्ट्र के जनमत, या कठोर अर्थों में जनमत को अवधारणात्मक दृष्टि से सामूहिक इच्छा (Group will) की अभिव्यक्ति को विभिन्न विरोधी मतों के संग्रह के रूप में जनमत की लोकप्रिय धारणा से पृथक् करना होगा।

२. एक राजनैतिक दृष्टि से सत्य मत के रूप में जनमत अवधारणात्मक दृष्टि से स्थानीय या अराजनैतिक जनमतों से पृथक् है।

३. यह जनमत अल्पाधिक निश्चित तरल या संचय की वाष्पमय अवस्था हो सकती है, जो अंतर्ग्रस्त समस्याओं पर निर्भर है।

४. गिडिंग्स् के लोकप्रिय विश्वासों और "असली जनमत" के भेद के अनुरूप, टॉनीज ने जनमत और असली (*The*) जनमत दोनों को लोक-भावना और अनभूतियों से पृथक् किया है—भिन्न रूप में, जनमत आलोचनात्मक अर्थात् बौद्धिक चिंतन की उपज है। [४२]

ये भेद केवल अवधारणात्मक, आलोचनात्मक और द्वंद्वात्मक चिंतन के लिये है।

टॉनीज के अनुसार समस्त सामाजिक घटनाओं को, केवल जनता की उनके प्रति क्या धारणायें हैं, इसकी जांच द्वारा ही, उचित रीति से समझा जा सकता है। भाषा प्रथम संकेत प्रदान करती है। इसलिये टॉनीज ने एक शिक्षाप्रद व्युत्पत्ति की एक चर्चा में व्यक्ति और सामूहिक मत के संबंधों को इच्छा (Will) विश्वास और ज्ञान के बुनियादी रूपों में ढूंढ़ा है। उसने दर्शाया है कि जब मत भावनाओं पर निर्भर हैं और हित, व्यक्ति और समूह के जिन परिस्थितियों में रहते हैं उनसे प्रभावित होते है, इसलिये एक मत को मानने में पहले से ही एक मानसिक निर्णय और संकल्प विद्यमान है।

क्योंकि समान अवस्थायें और समान अभिरुचियां समान मतों को जन्म देती है, [४३] अतः एक जटिल समाज में अनेक ऐसे जनमत होंगे जो विभिन्न सामाजिक समष्टियों

के मूलतः एकमत विचार को व्यक्त करते हैं। इस अर्थ में, एक जनमत छोट नगरों और साथ ही पेशेवर या अन्य समूहों में मिलता है।[४४] इस "अव्यक्त" (Unarticulated) जनमत को अवधारणात्मक दृष्टि से संपूर्ण राष्ट्र के जनमत से पृथक् समझना चाहिये। यह दूसरी अवधारणा सामूहिक इच्छा (Will) की ओर, न कि राजनैतिक समूह या समुदाय के एक दृष्टिकोण की ओर, निर्देश करती है। इस विशिष्ट अर्थ में, जनमत तीन अर्थों में अपने नाम को सार्थक करता है; पहले, अपनी विषय-वस्तु के संबंध में, जोकि एक राष्ट्र की राजनैतिक दृष्टि से जागरूक जनता है; दूसरे, जहां तक कि यह मत सार्वजनिक रूप से व्यक्त है; तीसरे, जहां तक कि यह सार्वजनिक मसलों की ओर निर्देश करता है।[४५] जनमत की प्रचलित धारणा अस्पष्ट है। यह अनेक व्यक्तियों के हो-हल्ले और जनमतों की प्रायः बेसुरी आवाज़ों और एक राष्ट्र की सामूहिक इच्छा जिसे कि एक व्यक्ति की इच्छा की भांति संयुक्त माना जाता है, स्पष्ट भेद नहीं करती।[४६] इस व्यक्त या विशिष्ट अर्थ में एक राजनैतिक शक्ति के रूप में जनमत को प्रायः सरकारों या संसदों की शक्ति से, जिनके यह आधीन (Super-ordinated) मानी जाती है, पृथक् किया जाता है।[४७]

अनुभवात्मक दृष्टि से, आधुनिक समाज में यह जनमत वस्तुतः संपत्तिशाली, नगरीय और शिक्षित उच्च वर्गों का मत और राजनैतिक इच्छा (Will) बन जाती है। फिर भी इसे अल्प-संपत्तिवाले, ग्राम्य और अशिक्षित वर्गों के सामने एक सही अधिकार-पूर्ण मत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जिससे कि प्रत्येक प्रतिष्ठित नागरिक और वफादार देशभक्त को सहमत होना चाहिय। सामाजिक नियंत्रण के एक साधन के रूप म आधुनिक समाज में जनमत का वही स्थान है जोकि मध्यकालीन समुदायों में धर्म का था, यद्यपि धर्म से भिन्न इसके दावे बौद्धिक, अर्थात् आलोचनात्मक वैज्ञानिक विचार पर आधारित है, जबकि धर्म अजन्मा और चमत्कारयुक्त मे श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है।

केवल यह बौद्धिक आधार ही नहीं, बल्कि यह तथ्य भी, कि जनमत को अभिव्यक्ति और विचारों के संचार के साधनों को नियंत्रित करनेवाले समहों के लक्ष्यों के अनुकूल "बनाया" जा सकता है, यत इसे मूलतः तर्कसंगत समूह की इच्छा की घटना बनाते हैं। जनमत के प्रति संदेह या उससे विच्युति को बहुत कुछ धार्मिक अविश्वास (Heresy) की भांति समाप्त किया जाता है।

यह द्रष्टव्य है कि टॉनीज की जनमत की विवेचना इस विषय के अनेक अन्य लेखकों से दो बातों में भिन्न है। उसका असली (*The*) जनमत से एक जनमत और सामान्यतः. जनमतों का अवधारणात्मक भेद उसे जनमत की मूलतः तर्कसंगत या बौद्धिक प्रकृति की ओर संकेत करने देता है, जबकि अन्य लेखक जनमत के उद्वेगात्मक पहलुओं से अधिक प्रभावित हुए हैं। इसी कारण टॉनीज ने जनमत की एक सिद्धांत की विशेषता के

ग्रहण करने की प्रवृत्ति पर जोर दिया है, जबकि जनमत की प्रचलित धारणा बहुत कुछ ढुलमुल और गिरगिट-सी प्रकृति की है।

विशुद्ध और प्रायोगिक समाजशास्त्र के बीच की कड़ी को *Soziale Bezugsgebilde* के सिद्धांत द्वारा अर्थात् आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक या नैतिक प्रकार की क्रियाओं की वह प्रणालियां "जिनमें कि सामाजिक इच्छा अपने कर्म का क्षेत्र पाती है" जुटाया गया है।[४८] टॉनीज की समाजशास्त्रीय प्रणाली के इस अंश को सबसे कम विकसित कहा जा सकता है। ययां धर्म या कला का एक सामान्य समाजशास्त्र और ऐसे ही सिद्धांत प्रणाली के अंतर्गत स्थान पाते हैं।

(च) प्रायोगिक (Applied) या विशेष समाजशास्त्र
टॉनीज और मार्क्स

टॉनीज ने दर्शाया है कि सामाजिक विकासवाद के मार्ग में तर्कसंगत (*Kurwillige*) धारणायें और समाजीय *Gesellschaftliche* सामाजिक इकाइयां और मान (Norms) मुख्यतः व्यापार से, आधुनिक राज्य से और विज्ञान से उत्पन्न होती है। इस प्रश्न पर कि अर्थशास्त्र राजनीति और संस्कृति के तीन क्षेत्रों में से, जिनके अंतर्गत हम सामाजिक जीवन की एकता को विश्लेषणात्मक प्रविवेक की आवश्यकता के अंतर्गत बांटने के अभ्यस्त हैं—इसे सामाजिक विकासवाद में प्रमुख भूमिका या अधिकतम अंशो में भिन्नता (Variability) दी जानी चाहिये। टॉनीज ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या या, वह यह कहना अधिक पसंद करता था, कि सामाजिक विकासवाद की यथार्थवादी व्याख्या का पक्ष लिया।[४९] इस संबंध में संभवतः टॉनीज इंगलैंड और फ्रांस में सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी मे समाज-सिद्धांत के पक्ष की अपेक्षा कार्ल मार्क्स के कम प्रभाव में था। जर्मनी में यह परंपरा अध्यात्मवाद (Idealism) के दार्शनिक संप्रदाय द्वारा टूट चुकी थी, इसे कार्ल मार्क्स ने पुनर्जीवित किया और इसे राजनैतिक संघर्ष के एक नारे के रूप में अपनाया गया जिससे कि महान् जनता में इसकी प्रतिष्ठा गिर गई। जबकि मार्क्स ने "उत्पादन की शैलियो" में प्राद्योगिक (Technological) अवस्थाओं को एक महत्त्वपूर्ण स्थान देकर सामाजिक विकासवाद को समझाने के लिये आर्थिक क्षेत्र के बाहर के कारक पर मुख्यतः भरोसा किया, टॉनीज ने पूंजीवाद को व्यापार, मुख्यतः बड़े पैमाने के व्यापार और विदेशी व्यापार का, जोकि मुद्रा से वस्तुओं और वस्तुओं से मुद्रा के सरल विनिमय तक सीमित नहीं है किंतु जिसका कार्य मुद्रा का लाभ के लिये "पूंजी" के रूप में प्रयोग है, परिणाम कल्पित किया है। औद्योगिक और कृषि उत्पादन के क्षेत्र में बगानों की अर्थव्यवस्था, स्वदेशी (Home) उद्योग, दूकानों (Sweatshop) और कारखानों के रूप में इस प्रकार के व्यापार के प्रवेश ने आर्थिक जीवन की समस्त पुरानी परंपरागत "सामुदायिक" अवस्थाओं को तोड़ दिया।[५०]

फिर भी धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों में मुख्यतः अभिरुचि रखने के कारण टॉनीज ने सामाजिक जीवन में विचारों के महत्त्व को निश्चय ही कम नहीं आंका है। उसके लिये,

इतिहास की आर्थिक (यथार्थवादी) व्याख्या विश्लेषण की एक उपयोगी विधि थी किंतु वह आखिरी चीज न थी। फिर भी उसका यह मत था कि केवल वही विचार, चाहे वह सही हो या नहीं, वास्तविक सत्यता और महत्त्व रखते हैं जोकि प्रभावशाली सामाजिक समूहों के वास्तविक या कल्पित हितों को व्यक्त करते हैं। वस्तुतः वह ही सामाजिक जीवन पर अपना प्रभाव डालते हैं। इसीलिये उसने आचारवान् सामाजिक सिद्धांतों के प्रचार से नहीं, बल्कि सामाजिक विरोध में लिप्त दलों के अच्छी तरह समझे गये, सामूहिक हितों को अपील कर सामाजिक सुधार की आशा की। इसी कारण से टॉनीज ने राजनैतिक प्रतिक्रियावादियों द्वारा मुख्यतः मान्य इस मत को, कि आधुनिक सामाजिक प्रणाली के दोषों का कारण व्यक्तिवादी सामाजिक दर्शन के विद्रोही सिद्धांत हैं, नापसंद किया है। उसने इन सिद्धांतों को आधुनिक सामाजिक व्यवस्था को समझने और उसकी वकालत करने के प्रयास समझा। टॉमस हॉब्स ने राजनैतिक संस्थाओं के समस्त सामुदायिक (Communal) रूपों के विरुद्ध आधुनिक राज्य के क्रांतिकारी नये सिद्धांत को स्वीकार किया और उसे सामाजिक संविदा (Covenant) के सिद्धांत द्वारा विश्वसनीय बनाया। इसे टॉनीज ने हॉब्स के राज्य के सिद्धांत की समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विशेषतः और सामान्यतः सामाजिक संविदा के तर्कसंगत सिद्धांत के रूप में सराहा। चूंकि आधुनिक सर्वशक्तिमान् केंद्राभिमुखी राज्य को, जोकि सिद्धांततः किसी प्रजातीय (Ethnic) आधार पर स्वतंत्र है, वस्तुतः केवल एक तर्कसंगत रचना द्वारा ही समझा जा सकता है और प्रभुसत्ता (Sovereignty) के सिद्धांत की विचार की कुछ ऐसी ही काल्पनिक विधियों द्वारा उचित ठहराया जा सकता था। इस माने में आधुनिक राज्य प्राचीन नगर ("समुदाय" सिद्धांत का प्रतिनिधि) और मध्यकालीन राज्यों और सामंतवादी और *Standischen* मध्यकालीन राज्यों दोनों से पृथक् है। टॉनीज राज्य को एक क्रांतिकारी शक्ति मानता है जो सामाजिक व्यवस्था के अधिकांश पुराने तत्वों को दुर्बल बनाती या नष्ट तक कर देती है और उसके स्थान पर एक नये "साहचर्ययुक्त" (Associational) व्यवस्था को स्थापित करती है।

(छ) राजनैतिक धारणा और व्यक्तिगत अनुभव

टॉनीज को उसके सिद्धांत में अंतर्निहित पूर्वाग्रह (Bias) के लिये दोषी ठहराया गया है। उसे निराशावादी और रोमांटिक तक कहा गया है। ऐसी आलोचना के विरुद्ध जो सर्वप्रथम उसके बुजुर्ग मित्र प्रसिद्ध डेनिश दार्शनिक हेराल्ड हौफडिंग ने की और हाल ही में एल० फान वाइस ने की—टॉनीज यह कैफियत देकर अपना बचाव करता कि उसका उद्देश्य केवल सामाजिक विकासवाद के अपरिवर्तनीय मार्ग का विवरण देना था जिसकी कि कभी-कभी उसने मानव प्राणियों के जीवनचक्र से तुलना की थी। कोई नहीं कह सकता कि यौवन या वृद्धावस्था "श्रेष्ठ" थी, और इस प्रकार इस प्रश्न को रखने में कोई तुक न थी। और फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ मायनों में यौवन बुढ़ापे से बेहतर है और दूसरे मायनों में वृद्धावस्था के अपने लाभ

हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक चिंतन के विकास पर टॉनीज का निर्णय और धर्मशास्त्र और अध्यात्म-दर्शन पर उसकी विजय—जिस विजय का उसने स्वागत किया—वह पूर्णतः विज्ञानवादी (Positive) थी। वह संकीर्ण अर्थों में धर्म से स्वतंत्र, "आचारवान् संस्कृति" (Ethical culture) की स्थापना के आंदोलन का समर्थक था। यद्यपि उसने आधुनिक राज्य को एक "साहचर्ययुक्त" समूह कहा, फिर भी उसे बुराई समझा, दूसरी ओर उसका विश्वास था कि, आधुनिक पूंजीवाद के विकास से उत्पन्न अनेक सामाजिक बुराइयों का समाधान किसी प्रकार के सहकारी और श्रमिक-संघ-आंदोलनों के साथ राज्य-समाजवाद के प्रयत्नों से ही संभव है।[५१] टॉनीज एक दृढ़ निर्णयवाला व्यक्ति था और अनेक बातों पर उसके स्थिर मत थे। इसलिये इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूंजीवाद और औद्योगिक समाज के अनेक लक्षणों के प्रति घृणा उसकी अनेक रचनाओं में पर्याप्त स्पष्ट दिखाई देती है। किंतु यदि उसने सामंत समाज पर लिखा होता, वह पूंजीवाद-पूर्व समाज के कुछ लक्षणों की कम कटु निंदा में न चूकता। 'समुदाय और समाज' *Gemeinschaft und Gesellschaft* में ऐसी आलोचना के लिये स्थान न था, चूंकि यह पुस्तक वर्तमान की, न कि अतीत की आलोचना के रूप में लिखी गई थी। टॉनीज की इस प्रमुख पुस्तक के शक्तिशाली और अति विस्तृत प्रभाव का[५२] कारण यह ही न था कि इसमें तीन शताब्दियों से भी अधिक के सामाजिक दर्शन और राजनैतिक सिद्धांत के प्रयत्नों का संश्लेषण था, प्रत्युत् इसमें एक सक्रिय विचारक का उत्साह भी था, जो केवल बौद्धिक विकास से ही नही, बल्कि गहन अनुभव से उत्पन्न हुआ था। टॉनीज स्वयं "सामुदायिक" (Community) मूल्यों और मानों (Norms) से शासित सामाजिक पृष्ठभमि से मूलतः एक "साहचर्ययुक्त" (Associational) प्रकार के सामाजिक वातावरण में सात्मीकरण (Assimilation) की प्रक्रिया से गुजरा था, जबकि एक नवयुवक की स्थिति में उसने खेतों और छोटे कस्बों के ग्राम प्रदेश को छोड़ बड़े नगरों के संसार में प्रवेश किया था। इसके अतिरिक्त, अपने बाल्यकाल और युवावस्था में घटित राजनैतिक परिवर्तनों में और सामाजिक संघर्षों में उसने जागरूक दृष्टि से जर्मनी में आधुनिक राज्य और पूंजीवादी मध्यमवर्ग (*Burgerliche*) का पूर्ण विकास देखा; अपने जन्मस्थान ईडरस्टैट मे वह ढोर चरानेवाले किसानों के एक समाज के जीवन और चरित्र पर पूंजीवादी व्यावसायिक भावना के प्रभाव को देख चुका था। किंतु उसने यह भी देखा था कि किस प्रकार प्रशिया में स्वैल्सविग और हॉल्सटाइन की डचियों (छोटी रियासतों) के मिल जाने पर उन्हें डेनिश शासन के अंतर्गत संरक्षित स्व-शासन के पर्याप्त अवशेषों को खोना पड़ा और वे अर्ध-मध्यकालीन राजनैतिक समुदाय से एक आधुनिक राज्य के अंतर्गत एकमात्र प्रशासक जिले में परिवर्तित हो चुके थे। उसके यौवन के प्रारंभ में श्रमिकों की पहली बड़ी हड़तालें और समाजवादी श्रमिक आंदोलन पर बिस्मार्क के आक्रमण घटित हुए जब टॉनीज ने श्रमिकों का पक्ष लिया तब वह केवल अपने समाजशास्त्रीय सिद्धांत से ही प्रेरित न था। साधारण लोगों से संपर्क स्थापित करने की और उनका विश्वास प्राप्त करने की

असाधारण क्षमता होने के कारण उसने बहुत प्रारंभ में ही श्रमिकवर्ग के जीवन की अवस्थाओं और "श्रमिक के मन में क्या था", इसका विस्तृत ज्ञान अर्जित कर चुका था, फिर भी वह केवल श्रमिकवर्ग के कल्याण से ही नही परंतु समस्त राष्ट्र के भविष्य के बारे में भी चिंतित था। अपने मित्र और शिक्षक एडौल्फ वैगनर और दूसरे तथाकथित *Kathedersozialisten* की भांति उसका विश्वास था कि भविष्य में क्रांतिकारी समाज-सुधारों द्वारा ही सामाजिक शाति की सुरक्षा की जा सकती है।[५३] सामूहिक जीवन की शांतिपूर्ण अवस्था स्पष्ट ही उसे किसी समाज-व्यवस्था का लक्ष्य और अर्थ लगती थी, यहां तक कि विशुद्ध समाजशास्त्र में भी उसने इसके मूल विषय के रूप में केवल मनुष्यों के बीच विद्यमान शांतिपूर्ण संबधों को ही स्थान दिया।[५४] इसीलिये उसने किसी भी प्रकार की सामाजिक क्रांति की निदा की, चूंकि उसका विश्वास था कि विद्यमान संस्थाओं का आकस्मिक और सिद्धांतवादी पुनर्निर्माण बेहतर अवस्थाओं की ओर न ले जाकर नई और अप्रत्याशित सामाजिक बुराइयों को जन्म देगा।[५५] दूसरी ओर उसने आधुनिक समाज में विद्यमान संघर्षो और तनावों के कारण ही अपने विज्ञान को उचित और आवश्यक ठहराया। टॉनीज ने १९२६ मे लिखा :

"सामाजिक जीवन की आधारभूत अवस्थाओ मे वर्तमान विशाल परिवर्तन, वह परिवर्तन—जिसने पिछले सौ वर्षो से समाज की सत्ता को ही अधिकाधिक खतरा पहुंचाया है—सामाजिक समस्या ही निस्सदेह समाजशास्त्र के नये विज्ञान की आवश्यकता और महत्त्व को सिद्ध करती है। इसमें सांस्कृतिक विज्ञान वही क्रमबद्ध पूर्णता पाते है जोकि प्राणिशास्त्र विवरणात्मक प्राकृतिक विज्ञानों को देना चाहता है। आवश्यकता फैसला करती है। अपने प्रारंभ से लेकर आज तक श्रमिक-आंदोलन सामाजिक वर्गो के संबंधों और विरोधों के विषय में सोचने का महत्त्वपूर्ण उद्दीपक रहा है····।"

उसने कहा कि समाजशास्त्र राजनीतिज्ञ का विज्ञान है—यदि आज के राजनीतिज्ञ का नही तो अवश्यभावीरूप से वह कल के राजनीतिज्ञ का होगा। फिर भी हम *Einfuhrung* की भूमिका मे पढ़ते है कि तुलना मे संकीर्ण सीमाओं के अंतर्गत ही, राष्ट्रों का भविष्य राजनीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञो द्वारा ढाला जायेगा। मूल तथ्य था कि जीवन की सामान्य अवस्थायें राष्ट्र के जन-साधारण द्वारा इच्छा करने और इच्छा न करने को प्रभावित करनेवाला कल्याण या दुर्भावना थी; ये श्रमिको के साथ दूरदर्शी, अनुभवी और विचारवान् तत्व थे, जहां तक कि बादवाले तत्व जनता की अवस्थाओं के सुधार में सच्चाई से बराबर लगे हुए थे। यह सामान्यतः विदित था कि इस संबंध में कितना मतवैषम्य था—और थोड़े ही लोग थे जोकि किसी वर्ग या पदविशेष के लाभ के लिये कार्य करने के बजाय अपने राष्ट्र (केवल अपने राष्ट्र के लिये) और समस्त मानवता के भावी जीवन और कल्याण के लिये सोचने और कार्य करने की इच्छा और सामर्थ्य रखते थे। यदि समाजशास्त्र विस्तार से जनता और मानवता के इन मित्रों की संख्या में वृद्धि

करने में सहायता हो सके और यदि यह उनके ज्ञान को पुष्ट और गहरा बना सके तो वह अपने औचित्य को सिद्ध कर सकेगा।

टॉनीज की प्रमुख समाजशास्त्रीय रचनायें तथा उन पर मुख्य समालोचनाओं की चुनी हुई सूची निम्नलिखित है :

टॉनीज की रचनायें

Gemeinschaft und Gesellschaft (1887), 8th ed. Leipzig, 1935.

Fundamental Concepts of Sociology: Gemeinschaft und Gesellschaft Translated and supplemented by Charles P. Loomis, New York, 1940.

Thomas Hobbes, Leben und Lehre (1896) 3d ed., Stuttgart, 1925.

Die Entwicklung der sozialen Frage (1907). 4th ed. Berlin, 1926.

"Das Wesen der Soziologie" (Vortrag in der Gehe-Stiftung), *Neue Ziet-und Streitfragen*, Vol. IV (1907).

"Entwicklung der Soziologie in Deutschland im 19. Jahrhunert."

Entwicklung der deutschen Volksuritschaftslehre im 19, *Jahrhundert* : *Festgabe fur Gustav Schmoller*. Leipzig, 1908.

Thomas Pobbes, Leben und Lehro (1896). Stuttgart, 1925.

Die Sitte. Franfurt am Main, 1909.

Der englische Staat und der deutsche Staat. Berlin, 1917.

Marx Leben and Lehre. Berlin, 1921.

Kritik der offentlichen Meinung. Berlin, 1922.

"Zweck und Mittel im sozialen Leben", *Hauptprobleme der Soziologie* : *Erinnerungsgabe fur Max Weber*. Munchen and Leipzig, 1923.

"Die Einteilung der Soziologie." *Zeitschrift fur die gesamte Staatwissenichaft*, Vol. LXXIX (1925), *Atti del 5 congresso internazionale di filsofia*, Naples, 1925 में भी प्रकाशित।

Fortschritt und soziale Entwicklung : *Geschichtschtsphilsophische Ansicheten*, Karlsruhe, 1926.

"The Concetpt of Law and Human Progress "Translated by Karl J. Arndt and C. L. Folse in *Social Forces*, Vo.. XIX, No. 1, (1940).

Sogiologische Studien und Kritiken, Vols. I (Jena, 1925); II (Jena 1926) ; III (Zena 1929).

Einfuhrung in die Soziologie. Stuttgart, 1931.

Inledning till Sociologien Translated by E. Bosse, Oslo, 1932.

"Eigentum", "Moderne Familie", "Gemeinschaft und Gesellschaft." "Stande und Klassen", "articles in *Handworterbuch der Soziologie*, Stuttgart, 1931.

Geist der Neuzeit, Leipzig, 1935.

"Mein Verhaltnis zur Soziologie", in R. Thurnwald (ed.).

So iologie von heute : Ein Symposion der Zeistchrift fur Volkerpsychologie und Soziologie. Leipzig, 1932.

"Philosophical Terminology", *Mind : Quarterly Review of Psychology*, Vols VIII (new ser., 1899) and IX (1900).

"The Problems of Social Stucture", *Congress of Arts and Science : Universal Exposition*, St. Louis, 1904.

आलोचनायें और व्याख्यायें

Stoltenberg, H. L, *Ein Fuhrer durch F. Tonnies "Gemeinshaft und Gessellschaft."*

Rosenbaum, Eduard, "Ferdinand Tonnies' Work," *Schomoller's Jahrbuch fur Gestzgebung*, XXXVIII (1914), 14.

Wirth, Louis, "The Sociology of Ferdinand Tonnies," *American Journal of Sociology*, Vol. XXXII (1926).

Leeman's V, *Ferdinand Tonnies en de duitsche Sociologie*, Brugge, 1932; *F. Tonnies et la sociologie contemporaine en Allemmangne*, Paris, 1933.

Heberle, R., "Furdinand Tonnies," *Internationales Handworterbuch des Gewerkschaftswesens*, Berlin, 1932.

Jahn, Georg, *Ferdinand Tonnies*, Leipzig, 1935.

Freyer, Hans, "Ferdinand Tonnies und die deutsche Soziologie," *Weltwirtschaftliches Archiv*, Vol. XLIV (1936).

Salomon, Albert, "In Memoriam Ferdinand Tonnies (1835-1936)," *Social Research*, Vo. III (1936).

सबसे विस्तृत ग्रन्थ-सूची के लिए देखिये : Brencke, Else, "Verzeichnis der Schriften von Ferdinand Tonnies aus den Jahren 1875 bis 1935," *Eeine und angewandte Soziologie : Eine Festgabe fur Ferdinand Tonnes zu seinem achtzigsten Geburtstage*, Leipzig, 1936.

Jurkat, Earnst, "Die Soziolozie von Ferdinand Tonnies," "*Geistige Arbeit*, November, 1936.

Kolner Vierteljahrshefte fur Soziologie Vol. V, Heft 1/2 (1925) में टॉनीज़ की सत्तरवीं वर्षगांठ पर समर्पित अनेक लेख संग्रहीत हैं Jurkat, Ernst, (ed.) *Reine und angewandte Soziologie : Eine Festgabe fur Ferdinand Tonnies zu seinem* 80. *Geburtstage*, Leipzig, 1936.

Parsons, Talcott, *The Structure of Social Action*, 1937.

Zimmerman, Carle C., *The Changing Community* New York, 1938.

टिप्पणियां

१. Heinrich Meyer, "Theodor Storm und Ferdinand Tonnies" *Monatshefte fur deutschen Unterricht.* (*Vol.* XXXII (Madison, Wis., December, 1940). १८७२-८८ में स्टार्म और टॉनीज के बीच हुए प्रकाशित पत्र-व्यहार में उसकी जीवनी से संबंधित मूल्यवान् सामग्री है।

२, देखिये Barnes and Becker, *Social Thought from Lore to Science* (Boston, 1938), II, 881.

३. "Mein Verhaltnis zur Soziologie," R. Thurnwald (ed.) *Soziologie von heute : Ein Symposion der Zeitschrift fur Volkerpsychologie und Soziologie* (Leipzig, 1932), p. 103

४. *Ibid.*, (Translation by R. Hebrle).

५. *Ibid.*, p. 104.

६. १९०४ में टॉनीज अपने घनिष्ट मित्र प्रोफेसर कुनो फांके, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में जर्मन विद्या के अध्यक्ष से मिलने गया और एक्शपोजीशन के संबंध में सेंट लूई में हुए कला और विज्ञान के सम्मेलन में उसने एक निबंध पढ़ा। उसके बाद से अमेरिकन जीवन और उसकी समस्याओं के ज्ञान के प्रति उसकी गहरी अभिरुचि हो गई।

७. को *Gemeinschaft* समुदाय के रूप में *Gesellschaft* को "समाज" और कुछ दशाओं में "साहचर्य" से अधिक बेहतर में अनुप्राणित किया जा सकता है। किसी गलतफहमी से बचने और इस बात पर जार देने के लिये कि यह शब्द टॉनीज की विशिष्ट आधारणाओं को प्रकट करते हैं, संपूर्ण निबंध मे जर्मन शब्दों को ही रखा गया है।

८. *Die Sitte* (Frankfurt, 1909).

९. *Kritik der offentlichen Meinung* (Berlin 1922).

१०. "Hafenarbeiter und Seeleute in Hamburg vor dem Strike (*sic*) 1896—97," *Archiv fur Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, Vo.. X, (1897); "Die Lage der in der Seeschiffahrt beschaftigten Arbeiter, "*Schriften des Vereins fur Sozialpolitik*, Vol. CIV (1903) में "Der Hamburger Strike von 1896-97," *ibid.*; "Die Ostseehafen Flensburg, Kiel, Lubeck."

११. "Stud iezur schleswig-holsteinischen Agrarstatitisk," "*Archiv fur Sozialwsissenschaft und Sozialpolitik*, Vol. XXX (1910).

१२. "Verbrechertum in Schleswig-Holstein," *ibid.*, Vols. LII (1924) और LVIII (1927); "Die schwere Kriminalitat von Mannern in Schleswig-Holstein in den Jahren 1899–1914 in Verbindung mit. Dr. E. Jurkat," *Zeitschrift fur Volkerpsychologie*, Vol. V (1929); "Ortsherkunft von Verbrechern in Schltwing-Holstein," *Deutsches statistisches Zentralblatt*, Vol XXI (1929) ; *Uneheliche und verwaiste Verbrecher* "Kriminal statistische Abhandlungen, " Heft 14 (leipzig. 1930).

१३. "Der Selbstmord in Schleswig-Holstein : Eine statisch-soziologishe Studie' "*Veroffentlichungen der schl. holst. Universitats-Gesellschaft* (Breslau, 1927) ; "Der Selbstmord in Schleswig-Holstein," *Nordelbingen*, Vol. VIII (1930).

१४. "Die Gesetzmassigkeit in der Bewegung der Bevolkerung, "*Archiv fur Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, Vol. XXXIX, No. 1 (1914) और No. 3, (1915).

१५. "Eine neue Methode der Vergleiche statischer Reihen, "*Schmoller's Jahrbuch*, Vo. XXX (1909) : H. Striefler, "Zur Methode der Rangkorrelation nach Tonnies, "*Deutsches statistiches Zentralblatt*, Vol. XXIX, No. 5 (1931) भी देखिये।

१६. Ferdinand Tonnies, "Die Einteilung der Soziaologie," *Zeitschrift fur die gesamte, Staatswissenschaft*, Vol. LXXIX (1925).

१७. टॉनीज के लिए *general Soziologie* शब्द का अर्थ भिन्न है : इसमे मानव समाज से संबद्ध विज्ञान सम्मिलित है, जबकि *spezielle Soziologie* या उचित अर्थ में समाजशास्त्र के "सामाजिक इकाइयो के अध्ययन तक सीमित है और उदाहरणार्थ समाज मनोविज्ञान और समाजिक प्राणिशास्त्र इससे बाहर है।

१८. "Wege und Ziele der Soziologie," प्रथम जर्मन समाजशास्त्र सभा के अध्यक्षीण भाषण में टॉनीज ने कहा कि समाजशात्र मूलतः एक दार्शनिक विज्ञान है "····इसभांति समाजशास्त्र मुख्यतः आधारणाओं से संबंधित है····उन्हें ऐसी अवधारणाओं को सूत्रबद्ध करना होता है, अर्थात् उन्हें प्रयोग के लिये तैयार करना होता है,····जिससे कि अनुभव के तथ्यों को उनपर जैसे कीलों या कब्जों पर टागा जा सके। इस क्षेत्र में उसका कार्य इतना तथ्यों को जानना नही है जितना कि उन्हें जानने के लिये सुलभ और उपयोगी यत्रों का निर्माण करना है। यह सर्वोच्च महत्त्व का कार्य है, जिससे प्रायः उन्हें ही लाभ पहुंचता है, और कोरे अनुभववादी जिसे अधिक नही सराहते।" (*Soziologische Studien und Kritiken* II (Jena, 1926), 131).

१९. "जबतक कि विशुद्ध समाजशास्त्र अवधारणाओ और सिद्धातों की एक ठोस प्रणाली के रूपमे स्थापित नही हो जाता, तबतक प्रायोगिक समाजशास्त्र को ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करने के लिए संभवतः केवल कुछ अवधारणाओं और सिद्धातों के प्रयोग का प्रयास मात्र समझना चाहिए। प्रायोगिक समाजशास्त्र सदा उसके संपर्क में रहेगा जिसे इतिहास के दर्शन शीर्षक के अंतर्गत कुछ महत्व मिल गया है।····जहां तक इतिहास के दर्शन की अपेक्षा प्रायोगिक समाजशास्त्र अधिक वैज्ञानिक होना चाहता है एक कार्य जो इसके निकट है वह स्वयं एक संस्कृति, संस्कृतियों के वृद्धि और पतन मे उनकी अवधियो का अध्ययन है····समाजशात्रीय शब्दावलि और सिद्धात की सहायता से प्रायोगिक समाजशास्त्र हाल के क्षण तक यूरोपीय अवस्थाओं के विकास की धारा का अनुसरण कर सकता है। यह इस प्रकार वर्तमान सामाजिक जीवन के अध्ययन में जो गवेषणा यथासभव पूर्ण होनी चाहिए, शेष होगा विशेष समाजशास्त्र का तीसरा भाग इस गवेषणा को इसका कार्य बनाता है, एक ऐसा भाग जो अपनी पद्धति मे विशुद्ध और प्रायोगिक दोनों से ही पृथक है। इसकी पद्धति····अनुभवमूलक, अर्थात् आगमनात्मक है। इसलिऐ हम इसे अनुभवात्मक समाजशास्त्र या समाजवृत्त कहते है।" (*Einfuhrung in die Soziologie* (Stuttgart, 1931). pp. 317, 319-21).

२०. *Fortschritt und soizale Entiwicklung* : *Geschichtsphilsophische Ansichten* (Karlsruhe, 1926).

२१. टिप्पणी १९ के उद्धरण से तुलना कीजिये।

२२. यथासभव संख्याशास्त्र का प्रयोग होगा। टॉनीज ने अपने *Soziographie* के विचार को पुरानी किस्म की जर्मन *Statistik* से तुलना कर, *Soziogaphie* को वह जिसका संशोधित रूप समझता था, व्याख्या करना पसंद करता था।

२३. देखिये R. Heberle, "Soziographie, "*Handworterbuch der Sozio-*

logie (Struttgart, 1931)। यहां पर टॉनीज की *Soziographie* की आवधारणा की आलोचना की गई है, और इस विषय की अधिक कठोर परिभाषा की गई है।

२४. टॉनीज ने विशेष रूप से "सैद्धांतिक" (Formal) समाजशास्त्र से ऐतिहासिक समाजशास्त्र के मेल की संभावना दर्शायी है।

२५. टॉनीज ने अपने सिद्धांत के स्रोतों का संक्षिप्त विवरण "Mein Verhaltnis. zur Soziologie. "Thurnwald (ed.) *op. cit.* में दिया है।

२६. *Kuren* का अर्थ है "चुनना।"

२७. यह स्पष्ट है कि *Wesenwille* का विचार शोपनहार की *bewusstloser Wille* से लिया गया है।

२८. *Gemeinshaft* की आवधारणा के लिए देखिये Tonnies, *Studien und Kritiken*, II. 271.

२९. इस प्रकार *Wessenwille* की आवधारणा बहुत कुछ मैक्स बेबर के उद्वेगात्मक-रागात्मक, परंपरागत और *wertrationales* व्यवहार के प्ररूपो से मिलती है।

३०. मिलाइये Theodor Geiger, *Die Gestalten der Gesellung* (Karlsruhe 1922) pp. iii, 22.

३१. एक व्यक्तिगत *gemeinschaftliche* संबंध (उदाहरणार्थ एक प्रेमी-युगल) एक *gesellschaftliche* संबंध मे परिवर्तित हो सकता है (यदि विवाह को केवल प्रतिष्ठा के लिये अविच्छिन्न रखा जाता है)।

३२. अवश्य ही टॉनीज एक समूह के सदस्यों के संपूर्ण के साथ स्पष्ट संबंधों और एक दूसरे के साथ उनके व्यक्तिगत संबंधों के बीच भेद नहीं करता। उदाहरण के लिये, एक संयुक्त पूंजी की कंपनी एक सामाजिक रूप में (Gesellschaft) भी रहती है, यदि हिस्सेदार या, उनके सक्रिय तत्त्व सदैव निजी मित्र है या रिश्तेदारी से संयुक्त है। इस भेद को Max Graf Solms ने *Gestalt und Gerust der Menschenwelt* (Kalsruhe, 1929) में स्पष्ट किया है।

३३. जर्मनी में समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान का भेद उतना अधिक नहीं है जितना कि संयुक्त राज्य अमेरिका मे।

३४. *Der englische und der deutsche Staat* (berlin, 1917).

३५. इस सिद्धात की E. Jurkat ने *Das soziologische Wertproblem* (Keil, 1930) में बड़ी योग्यता से व्याख्या की है।

३६. "Einteilung der Soziologie, " *Studien und kritiken*, 11, 438.

३७. *Ibid.*, pp. 438 ff.

३८. *Einfuhrung in die Soziologie*. p. 218.

३९. *Ibid.*. p. 220.

४०. Pp. 217 ff.

४१. "Macht und Wert der offentlichen Meinung, *Dioskuren: Jahrbuch fur Geisteswissenschaften*, ed. Walter Strich, II 1922), 72—99 भी ।

४२ *Kritik*, pp. vi-vii.

४३. *Ibid.*, p. 27.

४४. *Ibid.*, p. 103.

४५. *Ibid.*, p. 131 ; "Macht und Wert," p. 82.

४६ "Macht und Wert," p. 83.

४७. *Ibid.*, p. 73.

४८. "Eintcilung," p. 441 : *Einfuhrung*, Book V.

४९. *Einfuhrung*, pp. 270 ff.

५०. आधुनिक समाज के विकासवाद पर इन विचारों की व्याख्या उपरोक्त ग्रंथ के लिये सुरक्षित थी ।

५१. "Vorrede zu *Gemeinschaft und Gesellschaft*" (3d ed., 1919) ; *Studien und Kritiken*, I, 58 ff मे पुनःमुद्रित ।

५२ यहा पर इस प्रभाव की विवेचना नही की जा सकती । यह जर्मनी से बहुत दूर तक पहुचा है; टॉनीज के प्रभाव के अत्याधिक प्रत्यक्ष लक्षणो को आस्ट्रिया और दक्षिणी पूर्वी यूरोप स्केडिनेविया, यहा तक कि जापान और चीन तक ढूंढा जा सकता है । इसका निर्देशमात्र किया जा सकता है कि सोम्बार्ट और मैक्स वैबर दोनों ने *Gemeinschaft* और *Gesellschaft* की अवधारणा को स्वीकार किया । ऐसा माना जाता है कि स्पेंगलर की *Untergang des Abendlan des* मुख्यतः टोनीज के विचारों से प्रभावित हुई है, यद्यपि टॉनीज को कही भी उद्धृत नहीं किया गया है । संयुक्त राज्य में हाल ही मे अधिकाधिक समाजशास्त्रियो द्वारा टॉनीज के विचारों को स्वीकार किया गया है, इनमें से कुछ प्रमुख नाम ही यहा दिये जा सकते है : H. Becker, E. F. Eubank, R. M. MacIver, T. Parsons, Carle C. Zimmerman, *Gemeinshaft und Gesellschaft* का अनुवादक Chales P. Loomis.

५३. मिलाइये *Die Entwicklung der sozialen Frage bis zum Weltkrieg* (Berlin, 1926).

५४. *Soziologie von heute* में वाइस की आलोचना और टॉनीज के प्रत्युत्तर की तुलना कीजिये ।

५५. *Einfuhrung*, p. ix

अध्याय छः

मैक्स वैबर का पूंजीवाद और आधुनिक संस्थाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

टैल्कॉट पारसंस

हार्वर्ड विश्वविद्यालय

१. वैबर का जीवनवृत्त और शैक्षणिक जीवन

मैक्स वैबर (Max Weber) का जन्म १८६४ में बर्लिन में हुआ था।[१] उसका पिता तत्कालीन राजनीति में एक प्रमुख व्यक्ति था, वह अनेक वर्षों तक राइखस्टाग का सदस्य और राष्ट्रीय उदार दल का एक नेता रहा। जब मैक्स एक युवक ही था वह अपने घर में अपने समय के प्रमुख राजनैतिक व्यक्तियों से मिला। विश्वविद्यालय में मैक्स ने ऐतिहासिक संप्रदाय के प्रभाव के अंतर्गत, जो उस समय जर्मन विश्वविद्यालयों में प्रबल था, कानून का अध्ययन किया। थ्योडर मौमसन और एडौल्फ गोल्डशिमिट उसके अधिक प्रमुख अध्यापकों में से थे।

बहुत छोटी आयु से ही उसे एक विशेष रूप से योग्य विद्यार्थी माना गया और स्पष्टतः बिना किसी नूनच के उसने शैक्षणिक जीवन के मार्ग को अपनाया। उचित समय पर वह बर्लिन विश्वविद्यालय में कानूनशास्त्र का लेक्चरर नियुक्त हो गया, और यह आशा की जा सकती थी कि वह वहां कानून का प्रोफेसर बन जाता। किंतु उसका जीवन नाटकीय ढंग से बदल गया जबकि १८९३ में फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय ने उसे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पद के लिये आमंत्रित किया। कुछ ही वर्ष बाद उसे जर्मनी में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के एक सबसे प्रमख पद पर हीडलबर्ग बुलाया गया, इससे पहले इस स्थान पर प्रसिद्ध ऐतिहासिक अर्थशास्त्री कार्ल क्नाइज था।

वैबर का कानूनशास्त्र से अर्थशास्त्र की ओर जाना सर्वथा अतर्कसंगत न था, उसकी कानूनी अभिरुचि शुरू से ही ऐतिहासिक दिशा में थी और इस संबंध में उसकी अभिरुचि कानून और आर्थिक संगठन और उसके द्वारा अध्ययन किये गये समाजों की अवस्थाओं के संबंधों में अधिकाधिक बढ़ गई। मध्यकाल में व्यापारिक कंपनियों पर उसके डॉक्टरेट निबंध में यह प्रवृत्ति दिखाई दी और वह आर्थिक रुझान लिये हुये काननी इतिहास से अधिकाधिक आर्थिक इतिहास की ओर चला गया।

अपनी प्रारंभिक अवस्था में उसका जीवन तत्कालीन जर्मन शैक्षणिक जगत् में अत्यंत उज्ज्वल था। वह असाधारण रूप से छोटी आयु में बहुत ऊंचे पद पर पहुंच गया और उसने बड़ी ख्याति पाई। किंतु १९०० में "स्नायुक विशृंखलता" (Nervous Breakdown) के भीषण रोग ने उसे हठात् बाधा पहुंचाई जिससे कि वह चार वर्ष पूर्णतः कार्य से पृथक् रहा। उसकी बीमारी इतनी लंबी खिंची कि उसे प्रोफेसर पद से त्यागपत्र देने को बाध्य होना पड़ा, और चूंकि पुनः कार्य पर आने के बाद भी उसका स्वास्थ्य कभी भी अच्छा न रहा, इसलिये वह अनेक वर्षों तक हीडलबर्ग मे बिना किसी अधिकारी पद के एक प्राइवेट विद्यार्थी की हैसियत से रहा। केवल अपने जीवन के अंतिम दिनों में १९१८ मे उसने अध्यापन पुनः प्रारम्भ किया। १९१८ का ग्रीष्मसत्र उसने वीयना विश्वविद्यालय मे एक अतिथि प्रोफेसर के रूप में व्यतीत किया और वहा से शीघ्र ही वह लूजो ब्रेन्टानों के उत्तराधिकारी के रूप मे म्यूनिख में अर्थशास्त्र का नियमित प्रोफेसर बनकर गया। वहां पर वह अपने दूसरे अध्यापन सत्र मे केवल छप्पन वर्ष की आयु में अकस्मात निमोनिया से मर गया।

इन बीच के वर्षो मे वैबर केवल एक विद्वान् के रूप मे और विद्वत् कार्यो की उन्नति में ही नही, बल्कि राजनीति मे भी सक्रिय रहा। उसकी सदा ही राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी थी और वह बारीकी से उनका अध्ययन करता था। १९०५ मे बहुत थोडे ही समय मे उसने उस वर्ष की असफल रूसी क्राति के संबंध में समाचारपत्र पढ़ने के लिये रूसी भाषा सीखी। उसकी अनेक प्रमुख राजनैतिक व्यक्तियों से व्यक्तिगत जान-पहचान थी और वह उन्हे पीछे से पर्याप्त सलाह देता था। वह जर्मनी के उन पहले प्रमुख लोगों में से था जोकि कैसर विलहेल्म द्वितीय के शासन के विरुद्ध हो गये। युद्धकाल में उसने अनियत्रित पनडुब्बी-युद्ध के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण स्मृति-पत्र लिखा और यह भविष्यवाणी की कि अततोगत्वा यह संयुक्त राज्य को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में लायेगा। युद्ध की समाप्ति के निकट उसने *Frankfurter Zeitung* के लिये अनेक लेख लिखे, और ऐसा लगता था कि क्रांति के साथ वह एक प्रमुख राजनैतिक नेता के रूप में आ सकता है। उसने वार्साय की शांति सम्मेलन मे युद्ध मे जर्मनी के अपराध पर प्रसिद्ध स्मृति-पत्र को प्रस्तुत करनेवाले कमीशन के सदस्य की हैसियत से कार्य किया, और वह वीमर संविधान का पहला मसविदा बनानेवाले कमीशन का भी सदस्य था। यह राजनैतिक सयोग था कि वह संविधान-सभा के चुनाव मे असफल रहा और इसके शीघ्र बाद ही उसकी मत्यु हो गई।

अपनी विद्वत्तापूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त, शैक्षणिक जगत् में वैबर अपने दो महत्त्वपूर्ण कार्यो के लिये उल्लेखनीय था। अन्य किसी एक व्यक्ति की तुलना में "सामाजिक ज्ञान और सामाजिक राजनीति ग्रंथमाला" *Archiv fur Sozialwissenschaft und Sozialpolitik* पर उसका सबसे प्रबल प्रभाव था और उसने इसे जर्मनी में समाज

विज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका बनाया। वह महान् सहयोगी रचना "समाजार्थिक" *Grundriss der Sozialokonomik* की योजना बनानेवालों में प्रमुख था, जोकि जर्मन विद्वानों द्वारा पाश्चात्य जगत् के समाज का यथासाध्य पूर्ण अध्ययन होना था। उसकी अपनी 'अर्थव्यवस्था और समाज' *Wirtschaft und Gesellschaft* अंततोगत्वा इस ग्रंथमाला के एक भाग के रूप में प्रकाशित हुई।

२. वैबर की समाजशास्त्रीय रचनाओं का स्वरूप

यद्यपि वैबर एक बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था और अपने समस्त परिचितों की दृष्टि में उसका एक उल्लेखनीय प्रभावशाली व्यक्तित्व था, फिर भी असंदिग्ध रूप से उसका महत्त्व उसकी विद्वत्तापूर्ण उपलब्धियों में है। इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है जोकि उसकी लंबी बीमारी के कुछ ठीक होने पर प्रकट हुआ था और जिसने उसके जीवन को दो भागों में बांट दिया। लगभग उसी समय १९०४ और १९०५ में उसने दो भिन्न प्रकार के अध्ययन शुरू किये, जिनमे से दोनों ही आधुनिक समाजविज्ञान मे कुछ सबसे उल्लेखनीय घटनाओं का कारण बने। पहला समाजविज्ञान के पद्धतिशास्त्र (Methodology) पर आलोचनात्मक निबंधों की एक लेखमाला थी, जोकि सर्वप्रथम उस समय के प्रचलित ऐतिहासिक सप्रदायों, विशेषकर अर्थशास्त्र के संप्रदायों के विरुद्ध लिखी गई थी। यह निबंध उसके जीवन-काल मे एक साथ नही प्रकाशित किये गये, किंतु उसकी मृत्यु के बाद उन्हें *"Gesammelte Aufsatze zur Wissenschaftslehre"* शीर्षक के अंतर्गत एक जिल्द मे संकलित किया जा चुका है। दूसरा विकास उसके अब प्रसिद्ध निबंध 'प्रोटेस्टेंट आचारशास्त्र और पूंजीवाद की भावना' (*The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism*) से शुरू हुआ। यह एक कार्यक्रम की समाप्ति न थी बल्कि शुरुआत थी। इसके बाद धर्म के समाजशास्त्र पर तुलनात्मक अध्ययनों की एक ग्रंथमाला निकली, [२] जिनमें से अनेक पुस्तके बाद के वर्षों में प्रकाशित हुईं, किंतु उसकी मृत्यु के समय वह अधूरी थी।

तत्काल तो नहीं, किंतु कुछ ही वर्षो के अंदर वैबर ने एक तीसरी संबंधित, पर पृथक् रचना का कार्यक्रम शुरू किया। उसने स्पष्ट ही सामग्री के संकलन के लिये एक क्रमबद्ध अवधारणात्मक सूत्रीकरण (Conceptual formulation) की अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव की, जोकि उसके समय में आधुनिक पाश्चात्य समाज की स्थिति को समझने की समस्या को सुलझा सकता। इस दिशा में उसके द्वारा किया गया कार्य जहां तक पूरा हुआ था *Wirtschaft und Gesellschaft* में प्रकाशित हुआ है, उसका कुछ अंश ही उसकी मृत्यु से पहले प्रकाशन के लिये तैयार हो सका था।

ठीक उस समय जबकि वैबर क्रमबद्ध रीति से अपने संपूर्ण जीवन की गवेषणा और चिंतन का फल संचय कर रहा था उसी समय उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। यह संदेहास्पद है कि उसका पद्धतिशास्त्र पर एक क्रमबद्ध ग्रंथ प्रकाशित करने का विचार था या

नहीं, किंतु धर्म के समाजशास्त्र और पाश्चात्य समाज के विश्लेषण के क्षेत्रों में, उसने अपनी सामग्री को संकलित करना और उसे क्रमबद्ध रूप में प्रकाशित करना प्रारंभ ही किया था। उसके धर्म के समाजशास्त्र के अध्ययनों की केवल एक जिल्द[१] ही वह अपने हाथ से प्रकाशन के लिये तैयार कर सका। दो अन्य जिल्दें भी[२] प्रकाशन की पर्याप्त अच्छी अवस्था में थीं। किंतु यह ग्रंथमाला अभी भी बहुत अपूर्ण थी। *Wirtschaft und Gesellschaft* मे से भी कोई प्रथम खंड से आगे पूरी न हो सकी और संपादकों के पास सामग्री को व्यवस्थित करने के लिये एक अधिकृत विषय-सूची तक भी न रही। यह स्पष्ट है उसने एक साथ कई भिन्न चीज़ों पर काम किया, और पांडुलिपि में अनेक अध्याय अचानक टूट जाते हैं। आंतरिक साक्षी से यह स्पष्ट है कि वह अन्य विषयों पर, जिन पर कि उसने पांडुलिपि के अंश भी नहीं छोड़े, लिखना चाहता था।

३. समाजविज्ञान और उसके पद्धतिशास्त्र के प्रति वैबर का दृष्टिकोण

समाजविज्ञान और वैबर के जीवनकाल मे उसमें हुये परिवर्तन के प्रति उसके दृष्टिकोण को जर्मनी की विशेष बौद्धिक स्थिति के प्रसंग में समझा जाना चाहिये। जर्मनी अध्यात्मवादी (Idealistic) दर्शन और उससे संबंधित प्राकृतिक विज्ञानों और मानवक्रिया पर विचार करनेवाले शास्त्रों के बीच विशेष रूप से सूक्ष्म पद्धतिशास्त्रीय भेद का केंद्र था। जर्मनी मे यह प्रायः एक कट्टर संप्रदाय बन गया था कि समाजविज्ञानों पर प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसार विचार नहीं किया जा सकता, इसे विभिन्न रूप से स्वाधीन इच्छा (Free will) का क्षेत्र, बौद्धिक संवेदनशीलता (*Geist*) का विकास, सस्कृतियों का अनावरण और अंतर्स्थित भावनाओं और विचारों के घनिष्ट ज्ञान का क्षेत्र समझा जाता था, किंतु इन सबसे अधिक उसे यह माना जाता था कि केवल प्राकृतिक विज्ञानो में ही सामान्यीकृत सैद्धांतिक श्रेणियों का प्रयोग स्वीकार्य है। इसके विरुद्ध, सामाजिक क्षेत्र मे व्याख्या और स्पष्टीकरण को मूलतः ऐतिहासिक माना जाता था, जिसमे कि प्रेरक शक्ति और सांस्कृतिक प्रभाव के जननिक क्रम को ढूंढ़ा जाता था।

इस बात को लेकर वैबर की ऐतिहासिक संप्रदायों की समालोचना शुरू हुई। उसकी मूल थीसिस थी कि अंतर्निहित या प्रकट रूप से सामान्यीकृत सैद्धांतिक श्रेणियों के प्रयोग से ही कार्य-कारण संबंधों की उपस्थिति को दर्शाना तर्कसंगत रीति से संभव है। इस दृष्टिकोण ने समाज विज्ञानों की तार्किक संरचना (Logical structure) में बुनियादी पुनर्निर्माण को आवश्यक बताया, चूंकि क्रमबद्ध सामान्यीकृत सिद्धांतों के प्रश्नों पर ध्यान देना अनिवार्य हो गया था। पुनर्निर्माण के इस कार्य में ही वैबर ने प्रत्यय प्ररूप (Ideal type) के प्रसिद्ध सिद्धांत को विकसित किया। संक्षेप में, वैबर के लिये मानवक्रिया के क्षेत्र में सिद्धांत प्रत्यय प्ररूपों की प्रणाली में स्थित है। इसे विकसित करने में वैबर ने कोई नई चीज़ प्रस्तुत करने का दावा नहीं किया बल्कि अन्यों की अपेक्षा

इसे सूत्रबद्ध किया जिसेकि वस्तुतः विशिष्ट तार्किक सिद्धातों के अंतर्गत समाज वैज्ञानिक कार्य-कारण संबंधों को सिद्ध करते हुये करते थे।

प्राकृतिक विज्ञानों में प्रचलित अवधारणाओं से पृथक् वैबर की दृष्टि में प्रत्यय प्ररूप की तीन प्राथमिक विशेषतायें थी। पहली, इसे अंतर्स्थित श्रेणियों (Subjective Categoaries) के अनुसार सूत्रबद्ध किया गया था,अर्थात् उसी के वाक्यांश में कर्त्ता (Actor के लिये एक क्रिया के इच्छित अर्थ के अनुसार सूत्रबद्ध किया गया था। इस श्रेणी ने, जिसे कि जर्मन में *Verstehen* कहा जाता है, प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के भेद की चर्चा में महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया है। वैबर ने इसे दूसरों से लिया। किंतु उसने इसे डिल्थे और साइमल जैसे अन्य लेखकों से सर्वथा भिन्न रूप में प्रयुक्त किया।

दूसरे, प्रत्यय प्ररूप में एक कार्य का वास्तविक ठोस अर्थ प्रस्तुत नहीं किया गया था, बल्कि वह एक अति का सीमित उदाहरण था जिसमें कि कुछ तत्वों को उनके विशुद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया था और अन्यों की जानबूझकर उपेक्षा की गई थी। इसने प्ररूप को एक विशेष दिशा में प्रविवेक (Abstraction) का विशिष्ट गुण प्रदान किया। यद्यपि व्यवहार मे वह बराबर उस पर कायम न रहा, फिर भी वैबर ने अपने कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण सामान्य वक्तव्यों में यह दावा किया कि प्रत्यय प्ररूप द्वारा कार्य के प्रतिमान के तर्कसंगत तत्व सूत्रबद्ध होने चाहिये तथा तर्कसंगत मान (Norm) में ठीक न बैठनेवाले तत्वों पर कर्म के तर्गसगत प्रतिमान से विच्युति (Deviation) के स्रोतों के अवशिष्ट रूप मे विचार किया जाना चाहिये। यह एक विशेष प्रकार की प्रविवेक के एक अंतर्ग्रस्त पहलू की ओर, जिस पर स्वय वैबर ने जोर नही दिया था, हमारा ध्यान आकर्षित करता है। वस्तुतः अधिकांश प्रत्यय प्ररूपों मे ठोस कर्म का नही किंतु मान के प्रतिमानों (Normative patterns) का विवरण है जिन्हे कर्ताओ के लिये अनिवार्य समझा जा सकता है " वैबर की बुद्धिसंगतता (Rationality) की समस्या में गंभीर कठिनाइयां है जिन पर कि इस अध्याय मे विचार नही किया जा सकता।[६]

तीसरे, वैबर ने इसका आग्रह किया कि सामान्यीकृत प्रत्यय प्ररूपों के सूत्रीकरण को समाजविज्ञान का लक्ष्य नही माना जा सकता। ऐसे प्ररूपों को केवल ऐतिहासिक समस्याओं के विश्लेषण के यंत्रों के रूप में ही सूत्रबद्ध करना चाहिये। अशतः यह विचार इस विश्वास पर आधारित था कि सामाजिक क्षेत्र मे किसी भी प्रकार की स्थिर सिद्धांत की प्रणाली असंभव है, चूंकि अन्वेषण की गई समस्यायें और इसलिये उनके समाधान के लिये उपयोगी अवधारणायें, परिस्थिति और अवलोकनकर्त्ता की अभिरुचि में निहित विशिष्ट मूल्यों के प्रति अनिवार्यतः सापेक्ष है। इसे उसने अपनी *Wertbeziehuug* की सुपरिचित अवधारणा में सूत्रबद्ध किया।

यद्यपि इस विषय पर वैबर की आधारभूत अंतर्दृष्टि निस्संदेह सही है, फिर भी यह स्पष्ट दीखता है कि जिस प्रकार उसने अपनी स्थिति को सूत्रबद्ध किया, उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। एक ओर उसने वैज्ञानिक अभिरुचियों और समस्याओं के निर्णय में अवलोकनकर्ता के मूल्यों से उनके संबंध के अतिरिक्त अन्य तथ्यों की उपेक्षा की। दूसरी ओर यह दर्शाया जा सकता है कि इस विषय में प्राकृतिक और समाज विज्ञानो के बीच विद्यमान भिन्नता इतनी अधिक नही है जितनी कि समझी जाती है। वस्तुत : यह सिद्धांत समस्त अनुभवात्मक (Empirical) विज्ञानों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण पद्धतिशास्त्रीय एकता की पूर्णता के मार्ग में प्रमुख बाधा है, जिसे कि जर्मन सिद्धांतों की पृष्ठभूमि से प्रारंभ कर वैबर के कार्य ने बहुत हद तक संपन्न किया। इस संबंध में यह द्रष्टव्य है कि वैबर की दोनों समूहों की समालोचना ने, उस स्पष्टता के साथ, जोकि उसके समय में असाधारण थी, यह दर्शाया था कि वस्तुगत यथार्थता को पूर्णतः समझने के उनके दावे सर्वथा निराधार है। पद्धतिशास्त्रीय एकीकरण के मार्ग में एक प्रमुख बाधा दोनों ओर से यह अनुभवशून्य (Naive) अनुभववादी यथार्थवाद रहा है जिसके लिये वैबर की समालोचना सबसे अच्छी उपलब्ध शोधक है। किंतु जहां एक बार यह अनुभववाद त्याग दिया गया समाजविज्ञान के वैध हितो के लिये क्रमबद्ध सिद्धांत की हानिकारकता बहुत कुछ समाप्त हो जाती है।

४. एक सामाजिक पद्धतिशास्त्र के यंत्र के रूप में धर्म का समाजशास्त्र

समाजविज्ञान के लिये वैबर का महत्त्व मुख्यतः उसकी पद्धतिशास्त्रीय रचनाओं पर निर्भर नहीं है। वस्तुतः अनेक जर्मन विद्वानों से भिन्न, उसने पद्धतिशास्त्रीय अन्वेषण स्वात : सुखाय नही किया बल्कि अपनी अनुभवजन्य गवेषणा में प्रस्तुत समस्याओं के स्पष्टीकरण के एक साधन के रूप मे किया। गवेषणा का यह कार्यक्रम आधुनिक पाश्चात्य जगत् की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं को समझने के अत्यत विस्तृत प्रयास पर केंद्रित है। निस्संदेह अपनी बीमारी से पहले कानूनी, आर्थिक और सामाजिक इतिहास के अध्ययनों ने महत्त्वपूर्ण रीति से इसमें योगदान दिया, किंतु उसके अधिक परिपक्व सामान्य निष्कर्ष उसकी सर्वाधिक विदित रचना "दि प्रोटेस्टेंट इथिक एंड दि स्प्रिट ऑफ कैपीटलिज्म" के अध्ययन के संबंध में ठोस रूप धारण करने लगे।

यद्यपि यह अध्ययन ऐतिहासिक गवेषणा का एक प्रयास था, फिर भी इसका महत्त्व और देन पूर्णतः "आधुनिक पूंजीवाद" को विकसित करनेवाली शक्तियों को समझने तक ही सीमित न थी। कम-से-कम इतनी ही महत्वपूर्ण वैबर की यह अवधारणा थी कि आधुनिक सामाजिक संरचना मे समग्ररूप से कौन से तत्व समाज के लिये विशेष रूप से विशिष्ट और केंद्रीय महत्त्व के थे। अधिकांश आर्थिक इतिहासकारों ने अपना ध्यान मुख्यतः मुनाफे की क्रिया की प्रणाली के विकास के साथ इसके कार्य को सुविधाजनक

बनानेवाली यंत्ररचना की प्रक्रिया पर दिया, कि किस प्रकार ऋण और बैंकिग संस्थायें, बाज़ार इत्यादि विकसित की हुये थे। वैबर मुख्य अभिरुचि न तो अपने आपमें संचयात्मक (Acquisitive) क्रिया में थी, न ही ऐसी यंत्ररचनाओं के विकास में, बल्कि वह उन विशिष्ट प्रकार के संस्थात्मक प्रतिमानों के उद्गम में थी कि वह कहां तक स्वयं व्यापार की बाजार की क्रियाओं को नियंत्रित करते थे—केवल उनके द्वारा मुनाफे के लक्ष्य की स्वीकृति में नहीं, जोकि महत्त्वपूर्ण थी, किंतु ऐसी क्रिया को एक विशेष प्रकार के अनुशासन में रखने में थी और एक विशेष रूप से प्रतिमानित प्रकार की संस्थात्मक भूमिका और सामाजिक संगठन के अनुसार इसके कार्य में थी। व्यावसायिक कर्म को एक पेशा (Calling) माना जाता था, ऐसा कार्य जिसमें कि एक व्यक्ति एक निर्वैयक्तिक (Impersonal) और विशेषीकृत कार्य में अपनी योग्यता और चरित्र के प्रमुख गुणों को सिद्ध करता था। वैबर इसे विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझता था कि जटिल नौकरशाही संरचनाओं (Bureaucratic structures) में जिनमें कि व्यक्ति संस्थागत प्रतिमानो के अनौपचारिक आचारजन्य अनुशासन मे ही नही बल्कि औपचारिक रीति से संगठित श्रेणीबद्ध सत्ता (Hierarchical authority) की कठोर प्रणाली के भी आधीन है, ऐसी भूमिकायें (Roles) अत्यंत संगठित है।

निस्संदेह, गवेषणा के विस्तृत कार्यक्रम की प्रारंभिक अवस्था में वैबर इन समस्याओं पर अपना ध्यान दिया। उसने आधुनिक समाज के लिये संचयात्मक क्रिया के महत्त्व पर अनुचित बल दिया और पेशों (Profession) जैसे समूहों की केंद्रीय स्थिति की उपेक्षा की। उसके विश्लेषण के सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष व्यावसायिक जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र पर लागू होते है। इसी प्रकार संभवत: जर्मनी की विशेष अवस्थाओं के प्रभाव के अंतर्गत हों, उसने बडे पैमाने पर नौकरशाही संगठन के महत्त्व पर अनुचित बल दिया, हालांकि वह जिस घटना की बात कर रहा था वह अत्यंत विकसित उद्योगवाद के सदस्य क्षेत्र में निस्संदेह बड़े महत्त्व की थी।

ऐतिहासिक उद्गमों की समस्या को प्रस्तुत करने मे वैबर निस्संदेह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित था। पूर्णतया विकसित प्रणाली के लिये उसने मार्क्सवादी स्थिति स्वीकार की कि पृथक् रूप से एक व्यवसायी की सचयात्मक क्रियायें, वह जिस परिस्थिति में है उसके दबाने से, पर्याप्त प्रेरित होती है। फिर भी उसने अनुभव किया कि इस व्याख्या की प्रणाली को विकास की प्रक्रिया पर लागू नहीं किया जा सकता और यह आवश्यक है कि जिन दिशा प्रतिमानों (Patterns of orientation) को, जिनके अनुसार यह क्रिया समझ में आती है, अपने प्रत्यक्ष मूल्य के अनुसार ढूंढ़ा जाय, और स्थापित अवस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर जीवित रहने के साधन के रूप में नहीं। उसने ऐसी दिशा को (Orientation) उन बुनियादी आचारशास्त्रीय धारणाओं से संबंधित पाया जिन्हें कि उसने प्रोटेस्टेंट धर्म की "तापसी" (Ascetic) शाखायें कहा है अर्थात् काल्विनिज्म और

बैपटिस्ट, क्वेकर और मैथोडिस्ट जैसे प्रोटेस्टेंट संप्रदाय, जोकि यद्यपि अपने धर्मशास्त्र में भिन्न हैं, किंतु उनकी आचारशास्त्रीय दिशा बहुत कुछ समान है।

वैबर ने आसानी से यह स्वीकार किया कि यह धार्मिक आंदोलन, प्रत्यक्षरूप से भौतिकवाद और संचयात्मक प्रलोभन की स्वीकृति से बहुत दूर हैं, और मूलतः परलोकवादी (Otherworldly) है और शरीर के प्रलोभनों की निंदा करते है। इस परलोकवादी तापसी दिशा ने ही वस्तुतः एक "पेशे" में विशेष प्रकार के कार्य को सार्थक बनाया। इसने अन्यथा वैध अनेक स्वार्थों और परंपरागत जीवनरीति की पवित्रता की बलि देकर व्यक्ति को एक विशेषीकृत और निर्वैयक्तिक कार्य में अपना जीवन अर्पित करने की पर्याप्त प्रेरणा प्रदान की। संचयात्मकता की स्पष्ट स्वीकृति कम-से-कम अंशतः आंशिक लौकिककरण (Secularization) का परिणाम थी, जिससे कि इस लोक के कार्यों में समृद्धि को ईश्वर की कृपा का चिन्ह बताया गया। फिर भी, चूंकि संचयात्मक कार्य अनेक भिन्न स्वीकार्य पेशों में से एक था, अतः यह तथ्य वैबर के थीसिस का केंद्रीय आधार नही है बल्कि मूलतः एक गौण घटना है।

वैबर ने बहुत स्पष्टता से इस विचार का खंडन किया कि वह इतिहास में एक महान् विकास की एकसत्तात्मक (Monistic) धार्मिक व्याख्या विकसित कर रहा था। इसके विपरीत, उसने सदा इस बात पर ज़ोर दिया कि आधुनिक पूंजीवाद के विकास के लिये अनेक परस्पर स्वतंत्र अवस्थायें आवश्यक थी। फिर भी उसने इतनी ही निश्चितता से कहा कि प्रोटेस्टेंट आचारशास्त्र एक आवश्यक शर्त थी और बिना इसके विकास सर्वथा भिन्न होता। फिर भी वैबर इस निबंध पर नही रुका। उसे इसे अशंतः इस विशेष ऐतिहासिक संबंध मे प्रोटेस्टेंटवाद के महत्त्व की व्याख्या को जांचने और अशंतः अपने विशलेषण को स्पष्ट करने, और अपनी अनुभवजन्य सामग्री को अधिक उचित दृष्टिक्रम में रखने के लिये अन्वेषण के कही अधिक विस्तृत कार्यक्रम का प्रारंभिक सूत्र बनाया।

इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिये उसने जिस मार्ग को अपनाया वह विशेषरूप से जर्मनी में बहुत महत्त्वपूर्ण है, जहां कि ऐतिहासिक संप्रदायों का प्रभाव बहुत प्रबल था। इस पृष्ठभूमि के साथ भी किसी भी अनिश्चितता के संमुख पाश्चात्य संस्कृति की विशिष्ट ऐतिहासिक अतीत के विषय में अधिक विस्तृत गवेषणा में लगना सामान्य बात होती। निस्संदेह वैबर संबंधित क्षेत्रों में एक असाधारण रूप से योग्य सामाजिक और आर्थिक इतिहासकार था, और वह सरलता से अपना बाकी शैक्षणिक जीवन एक महान् ऐतिहासिक अध्ययन की पूर्ति में लगा सकता था। इसके बजाय वह सर्वथा भिन्न स्रोतो की ओर मुड़ गया; वह समस्त महान् विश्वधर्मों में धार्मिक आचारशास्त्र और सामाजिक और आर्थिक संगठन के बीच विद्यमान संबंधों के तुलनात्मक अध्ययन के बड़े पैमाने के कार्यक्रम में लग गया।

इस चुनाव के पीछे गहरी पद्धतिशास्त्रीय अंतर्दृष्टि थी। उसकी समस्या ऐतिहासिक क्रम के विशिष्ट तथ्यों का स्पष्टीकरण न थी, बल्कि सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनीय तत्वों (Variable elements) को निश्चित रूप से पृथक् करना और परिवर्तनीय अवस्थाओं के अंतर्गत उनकी क्रिया का अध्ययन कर उनके कार्य-कारण के महत्व को दर्शाना था। जिस प्रकार वैबर ने तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया, वह प्रयोगशाला के विज्ञानों के परीक्षण की प्रत्यक्ष पद्धतिशास्त्रीय समकक्ष थी। केवल कुछ अर्थों में समान और अन्यों में भिन्न उदाहरणों का अध्ययन करके ही किसी कारक के कार्य-कारण प्रभाव का निर्णय संभव था। यह उसकी अर्थशास्त्र के ऐतिहासिक संप्रदायों में अंतर्निहित तर्क की आलोचना का परिणाम था कि उसने देखा कि अकेली ऐतिहासिक प्रक्रिया के और अधिक स्पष्टीकरण से उसकी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यद्यपि उसने स्पष्ट ही ऐसा नहीं कहा, फिर भी उसने यह अनुभव किया होगा कि इतिहास के मार्क्सवादी विश्लेषण पर भी यही बुनियादी आलोचना लागू होती है। निश्चयात्मक परिणामों को प्राप्त करने के लिये अल्पसंख्यक कारकों पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है।

वैबर की समस्या थी कि जिसे उसने "धार्मिक आचारशास्त्र" कहा, उसका कितना प्रभाव बताया जा सकता है। इसे उसने एक परिवर्तनीय कारक के रूप में रखा। वह जिस मोटे निष्कर्ष पर पहुंचा वह था कि महान् सभ्यताओं की संस्थागत संरचनाओं में एक दूसरे को पृथक् करनेवाली विभेदीकरण (Differentiation) की प्रक्रिया में इस कारक की भिन्नताओं को विशेष महत्त्व दिया जा सकता है। जिन भिन्नताओं (Variations) की सीमाओं में उसकी दिलचस्पी थी, वे स्पष्ट रूप से वही थी जिनकी कि ऊपर आधुनिक पूंजीवाद की प्रबल विशेषताओं के रूप में परिभाषा की गई है। विशेष रूप से उसकी दिलचस्पी परंपरावादिता के विरुद्ध, बुद्धिसंगत अनुस्थिति (Rational Orientation) के अनुकूल अवस्थाओं, कृत्यात्मक दृष्टि से विशिष्ट भूमिकाओं के एक प्रमुख स्थान और अंततः केवल व्यक्तिगत आचार मे ही नही बल्कि परिस्थितियों की संस्थागत व्याख्याओं मे सार्वभौमता के तत्वों मे थी।

वैबर ने धार्मिक आचारशास्त्र के प्रभाव को अपने विस्तृत उद्देश्य के लिये एक मोटी किंतु समुचित पद्धति से पृथक् किया। उसने यह निर्णय करने का प्रयास किया कि क्या विचारांतर्गत धार्मिक आंदोलन का उद्भव होने से पहले धर्म के अतिरिक्त सामाजिक संरचना का सामान्य रूप आधुनिक पाश्चात्य जगत् के विशिष्ट संस्थागत प्रतिमानों के विकास के लिये अधिक या कम "अनुकूल" था। दो उदाहरणों में जिन्हे कि उसने पूर्णता से स्पष्ट किया-अर्थात् चीन और भारत—उसका निष्कर्ष था कि तुल्य अवस्थाओं मे, अर्थात् सुधारणा (Reformation) के समय यूरोप के समान अवस्था में परिस्थिति, कम-से-कम सभी संबद्ध बातों में, उतनी ही अनुकूल थी जितनी कि पाश्चात्य यूरोप में।

इस निर्णय में निहित समस्यायें बहुत विस्तृत और क्लिष्ट हैं, अतः उनकी यहां समुचित समीक्षा नहीं की जा सकती। फिर भी धार्मिक आंदोलन अर्थात् कनफूशियस धर्म, हिंदू धर्म और प्रोटेस्टेंट धर्म जिनका कि तीन सांस्कृतिक क्षेत्रों पर प्रभुत्व हुआ, एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे। यदि इन भिन्नताओं का कोई प्रभाव पड़ता तो वह तीनों समाजों को एक समान संस्थागत प्रतिमान की दिशा में सात्मीकृत न करता। इसके अतिरिक्त मोटे अर्थों में, यदि इन तीन महान् धार्मिक आंदोलनों में सामाजिक जीवन के प्रति अंतर्निहित बुनियादी धारणायें अपना निर्णायक प्रभाव डालतीं तो इन तीनों में से प्रत्येक उदाहरण में जो संस्थागत संरचना उद्भूत हुई वह उसी प्रकार की होती जिस प्रकार की कि आशा की जाती थी।

भारत का उदाहरण संभवतः सबसे अधिक स्पष्ट है, क्योंकि यहां पाश्चात्य धारणा से भिन्नता सबसे अधिक द्रष्टव्य है। भारत में धर्म का लक्ष्य अन्य समस्त ऐसे उदाहरणों की भांति परात्परवादी (Transcendental) ही न था बल्कि परिस्थिति को इस प्रकार परिभाषित किया गया था कि दैनिक सामाजिक हितों और दायित्वों से पीठ मोड़ कर तथा रहस्यवादी चिंतन या पारलौकिक तापसीवाद द्वारा ही इन लक्ष्यों पर ठीक से चला जा सकता था। इस बुनियादी अर्थ में निश्चय ही मुक्ति का मार्ग परंपरागत न था, किंतु यह ऐसा लक्ष्य था जोकि एक छोटी अल्पसंख्या को ही सुलभ था। अधिकांश बहुसंख्या के लिये हिंदू धर्म वर्तमान परंपरागत व्यवस्था और कार्य करने की रीति का इतनी कट्टर स्वीकृति था जैसी कि अन्यत्र कहीं भी विकसित न हुई थी। जाति प्रणाली मे परंपरागत कर्तव्यों, विशेषकर व्यक्ति जीवन की, जिस स्थिति में पैदा हुआ है उसके आनुष्ठानिक (Ritual) कर्तव्यों को सच्चाई से पूरा करना ही अच्छे व्यवहार का एकमात्र स्वरूप है। केवल परंपरा के प्रति ऐसी निष्ठा से ही व्यक्ति एक उच्चतर जाति मे पुनर्जन्म लेकर अपने आधारभूत धार्मिक पद (Status) के सुधार की कोई आशा कर सकता है।

यद्यपि भारतीय उदाहरण अधिक स्पष्ट है, चीन का उदाहरण और भी उल्लेखनीय है, चूंकि एक विशेष स्तर पर विशिष्ट चीनी और पाश्चात्य धारणाओं में उल्लेखनीय सदृशता मिलती है। कम-से-कम कनफूशियस की परंपरा में चीनी अपनी चतुर व्यावहारिक सांसारिकता के लिये प्रसिद्ध रहे है। उन्होंने आध्यात्मिक चिंतन (Metaphysical speculation), रहस्यवाद और परात्परवाद (Transcendentalism) को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। संचयात्मकता के प्रति उदासीनता के बजाय वे ऐसे लोग रहे हैं जिन्होंने अपने जीवन में धन को प्रमुख स्थान दे जीवन की सुखमय वस्तुओं को विशेष महत्त्व दिया है। तब फिर अंतर क्या है? जैसा कि वैबर ने बहुत स्पष्टता से इसे रखा है, यह वास्तव में है "कि जब काल्विनवाद संसार पर बुद्धिसंगत आधिपत्य का सिद्धांत है, कनफूशियसवाद संसार के साथ बुद्धिसंगत अनुकूलन (Rational adaptation) का सिद्धांत है।"

चीनी सामाजिक संरचना की द्रष्टव्य विशेषता केवल परंपरावाद को उखाड़ फेंकने म इसकी पूर्ण असफलता ही नहीं बल्कि परंपरा की प्रतिष्ठा है, जोकि भारत से कुछ ही कम है। इस धारणा को कि पुराने शास्त्रों में, जोकि प्रत्येक विद्यार्थी की शिक्षा का विषय थे, कभी भी कोई सुधार नहीं किया जा सकता, पाश्चात्य विज्ञान के अंतर्निहित गत्यात्मक गुण से सर्वथा पृथक् है। इसके अतिरिक्त चीन में निर्वैयक्तिक विशेषीकृत कार्यों की किसी भी स्वीकृति का द्रष्टव्य अभाव है। शिक्षित व्यक्ति कभी भी टेक्नीकल विशेषज्ञ नही है बल्कि एक विस्तृत दृष्टिकोणवाला सुसंस्कृत सज्जन है। अंत मे कनफूशियस के आचार-शास्त्र में सार्वभौमता का द्रष्टव्य अभाव है। अपने रिश्तेदारो के समूह और अपने विशष मित्रों और सहयोगियों के प्रति वफादारी, ईमानदारी, सत्य इत्यादि समस्त सामान्य कर्तव्यों से ऊपर है।

इस संबंध में यह महत्त्वपूर्ण, यद्यपि वैबर ने अपने तुलनात्मक अध्ययनों के परिणामों को किसी एक क्रमबद्ध वक्तव्य में प्रस्तुत नही किया, फिर भी उसके बाद के अध्ययनों के विकास में और *Wirtschaft und Gesellschaft* के संबद्ध भागो के दृष्टिक्रम (Perspective) में एक अंतर दिखाई देता है। ऊपर वर्णित विशेष रूपों में भी सचयात्मक कर्म की आवश्यक प्रेरणा के कारणों को बताने की समस्या कही कम महत्त्वपूर्ण बन जाती है, और पाश्चात्य जगत् तथा चीन और भारत की सस्थागत संरचनाओं की भिन्नता कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है। केवल व्यवसाय मे ही नही परतु पाश्चात्य जगत् की अनेक उतनी ही महत्त्वपूर्ण अन्य विशेषताओं में, जैसे कि विज्ञान और विद्वत्ता के पेशों और सरकारी प्रशासन में, अंतर्निहित प्रतिमानों की उपस्थिति व्यावसायिक अर्थव्यवस्था से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इसी के साथ प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रति दृष्टिक्रम मे भी कुछ अंतर आ गया है। इससे पहले निबंध में वैबर का ध्यान विशेषरूप से "तापसवादी" प्रोटेस्टेंटवाद और कैथलिकवाद की भिन्नता पर था। चीन और भारत के धर्मो से तुलना इस भिन्नता के महत्त्व को काफी कम कर देती है। बाद के दृष्टिकोण से काल्विनवादी प्रतिमान को एक विशिष्ट दिशा मे उपस्थित संभावनाओं की पूर्णतम प्राप्ति समझा जा सकता है। इस दष्टिकोण से कैथलिक धर्म काल्विनवादी सिद्धांत की कठोरता को पर्याप्त घटा देता है; किंतु कनफूशियस धर्म और हिंदू धर्म की तुलना में, ईसाई धर्म की समस्त शाखाओं में बहुत समानतायें है।

अभी तक वैबर के विश्लेषण की वस्तु के रूप में केवल धार्मिक "आचारशास्त्र" का ज़िक्र किया गया है। यह एक महान् धार्मिक परंपरा का वह पहलू है जो लौकिक क्षेत्र में ठोस सामाजिक क्रियाओं पर सबसे घनिष्ट प्रभाव डालता है। किंतु वैबर विचारणीय धार्मिक आचारशास्त्र की विशेष केंद्रीय धारणाओं में अंतर्निहित गहरी प्रेरणाओं को समझाने के लिये धार्मिक परंपरा की संरचना के विश्लेषण मे और आगे बढ़ गया।

उसके विश्लेषण की मूल विशेषता उसी के शब्दों में, विचारों और धार्मिक अभिरुचियों (Interests) के बीच संबंध का सिद्धांत है।[9] जैसा कि उसने बारंबार कहा,

कि विचार नहीं, बल्कि धार्मिक स्वार्थ कर्म को प्रेरित करते हैं। डब्लू० आई० टॉमस के शब्दों में, विचारों का कार्य "परिस्थिति की परिभाषा करना" है। कम-से-कम उस स्तर पर जिस पर कि वैबर इस समस्या से संबंधित था, मुक्ति में अभिरुचि को विशेष रूप से भारत और पाश्चात्य जगत् के बीच एक समान विशेषता के रूप में एक स्थिर कारक (Constant factor) माना जा सकता है। किंतु मुक्ति-जैसी अभिरुचि का अनुसरण करने के लिये कर्म की, असह्य परिस्थिति के विषय में कुछ करना आवश्यक है। प्राद्यौगिक समस्याओं के समाधान से भिन्न, यह प्रश्न कि क्या किया जाय, केवल अनुभवजन्य तथ्यों को देखकर इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। क्या करना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा यह मुक्ति की बोधात्मक (Cognitive) व्याख्या के अर्थ और उसकी प्राप्ति के संभव मार्गों पर निर्भर होगा। ब्राह्मण-दर्शन के अनुसार मूल अर्थों में मुक्ति का अर्थ केवल "कर्म के चक्र से मुक्ति" होगा; किंतु इस लक्ष्य को अन्यों से किसी भी प्रकार की संसारिक सफलता मे आगे बढ़कर प्राप्त नही किया जा सकता। इसे समस्त सांसारिक अभिरुचियों से पूर्णतः अपने को पृथक् कर और ब्रह्म (Absolute) से साक्षात् कर उसमें अपने को विलीन कर ही प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि वैबर कहता है, इसने लौकिक लक्ष्यो मे किसी प्रत्यक्ष अभिरुचि की प्रेरणा नहीं दी।

इसके विपरीत, ईसाइयत मे प्रारभ से ही मुक्ति मूलतः परात्परवादी ईश्वर (Transcendental deity) की कृपा (Grace) का फल है; और ईश्वर ने इस कृपा को प्रदान करने के लिये प्रायः विशिष्ट शर्तें लगाई हैं। कुछ शाखाओं मे, अच्छे कार्य, अर्थात् लौकिक कर्म मे प्रत्यक्ष आचारशास्त्रीय मानों की पूर्ति को मुक्ति की प्राप्ति का प्रत्यक्ष साधन माना गया है। विशुद्ध काल्विनवाद में ऐसा न था। कृपा की स्थिति पूर्वनिर्धारित थी, जोकि एक भाग्यवादी धारणा का पक्ष लेती हुई दीख सकती है, किंतु कम-से-कम दो कारकों ने विरोधी दिशा में कार्य किया है। पूर्वभाग्यनिर्धारण (Predestination) के सिद्धांत ने ही ईसाई विचारधारा की अन्य किसी व्याख्या की अपेक्षा ईश्वर की इच्छा पर मनुष्य की पूर्ण निर्भरता पर इतना अधिक ज़ोर नहीं दिया और चूंकि उसी की इच्छा को मनुष्य को उसके राज्य (Kingdom) के निर्माण मे लगाना चाहिये, अतः कोई भी व्यक्ति जिसे पूर्वभाग्यनिर्धारण स्वीकार करने मे पर्याप्त श्रद्धा है वह ईश्वर के आदेशों को पूरा करने के लिये अपने धार्मिक कर्तव्यों को अवश्य ही गंभीरता से ग्रहण करेगा। इसके परे एक श्रद्धालु प्रोटेस्टेंट को उसकी कृपा की स्थिति की तुलना मे पूर्वभाग्यनिर्धारण का सिद्धांत उसे अत्यतं उद्वेगपूर्ण तनाव की स्थिति में छोड़ देता है। यद्यपि वह स्वंय अपने कर्म से मुक्ति नहीं पा सकता, फिर भी वह अपने को इसके योग्य सिद्ध कर सकता है, और यह अत्यधिक संभव था कि वह चुने हुये व्यक्तियों मे से एक था, चूंकि "एक अच्छा पेड़ बुरे फल नहीं दे सकता"

और इसके बारे में कोई संदेह न था—ईश्वर की इच्छा थी कि मनुष्य इस लोक में और दूसरे लोक में भी ईसाई समाज का निर्माण करे।

इस स्तर पर वैबर और मार्क्स की मूल प्रेरणा के विश्लेषण का अंतर और मार्क्स से विकसित पूंजीवादी समाज में अनुशासन के सहज रूप से स्थापित हो जाने से उसकी मार्क्स से सहमति, एक अर्थों मे इतनी अधिक नहीं है जितनी कि पहली नज़र में दीखती है। निश्चित रूप से, मुख्यतः बाहरी स्वीकृतियों (Sanctions) के अर्थों में श्रद्धालु काल्विनवादी को नहीं समझाया जा सकता, किंतु दो बातें कहीं जा सकती है। जहां तक कि धार्मिक मुक्ति में उसकी अभिरुचि एक प्रबल उद्वेगात्मक शक्ति है, बाह्य स्वीकृतियां अनावश्यक हो जाती है। यहां पर संभवतः जैसा कि उपयोगितावादी विचारकों ने समझा है, उनकी अपेक्षा लौकिक कार्यों में कहीं अधिक निष्काम ममता है। बाह्य स्वीकृतियों का जोड़ना मुख्यतः इस तथ्य का परिणाम नहीं है कि मार्क्स के लिये अभिरुचियां धार्मिक की अपेक्षा संचयात्मक हैं, बल्कि इस तथ्य का है कि परिस्थितियों की परिभाषायें संस्थागत बन गई है। तुलनात्मक अध्ययन ने, जिसमें कि वैबर ने एक महान् योगदान दिया, निश्चयात्मक रूप से यह दर्शाया है कि जब विशेष लक्ष्य संस्थागत बन जाते हैं, विभिन्न स्वार्थों की विस्तृत भिन्नता से सार्वभौम रूप में संयुक्त हो जाते है—तब वह मूल प्रेरणा के गहरे तत्व बन जाते है। वस्तुतः प्रायः कोई भी लक्ष्य, बशर्ते कि वह परिस्थिति की सार्थक परिभाषा से एकीकृत हो और संस्थागत हो, केवल आर्थिक अभिरुचि का ही नहीं बल्कि वहुविस्तृत भिन्न अभिरुचियों का केंद्रबिंदु बन सकता है। वस्तुतः वैबर के कार्य का एक सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह सुझाना है कि जिसे हम "आर्थिक" हित या अभिरुचि कहते है वह मूल प्रेरणा की एक अंतिम श्रेणी नही है बल्कि वह किसी निर्दिष्ट समाज में किन्ही भी प्रबल रहे प्रतिमानों के संस्थागत होने का परिणाम है।

५. वैबर के सामाजिक सिद्धांत की सामान्य प्रणाली का रूप

इसका भी निर्देश किया जा चुका है कि वैबर का एक सामाजिक सिद्धात की स्थायी सामान्यीकृत प्रणाली को सूत्रबद्ध करने के प्रयास के औचित्य या उसकी संभावना मे विश्वास न था। साथ ही विशेषकर उसकी बाद की रचनाओं मे बहुत कुछ ऐसा अंश है जिसे कि क्रमबद्ध सैद्धांतिक रचना कहा जा सकता है, हालांकि वह जो कुछ कर रहा था उसके पूर्ण सैद्धांतिक महत्त्व से शायद वह स्वयं ही अपरिचित था।

जहां तक कि यह कहा जा सकता है कि वैबर ने सिद्धांत की एक सामान्यीकृत प्रणाली प्रस्तुत की वह सर्वाधिक पूर्णता से *Wirtschaft und Gesellschaft* के प्रारंभिक भाग में दी गई है।[1] स्पष्ट स्तर पर इसने सामाजिक क्रिया और संबंधों के प्रत्यय प्ररूपों (Ideal types) के वर्गीकरण का रूप धारण किया। वैबर ने क्रिया के चार बुनियादी प्ररूपों के भेद से प्रारंभ किया। इनमे से पहले दो में कुछ बुद्धिसंगति (Rationality) की

रीतियों की विशेषतायें हैं। एक में *Zweckrationalitat* क्रिया को उन अधिकतम उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, जिन्हें कि एक दूसरे के विरुद्ध तोला गया है, बुद्धिसंगत दिशा में उन्मुख माना गया है और साधनों के चुनाव मे केवल टेक्नीकल कुशलता ही नहीं बल्कि लागत पर भी विचार किया गया है। *Wertrationalitat* के दूसरे उदाहरण मे व्यवहार में बिना लागत या अन्य मूल्यों पर प्रभाव का ध्यान रखे हुये एक निर्दिष्ट स्पष्टता से प्रस्तुत मूल्य को सर्वाधिक प्रभावकर उपलब्ध साधन से कार्यान्वित किया जाता है। अन्य दो विभिन्न दिशाओं में अवशिष्ट श्रेणियां हैं। परंपरागत क्रिया के एक उदाहरण मे बुद्धिसंगति से पृथकता कुशलता या प्रभावशीलता के अर्थों मे हिसाब लगाने के अभाव और बिना नूनच के स्थापित प्रतिमानों के पालन मे निहित है। रागात्मक क्रिया (Affectual action) के चौथे प्रकार मे वह कार्यरीति सम्मिलित है जो न तो बुद्धिसंगत है न परंपरागत बल्कि अनुभूति, उद्वेग और भावना इत्यादि से प्रेरित है। इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास करने की कोई जरूरत नही, चूंकि वैबर के लिये श्रेणी(Catogory) अवशिष्ट है और उसकी अंतर्वस्तु को निश्चितता से स्पष्ट नही किया गया है।

वैबर ने अपनी समस्त रचना मे इन अवधारणाओं को विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया है, फिर भी क्रमबद्ध रीति से अगला कदम इनके विभिन्न संभव जोड़ों और मेलों को सामाजिक सबधों की अधिकाधिक जटिल प्रणालियों की संरचना में स्थान देना है। यद्यपि वैबर ने संबंधों के स्तर पर अपने प्ररूपों को क्रमबद्ध किया है, फिर भी उसने कही भी मिलसिलेवार ढंग से अपनी इस कार्यप्रणाली के तर्क (Logic) का पालन नहीं किया। उसने अनेक तर्गसगत संभावनाओं मे से अपेक्षतया थोड़ी संभावनाये चुन लीं जिन्हे कि उसने विशेष रूप से बहुत महत्त्व का समझा। कुछ दिशाओं मे तो यह वर्गीकरण इस प्रकार अनंत उपविभागों मे खो जाते है कि यह बताना मनमानी है कि यह प्रक्रिया कहाँ समाप्त होती है।

चूंकि मिलने की केवल तर्कसंगत संभावना ही उसकी क्रमबद्धता की दिशा का निर्णय करने के लिये पर्याप्त नहीं है, अतः हमे चुनाव के अन्य सिद्धांतों को खोजना चाहिये। ऐसा दीखेगा कि यह दो मुख्य दिशाओं में पाये जायेगी, जोकि मोटे तौर से, हालांकि किसी भी प्रकार पूरे तौर से नहीं, एक दूसरे से एकीकृत है। अधिक अमूर्त चितन के स्तर पर ऐसा लगता है कि वैबर ने मुख्यतः अंतर्निहित अर्थों मे सामाजिक क्रिया की प्रणालियों की सामान्य संरचना की एक योजना बनाई।[१] इस योजना की बुनियादी श्रेणियां क्रियाओं के प्ररूप नहीं, बल्कि वह संरचनात्मक तत्व है जोकि प्ररूप स्तर के किसी भी वर्गीकरण में विद्यमान रहते हैं।

इस योजना का प्रारंभ स्पष्टतः ही बुद्धिसंगत साधन-लक्ष्य (Means-ends) का विश्लेषण है। जब हम एक सीमा तक इसका अनुसरण करते हैं, तब साधन-लक्ष्य

प्रणाली के उन तत्वों से, जोकि दूसरे उद्देश्यों के लिये मुख्यतः एक साधन के रूप में महत्त्व-पूर्ण हैं, अंतिम उद्देश्यों या लक्ष्यों का पृथक् करना आवश्यक हो जाता है। वैबर की रचनाओं में एक क्रिया के प्रत्यक्ष उद्देश्यों की कड़ियों में अंतिम मूल्यों का कार्य पूर्णतः स्पष्ट है। इसके आगे, जटिल प्रणालियों में साधन-लक्ष्य कड़ियों के मध्यस्थित कारक अपृथक्कृत नहीं रहते बल्कि उनमें अनेक विश्लेषणात्मक भेद करने पड़ते हैं जोकि उसकी रचनाओं में स्पष्ट हुये हैं। इनमें एक ओर सबसे महत्त्वपूर्ण भेद प्राद्योगिक और आर्थिक पहलुओं के बीच है, दूसरी ओर आर्थिक विनियोग (Allocation) और अधिकारसत्ता और दमन के प्रयोग के बीच विद्यमान है।

साधन-लक्ष्य प्रणालियों का यह प्रत्यक्ष विश्लेषण वैबर के क्रमबद्ध चितन के इस पहलू को समाप्त नहीं कर देता। क्रिया केवल निश्चित उद्देश्यों की ओर ही नही, बल्कि सामाजिक प्रणालियों की एक व्यवस्था की ओर उन्मुख होती है, जोकि कुछ निर्दिष्ट सीमाओं में इन उद्देश्यों की पूर्ति की अवस्थाओं को निश्चित करती है। व्यवस्था की उन प्रणालियों में जो सामाजिक जीवन में सबसे महत्व की है, वैबर ने एक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण विशेषता पाई; उन्हें "वैध" (Legitimate) माना जाता है। यद्यपि पुरस्कार और दंड की यंत्ररचना के विभिन्न रूपों से सामान्यतः उनका पालन कराया जाता है, किंतु उन्हे, समान नैतिक भावनाओं का समर्थन भी मिलता है, जिससे कि उनके पालन को एक नैतिक कर्त्तव्य समझा जाता है और सत्ताधारियों द्वारा उसे नैतिकता द्वारा एक वैध अधिकार के रूप मे वसूल किया जाता है। व्यवस्था के रूपों मे अंतर्निहित तत्व की वैधता को वैबर ने साधन-लक्ष्य प्रणालियों मे प्रवेश करनेवाले बुनियादी मूल्यो से घनिष्टता से मिलाया है। यह दोनो ही सामाजिक समूहों के सदस्यों के बुनियादी आचारशास्त्रीय रुझान से उदभूत होते है।

यह आचारशास्त्रीय रुझान पृथक् घटनायें नही हैं, यह बोधात्मक (Cognitive) और रागात्मक (Affective) दिशाओं के उन पहलुओं से सदैव घनिष्टतया संबंधित हैं जिन्हें कि हम सामान्यतः "धार्मिक" कहते है। नैतिक सत्ता और नैतिक कर्तव्य के लिये आदर की विशिष्ट भावना, जोकि वैधता की पृथक् विशेषता है, पवित्र (Sacred) या वैबर के शब्द में "करिश्माई" (Charismatic) व्यक्तियों या वस्तुओं से घनिष्टतया संबंधित है। एक व्यवस्था की वैधता और अतिम मूल्यों के औचित्य के लिये उन्हें अनुभवजन्य सामान्यीकरण के रूप मे मनुष्य की अर्थ और पवित्र इकाइयों और प्रतीकों (Symbols) के जगत् की समस्याओं की दिशा में घनिष्टतया एकीकृत होना चाहिये। जिस प्रकार कि दुरखीम की रचना में लौकिक क्षेत्र में नैतिक सत्ता धार्मिक क्षेत्र में पवित्रता के साथ एकीकृत है, उसी प्रकार वैबर में भी वैधता करिश्माई प्रतिष्ठा और सत्ता के प्रतिमानों से जुड़ी हुई है। अंतिम मूल्यों, वैधता, करिश्मा और धार्मिक विचारों की प्रणालियों की साधन-लक्ष्य प्रणाली की अवधारणाओं में कर्म

की प्रणालियों की सामान्य संरचना की एक सिलसिलेवार रूपरेखा निहित है । इन्हीं से वैबर के अधिक ठोस प्रत्यय प्ररूपों (Ideal types) के संरचनात्मक संबंध उद्भत होते है, जिनसे कि वे केवल सूक्ष्म तार्किक संभावनाओं को समाप्त करने की अपेक्षा एक संरचनात्मक रूप से एकीकृत प्रणाली का निर्माण करते है ।

वैबर के सैद्धांतिक क्रमबद्धता का एक दूसरा पहलू भी है । धर्म के समाजशास्त्र के अध्ययनों, में जिनकी ऊपर समीक्षा की जा चुकी है, और जो उनसे घनिष्टतया संबंधित हैं, वैबर ने अनेक वर्षों तक मुख्य रूप से आर्थिक और राजनैतिक संगटन के क्षेत्रों में तुलनात्मक संस्थात्मक संरचनाओं के अध्ययन का कार्यक्रम जारी रखा । उसकी यह अभिरुचि तुलनात्मक कानन और आर्थिक और सामाजिक इतिहास के प्रारंभिक अध्ययनों से उत्पन्न हुई थी और जैसे-जैसे उसका क्रमबद्ध चिंतन विकसित हुआ वह विस्तीर्ण और परिष्कृत हुई । यह सामग्री ही उसकी महानतम क्रमबद्ध रचना *Wirtschaft und Gesellschaft* की जोकि यद्यपि उसकी मत्यु तक अपूर्ण ही रही, मुख्य विषय-वस्तु है ।

इस प्रसंग में उसने सामाजिक कार्यो मे बुद्धिसंगति (Rationality) के रूपों और उससे विच्युतियों की उन्ही बुनियादी अभिरुचियों का अनुसरण किया जोकि धर्म के समाजशास्त्र के उसके अध्ययनो में बुनियादी थी । अतएव वह विशेष रूप से तीन सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों मे बुद्धिमगत प्रतिमानो की स्थिति और सस्थात्मक विचित्रताये जानने में व्यस्त था—यह क्षेत्र थे बाजार, विनिमय और मुद्रा मे हिसाब रखने की प्रणाली, बुद्धिसंगत सैद्धांतिक वैध कार्यप्रणाली (Formal-legal-procedure) तथा प्रशासन, और वैध नियंत्रण से युक्त नौकरशाही (Bureaucratic) प्रशासक सगठन की संरचना ।

इन सभी तीन क्षेत्रों में उसने उन प्रतिमानो को जिन्हे कि उसने "सैद्धांतिक बुद्धि-संगति" (Formal ratioality) कहा, बहुत महत्त्व दिया, जिसका कि प्रत्येक ही उदाहरण में अवश्यंभावी रूप से व्यावहारिक "बुद्धिसंगति" (Substantive rationality) से इसका विरोध हुआ । मुद्रा और पूंजी के हिसाब के उदाहरण में मुक्त विनिमय की अर्थ-व्यवस्था की सैद्धांतिक पूर्णता अवश्यंभावी रूप से एक जनसंख्या की आर्थिक आवश्यक-ताओ को संतोपजनक रीति से जुटाने के व्यावहारिक मानों (Substantive Stand-ards) से हट जाती है; साथ ही वह वितरणात्मक न्याय जैसे मानदंडों से भी हट जाती है । कानून के क्षेत्र मे सैद्धांतिक बुद्धिसंगत कार्यप्रणाली का विरोध व्यावहारिक न्याय की नैतिक भावनाओं से होता है; और प्रशासकीय कार्यप्रणाली मे सत्ता के प्रयोग के क्षेत्र मे सैद्धांतिक नौकरशाही प्रतिमानों का कठोर पालन तदनुरूप महत्त्वपूर्ण हितों और भावनाओं पर अनुचित दबाव डालता है ।

इस प्रकार सभी तीनों क्षेत्रों में उच्च स्तर की सैद्धांतिक बुद्धिसंगति विशेषरूप से अस्थिर है और केवल भीषण प्रतिरोध पर काबू पाकर ही उसे कायम रखा जा सकता

हैं। इन तीन प्रकार की सैद्धांतिक बुद्धिसंगति को वैबर ने आधुनिक पाश्चात्य समाज का सबसे विशिष्ट संस्थात्मक लक्षण माना है। उसने तुलनात्मक विश्लेषण के अर्थों में, उनके विकास के लिये आवश्यक अवस्थाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जो प्रत्येक उदाहरण में इन सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिमानों को दर्शाती थीं जिनसे कि वह बहुत धीरे-धीरे सर्वथा भिन्न संस्थात्मक प्रतिमानों में रूपांतरित होकर कायम रहती हैं।

आर्थिक क्षेत्र में वैबर ने बाजार की अर्थव्यवस्था के प्रतिमान की मुद्रा के अधिकाधिक प्रयोग और मुद्रा मे हिसाब रखने की उन परिस्थितियों से भिन्नता दर्शाई जिनमें कि आर्थिक कर्म की दिशा एक ओर विजातीय वस्तुओं और सेवाओं की गुणात्मक तुलनाओं के अर्थ में हिसाब लगाने को बाध्य होती हैं, और दूसरी ओर उन बातो पर ध्यान देती हैं जोकि प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक महत्त्व की नही है, और जिन्हें संख्या की इकाई में व्यक्त नही किया जा सकता। उसने इस क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार का वर्गीकरण ही विकसित नही किया बल्कि आधुनिक बाजार प्रणाली की अनिश्चितता और इस तथ्य को दर्शाने का भी प्रयास किया कि इससे विच्युति उसे मुख्यतः अनार्थिक महत्त्व की संरचनाओ के, जैसे कि राजनैतिक, धार्मिक या अन्य एक संगठन मे, अधिकारियों और मातहत लोगो के बीच वफादारी के संबंध द्वारा, के परंपरागत स्थिर करने की दिशा में ले जाती है। यद्यपि उसका निर्णय ब्यौरों में गलत हो सकता है, फिर भी वैबर ने इसकी महत्त्वपूर्ण साक्षी प्रस्तुत की कि बड़े पैमाने पर नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned economy) की ओर अभियान आर्थिक प्रणाली में संभवतः परंपरागत व्यवस्थापन की प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन देगा।

विश्लेषण का दूसरा क्षेत्र संपत्ति के संबंधों का है। वहां पर वैबर ने दर्शाया कि आधुनिक बाज़ार अर्थव्यवस्था और आधुनिक समाज की अनेक अन्य विशेषतायें संपत्ति-अधिकारों की सरचना के एक विशेष मेल पर निर्भर हैं, जिन्हे कि उसने उत्पादन में मालिकों द्वारा गैरमानवीय कारकों का पूर्ण अपहरण (Appropriation) और मालिकों द्वारा मानवीय कारकों का बिल्कुल न अपहरण होना, अर्थात् प्राकृतिक साधनों और वस्तुओं में पूर्ण व्यक्तिगत स्वामित्व और मानवप्राणियों तथा उनकी सेवाओं में संपत्ति-अधिकारों का सवर्था अभाव है।

यह विशेष मेल अद्वितीय है और महत्त्वपूर्ण अर्थों मे भिन्न प्रवृत्तियो के अंतर्गत है। एक ओर यह प्रवृत्तियां ऐसी प्रवृत्तियां है कि मालिकों के पूर्ण संपत्ति-अधिकारों पर प्रतिबंध लगाये जायें, दूसरी ओर यह कि उत्पादन के मानव-साधनों की स्वाधीनता को सीमित किया जाय। वैबर ने विशेषरूप से उसकी पुष्टि की कि, यद्यपि मजदूरों की अपने काम और उत्पादन के साधनों में अधिकार हस्तगत करने की प्रवृत्ति और मालिकों की मज़दूरों की सेवाओं में संपत्ति-अधिकार हस्तगत करने की प्रवृत्ति सैद्धांतिक रूप से विरोधी थीं, किंतु दोनों की ही बुनियादी प्रवृत्ति समान सामान्य परिणामों की ओर ले

जायेगी,अर्थव्यवस्था की सैद्धांतिक बुद्धिसंगति पर प्रतिबंध लगेंगे और मजदूर और उत्पादन के भौतिक साधन परंपरागत संबंधों की स्थिर प्रणाली में बंध जायंगे। यद्यपि किसी भी ऐसे सूत्र में अनेक संशोधनों की आवश्यकता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि वैबर के लिये हमारी मुक्त संपत्ति और मुक्त श्रम की प्रणाली का बुनियादी विकल्प आर्थिक जीवन का एक सामंतवादी प्रकार का संगठन था, जिसमें कि सुरक्षा और निर्भरता के मेल से मजदूर की स्वाधीनता को खरीदा जाता था; और मालिक को मज़दूर के ऊपर इस प्रकार के अधिकार प्राप्त होते थे जोकि अब निषिद्ध हैं, फिर भी उस पर अपने मज़दूरों को निकालने और भौतिक संपत्ति को जैसे चाहे उपयोग करने की स्वाधीनता पर प्रतिबंध लग जायेंगे। इन दोनों ही स्तरों पर वैबर की अधिक सामान्य योजना के अनुसार, आर्थिक जीवन मे एक स्थिर चालू अर्थव्यवस्था की संद्धांतिक बुद्धिसंगति का विकल्प परंपरावाद ही है।

अधिकारसत्ता (Authority) के संस्थागत होने के क्षेत्र मे वैबर का विश्लेषण बहुत कुछ इसी दिशा में है। हालांकि वह वहां पर तीन बुनियादी प्ररूपों का भेद करता है; बुद्धिसंगत-वैध, परंपरागत और करिश्माई। बुद्धिसंगत-वैध सत्ता के उदाहरण में सत्ता सामान्य नियमों की प्रणाली के अंतर्गत एक पद पर आसीन होने के नाते प्रयोग में लाई जाती है। वैधता का स्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में निहित नहीं होता, बल्कि जिन नियमों के अंतर्गत वह पद पर आसीन है उनकी सत्ता मे निहित है। इसलिये इसका क्षेत्र वही तक सीमित है जहां तक कि नियमों की प्रणाली उसे विशिष्ट अधिकार प्रदान करती है। व्यक्ति की अधिकारी सत्ता के क्षेत्र और उसके बाहर के क्षेत्र मे, जिसमें कि वह एक निजी हैसियत से रहता है, बुनियादी पार्थक्य है। एक जटिल समाज मे यह सत्ता पदसोपान (Hierarchy) मे, जिसमें उच्च और निम्न सत्तायें है, प्रत्येक के अधिकृत कार्य विशिष्ट रूप से सीमित है, संगठित होती है। यह प्ररूप संपत्ति प्रणाली और मुद्रा अर्थव्यवस्था से इतना अधिक एकीकृत होता है कि इस संपत्ति मे जिस पर कि व्यक्ति का अपनी सरकारी हैसियत में नियंत्रण है जिसे कि वैबर ने "प्रशासन के साधन" कहा है और व्यक्ति की निजी आय और संपत्ति में स्पष्ट भेद है। इसी प्रकार पारिश्रमिक का प्रत्यय रूप ऐसा निश्चित मुद्रा वेतन है कि संगठन का व्यय के विशिष्ट भेदों पर कोई नियंत्रण नहीं रहता।

परंपरागत सत्ता में, सत्ता को पद पर आसीन होने के नाते नही, बल्कि परंपरा द्वारा स्वीकृत पद (Status) द्वारा प्रयोग मे लाया जाता है। इस पद को परंपरागत व्यवस्था के अनुसार परिभाषित किया गया है जोकि सत्ता की कल्पना को वैधता प्रदान करती है और साथ ही कुछ अर्थो में उसके क्षेत्र की परिभाषा करती है। किंतु परंपरागत व्यवस्था के नियमों के बाहर एक मनमानी इच्छा का क्षेत्र है जिसमें कि व्यक्ति अपनी निजी प्रतिष्ठा और पद के नाते अधिकार का प्रयोग करता है। पद के क्षेत्र और एक व्यक्ति की

हैसियत से उस पर आसीन होनेवाले व्यक्ति की योग्यता स्पष्ट में पार्थक्य नहीं है। न ही प्रशासन के साधनों और व्यक्तिगत संपत्ति के बीच एक स्पष्ट पार्थक्य है। कार्य करने तथा निजी व्यय दोनों ही खर्चों की व्यवस्था चर्च (Benefices) से होती है अर्थात् उन आय के स्रोतों में व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार व्यक्ति को हस्तांतरित कर दिये जाते हैं जिन पर कि संगठन का अधिकार है। जिस प्रकार कि बुद्धिसंगत-वैध सत्ता का आर्थिक जीवन की सैद्धांतिक बुद्धिसंगति से घनिष्ट सह-संबंध है, उसी प्रकार परंपरागत सत्ता इसके प्रतिकल है और उसका सहसंबंध परपरागत अर्थव्यवस्था से है, जिसमे कि कम-से-कम जनसंख्या के अधिक पराश्रित तत्वों की वस्तुओं के पूर्ण व्यक्तिगत स्वामित्व और उनकी व्यक्तिगत स्वाधीनता दोनों पर नियंत्रण है।

तीसरी श्रेणी करिश्माई सत्ता की है। इसे वैबर ने स्थिर दैनिक संगठन के रूप में बिल्कुल नहीं, बल्कि आंदोलनों द्वारा ग्रहण किये गये प्रतिमान के रूप मे परिभाषित किया है। करिश्माई नेता अपनी व्यक्तिगत सत्ता की,जोकि स्थापित व्यवस्थासे स्पष्ट विरोधकर रही है, अन्य लोगों पर अपनी मांगों की वैधता का दावा करता है; यह न तो एक अधिकारी पद (Office) है, न ही एक परंपरागत वैध पद (Status) बल्कि कुछ मायनों मे यह किसी एक या दोनों से ही प्रत्यक्ष विरोध कर रहा है। अन्य दोनों से भिन्न, करिश्माई नेता अपने प्रति या अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठा के नाम पर आज्ञापालन का दावा करता है। पुनः यहा पर, उसके सरकारी पद और व्यक्तिगत जीवन या सरकारी संपत्ति और निजी साधनों के बीच स्पष्ट भेद नहीं है।

अन्य सत्ताओं की भांति करिश्माई सत्ता किसी एक विशिष्ट आर्थिक सगठन के रूप से नहीं बंधी है, क्योंकि वैबर ने आर्थिक संगठन पर निर्णीत दैनिक क्रम की घटना की भाति विचार किया है। करिश्माई आदोलन का प्रभाव विद्यमान स्थिर आर्थिक अवस्थाओं को अव्यवस्थित कर देना है किंतु किसी भी अन्य सामाजिक आंदोलन की भाति यह भी आर्थिक अवस्थाओं से बंधा हुआ है। और यह अनेक बुनियादी कारणों में से एक कारण है कि क्योंकि करिश्माई अवधि मूलतः अस्थायी है। करिश्माई साधनो को जुटाने के दो विशिष्ट रूप हैं—दान और लूटपाट, अर्थात् दमन से प्राप्त साधन, चाहे उनमें हिंसा का प्रयोग हुआ हो या नही। किंतु एक बार सत्ता की स्थिति सुदृढ़ हो जाने पर इन्हे आय के नियमित साधनों मे परिवर्तित करना आवश्यक है, जोकि पृथक्कृत सपत्ति को हथियाने या परंपरागत रूप में प्रदान करने का रूप धारण करते है। परिस्थिति के अनुसार करिश्माई आंदोलन की सत्ता की संरचना या तो परंपरागत या बुद्धिसंगत-वैध दिशा में परिवर्तित हो सकती है।

तुलनात्मक संस्थागत विश्लेषण की यह योजना किसी भी प्रकार वैबर की रचनाओं में संपूर्ण नहीं है, किंतु फिर भी इसमें विश्लेषण के वह कुछ यंत्र हैं जोकि सामाजिक कर्म के सामान्य विश्लेषण में ठीक बैठते हैं, और उन्हें बहुत विस्तृत क्षेत्र की अनुभवजन्य

समस्याओं पर प्रत्यक्ष विचार करने के लिये बनाया गया है। इन अर्थों में कि इसका बहुत कम ही प्रयास किया गया था या अशंतः यह पूरा हुआ, वैबर ने अत्यंत विस्तृत तुलनात्मक दृष्टिक्रम के प्रसंग में आधुनिक पाश्चात्य जगत् की सामाजिक परिस्थिति की कुछ बुनियादी संस्थात्मक विशेषताओं को जांचा। सर्वत्र ही उसने पाश्चात्य समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्थागत विशेषताओं के रूप में उसकी अद्वितीयता और सापेक्ष अस्थिरता पर ज़ोर दिया। यह ऐसा निदान है जिसे कि अनेक अर्थों में उसकी मत्यु के बाद की घटनाओं से जाचा जा चुका है और यह बड़े पैमाने पर सामाजिक घटनाओं को समझने में सावधानी युक्त तार्किक भेद करने की शक्ति के साथ विस्तृत और सही अनुभवजन्य ज्ञान के सम्मिलन का सबसे प्रभावपूर्ण प्रदर्शन है।

सहायक ग्रंथ सूची

(क) वैबर की रचनाएं

Essays in Sociology. H. H. Gerth और C. Wright Mills द्वारा अनूदित और सपादित New York, 1946.

General Economic History, F. H. Knight द्वारा अनूदित, London, 1927.

Gesammelte Aufsatze zur Religionssoziogiologie, 3 Vols. Tubingen, 1920-21.

Gesammelte Aufsatze zur Sozioal-und Wirtschaftsgeschichte, Tubingen 1924.

Gesammelte Aufsatze zur Soziologie und Sozialpolitik, Tubingen, 1924.

Gesemmelte Aufsatze zur Wissenschaftslehre, Tubingen, 1922.

Gesammelte politische Schriften, Munich, 1921.

Grundriss der Sozialokonomik, Part III : *Wirtschaft und Gessellschaft*, 2 vols. Tubingen 1925.

The Protestent Ethic and the Spirit of Capitalism, Talcott Parsons London, 1930.

The Theory of Social and Economic Organisation, Talcott Parsons London, New York, 1947.

Wirtschaftsgeschichite, S., Hellman और M. M. Palyi द्वारा संपादित, Munich, 1923.

(ख) गौण स्रोत

Abel Teodore F., *Systemetic Sociology in Germany* ("Studies in

History, Economics, and Public Law," Faculty of Political Science of Columbia University, No. 310, New York, 1930.

Barker, Earnest, *Church, State and Study*, London, 1930.

Bennion, L. L., *Max Weber's Methodology*, Paris, 1933.

Freyer, Hans, *Soziologie als Wirklichkeitswissenschaft*, Leipzig, 1930.

Halbwachs, Maurice, "Max Weber, un homme, une oeuvre," *Annales d'histoire economique et sociale*, I (January, 1929), 81–88.

—"Les Origines puritaines du capitalisme moderne," *Revue d'histoire et philosophie religieuses*, V (1925), 132-34.

Jaspers, Karl, *Max Weber : Deutsches Wesen im politischen Denken, im Forschen und Philosophieren*, Oldenburg, 1932.

Merton, R. K., *Science and Society in Seventeenth Century England*, ("Osiris : History of Science Monographs", Vol. IV, George Sarton द्वारा संपादित, Cambridge, Mass.

Mises, L. von. "Soziologie und Geschichte, "*Archiv fur Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*, LXI (1929), 465–512 pp. 470–97).

Parsons, Talcott, "H. M. Roberston on Max Weber and His School." *Journal of Political Economy*, XLIII (1935), 688–96.

Robertson, Hector M., *Aspects of the Rise of Economic Individualism : A Criticism of Max Weberand His School*, Cambridge, 1933.

Salomon, Albert, "Max Weber's Methodology, "*Social Research*, XI (1934), 147—68.

—"Max Weber's Political Ideas," *ibid.*, II (1935), 386–84.

—"Max Weber's Sociology", *ibid.*, pp. 60–73.

Schelting, Alexander von., "Die logische Theorie der historischen Kulturwissenschaften von Max Weber und im besonderen sein Begriff des Idealtypus, "*Archiv fur Sozialwissenschaft und Sozialpolitik.*

—"*Max Weber's Wissenschaftslehre*, Tubingen, 1934.

Schutz, Alfred, *Der sinnhafte Aufbau der sozialen Welt*, Vienna, 1932.

Spann, Ottmar, *Tote und lebendige Wissenschaft* 2d ed., Jena, 1925.

Tawney, Richard, H., *Religion and the Rise of Capitalism*, New York, 1926, 2d. ed. 1929.

Troeltsch, Ernst, "Max Weber" अपने *Deutscher Geist und Westeuropa*, Tibingen, 1925 में।

—*The Social Teaching of the Christian Churches*, Olibe Wyon द्वारा अनूदित, 2 Vols., New York, 1931.

Weber, Marianne, *Max Weber : Ein Lebensbild*, Tubingen, 1926.

टिप्पणियां

१. वैबर के जीवनवृत्त के लिये उसकी विधवा मैरियन वैबर की श्रेष्ठ जीवनी *Max Weber : Ein Lebensbild* देखिये। इसमें उसकी रचनाओं की पूर्ण ग्रंथसूची भी है।

२. *Gesammelte Aufsatze zur Religionssoziologie* (3 vols. ; Tubingen, 1920-21).

३. इसमें प्रोटेस्टेंट आचार पर संशोधित निबंध, कुछ परिचयात्मक सामग्री, और कनफूशियसवाद और टाओवाद के अध्ययन सम्मिलित हैं।

४. इसमें क्रमशः हिन्दू, बौद्ध और यहूदी धर्म के अध्ययन सम्मिलित हैं।

५. वैबर सदैव यह निर्देश करने में सावधान था कि उसका यह अर्थ नहीं है कि एक निर्दिष्ट मान अवलोकनकर्ता द्वारा अनिवार्य समझा जाता था। उसने सांस्कृतिक सापेक्षता के महत्त्वपूर्ण विचार के लिये स्थान छोड़ा, जोकि इस मत से संगत थी कि क्रिया को, एक निर्दिष्ट उदाहरण में, चाहे उसकी कोई भी विशेष अंतर्वस्तु हो, मानात्मक प्रतिमानों की अनुस्थिति के प्रसंग में ही सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है।

६. *Wirtschaft und Gesellschaft*, Part I के लेखक के अनुवाद का परिचय देखिये।

७. मिलाइये लेखक का लेख "The Role of Ideas in Social Action." *American Sociological Review*, October, 1938.

८. *The Theory of Social and Economic Organization*, A. M. Henderson और Talcott Parsons द्वारा अनूदित, London, 1947.

९. लेखक के Structure of Social Action, New York, 1937. chap. xvii में।

अध्याय सात

एमील दुरखीम का समाजशास्त्रवाद और उसका संप्रदाय

एमिल बेनौयत-स्मुलियन

एसोसियेटेड कालेजेज़ ऑफ अपर न्यूयार्क

१. दुरखीम के अग्रणी

जिन अर्थों में हमने यहां पर समाजशास्त्रवाद (Sociologism) शब्द का प्रयोग किया है, उन अर्थों में यह विज्ञानवादी पद्धतिशास्त्र [१](Positivistic Methodology) के साथ एक विशेष प्रकार के स्वतंत्र सिद्धांतों का समन्वय है जिसके लिये कि हमने ग्रीक शब्द *Agelic* से जिसका अर्थ समूह है Agelecism (समूहवाद) शब्द को गढ़ा है।[२] "समूहवाद" से हमारा तात्पर्य उस सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धांत से है जोकि वास्तविकता की अद्वितीयता या सामाजिक समूह को एक समूह के रूप में उसे कारणों में प्राथमिकता (Causal priority) देता है। अपने वर्तमान रूप में समूहवाद का फ्रेंच सामाजिक विचारधारा में द बोनाल्द और द मैस्त्र ने प्रवेश कराया था, जिनका मत था कि सामाजिक समूह व्यक्ति से पहले विद्यमान है और वही उसकी रचना करता है, वही संस्कृति और समस्त उच्च मूल्यों का स्रोत है; सामाजिक स्थिति में और परिवर्तन व्यक्तियों की इच्छाओं और उनके परिवर्तन से उत्पन्न नहीं होते, और न ही वह उनसे प्रत्यक्ष प्रभावित या संशोधित हो सकते हैं।

विज्ञानवाद (Positivism), यह सिद्धांत कि समाज-विज्ञानों को भौतिक विज्ञानों की पद्धतियों या योजनाओं को अपनाना चाहिये, सर्वप्रथम सेंट-साइमन ने, जिसने कि "सामाजिक भौतिकशास्त्र" या "सामाजिक शरीरक्रियाशास्त्र" के कार्यक्रम की रूप-रेखा बनाई, जोकि सामाजिक विकास के "आवश्यक" नियमों को खोजेगा, इसका विचारयुक्त विकास किया। उसने नैतिकता को समूह की संरचना से सापेक्ष (Relative) मानकर और नैतिकता के व्यावहारिक विज्ञान और चिकित्साशास्त्र या आरोग्यशास्त्र के बीच सादृश्य को बताकर नैतिकता के समाजशास्त्रीय सिद्धांत का आधार जुटाया। समूहवाद और विज्ञानवाद के इस समन्वय को कोंत ने और अधिक स्पष्ट और क्रमबद्ध किया। उसने बोनाल्द की अंतःपर्यवेक्षित (Introspective) मनोविज्ञान की आलोचना पुनर्जीवित कर तथा विज्ञानों के वर्गीकरण से मनोविज्ञान को हटाकर, समाज-शास्त्रवाद के पद्धतिशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण मनोविज्ञान-विरोधी पूर्वाग्रह का प्रवेश कराया। उसके सामाजिक नियंत्रण के प्रबल व्यक्तिवाद-विरोधी कार्यक्रम, उसके

सामाजिक एकमतता (Consensus) के सिद्धांत, एक "महत् अस्तिता" (Great Being) की अवधारणा और एक सच्ची सामाजिक इकाई के रूप में परिवार पर बल देने, इन सबने समूहवाद के एक विस्तृत विकास में अपने तत्व प्रदान किये। द रौबर्टी का, जोकि यद्यपि रूसी था, फ्रेंच समाजशास्त्रवादी विचारधारा के विकासवाद में प्रमुख स्थान है। उसने प्राणिसामाजिक पूर्वकल्प (Biosocial hypothesis) प्रदान किया जोकि मनोविज्ञान को प्राणिशास्त्र और समाजशास्त्र से निकला हुआ एक ठोस और पराश्रित विज्ञान मानता है और संस्कृति तथा मानव मस्तिष्क की उच्च योग्यताओं को मानव अन्तःक्रिया (Interaction) और समूह की परिस्थिति की उपज कहकर समझाता है। बादवाले सिद्धांत को बाद मे इज़ूले और द्रैंगीसैंसो ने व्यक्त और स्पष्ट किया। अंत में कोंत के विज्ञानवाद से अनुप्रेरित प्राणिशास्त्रीय सैद्धांतिक एस्पिनास ने यह घोषणा की कि व्यक्ति केवल जीवकोषों (Cells) का एक समाजमात्र है, और उसके विपरीत समाज को वैधरूप से एक प्रकार का सामूहिक चेतनायुक्त सर्वोच्च व्यक्ति (Superindividual) माना जा सकता है।

इस विशेष विचारधारा पर दुरखीम की आधारभूत निर्भरता से इन्कार करना कठिन है।[१] दुरखीम कोंत के तीन अवस्थाओं के नियम और उसकी एक पृथक् समाज के निर्माता के रूप में मानवता की अवधारणा से असमहत है; और वह एस्पिनास के प्राणिशास्त्रीय अभ्युपगमों (Assumptions) से भी असहमत है। किंतु उसकी पद्धतिशास्त्रीय विज्ञानवाद और समूहवाद के विशेष मिश्रण से, जोकि यहां पर परिभाषित समाजशास्त्रवादी परंपरा का सार है, तीव्र सहानुभूति है। दुरखीम की सफलता को तीन शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है: पहली, एक सैद्धांतिक संरचना मे विज्ञानवाद और समूहवाद का उसका श्रेष्ठ समन्वय; दूसरी, इस सैद्धातिक योजना के अनुसार अनेक अनुभवात्मक (Empirical) समस्याओं का अन्वेषण और विश्लेषण; तीसरी, *Annee Sociologique* पत्रिका की स्थापना और संपादन और इसके संबंध में एक उत्साही सहयोगियों और शिष्यों के समूह का विस्तृत किंतु एकीकृत अनुभवात्मक गवेषणा के कार्यक्रम में मार्गदर्शन।

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य एक एकीकृत विचारप्रणाली के रूप मे कल्पित दुरखीम के समाजशास्त्र का संक्षिप्त विश्लेषण है। हम केवल प्रसंगवश ही दुरखीम के विचारों के संक्रमण की ऐतिहासिक समस्या और उनके विकास की प्रक्रिया का जिक्र करेंगे। न ही हम एक विस्तृत या समुचित समालोचना प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे, यद्यपि टिप्पणियों में कुछ मुख्य बातों की संक्षिप्त समालोचना होगी।[२] यह कहने की आवश्यकता नहीं कि एक अध्याय के परिधि में दुरखीम के समाजशास्त्र की केवल सबसे प्रमुख विशेषताओं पर ही विचार किया जा सकता है।

२. दुरखीम के समाजशास्त्र में पद्धतिशास्त्र

दुरखीम के कुछ विद्यार्थियों का कहना है कि दुरखीम की संपूर्ण समाजशास्त्रीय प्रणाली मूलतः कुछ पद्धतिशास्त्रीय अंतर्दृष्टियों पर आधारित है।[५] इसमें कम-से-कम कोई संदेह नहीं कि पद्धतिशास्त्रीय पूर्वधारणाओं ने दुरखीम के समाजशास्त्र को ढालने में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया। तदनुसार हमारा पहला कार्य दुरखीम के पद्धतिशास्त्र के अनिवार्य तत्वों का विश्लेषण करना और विज्ञानवादी श्रद्धा (Positivistic faith) में, जिससे कि दुरखीम अनुप्रेरित था, उनके मूल को ढूंढ़ना था।[६] प्रधान विज्ञानवादी परंपरा से दुरखीम की निरंतरता को समाजशास्त्र और दर्शनशास्त्र के बीच विद्यमान उसकी स्थिति में तत्काल देखा जा सकता है। वह इस अभ्युपगम को कि समाजशास्त्र को किसी-न-किसी दार्शनिक पूर्वकल्प पर आधारित होना चाहिये, अस्वीकार कर प्रारंभ करता है। समाजशास्त्र को दर्शनशास्त्र से पूर्णतः स्वतंत्र होना चाहिये; फिर भी यह स्वतंत्रता पारस्परिक है, चूंकि एक समुचित दर्शनशास्त्र आवश्यकतावश समाजशास्त्र द्वारा प्रदत्त महत्त्वपूर्ण तत्वों, विशेषकर साहचर्य (Association) की बुनियादी प्रक्रियाओं का समावेश करेगा। यह स्पष्ट ही विज्ञानवादी दर्शनशास्त्र के अनिवार्य तत्व, अर्थात् प्रधान दार्शनिक परंपराओं को अवैज्ञानिक कहकर त्यागने तथा वैज्ञानिक निष्कर्षों को सामान्यीकृत कर या सार्थक लगनेवाले सैद्धांतिक प्रश्नों पर वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग कर एक नये दर्शनशास्त्र के निर्माण के प्रयास के अनुरूप है। कोंत की भांति दुरखीम भी विशेष रूप से ' समाज के नये विज्ञान के निष्कर्षों के आधार पर दर्शनशास्त्र के पुनर्निर्माण की आशा करता है। इस नये विज्ञान के पद्धतिशास्त्रीय सुधार की उसकी योजनाओं की अब हम परीक्षा करेंगे।

दुरखीम के अपने वक्तव्य के अनुसार, उसकी सबसे बुनियादी पद्धतिशास्त्रीय स्थापना (Postulate) है कि हमें "सामाजिक तथ्यों पर वस्तुओं (Things) के रूप में विचार करना चाहिये।[८] इस सूत्र का इच्छित अर्थ कभी स्पष्ट नहीं हुआ, चूंकि दुरखीम ने "वस्तु" को चार भिन्न और अर्थों में, जोकि एक दूसरे के बहुत निकट नहीं हैं, प्रयोग किया है, अर्थात् (१) एक ऐसी इकाई जिसके कुछ निश्चित गुण हैं जोकि मानव अवलोकन से पृथक् हैं; (२) एक ऐसी इकाई जिसे कि केवल एक पश्चानुभव (Posteriori) के रूप में जाना जा सकता है (उदाहरण के लिये जोकि एक गणितिक संबंध के विरुद्ध है); (३) एक ऐसी इकाई जिसकी सत्ता मानव इच्छा से स्वतंत्र है; (४) एक ऐसी इकाई जिसे कि केवल "बाह्य" (External) अवलोकन से ही जाना जा सकता है (जैसे कि उदाहरण के लिये मनोविज्ञान में व्यवहार या अन्यों की शरीरक्रियात्मक स्थितियों का इंद्रियगम्य (Sensory) अवलोकन) और अंतःपर्यवेक्षण से नहीं।

इस व्यवस्था का अर्थ कि हमें सामाजिक तथ्यों को वस्तु में समझना चाहिए "वस्तु" शब्द के गृहीत अर्थ के बदलने से बदल जाता है। शब्द के पहले अर्थ में इस व्यवस्था का इससे अधिक अर्थ नहीं कि समाजशास्त्री के पास एक वास्तविक विषयवस्तु है। दूसरे अर्थ

मे इसका अर्थ है कि सामाजिक तथ्यों को केवल किसी प्रकार के अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, एक पूर्वानुभव दृष्टि (Apriori insight) द्वारा नही। यह दो स्थापनायें प्राय: सभी समाजशास्त्रियों द्वारा स्वीकार की जायेंगी। तीसरे और चौथे अर्थों में यह व्यवस्था अधिक विवादास्पद बन जाती है। तीसरे अर्थ में यह अंत:मानवीय संबंधों मे नियतिवाद (Determinism) के अभ्युपगम को मानता हुआ लगता है।[९] चौथे अर्थ मे यह हमे सामाजिक तथ्यों के बाहरी अवलोकन तक सीमित करता है और अत:पर्यवेक्षित साक्षी के, चाहे उसे वैज्ञानिक सतर्कता ही से क्यों न चुना और जांचा गया हो, प्रयोग का निषेध करता है।

दुरखीम का खयाल है कि कोंत और स्पेंसर की शास्त्रीय समाजशास्त्रीय प्रणालियां और साथ ही संपूर्ण विधिशास्त्र (Jurisprudence), अर्थशास्त्र और नैतिकता के सिद्धात, सभी निगमनात्मक (Deductive) तर्क पर अत्यधिक निर्भरता और मानात्मक (Normative) या मूल्याकन के दृष्टिकोण से दूषित है। ये दोनों भूले एक ही स्रोत से उत्पन्न हुई है : समाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप मे ग्रहण न करना, चूंकि यदि सामाजिक तथ्य वस्तुयें है तब उन्हें प्रत्येक अवस्था मे अनुभव से देखा जा सकता है और वे केवल कुछ प्रारभिक अभ्युपगमों से प्राप्त अनुमानमात्र नही है, और इसके अतिरिक्त, हमे केवल उन्हे जानने और उनके अनुकूल अपने को ढालने की चेष्टा करनी चाहिये। मूल्याकन असगत है। वैज्ञानिक वस्तुगतता या निरपेक्षता (Objectivity) को सुनिश्चित करने के लिये समाजशास्त्री को अवधारणाओ (Concepts) से प्रारंभ न कर इद्रियगम्य (Sensory) तथ्य से प्रारभ करना चाहिये। ये उसकी परिभाषाओं के तत्वों को प्रदान करेगे।[१०] समाजशास्त्री को इंद्रियगम्य तथ्यो के कुछ वस्तुपरक (Objective) योग ढूंढ़ने चाहिये, जिनकी भिन्नताये समाज के आतरिक जीवन को उसी प्रकार मापेगी ठीक जिस प्रकार कि थर्मामीटर के उतार-चढ़ाव तापमान के आत्मपरक (Subjective) इंद्रियगम्य न्यासों के स्थान पर वस्तुपरक देशना (Index) प्रदान करते है। तथ्यों के ऐसे तीन स्तर है जिन्हें कि दुरखीम इस वस्तुगतता से युक्त और साथ ही वैयक्तिक की अपेक्षा सामूहिक स्वीकार करता है। वे है कानूनी संहितायें, सामाजिक आकड़े और धर्म सिद्ध व्यवस्था (Dogmas)।[११]

दुरखीम की समाजशास्त्रीय व्याख्या के बुनियादी नियम है, पहला कि सामाजिक तथ्य को सदैव यत्रवत् निश्चित समझना चाहिये और दूसरा, कि इसे अन्य सामाजिक तथ्य के अनुसार कभी भी निम्न कोटि के तथ्य (उदाहरण के लिये प्राणिशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक कारण) द्वारा नही,[१२] समझाया जाना चाहिये। इस विषय की अपनी विवेचना मे दुरखीम एक साथ दो विरोधियो, मनोविज्ञानवाद और व्यक्तिवाद पर और साथ ही इन दोनों के उस विशेष मिश्रण पर, जिससे कि उपयोगितावाद बना है, आक्रमण करता है। दुरखीम की मान्यता है कि सामाजिक तथ्य को उसकी उपयोगिता या व्यक्तियों को उससे प्राप्त संतुष्टि के अर्थों में व्याख्या करने की सामान्य कार्यप्रणाली सर्वथा भ्रांति-

पूर्ण हैं, चूंकि हमारी आवश्यकतायें अपने आपमें उन अवस्थाओं को उत्पन्न नही करतीं जोकि उन आवश्यकताओं को संतुष्ट करें; और केवल प्रभावकर कारण के अर्थों में ही कोई व्याख्या विज्ञानसम्मत रीति से स्वीकार की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, यदि हमने यह मान लिया कि सामाजिक तथ्य का कारण व्यक्ति में ही निहित है, तब हम उस बंधन (Constraint) को समझाने में असमर्थ रहेंगे जोकि परिभाषा से व्यक्ति पर लगा हुआ है। अतएव "सामाजिक तथ्य का निर्णायक कारण पूर्ववर्ती सामाजिक तथ्यों में खोजा जाना चाहिये .... सामाजिक तथ्य का कार्य सदैव किसी सामाजिक लक्ष्य से उसके संबंध मे खोजा जाना चाहिये।" [११]

फिर भी यह प्रश्न रह जाता है कि सामाजिक तथ्यों का कौन-सा विशेष क्रम हमें कौन-सा अंतिम व्याख्यात्मक सिद्धांत जुटाये। दुरखीम तर्क कहता है, चूंकि सामाजिक तथ्य साहचर्य की क्रिया से उत्पन्न होते है, अतः उन्हें इस साहचर्य के रूपों की भिन्नता के साथ "अर्थात् उन्हे उस रीति के अनुसार जिसके अनुसार कि समाज के रचयिता भाग आपस में मिलाये जाते है" परिवर्तित होना चाहिये। इस प्रकार "किसी भी महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया का अंतिम उद्गम उसके आंतरिक सामाजिक वातावरण (Milieu) की संरचना में ढूंढ़ा जाना चाहिये।" [१४]

यह आंतरिक सामाजिक वातावरण, जिसे कि दुरखीम ने अन्यत्र सामाजिक "मूलाधार" (Substratum) [१५] कहा है, ऐसे रचनागत (Morphological) तत्वों से बना है, जैसे कि समूह में लोगों की संख्या उनकी निकटता की सीमा, किस हद तक वह एक निर्दिष्ट क्षेत्र में बराबर फैले हुए है, संचार और यातायात के साधनों की संख्या और प्रकार इत्यादि। इसलिये मूलतः यह भौतिक इकाइयों के (यहा पर व्यक्तियों को भी उनके भौतिक रूप मे माना गया है) दिक्मय (Spatial) वितरण का मामला है। इस कारक की घोषित अंतिम प्रधानता ने अनेक लेखकों को दुरखीम को समाजशास्त्रीय भौतिकवाद (Materialism) [१६] का समर्थक कहने को बाध्य किया है। इस समालोचना से बचने के लिये दुरखीम यह कहता है कि एक निर्दिष्ट क्षेत्र मे लोगों की केवल संख्या ही ("भौतिक घनत्व") महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह कि कितने लोगों ने प्रभावकर नैतिक संबंध ("गत्यात्मक घनत्व)" स्थापित किये है। इस अवधारणा मे अभौतिक तत्व का प्रवेश कराकर दुरखीम ने इसकी अधिकांश क्रियात्मक उपयोगिता का बलिदान कर दिया है, चूंकि तब इसके कार्यान्वित होने के अंश को पूर्णतः बाह्य अवलोकन से निर्धारित नहीं किया जा सकता। [१७]

दुरखीम के विज्ञानवाद (Positivism) का एक रोचक पहलू सामाजिक मार्गदर्शन के लिये एक व्यावहारिक समाजशास्त्र के कार्यक्रम के नियमों की रचना है। [१८] यह विज्ञान हमें केवल यह सलाह ही नहीं देगा कि सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति का कौन सर्वोत्तम मार्ग है बल्कि वह उन लक्ष्यों को भी चुनेगा जिन पर कि एक निर्दिष्ट समाज को चलना चाहिये, और वह इसे अनुभवात्मक न्यासों के सर्वथा वैज्ञानिक अवलोकन के आधार

पर करेगा। दुरखीम का दावा है कि सामाजिक स्वास्थ्य और सामाजिक रोगशास्त्र के वस्तुगत मानदंड को खोजकर इसे संपन्न किया जा सकता है। ऐसे मानदंड को एक बार पाकर समाजविज्ञान समाजशास्त्र के सामान्य नियमों को सामाजिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये उसी प्रकार प्रयोग में ला सकता है जिस प्रकार कि चिकित्साविज्ञान शरीर-क्रियाशास्त्र के नियमों को व्यक्तिगत सावयव के संरक्षण में प्रयोग करता है।[१९]

दुरखीम ने उपयोगिता को मानदंड के रूप में तत्काल त्याग दिया, चूंकि इसमें व्यक्तियों की आत्मपरक स्थितियों (Subjective states) से अपील की जाती है, और इसलिये इसमें वैज्ञानिक वस्तुगतता का अभाव है। इसके बजाय उसने "सामान्यता" (Normality) के अर्थों में स्वास्थ्य की परिभाषा की है और "साधारणता" (Generality) को सामान्यता के मानदंड के रूप में स्वीकार किया है। सामाजिक दृष्टि से वह स्वस्थ है जोकि सामान्य है, और चूंकि "सामान्य प्ररूप औसत प्ररूप के समान है अतः इस मान से विच्युति एक रोगी घटना है।"[२०] इस मानदंड के प्रयोग में दुरखीम विरोधी निष्कर्षों की ओर अग्रसर हुआ है। चूंकि अपराध सभी या अधिकांश समाजों में प्रचलित है, इसे सामान्य और सामाजिक स्वास्थ्य का एक तत्व माना जाना चाहिये। दूसरी ओर, पाश्चात्य सभ्यता के सभी समाजों में पिछली शताब्दी से प्रचलित कुछ घटनायें, जैसे कि आत्महत्या की बढ़ती हुई दर, आत्महत्या की घटती हुई नैतिक निंदा और कुछ प्रकार के आर्थिक विषमायोजन (Maladjustments) दुरखीम द्वारा रोगयुक्त बताये गये है।[२१] समालोचकों ने इस ओर भी निर्देश किया है कि सामान्यता का यह मानदंड सामाजिक अनुरूपता की अति अनुदार नैतिकता की ओर ले जाता है, चूंकि समाज में साधारणता से प्रत्येक विच्युति को रोगयुक्त कहा गया है।[२२] संभवतः इस आलोचना मे अंतर्निहित छूट स्वयं दुरखीम की इस स्वीकारोक्ति में है कि यह सामाजिक परिवर्तन की अवधियों में (वर्तमान की भांति) साधारण घटनाओं मे केवल "सामान्यता की प्रतीति" (Appearance of normality) ही हो सकती है, और कुछ असाधारण घटनायें भी सामान्य हो सकती है क्योंकि वे सामाजिक सत्ता (Existence) की आवश्यकताओं से घनिष्टतया बंधी हुई है।[२३]

३. दुरखीम के सिद्धांत

(क) सामाजिक तथ्य

दुरखीम ने बंधन (Constraint) और बाह्यता (Exteriority) के अर्थों में सामाजिक तथ्य की अपनी परिभाषा पर बहुत ज़ोर दिया है। दुर्भाग्य से इन मानदंडों का अर्थ कभी भी स्पष्ट नही हुआ। इस पद्धतिशास्त्रीय स्थापना (Postulate) से कि हमें सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं की भांति ग्रहण करना चाहिये, दुरखीम ने यह परिणाम निकाला कि सामाजिक तथ्य में वस्तुओं के दो महत्त्वपूर्ण गुण होने चाहियेः यह वैज्ञानिक के मन से बाहर (इन अर्थों में कि वह उसके समान नहीं है) होना चाहिये,

और इसे वैज्ञानिक पर कुछ बंधन लगाने चाहिये (इस अर्थ में कि इसके स्वतंत्र गुण हैं जो कि वैज्ञानिक की इच्छा से प्रभावित नहीं होते, और वैज्ञानिक सिद्धांत को जिनके अनुरूप होना चाहिये, या यदि वह सत्य है उसे इन्हें व्यक्त करना चाहिये)। सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिक से हटकर सामाजिक तथ्य के एक वातावरण में रहकर कार्य करनेवाले व्यक्ति पर ध्यान देकर दुरखीम बाह्यता और बंधन के मानदंड को एक नया और विशुद्ध स्वतंत्र अर्थ प्रदान कर सका। कार्य करनेवाले व्यक्ति के लिये सामाजिक तथ्य इस अर्थ में वाह्य है कि इसे एक स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में अनुभव किया जा सकता है जिसे कि न तो उसने, न किसी अन्य व्यक्ति ने उत्पन्न किया, और जोकि वस्तुतः उसके वस्तुगत वातावरण का एक भाग है। इसी प्रकार सामाजिक तथ्य में बंधन का गुण विद्यमान है जिससे कि यह व्यक्तियों की इच्छाओं के अनुरूप नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध यह अपने को व्यक्तियों द्वारा थोपता है, उनके व्यवहार को और उनकी इच्छाओं तक को नियंत्रित करता है।

सामाजिक तथ्य की बाह्यता का स्वतंत्र मत इस प्रकार, जिसे कि हमने "सामूहिक यथार्थवाद" (Agelic realism) कहा है, उससे मिलता है। यह इस बात की घोषणा करता है कि समाज व्यक्तियों से ऊपर और उनसे पृथक् एक अद्वितीय वास्तविकता है। इस मत की पुष्टि में दी गई दुरखीम की साक्षी चार प्रमुख प्रकारों की है। पहली, व्यक्ति और मन की सामूहिक अवस्थाओं की कथित अनेकरूपता (Heterogeneity) है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय संकट के समय मे किसी भी व्यक्ति की भावना की अपेक्षा राष्ट्रीयता की सामूहिक भावना और व्यक्तियों की अपने को बलिदान करने की तत्परता की अपेक्षा समाज की व्यक्तियों को बलिदान करने की तत्परता कही अधिक तीव्र होती है। इसी प्रकार व्यक्ति द्वारा कुछ झिझककर और अस्पष्ट रूप में बेईमानी की निंदा "समाज की बिना किसी झिझक के स्पष्ट रूप में सभी प्रकार की चोरी की निंदा" [२४] से सर्वथा भिन्न कही जा सकती है। दूसरी प्रकार की युक्ति जोकि किसी-न-किसी रूप में दुरखीम की प्रायः समस्त रचनाओं में पाई जाती है, सामूहिक परिस्थिति से उत्पन्न व्यक्तिगत धारणाओं और व्यवहार की भिन्नता पर ज़ोर देगी। एक भीड़ में व्यक्ति एक पृथक् रीति से सोचता, अनुभव करता और कार्य करता है। दुरखीम का ख़याल है कि इससे यह निष्कर्ष निकला कि व्यक्तियों के साहचर्य से एक नई वास्तविकता उत्पन्न होती है और यह वास्तविकता व्यक्तियों की भावना और व्यवहार को प्रभावित करती है और उन्हें बदलती है। तीसरी प्रकार की साक्षी सामाजिक आंकड़ों की समानताओं द्वारा प्रदान की जाती है। अनेक प्रकार के सामाजिक तत्व, जैसे कि अपराधों, विवाहों और आत्महत्याओं में, प्रत्येक वर्ष एक आश्चर्यजनक अंश में संख्यात्मक संगति (Numerical consistency) दिखाई देती है, जोकि प्रायः अपरिवर्तित रहती है या उसमें परिवर्तन की एक समान दर क़ायम रहती है। दुरखीम यह युक्ति देता है कि ऐसी समता व्यक्तियों की निजी इच्छाओं या गुणों से उत्पन्न नहीं होती,

जोकि इतने भिन्न हैं कि वे प्रायः एक आकस्मिक (Random) वितरण का निर्माण करते हैं। दुरखीम यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि न ही उन्हें भौतिक प्राणिशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक समताओं से संतोषजनक रूप में समझाया जा सकता है। इसकी व्याख्या केवल कुछ वास्तविक सामाजिक धाराओं के प्रवाह में मिल सकती है जो कि व्यक्ति के वातावरण का (जोकि अभी तक अज्ञात है) का निर्माण करता है।[२५] चौथी युक्ति सादृश्य (Analogy) और उद्गम (Emergence) के दार्शनिक सिद्धांत पर आधारित हैं।[२६] ठीक जिस प्रकार जीवन की घटना को जीवाणुओं से जोकि जीवकोषों का निर्माण करते हैं, भौतिक रासायनिक गुणों से नहीं, बल्कि जीवाणुओं के विशेष सम्मेलन से ही उसे समझाया जा सकता है, और इस प्रकार कि चेतना की घटना जीवकोष की शरीरशास्त्रीय प्रकृति में नहीं बल्कि जीवाणुओं के एक विशेष प्रकार के सम्मिलन में है, इसलिये हमें यह मान लेना चाहिये कि समाज को पृथक् व्यक्तिगत मनों के गुणों में नहीं बताया जा सकता बल्कि वे एक अद्वितीय वास्तविकता का निर्माण करते है जोकि व्यक्तिगत मनों के संग्रह और अंतःक्रिया से उत्पन्न होती है।

सामाजिक तथ्य की अन्य विशेषता वह "बंधन" है जोकि यह व्यक्तियों पर लगाता है; इसे बाह्यता का एक सरल सहवर्ती कहा जा सकता है। चूंकि सामाजिक तथ्य वास्तविक और बाह्य दोनों ही है, अत यह व्यक्ति के वातावरण का अंश है और अपने वातावरण के भौतिक और प्राणिशास्त्रीय अंशों की भांति यह उस पर कुछ बंधन लगाता है; स्वतत्र वास्तविकता की यह विशेषता है कि यह हमारी इच्छाओं (Volitions) का प्रतिरोध है और वह उल्टा दबाव है जोकि यह हमारे व्यवहार पर डालती है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक बंधन का तथ्य व्यक्ति के प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। व्यक्ति सामाजिक निंदा की दृश्य साक्षियों के अनुभव के बिना कानूनी और नैतिक नियमों का (जोकि सामाजिक तथ्यों के सर्वथा विशिष्ट आदेश) उल्लंघन नही कर सकता। किंतु यदि क़ानूनी और नैतिक नियमों मे बंधन इतना अनिवार्य तत्व है तो यह अन्य प्रकार के सामाजिक तथ्यों में सर्वथा अनुपस्थित नहीं कहा जा सकता।[२७]

(ख) श्रम-विभाजन (Division of Labour)

दुरखीम ने श्रम-विभाजन पर अपनी पुस्तक *De la division du travail social* में जिन प्रमुख समस्याओं पर विचार किया है वे सामाजिक विकासवाद के स्वरूप और कारणों से संबंधित हैं।[२८] दुरखीम स्पेंसर और उपयोगितावादियों से इस बात पर सहमत था कि आदिकालीन (Primitive) जीवन से सभ्य सामाजिक जीवन मे परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू श्रम-विभाजन या विशेषीकरण की वृद्धि में मिलता है। किंतु उसने यह अनुभव किया कि सामाजिक विकासवाद के अपने विवरण में उपयोगितावादियों ने आर्थिक परिवर्तनों पर अधिक ज़ोर दिया और उन्होंने उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और नैतिक और क़ानूनी परिवर्तनों को ग़लत समझा या उनकी उपेक्षा की। दुरखीम की दृष्टि में, आदिकालीन और सभ्य समाजों का बुनियादी अंतर

उनकी नैतिकता या सामाजिक एकता (Solidarity) के प्रकार में है,[११] जोकि स्वयं तदनुरूप क़ानूनी संहिताओं में व्यक्त होता है।

आदिकालीन समाज में, जहां कि श्रम-विभाजन प्रारंभिक है, व्यक्ति अपेक्षतया अधिक समरूप हैं, और एक "यंत्रवत्" (Mechanical) एकता से बंधे हुए हैं, जन-मत और परंपरा के आदेशों का आंख मूंदकर पालन जिसकी विशेषता है। क़ानूनी प्रणाली मुख्यतः उन्हें, जोकि सामूहिक इच्छा का उल्लंघन करते हैं और सामाजिक भावनाओं पर आघात करते हैं, दंड देने के लिये तथा इस दंड द्वारा नैतिक संतुलन पुन-र्स्थापित करने के लिये बनाई गई है। ऐसे समाज में नैतिक और कानूनी दायित्व सामूहिक है, सामाजिक स्थिति (Status) आनुवंशिकता द्वारा निश्चित है और सामाजिक जीवन का अपेक्षतया अल्प भाग ही संविदा-सिद्धांत से नियमित होता है। सभ्य समाजों में, जहां कि श्रम-विभाजन सुविकसित है, व्यक्तियों के भिन्न व्यक्तित्व, अनुभव और कार्य होते हैं, और वे एक दूसरे की सेवा की आवश्यकता में नहीं, "सावयवी" (Organic) एकता मे बंधे होते है। क़ानूनी प्रणाली का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को वह लौटाना है जोकि अनुचित रूप से उससे छीन लिया गया था। इस प्रकार के समाज में व्यक्तिवाद ही प्रबल नैतिकता है, किंतु यह बहुत विशेष अर्थों में व्यक्तिवाद है। हमारे प्रकार के समाज मे विचारयुक्त नैतिक धारणा के रूप में, व्यक्तिवाद व्यक्ति की अपनी तात्कालिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये असीमित अधिकार का दावा नहीं है, इसके बजाय उसका यह कर्तव्य है कि वह सामाजिक कल्याण मे अपना विशिष्ट योगदान करने के लिये गहन विशेषीकरण द्वारा अपने पृथक् व्यक्तित्व को विकसित करे। यह अपरिपक्वता के सुख से बचने और श्रम-विभाजन को बढाने के लिये एक कठोर आदेश है।[१०] दुरखीम यह दर्शाने के लिये अत्यंत व्यग्र है कि विशुद्ध अहंवादी और भोगप्रधान व्यक्तिवाद कभी भी सामा-जिक एकता उत्पन्न नहीं कर सकता या सामाजिक सम्मिलन का आधार नही बन सकता। वह यह बताता है कि शांतिपूर्ण और कल्याणकारी संविदात्मक संबंध केवल एक कानूनी और नैतिक व्यवस्था के ढांचे में ही कायम रह सकते है जोकि उन संविदाओं को सीमित करता है[११], उचित संविदाओं से उत्पन्न कर्तव्यों की निश्चित व्याख्या करता है और उनके पालन को सुनिश्चित करता है।

सामाजिक विकासवाद के कारणों के संबंध में दुरखीम का उपयोगितावादियों से और भी अधिक स्पष्ट मतभेद है। उन्होंने यह मान लिया था कि श्रम-विभाजन और आर्थिक उत्पादकता और भौतिक सभ्यता में उससे प्राप्त लाभ सीधे व्यक्तियों की अधिक संपत्ति और रहन-सहन के उच्च-स्तर की इच्छाओं से उत्पन्न हुए। दुरखीम ने व्यक्तियों की प्रेरणाओं और मानव प्रकृति की प्रवृत्तियों के अनुसार सामाजिक तथ्यों को समझाने के विरुद्ध अपनी लड़ाई में इसे एक निर्णायक उदाहरण बनाया है। उसकी सामान्य युक्ति निम्न प्रकार है।[१२] मानव प्राणियों में आर्थिक वस्तुओं का आनंद लेने की केवल एक सीमित और साधारण क्षमता है और इसमें

यदि अधिक उत्पादन की प्रेरणा का सुख होता तो वे बहुत पहले ही अपनी संपत्ति को बढ़ाना बंद कर देते। सुख सामाजिक स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है, जोकि सभी प्रकार की अतियों से, जिनमें कि भौतिक विलासिताओं की प्रचुरता भी सम्मिलित है, संकट में पड़ जाता है। निश्चित आदतों को छिन्न-भिन्न करनेवाले महान् सामाजिक परिवर्तन अधिक कष्ट पैदा करते हैं और सुख की इच्छा एक संपूर्ण पीढ़ी को उन विलासिता की वस्तुओं को उत्पन्न करने के लिये ऐसे बलिदान करने के लिये प्रेरित नही कर सकती जिन्हें कि वह स्वेच्छा से नहीं चाहती, और जिनसे केवल बाद की पीढ़ियां ही लाभ उठायेंगी। अंत में इसकी कोई साक्षी नही है कि भौतिक प्रगति और सभ्यता मनुष्य को अधिक सुखी बनाती है। वस्तुतः आदिम समाजों में प्रत्यक्ष संतोष और आत्महत्या और स्नायुरोगों का अपेक्षतया अभाव समकालीन सभ्यता की तुलना में कहीं अधिक अंश में औसत सुख को व्यक्त करता है। इसलिए यह सुख की इच्छा नही है जिसने कि सभ्यता को जन्म दिया।[१३]

श्रम-विभाजन की मनोविज्ञानवादी और व्यक्तिवादी व्याख्याओं पर विचार करने के बाद दुरखीम अपनी रचनाशास्त्रीय (Morphological) व्याख्या देता है, जोकि उसकी समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम *Regles de la methode sociologique* में दी गई शर्तों के अनुरूप है। श्रम-विभाजन भौतिक और नैतिक घनत्व में वृद्धि से उत्पन्न सामाजिक संरचना मे हुए परिवर्तनों के कारण होता है। जनसंख्या में वृद्धि प्रतियोगिता को तीव्र करती है और इस प्रकार जीवित रहने के लिये व्यक्तियों को विशेषता प्राप्त करने के लिये बाध्य करती है। इस प्रकार दुरखीम कुछ अनिच्छा से ही अपनी व्याख्या को जनसंख्या की कल्पित प्राकृतिक वृद्धि के कारक पर आधारित करता है। स्पष्ट ही यह समाजशास्त्रीय प्रकार की अपेक्षा प्राणिशास्त्रीय व्याख्या है और दुरखीम की बाद की अन्य किसी रचना की तुलना मे प्रत्यक्ष भौतिकवाद के निकट है।[१४]

(ग) आत्महत्या

दुरखीम का आत्महत्या (Suicide) का गहन अध्ययन[१५] एक महत्त्वपूर्ण अनुभवमूलक विषय के एक रोचक सख्याशास्त्रीय विश्लेषण से कही अधिक है। सदा की भांति दुरखीम यह दर्शाने के लिये प्रधानतः व्यग्र है कि किस प्रकार अनुभवमूलक न्यास (Empirical data) एक सैद्धांतिक मत को, इस उदाहरण मे सामाजिक तथ्यो के एक निर्दिष्ट व्यवस्था की बाह्यता और बंधन की शक्ति को, पुष्ट करते है।

वह आत्महत्या को आत्मविनाश की इच्छित क्रिया के रूप में परिभाषा करने से इन्कार कर प्रारंभ करता है, चूंकि इच्छायें बाहर से नहीं देखी जा सकती और उनके अत्यंत भिन्न होने के कारण उनकी एक घटनाक्रम में परिभाषा नही की जा सकती, फिर वह जलवायु, भौगोलिक प्राणिशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक विभिन्न कारकों के अनुसार आत्महत्या को समझानेवाले सिद्धांतों के कुशल संख्याशास्त्रीय खंडन की ओर बढ़ता है। एक विकल्प के रूप में वह एक सामाजिक तथ्य के तौर पर आत्महत्या की एक अवधारणा प्रस्तावित करता है जोकि सामाजिक कारणों के अनुसार समझाई जा सकती है। आत्म-

हत्या का सामाजिक व्यक्तयतीत (Superindividual) स्वरूप इस अवलोकन से पुष्ट होता है कि एक निर्दिष्ट समाज में आत्महत्या की दर या इसके परिवर्तन की दर एक के बाद दूसरे वर्षों में आश्चर्यजनक रूप से स्थिर (Constant) रहती है। दुरखीम यह युक्ति देता है कि यह आत्महत्या व्यक्तिगत व्यक्तित्व और संकल्प के प्रायः अत्यंत भिन्न और प्रायः आकस्मिक गुणों पर निर्भर होती तो इस स्थिरता को नहीं समझाया जा सकता था। इससे वह यह निष्कर्ष निकालता है कि आत्महत्या एक ही प्रकार के कारणात्मक कारक से, जोकि एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष में इसकी समान शक्ति को जीवित रखता है, उत्पन्न होनी चाहिये। चूंकि उसके संख्याशास्त्रीय दृष्टांतों से जल-वायु, भौगोलिक प्राणिशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक कारकों को पृथक् कर दिया गया है, वह यह परिणाम निकालता है कि केवल सामाजिक क्षेत्र में ही एक व्यापक कारक मिल सकता है।

आत्महत्या की दर को प्रभावित करनेवाले सामाजिक कारक विभिन्न समूहों की सदस्यता और महत्त्वपूर्ण सामूहिक प्रक्रियाओं के साथ आत्महत्या की दरों के सहसंबध (Correlation) प्रकट होते हैं। इस प्रकार दुरखीम साक्षियों से यह सिद्ध करता है कि स्वतंत्र विचारकों में आत्महत्या की दर सबसे अधिक है और उसके बाद प्रोटेस्टैंटों में; कैथलिकों में इसकी दर कम है और यहूदियों मे सबसे कम। दुरखीम के अनुसार, यहां पर मूल अंतर स्वयं धार्मिक विश्वास का नही, बल्कि धार्मिक समूह के एकीकरण के अंश की भिन्नता का है। कैथलिक मत की तुलना में प्रोटेस्टैंट मत में अधिक अंशों में धार्मिक व्यक्तिवाद मिलता है, जबकि यहूदी मत अपने ऊपर अत्याचार की विरासत के कारण विरोधी वातावरण का मुकाबला करने के लिये अपने सदस्यों को दृढ़ता से एक सूत्र में बांधता है। दुरखीम यह निष्कर्ष निकालता है कि आत्महत्या का एक महत्त्वपूर्ण प्रकार ("अहंवादी") व्यक्ति द्वारा सामाजिक जीवन में समुचित भाग न लेने से उत्पन्न होता है। अपने आपमें व्यक्ति का कोई विशेष मूल्य नही है, केवल सामाजिक समूह मे भाग लेने से ही जो कुछ उसे मिलता है वही उसके निजी अस्तित्व को उद्देश्य और महत्त्व प्रदान करता है। इसलिये वह व्यक्ति, जोकि अत्यंत एकीकृत सामाजिक समूह से अलग रहता है और अपने निजी लक्ष्यों पर एकांततः चलता है, अन्यों की अपेक्षा शीघ्र ही ऊब जाता है और अपने जीवन को कायम रखने का कोई कारण नहीं पाता।

दुरखीम द्वारा बताया गया आत्महत्या का अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकार "मानशून्य आत्म-हत्या" (*Suicide anomique*) है। वह कहता है कि विवाहित पुरुषों की अपेक्षा अविवाहितों में आत्महत्या की दर कहीं अधिक है और युद्धकाल में आत्महत्या की दर घट जाती है और भीषण आर्थिक मंदी और असाधारण समृद्धि के समय में यह बढ़ जाती है।" दुरखीम कल्पना करता है कि अपने आपमें व्यक्ति की इच्छायें असीमित और अतृप्त्य हैं, और मानसिक स्वास्थ्य और संतोष के लिये यह आवश्यक है कि समाज व्यक्ति की निजी तृप्ति की प्रत्याशा पर निश्चित बंधन लगाये। असाधारण समृद्धि की अवधियों

में रहन-सहन का परंपरागत स्तर सरलता से पार हो जाता है और कोई नये मान या समुचित जीवन स्तर स्थापित नहीं हो पाते किंतु असीमित आशायें देर या सवेर से निराशाओं को जन्म देती हैं जोकि शक्तिशाली नैतिक संरचना से शून्य व्यक्ति के लिये सरलता से घातक सिद्ध हो सकती हैं। इसी प्रकार एक अविवाहित, जोकि विवाहित पुरुष की अपेक्षा अपने यौन जीवन में अधिक कम सीमित है, सरलता से जीवन से निराश हो जाता और ऊब जाता है। समाज के एकीकरण का अंश महत्त्वपूर्ण है, चूंकि इसी पर व्यक्ति को अनुशासन में रखने की समाज की क्षमता निर्भर है। इसलिये युद्धकाल में, जबकि सामान्यत: बाह्य संकट के कारण समाज में दृढ़ एकता स्थापित हो जाती है, यह व्यक्ति पर अधिक कठोर अनुशासन थोपता है और उसके द्वारा उसे आत्महत्या से बचाता है। दूसरी ओर भीषण मंदी सामाजिक विघटन पैदा करती है और इस विघटन से सामाजिक मन मे उत्पन्न कष्ट व्यक्तियों के मनों में प्रतिबिंबित होता है, और वे अधिक संख्या में आत्महत्या करते है।[13]

दुरखीम इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि "आत्महत्या की धारायें" (Suicidal currents) है जोकि सामाजिक संगठन की भिन्न अवस्थाओं से उत्पन्न होती हैं, और जो व्यक्तियों पर यंत्रवत् प्रभाव डालकर उनमे से कुछ को आत्महत्या करने पर बाध्य करती हैं। ये आत्महत्या की धारायें व्यक्ति के लिये उतनी ही वास्तविक और उससे उतनी ही पृथक् है जितनी कि रोग द्वारा मृत्यु को लानेवाली भौतिक और प्राणिशास्त्रीय शक्तियां। प्राणिशास्त्रीय महामारी की भाति आत्महत्या की धारा के पीड़ितों की संख्या पूर्वनिर्धारित होती है, जो सबसे कम प्रतिरोध कर सकते है वे इसका शिकार बनते है। रोग की भाति आत्महत्या मे भी एक व्यक्तिगत कारक है, किंतु यह मृत्युओं की संख्या को नही, बल्कि कौन मरेगा इसे निर्धारित करता है।[14] व्यक्ति को स्वयं या अन्य लोगो को ऐसा लग सकता है कि यह व्यक्तिगत प्रेरणा से आत्महत्या कर रहा है, किंतु वास्तव मे वह निर्वैयक्तिक शक्तियों द्वारा, जिनसे कि वह वास्तव में अनभिज्ञ है, (जब तक कि वह समाजशास्त्री न हो !) आत्महत्या करने के लिये ढकेला जा रहा है। संभवत: समाजशास्त्रवाद के साहित्य में अन्यत्र सामूहिक भाग्यवाद के सिद्धांत का कहीं भी इससे अधिक नाटकीय प्रयोग नहीं किया गया है।[15]

(घ) सामूहिक परात्परवाद (Agelic Transcendentalism)

१८९८ के लगभग दुरखीम ने अपने कार्य के एक नये और पृथक् पहलू में प्रवेश किया। इसकी पहली विशेषता सामाजिक समूह की अधिक अध्यात्ममूलक अवधारणा (Idealistic conception) के साथ "लोक प्रतिबिंब" (Collective representations) पर अधिक और आंतरिक सामाजिक वातावरण पर कम ज़ोर दिया गया है, और दूसरे इसमें नैतिकता, मूल्यों, धर्म और ज्ञान के सामाजिक उद्गम के संबंध में सामूहिक कल्पनायें की गई हैं। दुरखीम ने सामाजिक समूह को क्रमश: अति आध्यात्मिकता,

व्यक्तित्व, सृजनात्मकता और परात्परता प्रदान की है। इस पहलू की शुरूआत व्यक्तिगत और लोक प्रतिबिंब दुरखीम के निबंध के प्रकाशन से होती है।[४०]

इस निबंध का यह निष्कर्ष है कि सामूहिक मानसिक स्थितियां विद्यमान हैं, और जिस प्रकार व्यक्तियों की मानसिक स्थितियों को मस्तिष्क के स्वतंत्र जीवकोषों में नहीं व्यक्त किया जा सकता उसी प्रकार व्यक्तियों की मानसिक स्थितियों को भी सामूहिक मानसिक स्थितियों में नही व्यक्त किया जा सकता। व्यक्तियों का साहचर्य एक विकासमान वास्तविकता—समाज—को जन्म देता है जोकि उसके निर्माता व्यक्तियों के गुणों से अपेक्षतया स्वतंत्र हैं। निस्संदेह लोक प्रतिबिंब अपनी रचना में भौतिक आधार से प्रभावित होते हैं, किंतु एक बार निर्माण हो जाने पर वे अंशत: स्वायत्त (Autonomous) वास्तविकतायें बन जाते हैं, जोकि अपने स्वाभाविक संबंधों के अनुसार आपस में मिलते हैं और वे जिस वातावरण में उत्पन्न होते हैं उसके गुण से घनिष्टतया निर्धारित नही होते।[४१] दुरखीम कहता है कि स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में सामाजिक तथ्यों की यह अवधारणा भौतिकवाद से बहुत दूर है। यदि व्यक्तिगत मन एक आध्यात्मिक वास्तविकता है, तो सामाजिक तथ्यों को "अतिआध्यात्मिकता" (Hyperspirituality) का गुण प्रदान किया जाना चाहिये।

(इ) सामूहिक आत्मवाद (Personalism) और नैतिकता का सिद्धांत

सामाजिक समूह के परात्परवादी (Transcendental) सिद्धांत के विकास में दूसरा प्रमुख क़दम दुरखीम ने नैतिकता के समाजशास्त्रवादी सिद्धांत के विकास के संबंध मे उठाया।[४२] उसका मत है कि नैतिक तथ्य मे एक विचित्र द्वैत (Duality) है। नैतिक नियम हमें आदर और कर्तव्य की भावना से अनुप्रेरित करता है जोकि उनकी अंतर्वस्तु से पर्याप्त स्वतंत्र है, किंतु दूसरी ओर, हमे यह भी मानना पड़ता है कि यह अंतर्वस्तु अच्छी और उचित है (चाहे यह एक क्षण के लिये भी हमारी निजी इच्छाओ से मेल न खाती हो)।[४३]

अब यदि हम नैतिक आदेश के उदगम को खोजें, हम तत्काल देखते है कि यह व्यक्ति से उत्पन्न नहीं हो सकता, चूंकि किसी भी कार्य को, "जिसका कि एकांत लक्ष्य व्यक्ति का संरक्षण या आत्म-विकास हो, कभी भी नैतिक नहीं कहा गया है।" यदि स्वयं उसका कर्ता नैतिक कर्तव्य का स्रोत नहीं बन सकता, तो न ही अन्य व्यक्ति वह बन सकते हैं, चूंकि वे मूलत: कर्ता से पृथक् नहीं हैं। किंतु अनासक्ति और श्रद्धा नैतिक कर्म के मूल लक्षण है, और ये भावनायें तब तक निरर्थक या असंभव है, जब तक कि हम अपने को एक अन्य चेतन सत्ता के (जोकि बेहतर है कि हमसे अधिक उच्च नैतिक महत्त्व की ओर) आधीन न कर दें। यदि समस्त मानव प्राणियों को पृथक् कर दिया जाता है, तब केवल अन्य दो विकल्प रह जाते हैं: एक ईश्वर है दूसरा समाज। तह में यह दोनों विकल्प एक समान हैं, चूंकि ईश्वर केवल "रूपांतरित और प्रतीक रूप में कल्पित" समाज है।[४४] इसलिये यदि नैतिक जीवन का कोई अर्थ है, तो हमें यह मान लेना चाहिये कि समाज स्वयं एक

सच्चा नैतिक प्राणी है जोकि व्यक्तियों के समन्वय से बना है और समस्त फैले हुए व्यक्तियों से गुण में पृथक् है।

यह समाधान नैतिक तथ्य के द्वैत गुण को दर्शाता है। इसका पालन अनिवार्य है, क्योंकि यह समाज का आदेश है और समाज इतने असीम भौतिक और नैतिक दोनों रूप में व्यक्ति का इतना अतिक्रमण कर जाता है कि उसके आदेशों में पर्याप्त अधिकार होता है जिससे कि वह निर्बाध आज्ञापालन प्राप्त कर सके। किंतु दूसरी ओर यह अच्छा और उचित लगता है, क्योंकि समाज सभ्यता के समस्त उच्चतर मूल्यों का स्रोत है और व्यक्ति में उस तत्व का स्रष्टा है जोकि उसे पशु के स्तर से ऊंचा उठाता है। बिना समाज के भाषा जीवित नहीं रह सकती और भाषा के बिना उच्चतर मानसिक प्रक्रियायें असंभव होंगी। विज्ञान के बिना, जोकि सामाजिक उपज है, मनुष्य प्रकृति की अंधशक्तियों के सम्मुख असहाय होता। अतएव व्यक्ति को अपनी स्वाधीनता समाज से ही मिली है। "हम मनुष्य न रहने की कामना किये बिना समाज के छोड़ने की कामना नहीं कर सकते।" [४५]

दुरखीम ने कुछ महत्त्वपूर्ण सापेक्षवादी निष्कर्ष निकालकर इस विवेचना को समाप्त किया है। नैतिक नियम सदैव विशेष सामाजिक कारकों की उपज होते हैं, और प्रत्येक नैतिक प्रणाली जिस समाज में वह विद्यमान है उसकी सामाजिक संरचना पर अत्यंत निर्भर होती है। ऐसी एक नैतिक प्रणाली नहीं जोकि प्रत्येक समाज के लिये नैतिक हो सके, और विभिन्न समाजों में आचारों की भिन्नता की अज्ञान या पतन द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती। प्रत्येक समाज के पास एक नैतिक प्रणाली है जिसकी कि उसे आवश्यकता है और अन्य कोई नैतिकता उसके लिये हानिकर होगी। समाज वैज्ञानिक यह दर्शाकर कि कौन-से नैतिक निर्णय वास्तव में सामाजिक संगठन की यथार्थ अवस्था के अनुकूल हैं, कभी-कभी समाज की सहायता कर सकता है, किंतु इससे अधिक नहीं। "समाज की प्रकृति में अंतर्निहित नैतिक प्रणाली से भिन्न प्रणाली की कामना करना समाज से इन्कार करना है और परिणामतः अपने को ही अस्वीकार करना है।" [४६]

(च) सामूहिक सृष्टिवाद और मूल्यों का सिद्धांत

सामूहिक परात्परवाद (Agelic Transcendentalism) की पूर्णता की अंतिम मंजिल पर १९११ में पहुंचा गया जब कि दुरखीम ने मूल्य (Value) के सामान्य सिद्धांत की व्याख्या की, जिसमें कि सामाजिक समूह को केवल सभी नैतिक मूल्यों का नहीं बल्कि समस्त मूल्यों का परात्परीय सृष्टा चित्रित किया गया।[४७] अपने मत से हटकर दुरखीम ने मूल्य-निर्णयों की बाह्य वस्तुगतता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। बिथोवन के संगीत का सौंदर्यात्मक मूल्य है, ईमानदारी के व्यवहार का नैतिक मूल्य है, हीरे का आर्थिक मूल्य है, ऐसी घोषणाओं का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत पंसद की ही अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि उन्हें बाह्य वास्तविकता के चित्रण माना गया है।

इसलिये उन्हें मेरे या अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के बहुमत की भी व्यक्तिगत पसंदों या नापसंदों को बतानेवाला नहीं माना जा सकता। चूंकि मूल्य-निर्णय किसी

व्यक्ति की पसंद को नहीं बताते, अतः उन्हें पसंदों की उस श्रेणीबद्धता को व्यक्त करना चाहिये जिसे कि समाज ने स्थापित किया है, और यह तथ्य कि समाज ने उन्हें स्थापित और लागू किया उन्हें वस्तुगतता प्रदान करता है।

फिर भी बुनियादी समस्या मूल्यों के समस्त क्षेत्र से संबंधित है। यह कैसे संभव है कि वह मनुष्य, जोकि तथ्यगत सत्ता के संसार में रहता है, मूल्यों के एक आदर्श संसार की कल्पना करे और उसका निर्देश करे? हम किस प्रकार क्या हैं से क्या होना चाहिये में जा सकते हैं?

दुरखीम के अनुसार केवल वही प्राकृतिक शक्तियां मूल्यों के आदर्श जगत् के उद्गम की व्याख्या कर सकती हैं जोकि सामाजिक समूह में व्यक्तियों के साहचर्य से प्रस्फुटित हुई हैं। जब व्यक्ति एक दूसरे के संपर्क में आते हैं और उनमें भी मानसिक अंतःक्रिया होती है, "उनके समन्वय में एक नये प्रकार का मानसिक जीवन उत्पन्न होता है।"[४८] सामूहिक उत्साह की ऐसी ही भावुकतापूर्ण अवधियों में जब कि मेलजोल अधिक बारबार और विचारों का विनिमय अधिक तीव्र होता है, सभ्यता के महान् आदर्शों का निर्माण हुआ है। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में पेरिस का विद्यार्थी आंदोलन धार्मिक सुधारणा (Reformation), पुनर्जागरण (Renaissance), फ्रेंच राज्यक्रांति और उन्नीसवीं शताब्दी के समाजवादी आंदोलन इसके उदाहरण हैं। ऐसी अवधियों में व्यक्ति एक उच्चतर जीवन व्यतीत करता है, जोकि प्रायः पूर्णतः अहंवादी और क्षुद्र विचारों से मुक्त होता है। तब कुछ समय के लिये आदर्श वास्तविक से मिलता हुआ लगता है और बहुत कुछ ऐसा लगता है कि पृथ्वी पर स्वर्ग (Kingdom of Heaven) आना ही चाहता है। फिर भी यह भ्रांति अधिक समय तक नहीं टिक सकती, क्योंकि यह उद्वेक बहुत थकानेवाला है और इसे अनिश्चित काल तक कायम नहीं रखा जा सकता। "एक बार निर्णायक क्षण गुजरने पर सामाजिक ढांचा ढीला पड़ जाता है, बौद्धिक समागम मंद हो जाता है और व्यक्ति अपने साधारण स्तर पर लौट आते हैं।"[४९] उसके पीछे केवल एक समृद्धि, विचारों का एक समूह बाकी रह जाता है, जोकि यदि उसे समय-समय पर उत्सवों, सार्वजनिक अनुष्ठानों, उपदेशों, कलात्मक और नाटकीय समारोहों और सामूहिक एकाग्रता और सामाजिक एकीकरण के अन्य साधनों से पुनर्जीवित न किया जाय, शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं।

समाज को सामूहिक विचारों से बना हुआ एक मन कल्पित किया जाना चाहिये, किंतु वे विचार केवल बोधात्मक (Cognitive) अभिव्यक्तियां ही नहीं हैं; वे भावना से परिपूर्ण हैं और उनके महत्त्वपूर्ण चालक (Motor) तत्व हैं, अर्थात् वे क्रिया के लिये उद्दीपक हैं। वे उन शक्तियों की अभिव्यक्ति हैं जोकि एक साथ ही प्राकृतिक हैं और आदर्श भी। यह इसलिये संभव है क्योंकि समाज का एक द्वैत रूप है। यह प्रकृति से आया है, किंतु यह इन शक्तियों से अधिक समृद्ध, अधिक जटिल और अधिक शक्तिशाली परिणाम उत्पन्न करने के लिये इन प्राकृतिक शक्तियों में समन्वय करता है। "प्रकृति

अपने विकास में उच्चतम स्तर तक उठ गई है और अपने को अतिक्रांत करने के लिये इसने अपनी समस्त शक्तियों को एक रीति से अपने में केंद्रित कर लिया है ।" [५०]

यह द्रष्टव्य है कि यहां पर दुरखीम निश्चित रूप से समाज की एक परस्पर-विरोधी अवधारणा पर पहुंचा। एक ओर यह परात्परीय वास्तविकता है, जिससे कि विश्वसनीय लगनेवाले मानव अनुभव में समस्त परात्परीय तत्वों का स्रोत समझा जा सकता है, और दूसरी ओर यह अभी भी एक प्राकृतिक घटना (स्थानिक दृष्टि से एक दूसरे के निकट अनेक व्यक्ति) है। एक समूह के सदस्यों की निकटता में वृद्धि-अनुभव में परात्परीय तत्वों की सृष्टि की एक "स्वभाववादी" (Naturalistic) व्याख्या जुटाती है और निकटता में ह्रास-अनुभव में अपरात्परीय लौकिक (*Alltaglich*) तत्वों की ऐसी ही स्वभाववादी कैफ़ियत जुटाता है। और इस अभ्युपगम (Assumption) के साथ कि समूह का जीवन एक प्राकृतिक और केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की आवश्यक लय से गुज़रता है, सामूहिक भाग्यवाद का सिद्धांत एक व्याख्यात्मक पूर्वकल्प (Hypothesis) के रूप मे व्यवहारतः सर्वशक्तिमान् बन जाता है। [५१]

(छ) धर्म का सिद्धांत

जैसा कि सामान्यतः विदित है, दुरखीम की पुस्तक "धार्मिक जीवन के प्रारंभिक स्वरूप" *Les Formes elementaires de la vie religieuse* [५२] का आधारभूत विचार है कि धर्म एक सर्वथा "सामाजिक वस्तु है।" इसमें दो पृथक् थीसिस अंतर्निहित हैं: पहला कि धार्मिक विचार और व्यवहार सामाजिक समूह का निर्देश करते हैं या उसके प्रतीक है, और दूसरा कि साहचर्य धार्मिक अनुभव का जनक स्रोत या प्रभावकर कारण है। सदा की भांति दुरखीम अन्वेषण के लक्ष्य की तदुद्देशीय परिभाषा को सावधानी से देकर इस विवेचन को प्रारंभ करता है। [५३]

अगला कदम धर्म की प्रमुख व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक, विशेषकर सर एडवर्ड बी० टाइलर और स्पेंसर के जीविवादी (Animistic) सिद्धांतों और मूलर के स्वभाववादी (Naturistic) सिद्धांत का खंडन है। इन सिद्धांतों के विरुद्ध जो प्रधान आपत्तियां उठाई गई है वह यह है कि वह संपूर्ण धार्मिक घटना के एक अंश से अधिक को समझाने मे असमर्थ है, कि ये पवित्र (Sacred) और लौकिक (Secular) के बीच विद्यमान बुनियादी विषमता को समझाने में असफल हैं, जोकि धर्म का मूल लक्षण है; और अंत में यह कि ये धर्म की एक अध्यास (Illusion) के रूप में, जिसका कि वास्तविक जगत् में कोई आधार नहीं है, व्याख्या करते हैं।

इसके बाद दुरखीम आस्ट्रेलिया के अरुंटा लोगों की टौटमी रीतियों की जांच करता है। उसने यह कल्पना की है कि यह सबसे प्राचीन विद्यमान आदिकालीन (Primitive) समाज है और इसलियें इसके धार्मिक कार्यकलाप अपने सरलतम रूप में धर्म के मौलिक स्वरूप को दर्शायेंगे। [५४] टौटमवाद (Totemism) का आधारभूत लक्षण यह है कि एक कबीला वातावरण की किसी वस्तु, प्रायः एक पशु या पौधे का नाम ग्रहण कर लेता

है, अपने को उसका वंशज बताता है, और उस वस्तु के प्रति विशिष्ट आनुष्ठानिक संयम बरतता है। दुरखीम के विश्लेषण के अनुसार टौटमवाद में अंतर्निहित आधारभूत विश्वास रहस्यमय और पवित्र शक्ति या टौटम को संचालित करनेवाले सिद्धांत में विश्वास है, जोकि टौटमी टैबू (Taboo) या निषेध के उल्लंघन की भौतिक स्वीकृति प्रदान करता है और नैतिक दायित्व की शिक्षा देता है। टौटम के प्रति भय और श्रद्धा की प्रबल भावनाओं का स्वयं टौटम के भौतिक गुणों से उत्पन्न होना कठिन था, चूंकि यह टौटम प्रायः कोई हानिरहित और अकिंचन पशु या पौधा है। इसलिये टौटम को एक प्रतीक के रूप में ही समझा जाना चाहिये। पहले तो यह पवित्र टौटमी सिद्धांत या ईश्वर का प्रतीक है, और दूसरे स्वयं गोत्र या कबीले का, जिससे कि टौटम घनिष्टतया संयुक्त है। इससे दुरखीम यह परिणाम निकालता है कि टौटमी दिव्यता और गोत्र वस्तुतः एक ही चीज हैं, और अधिक सामान्य रूप से, ईश्वर समाज की ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मात्र है।[५५]

अगली समस्या धार्मिक अनुभव के उद्गम से संबंधित है; और दुरखीम की कैफ़ियत निम्न प्रकार है:[५६] अरुंटा का जीवन दो पहलुओं में बंटा हुआ है। पहले, या लौकिक पहलू में गोत्र (Clan) व्यक्तियों के छोटे समूहों में बिखरा हुआ है जोकि अपने निजी आर्थिक उद्देश्यों को पूरा कर रहे हैं और ऐसा जीवन बिता रहे है जो "एक-सा, शिथिल और नीरस है।" दूसरे, या धार्मिक पहलू में, गोत्र के सदस्य एक साथ इकट्ठा होते है और "उनके एकत्रीकरण का तथ्य ही एक असाधारण शक्शिाली उद्दीपन का कार्य करता है। एक प्रकार की बिजली या सामूहिक आनंद (Euphoria) उत्पन्न होता है, जोकि शीघ्र ही व्यक्ति को उद्रेक की चमत्कारपूर्ण स्थितियों में उठा देता है। यह उद्रेक इतना तीव्र होता है कि विक्षिप्त व्यवहार और सर्वथा असाधारण क्रियायें (जैसे कि सबसे सुस्थापित टैबुओं का उल्लंघन) साधारण-सी बात है। ऐसे तीव्र सामूहिक एकत्रीकरण और भीषण अंतःक्रिया की अवधियों में ही धार्मिक भावनाओं व विचारों का जन्म होता है और इन अवधियों तथा सामूहिक बिखराव की नीरस व शिथिल अवधियों की भिन्नता ही पवित्र और लौकिक की बुनियादी विषमता को स्पष्ट करती है।

ये सामान्य निष्कर्ष समाज और ईश्वर के प्रति हमारी धारणाओं की समानता से संबंधित कुछ विचारों से पुष्ट होते है।[५७] यह कहा जाता है कि समाज अपने सदस्यों के मन में उनके ऊपर अधिकार होने के कारण दिव्यता की अनुभूति जगाने में सर्वथा समर्थ है। व्यक्ति की निरंतर निर्भरता की अनुभूति दोनों ही दशा में समान हैं। ईश्वर की भांति समाज भौतिक सत्ता से युक्त है और निष्काम श्रद्धा और आत्मबलिदान की प्रेरणा दे सकता है। यह व्यक्ति को आसाधारण शक्तियां प्रदान करने में भी समर्थ है, और मानव व्यक्तित्व के सभी उच्चतम और श्रेष्ठतम गुणों का स्रोत है। अतएव एक धार्मिक व्यक्ति

जो कि किसी बाह्य नैतिक शक्ति पर निर्भरता अनुभव करता है एक भ्रांति (Hallucination) का शिकार नहीं है—ऐसी एक शक्ति है—समाज। वह यह मानने में ग़लती कर सकता है कि धार्मिक शक्तियां किसी विशेष वस्तु (एक टौटम की भांति) से उत्पन्न होती हैं, किंतु यह केवल "प्रतीक के अक्षर" की भूल है। इस प्रतीक के पीछे एक वास्तविकता है जिसमें प्रदत्त गुण है।[५८]

(ज) ज्ञान का सिद्धांत

हाल के वर्षों में समाजशास्त्र का एक मुख्य विकास "ज्ञान (Knowledge) के समाजशास्त्र" की यह व्याख्या, यह स्पष्टीकरण है कि स्वयं ज्ञान सामाजिक अवस्थाओं की एक उपज रहा है। इस क्षेत्र में दुरखीम का स्थान सबसे प्रमुख अग्रणियों में है। अपने पूर्ववर्तियों की सामान्यताओं से परे जाकर (कि विचार भाषा पर और भाषा समाज पर निर्भर है), वह विस्तार से यह दर्शाने का प्रयत्न करता है कि वर्गीकरण के दोनों रूप और बोध (Cognition) की बुनियादी श्रेणियां समाज द्वारा उत्पन्न हुई हैं।

वर्गीकरण की समस्या पर उसने वर्गीकरण के आदिकालीन (Primitive) रूपों पर अपने एक पृथक् ग्रंथ में विचार किया है, जो कि एम० मौस के साथ लिखा गया था।[५९] हमें बताया गया है कि "वर्ग" (Class) की वर्तमान अवधारणा अरस्तू से अधिक पुरानी नही है; और वर्गीकरण के समकालीन रूप (वर्ग और उपवर्ग, जीव जाति और जीवसमूह (Genus) इत्यादि के अर्थों में जन्मजात नही है, बल्कि "एक पदसोपानक्रम (Hierarchical order) पर, जिसके लिये न तो इंद्रियगम्य जगत्, न ही हमारे अपने मन एक आदर्श उपस्थित करते हैं," आधारित हैं।[६०] फिर भी यदि हम आदिकालीन लोगों के वर्गीकरणों को देखें, तो हम यह जान पाते है कि ये वर्गीकरण घनिष्ट तथा कबीले के सामाजिक संगठन को प्रतिबिंबित करते हैं। पहले "वर्ग" पुरुषों के वर्ग थे और भौतिक वस्तुओं का वर्गीकरण केवल पूर्वस्थापित सामाजिक वर्गीकरणों का विस्तारमात्र था, चूंकि वातावरण मे सभी पशुओं और वस्तुओं को एक या दूसरे गोत्र बिरादरी (Phratry) या अन्य संबंधी समूह में वर्गीकृत किया गया था। तर्कसंगत वर्गीकरण मे प्ररूप और उपप्ररूप का पदसोपानक्रम सामाजिक संरचना के प्रारंभिक रूपों के पदसोपान के गुण को प्रतिबिंबित करता है, वह अलंकारिक विवरण जिनमें कि आज भी तर्कसंगत संबंधों को व्यक्त किया जाता है उनके सामाजिक उद्गम को प्रकट करता है : वे वस्तुयें जो एक-सी हैं "एक ही परिवार की है"; एक इकाई की कुछ विशेषतायें हैं; और एक अवधारणा दूसरी पर "निर्भर है या उसके आधीन है।"

आदिकालीन वर्गीकरण प्रधानत: अवधारणात्मक नहीं है, बल्कि वह मुख्यत: भावुकता और सामाजिक संवेदनशीलता पर आधारित है। जब सामाजिक भावना कम महत्वपूर्ण हो जाती है और जब व्यक्तिगत अवलोकन और चिंतन को अधिक स्वाधीनता

प्राप्त होती है तब वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रकट होता है। किंतु वर्गीकरण के ढांचे पर—वे मानसिक आदतें जिनसे हम तथ्यों को समूहों में संगठित करते हैं (पदसोपानक्रम के अनुसार स्वयं संबंधित है)—सामाजिक सृष्टि (Genesis) की अमिट छाप होती है।"

दुरखीम के चिंतन की अंतिम और सबसे साहसपूर्ण उड़ान विचारों की श्रेणियों (Categories) और प्रतिभान (Intuition) के रूपों की समाजशास्त्रवादी व्याख्या है।[१२] सदा की भांति वह उसे विद्यमान सिद्धांतों की आलोचना से प्रारंभ करता है। उसका कहना है कि अनुभववाद (Empiricism) की श्रेणियों की सार्वभौमता और आवश्यकता को नहीं समझा जा सकता (अर्थात् ऐसा क्यों है कि व्यक्ति दिक् (Space), काल, पदार्थ, कारण, इत्यादि की अपनी अवधारणाओं को मूलतः नहीं भुला सकता या परिवर्तित नहीं कर सकता)। पूर्वानुभवी (Aprioristic) दृष्टिकोण यह नही बताता कि ये विचार कहां से उत्पन्न होते है और किस प्रकार हम अपने निजी इंद्रियगम्य अनुभव को अतिक्रमण करनेवाले वस्तुगत संबंधों के ज्ञान पर पहुंच सकते हैं। एक धर्मशास्त्रीय (Theological) व्याख्या "परीक्षणात्मक" नहीं है और वह विभिन्न समाजों में श्रेणियों की भिन्नता को नही समझा सकती।

दुरखीम की अपनी व्याख्या है कि श्रेणियां लोक प्रतिबिंब (Collective Representations) है। इस हैसियत से वे व्यक्ति पर थोपी जाती हैं और वे उसपर सार्वभौम और आवश्यक होने का प्रभाव छोड़ती हैं। एक निर्दिष्ट समाज में श्रेणियों की समानता को सरलता से इस तथ्य द्वारा समझाया जा सकता है कि सामाजिक सहयोग के और इस प्रकार समाज के जीवित तक रहने के लिये श्रेणियों जैसे बुनियादी विचार की रीतियों पर सहमति होना सर्वथा अनिवार्य है। आत्मसंरक्षण के हित में समाज को एक अल्पतम तर्कसंगत अनुरूपता (Conformity) लादनी होगी। दिक्, काल, कार्य और कारण इत्यादि के अनुसार सोचने का हमारा दायित्व "एक विशेष प्रकार की नैतिक आवश्यकता है जोकि बुद्धि के लिये वही महत्त्व रखती है जो नैतिक दायित्व इच्छा (Will) के लिये।"[१३]

किंतु श्रेणियां समाज द्वारा केवल थोपी ही नहीं जाती; वे उसके सबसे साधारण लक्षण को प्रतिबिंबित करती है, और इस अर्थ में वे एक सामाजिक सृष्टि है। काल का विचार सामूहिक जीवन की लय से लिया गया था; "समाज द्वारा बसे हुए भभाग ने दिक् की श्रेणी के लिये सामग्री जुटाई", और सामाजिक समूह की शक्ति में एक कुशल शक्ति के विचार को जन्म दिया, जिस पर कि कार्य-कारण की श्रेणी निर्भर है।[१४] व्यक्ति अपने सीमित काल (Temporal) और दिक् के प्रतिभानो से कभी भी सामान्यतः दिक् या काल का विचार नहीं पा सकता था। पहले तो समग्रता (Totality) की अवधारणा का होना आवश्यक था, और केवल समाज ही "जिसमें कि सब चीजें समाविष्ट हैं," समग्रता की अवधारणा को जन्म दे सकता था[१५] फिर भी

"समाज के अंदर" विद्यमान जगत् में समाज द्वारा घेरा हुआ स्थान सामान्यतः दिक् से मिला दिया जाता है। इसी प्रकार सामाजिक समूह के एकत्रीकरण (Concentration) और बिखराव (Dispersion) पर आधारित सामाजिक लयें काल की सामान्य धारणा को प्रदान करती हैं। काल का दिनों, सप्ताहों, महीनों और वर्षों में विभाजन सामाजिक कृत्यों की बारंबार निश्चित अवधि से मेल खाता है: पंचांग (Calendar) सामाजिक जीवन की लय को व्यक्त करता है और उसकी नियमितता को भी सुनिश्चित करता है।

समाज द्वारा घिरे हुए प्रदेश पर हमारी दिक् की अवधारणा की निर्भरता निम्न उदाहरण से दर्शाई गई है:

"आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका में ऐसे समाज हैं जहां दिक् को एक वृहत् वृत्त के रूप में कल्पित किया गया है, क्योंकि पड़ाव का रूप भी वृत्ताकार है; और यह दिक्मय वृत्त हूबहू कबीली वृत्त की भांति विभक्त है और उसकी तस्वीर के अनुरूप है। उतने ही प्रदेश पृथक् किये गये हैं जितने कि एक कबीले में गोत्र हैं और पड़ाव के अंदर कबीलों द्वारा घेरे हुए स्थान ने इन प्रदेशों की दिशा को निर्धारित किया है। प्रत्येक प्रदेश गोत्र को दिये गये टौटम के द्वारा निश्चित है।"

दुरखीम यहां तक आशा करता है कि यह निश्चित रूप से दर्शाने के लिये साक्षी ढूंढ़ी जा सकती है कि विरोध (Contradiction) का सिद्धांत स्वयमेव निर्दिष्ट सामाजिक प्रणाली का फल है। वह सोचता है कि यह अभी भी दर्शाया जा चुका है कि जिस सीमा तक इस सिद्धांत ने मानव मनों को प्रभावित किया है, ऐतिहासिक दृष्टि से वे एक से दूसरे समाज में भिन्न रहेंगे।[७]

४. दुरखीम का आचारशास्त्रीय (Ethical) और राजनैतिक रुझान

विचारों के इतिहास में समूहवाद प्रायः आचार में व्यक्तिवाद-विरोधी और राजनीति में अनुदारवाद के साथ रहा है। दुरखीम की रचनाओं के अनेक पहलुओं में तत्वों का यह मेल अच्छी तरह स्पष्ट हुआ है। उसका समाजशास्त्र मुख्यतः सामाजिक नियंत्रण की समस्या से संबंधित है और स्वीकृत सामाजिक मानों (Norms) से व्यक्ति की विच्युति को उचित नहीं मानता। व्यक्तिगत आविष्कार की वास्तविकता और महत्व दोनों से ही बराबर इन्कार किया गया है। यह एक स्थिर (Static) और एकसत्तात्मक (Monistic) प्रकार का समाजशास्त्र है, जोकि सामाजिक परिवर्तन को समझाने के लिये पर्याप्त नहीं है।[८] इसके अतिरिक्त, यह सामाजिक जीवन की उन संरचनाओं तथा प्रतिक्रियाओं में, जोकि आंतरिक मतभेद और विरोध से संबंधित हैं, रुचि का उल्लेखनीय अभाव प्रदर्शित करता है। इसका सामाजिक वर्गों, अभिरुचि-समूहों के संघर्ष या क्रांति या युद्ध की प्रक्रियाओं से बहुत कम वास्ता है।[९]

इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं कि दुरखीम का हमारे सामाजिक रोगों के अनुमान और उसके समाज-सुधार की चिकित्सा के कार्य ने मुख्यतः एक व्यक्तिवाद-विरोधी रूप धारण कर लिया। उसका ख़याल था कि आत्महत्या और स्नायुरोग तथा अन्य रोगी लक्षणों का कारण यह तथ्य था कि सामाजिक समूह व्यक्ति को रोकने में समर्थ नही रहता। पड़ोस, धार्मिक समूह और विस्तृत रिश्तेदारी के प्रभाव में ह्रास और राज्य के आकार में वृद्धि और इसकी निर्वैयक्तिकता तथा व्यक्ति से दूरी ने ऐसा कोई समूह नहीं छोड़ा जोकि व्यक्ति पर स्वयं नैतिक अनुशासन को सफलतापूर्वक लागू कर सके। इस कमी को दूर करने के लिये दुरखीम ने एक प्रकार का निगमवाद (Corporatism) प्रस्तावित किया जोकि श्रमिक-समूह या पेशेगत समितियों को अपने सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन के नियमन और निर्देशन में सक्रिय प्रवेश की समुचित अधिकार सत्ता प्रदान करेगा।[७०] इस कार्यक्रम में फ़ासिस्ट शासन द्वारा स्थापित निगमवाद से कुछ सादृशतायें हैं, हालांकि इसके महत्व को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताने की ज़रूरत नही।[७१]

फिर भी यदि हम दुरखीम के विचारों के साथ न्याय करना चाहते है तो हमे एक जटिलता स्वीकार करनी चाहिये जो किसी एक सरल व्याख्यात्मक प्रतिमान को असफल बनाती है। उसकी समस्त रचनाओं में, किंतु विशेषकर *Division of Labour* और *Suicide* में, व्यक्तिवाद की प्रशंसा में अनेक अवतरण मिलते है। इसके अतिरिक्त, वह अपनी राजनीति में उदार समझा जाता था। उसकी जीवनी के कुछ तथ्य यहां पर पर्याप्त प्रासंगिक है। दुरखीम का जन्म १८५७ में हुआ था और उसने उस समय बौद्धिक परिपक्वता प्राप्त की जब कि फ्रांस फ्रेंच-प्रशियन युद्ध के प्रभावों से संभलने के लिये महत् प्रयास कर रहा था। इस अवधि के अधिकांश बुद्धिवादियों द्वारा फ्रेच राष्ट्र का संगठन और पुनरेकीकरण सबसे प्रमुख समझा जाता था। राष्ट्रवाद की उग्र भावना सामाजिक समूह की (जिसे कि सामान्यतः उसने निहितार्थ में राष्ट्र से मिला दिया है) परात्परवादी (Transcendental) वास्तविकता के दुरखीम के विश्वास की उद्वेगात्मक और सामाजिक नियंत्रण की समस्याओं पर उसके अभिन्न बल देने की पृष्ठभूमि है। परंतु सामाजिक पुनः एकीकरण का, जिसकी आवश्यकता वे सभी स्वीकार करते थे, क्या समुचित आधार हो इसपर उनकी राय निराशाजनक रूप में बंटी हुई थी। एक ओर अनुदारवादी कैथोलिक मत, राजतंत्र और परंपरावाद की ओर लौटने को प्रेरित कर रहे थे। दूसरी ओर, जिन बुद्धिवादियों ने अत्यंत दृढ़ता से तीसरे गणतंत्र का समर्थन किया था वे वैज्ञानिक सूचनाओं की वृद्धि और प्रसार से उत्पन्न एकीकरण के लौकिक (Secular) आधार की आशा कर रहे थे। स्वभावतः दुरखीम दूसरे समूह के साथ था। विज्ञानवादी (Positivistic) विश्वास का समाज वैज्ञानिक होने की हैसियत से वह इस स्थिति का समर्थन करने में नहीं चूक सकता था कि विज्ञान सामाजिक संगठन का एक नया और समुचित आधार जुटा सकता है। एक वैज्ञानिक बुद्धिवादी (Rationalist) होने की हैसियत से वह अनिवार्यतः उन रहस्यवादी

समाधानों (*Mystiques*) के प्रति संदेहशील था जिन्हें कि परंपरावादी एक स्थानापन्न के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। दो अन्य कारकों ने उसे उदार व्यक्तिवाद की ओर प्रेरित किया : प्रजातीय या नस्ली पूर्वाग्रह (Prejudices) के प्रति उसका अपना संघर्ष और उस पर रेन्यूवियर के नैतिक आत्मवाद (Personalism) का प्रबल प्रभाव।

फिर भी दुरखीम के व्यक्तिवाद के विषय मे जो बात वस्तुतः विशिष्ट है वह यह कि इसे सर्वथा समूह की युक्तियों से पुष्ट किया गया है। यह कहा गया है कि व्यक्ति इसलिये पवित्र है क्योंकि उसके अंदर वह संस्कृति विद्यमान है जोकि समूह द्वारा उत्पन्न की गई है, और हम उसे हानि पहुंचाकर परोक्षरूप में समूह पर आक्रमण करेंगे। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिवाद और उदारवाद के आदर्शो का कोई अध्यात्मशास्त्रीय औचित्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं: हमारे लिये उनकी सत्यता इस तथ्य द्वारा निश्चित है कि वे श्रमविभाजन और विशेषीकरण पर आधारित हमारे संपूर्ण समकालीन सामाजिक संगठन मे अंतर्निहित है। हम एक पूर्ववर्ती सभ्यता की एक या दूसरी विशिष्ट संस्था को पुनर्जीवित नही कर सकते क्योंकि हमारे प्रकार के समाज में व्यक्तिवाद और उदारवाद ही एकीकरण का एकमात्र संभव आधार प्रस्तुत करते है।[७२]

व्यक्तिवाद की इस सापेक्ष और व्यवहारसम्मत वकालत की समुचितता आपत्तिजनक है। यह स्वयं व्यक्ति के असली मूल्य और सृजनात्मक संभावनाओं के किसी ज्ञान पर नही, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के एक निश्चित विकासवादी प्रतिमान की एक निर्दिष्ट अवस्था मे व्यक्तिवाद की कल्पित अवश्यंभाविता पर आधारित है। दुरखीम की प्रणाली में यह एक आदर्श के परस्पर-विरोधी युक्तिकरण (Rationalization) के रूप में व्यक्त होती है जिसे कि उसने उपयोगी समझा और जिसकी कि वह वकालत करना चाहता था, किंतु जो मूलतः उसके समाजशास्त्रीय विश्वास से असंगत था। हाल के वर्षो ने अनेक सभ्य राष्ट्रों का क़ानून और सामाजिक संगठन के एक अधिक बर्बर सिद्धांत पर लौटना नाटकीय रूप से एकमार्गीय विकासवाद के सिद्धांत की ग़लती को दर्शाता है। यह सत्य हो सकता है कि व्यक्तिवाद और उदारवाद हमारे वर्तमान प्रकार के समाज से अनिवार्यतः संयुक्त है, किंतु दुरखीम, जोकि फ़ासिस्ट क्रांति के देखने से काफ़ी पहले ही मर चुका था, कभी ज़ाहिरा यह अनुभव न कर सका कि समाज वस्तुतः और पर्याप्त तेज़ी से अधिक से अल्प व्यक्तिवादी और उदार प्ररूप में परिवर्तित हो सकता है। उसका उदार व्यक्तिवाद का सापेक्ष समर्थन हमें यह निर्णय करने का, कि दोनों में से कौन-सा प्ररूप बेहतर है, कोई आधार प्रदान नहीं करता।

५. फ़्रेंच समाजशास्त्र में दुरखीम का संप्रदाय

फ़्रेंच समाजशास्त्र पर दुरखीम का महत् प्रभाव केवल उसकी गवेषणा और प्रकाशनों से ही नहीं बल्कि बहुत कुछ उसके अध्यापन और अन्यों की गवेषणा का निर्देशन और एकीकरण करने की उसकी असाधारण योग्यता से पडा। उल्लेखनीय समाज-

शास्त्रीय पत्रिका *L'Annee Sociologique* (१८९६–१९१३) के संपादक की हैसियत से उसने फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ समाजशास्त्री और साथ ही अन्य (जातिशास्त्र, क़ानून, अर्थशास्त्र, संख्याशास्त्र, इतिहास, तुलनात्मक भाषाओं इत्यादि) क्षेत्रों के अनेक विशेषज्ञों को, जोकि अपने विशेष विषयों के समाजशास्त्रीय पहलू में अभिरुचि रखते थे, एकत्र किया। इस समूह के कार्य को मौस ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :

"*Annee* केवल एक प्रकाशन ही न था····उसने पूरे अर्थों में एक 'समूह' का निर्माण किया। युद्ध के शुरू होने के समय, दुरखीम के नियंत्रण में यह बौद्धिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों में पुष्ट एक प्रकार का पूर्णतः विकसित समाज था। बड़ी संख्या में अन्वेषण और विचारों की व्याख्या हो रही थी····हम सच्चे श्रम-विभाजन को अमल में ला रहे थे।"[७३]

दुरखीम के संप्रदाय का इतिहास आधुनिक युद्ध की विनाशात्मकता की प्रबल साक्षी है। १९१४ में समस्त विद्वत्तापूर्ण कार्यों के आवश्यक स्थगन और लगभग समस्त ऐसे होनहार युवकों की हानि से, जिनकी संभावित देनों पर इस संप्रदाय और फ्रेंच समाजशास्त्र की उत्कृष्टता मुख्यतः आधारित थी, यह समूह छिन्न-भिन्न हो गया।[७४]

युद्ध और दुरखीम की मृत्यु के बाद (जोकि उसके पुत्र की मृत्यु से शायद कुछ जल्दी ही हो गई) दुरखीम के एक संबंधी और अन्यतम शिष्य मार्सल मौस ने इस परंपरा को जीवित रखने का पूर्ण प्रयास किया। उसने दुरखीम की और इस संप्रदाय के अन्य सदस्यों की मृत्यु के बाद उनकी अनेक रचनाओं को संपादित और प्रकाशित किया; और १९२३ में उसने *L'Annee Sociologique* (जो केवल १९२३ और १९२४ के पूर्वार्ध मे ही प्रकाशित हो सका) को पुनर्जीवित करने का साहसिक किंतु आर्थिक दृष्टि से असफल प्रयत्न किया। १९३४ में यह *Annales Sociologiques* के नाम से एक नये संपादक मंडल और अधिक नमनीय संगठन के अंतर्गत पुनः प्रारंभ किया गया। दूसरे युद्ध के आगमन से यह कार्य पुनः छूट गया।[७५]

दुरखीम के सबसे कट्टर अनुयायी मार्सल मौस, जौर्जस् डेवी और पॉल फ़ाकोनेत रहे हैं। सैद्धांतिक पक्ष में उन्होंने अपने गुरु के आधारभूत विचारों को विभिन्न समालोचकों के विरुद्ध व्याख्या करने, दूसरे शब्दों में रखने और उनकी रक्षा करने के अतिरिक्त कोई विशेष कार्य नहीं किया। मौस की मुख्य अभिरुचि पद्धतिशास्त्रीय समस्याओं में रही है, जैसे कि समाजशास्त्र के अंतर्गत विशेष विभागों का संगठन[७६] और समाजशास्त्र का मनोविज्ञान से संबंध। वह मनोवैज्ञानिकों को यह कहने में नहीं झिझका कि वे अधिकांश में समाजशास्त्र मनोविज्ञान से सर्वथा पृथक् है और लोक प्रतिबिंब (Collective representations) के क्षेत्र तक में भी, समाजशास्त्र जितना मनोविज्ञान से लेता है उससे अधिक उसे देता है।[७७] फिर भी उसकी प्रमुख देन संभवतः उसके अनेक जातिशास्त्रीय गवेषणाओं में है जोकि प्रायः महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने में सफल

हुई।[७८] इनमें संभवतः एस्किमोओं पर उसकी रचना जो सबसे प्रतिष्ठित है, यह सिद्ध करने का प्रयत्न करती है कि एस्किमो सामाजिक और धार्मिक जीवन की तीव्रता सामाजिक समूह के एकत्रीकरण की मात्रा से प्रत्यक्ष सहसंबंधित है। इस रचना के आधारभूत प्रतिमान को बाद में दुरखीम ने अपने मूल्य और धर्म के अध्ययनों में प्रयोग किया।

जौर्जस् डेवी ने, जोकि कई वर्षों तक दीजों में फैकल्टी आफ़ लेटर्स का डीन रहा, निष्ठा और उत्साह से दुरखीम की स्थिति का समर्थन किया है।[७९] जौर्जस् ड्यूमा के महान् सहकारी *Traite* के एक लेखक के रूप में उसने मनोविज्ञान में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को एक सबल और निश्चित अभिव्यक्ति दी है। "समाजशास्त्र" वाले अध्याय में उसने बहुत स्पष्टता से सामूहिक यथार्थवाद और सामूहिक सृष्टिवाद की थीसिस का समर्थन किया है।"[८०] "नैतिक और सामाजिक भावनाओं" पर एक वक्तव्य में उसने दुरखीम के इस मत की पुनः पुष्टि की है कि नैतिक दायित्व पहले एक बाहरी सामाजिक बंधन (Constraint) अनुभव किया जाता है जोकि बाद में धीरे-धीरे अंतर्स्थित होता है, और इसलिये नैतिक और सामाजिक भावनाओं को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता। प्रत्येक भावना सामाजिक संगठन की उपज है; परिणामतः उन्हें प्राणिशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक शक्तियों के अर्थों में कभी भी समुचित रीति से नहीं समझाया जा सकता।[८१]

डेवी का प्रमुख अनुभवात्मक अन्वेषण *La Foi juree* (१९२२) विधि-शास्त्रीय समाजशास्त्र को एक महत्त्वपूर्ण देन है जोकि संविदा (Contract) का सर्वथा सामाजशास्त्रीय सिद्धात प्रस्तुत करता है। इसमे यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि क़ानूनी संविदा की संख्या मूलतः पारिवारिक संबधों और कर्तव्यो से विकसित हुई और इसने क्रमशः धीरे-धीरे एक व्यक्तिवादी रूप धारण किया। मिस्री सभ्यता के उद्गमोंके अपने अध्ययन में (जिसमे कि उसने प्रसिद्ध मिस्रशास्त्री ए० मौरेत के साथ कार्य किया) डेवी ने पारिवारिक या राजनैतिक समूह के ऊपर टौटमी प्रधानता पर दुरखीम की स्थिति का समर्थन करने के लिये और साथ ही अगम्यागमन निषेध (Incest Taboo) की दुरखीम की व्याख्या की पुष्टि के लिये साक्षियां प्राप्त की।[८२] हालांकि उसने धर्म मे असामाजिक तत्वों की उपस्थिति को भी स्वीकार किया।[८३]

पाल फ़ाकोनेत, जिसने कि १८८१ मे सार्बोन मे दुरखीम के स्थान पर शिक्षा और समाजशास्त्र विभाग की अध्यक्षता ग्रहण की, उसके साथ पहले समाजशास्त्र के साथ अन्य समाजविज्ञानों के संबंध के विषय मे[८४] एक पद्धतिशास्त्रीय लेख लिखने में सहयोग दिया था; और बाद मे उसने मौस के साथ *Grande Encyclopedie* के लिये "Sociologie" शीर्षक एक लेख लिखा, जोकि संभवतः दुरखीम के संप्रदाय की बुनियादी स्थिति का सबसे अधिकारपूर्ण संक्षिप्त वक्तव्य है। उसके अनुभवात्मक अन्वेषण मुख्यतः उत्तरदायित्व के विषय से संबंधित रहे है।[८५] दुरखीम की अपराध की इस अवधारणा से प्रारंभ कर, कि यह ऐसा कार्य है जो सामूहिक अंतरात्मा

की सुदृढ़ और सुस्पष्ट स्थितियों पर आघात करता है और दंड उद्वेगात्मक संतुलन की पुनःप्राप्ति की आवश्यकता का परिणाम है, उसने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि "उत्तरदायित्व" का कार्य केवल दंड के प्रयोग के केंद्र को प्रस्तुत करना है। पहले युगों में बच्चों, पागलों और यहां तक कि भौतिक वस्तुओं को भी उत्तरदायी ठहराया गया और दंडित किया गया है; और सामाजिक विकासवाद की क्रमिक प्रक्रिया द्वारा ही उत्तर-दायित्व की आधुनिक अवधारणा कि यह केवल स्वतंत्र और बुद्धियुक्त (Rational) कर्ता तक सीमित है, विकसित हुई है।

मौरिस हालबॉख, जोकि अनेक वर्षों तक स्ट्रैसबुर्ग किंतु हाल में सार्बोन विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर रहा, दुरखीम के संप्रदाय का एक सबसे प्रतिष्ठित और सबसे अधिक लिखने-वाला सदस्य रहा है। इसके अतिरिक्त, समकालीन फ्रेंच समाजशास्त्रियों में वह सबसे योग्य संख्याशास्त्रियों में गिना जाता है। उसकी पहली प्रधान रचना ने सामाजिक वर्गों और जीवन के स्तर की एक समाजशास्त्रीय व्याख्या देने का प्रयास किया [६६] और दुरखीम के समाजशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण कमी को पूरा किया। उसका कहना है कि सामाजिक वर्ग सामाजिक सत्ता की तीव्रता की भिन्नताओं पर आधारित है। हमारे समाज में श्रमिक (Proletarian) जिस मानसिक पार्थक्य में कार्य करता है वह उससे तथा अपनी अल्प आय से विसामाजीकृत हो जाता है। यह सामाजिकता का अभाव किराये पर खर्च की गई आय के बहुत कम अनुपात मे प्रतिबिंबित होता है।

ज्ञान के समाजशास्त्र को हालबॉख की महत्त्वपूर्ण देन "स्मृति की सामूहिक संरचना" पर उसकी योग्य और साहसी रचना में समाविष्ट है। [६७] इन घोषणाओं से प्रारंभ कर कि हम अपने स्वप्नों में कभी भी स्मरण नही रख पाते, और यह कि हम अपने स्वप्नों में समाज के प्रभाव से सबसे दूर रहते है, वह यह निष्कर्ष निकालता है कि व्यक्तिगत स्मृति सामाजिक समूह के लिये समान स्मृतियों की एक वस्तुगत संरचना पर निर्भर है। यह इस तथ्य से ही स्पष्ट होता है कि अपनी स्मृतियों का स्थानीकरण करने के लिये हम परंपरा से उन्हें सामूहिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं से, जैसे कि जन्म, विवाह, मृत्यु, अवकाश, उत्सवों इत्यादि से संबंधित करते है। सामूहिक जीवन की लय पंचांग में व्यक्त होती है, जोकि एक वस्तुगत ढांचा प्रदान करता है, जिसके अभाव में व्यक्ति स्मरण करने में असमर्थ रहता है। इसके अतिरिक्त परिवारों, सामाजिक वर्गों और सामाजिक समूहों सभी की अपनी स्मृतियां होती हैं जो कि एकीकरण और संगति के अपरिहार्य सिद्धांत का कार्य करती हैं।

हालबॉख का आत्महत्या का विवेचन [६८] इस विषय पर दुरखीम के कार्य को अद्यतन बना देता है और उसमे कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण रियायतों और संशोधनों को जोड़ देता है। इस बात पर ज़ोर देते हुए कि "एक निश्चित और असाध्य एकाकीपन की भावना आत्महत्या का अनुपम कारण है" [६९] और यह भी कि यह भावना सदैव, कम-से-कम अंशतः एक सामाजिक उपज है, वह यह स्वीकार करता है कि व्यक्तिगत मूल प्रेरणा

(चाहे वह समाज द्वारा ही उत्पन्न हो) आत्महत्या के होने में एक आवश्यक योग देती है, अतएव इसमें सदैव एक मनोवैज्ञानिक और साथ ही एक सामाजिक तथ्य अंतर्निहित है। उसका ख़याल है कि आत्महत्या की बढ़ती हुई दर, जोकि पिछली शताब्दी की विशेषता रही है, अब घट रही है और यह दर मुख्यतः द्रुत नगरीकरण से पैदा हुई थी जिसने कि व्यक्ति को अधिक आघातों और निराशाओं तथा प्रायः विषमानुकूलन (Maladaptation) की अनभूतियों का शिकार बनाया। [९०]

सेलेस्तिन बूले, जोकि १९२७ से लेकर अपनी मृत्यु तक इकोले नौर्मल सुपीरियर का संचालक रहा, एक संतुलित और उदार विचारक था जिसने कि दुरखीम के संप्रदाय के कार्य में सक्रिय सहयोग दिया किंतु जो इसकी अनेक कल्पनाओं का बड़ा आलोचक भी था। अनेक अवसरों पर उसने स्पष्ट रूप से सामाजिक अंतरात्मा की स्वतंत्रता और बाह्यता, ज्ञान के समाजशास्त्रवादी सिद्धांत, असामान्य (Abnormal) के साथ रोगी स्थिति के मेल, मूल्यों की समाजशास्त्रवादी उत्पत्ति और समाजशास्त्र से प्रेरणा (Motivation) तथा अन्य मनोवैज्ञानिक न्यासों के पद्धतिशास्त्रीय बहिष्कार का त्याग किया। [९१] उसकी अपनी रुचि मुख्यतः समता और जनतंत्र की समस्याओं पर केंद्रित थी। एक प्रारंभिक अध्ययन मे उसने आत्मविकास के लिय अजन्मजात आनुवंशिक लाभों की समाप्ति द्वारा समान अवसर प्रदान करने के रूप में सामाजिक समता की अवधारणा को स्पष्टतः सूत्रबद्ध किया [९२]। उसने यह दर्शाने का प्रयास किया कि इन अर्थो मे समता जनसंख्या, चलिष्णुता (Mobility), केंद्रीकरण, नगरीकरण और सामाजिक जटिलता जैसी रचनाशास्त्रीय प्रक्रियाओं की वृद्धि का स्वाभाविक और अवश्यंभावी परिणाम है। हालांकि जातिप्रणाली की अपनी रोचक विवेचना में वह भारत की सामाजिक संरचना का, प्रधानतः रचनाशास्त्रीय अर्थो में विवरण देने में सफल हुआ, फिर भी उसने इससे इन्कार नही किया कि यह संरचना बहुत अंशों में विचारधारा की शक्ति से, विशेषकर पुनर्जन्म और ब्राह्मणजाति की विशिष्ट पवित्रता के हिंदू विश्वासों द्वारा जीवित है। [९३] सामाजिक प्राणिशास्त्रियों के जनतांत्रिक आदर्शों पर आक्रमण से रक्षा एक अन्य महत्त्वपूर्ण निबंध का विषय रही है। [९४] इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि आलंकारिक रूप को छोड़कर विभेदीकरण और प्राकृतिक चुनाव की प्राणिशास्त्रीय प्रक्रिया को सामाजिक स्तर पर आनुवंशिक जातियों का विभेदीकरण नहीं बल्कि व्यक्तियों की भिन्न क्षमताओं और रुचियों के अनुसार उनका विभाजन उचित है; और यह कि संपत्ति और विशेषाधिकार की दाय सामाजिक जगत् में प्राकृतिक चुनाव की संपूर्ण अवधारणा को मिथ्या बना देती है, चूंकि यह इस पर नहीं चलती कि प्राणिशास्त्रीय दृष्टि से योग्य ही जीवित रहते है। [९५]

यहां पर दो अन्य प्रतिष्ठित फ्रेंच समाजशास्त्रियों का उल्लेख होना भी उपयुक्त है, यद्यपि वे दुरखीम के संप्रदाय के सदस्य नहीं है, किंतु उनका उससे विशिष्ट संबंध है। इनमें से पहला, गैस्तों रिचार्ड, बोर्दो मे दुरखीम का एक सहयोगी था और उसने

L'Annee sociologique के प्रारंभिक इतिहास में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया, हालांकि उसने दुरखीम के अधिकांश प्रमुख समाजशास्त्रवादी सिद्धांतों को स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाया और दुरखीम के धर्म के सिद्धांत से उसे वस्तुतः धक्का लगा; जिससे कि वह क्रमशः इस संप्रदाय का सबसे स्पष्ट और अनथक आलोचक बन गया।[९९] पेरिस विश्वविद्यालय में औपनिवेशिक समाजशास्त्र का हंसमुख और उदार प्रोफ़ेसर रिने मौनियर सर्वथा भिन्न उदाहरण है। वह इस संप्रदाय के साथ बराबर सहयोग देता रहा,[१००] उसकी अपनी सैद्धांतिक स्थिति में दुरखीम और तार्दे दोनों के तत्वों का मिश्रण है और वह समाजशास्त्रवादी कट्टरता से बहुत दूर है। उसने सामाजिक तथ्य की इस प्रकार परिभाषा की है कि यह एक निर्दिष्ट समाज में दुहराया जाता है और एक समान तत्व है (जोकि अनुकरण के अर्थों में तार्दे की परिभाषा से मेल खाती है)। किंतु वह स्वयं "परंपरागत" है और "व्यक्ति के लिये अनिवार्य है" (जोकि इस प्रकार दुरखीम की परिभाषा के भी अनुरूप है)।[१०१] मौनियर एक गंभीर अनुभववादी है, जोकि दुरखीम के अनुयायियों के साथ रचनाशास्त्रीय (Morphological) प्रकार की व्याख्या में बहुत दिलचस्पी रखता है किंतु जिसने लोक प्रतिबिंब (Collective representations) के सिद्धांत को एक उपयोगी पूर्वकल्प (Hypothesis) नहीं पाया।[१०२]

उपसंहार करने से पहले संबंधित क्षेत्रों के उन अनेक विशेषज्ञों का संक्षिप्त उल्लेख करना भी आवश्यक है जोकि दुरखीम के संप्रदाय से प्रत्यक्ष प्रभावित हुए है, या जोकि उससे अल्पाधिक संयुक्त रहे है। नव-कोंतीय विज्ञानवाद (Neo-Comtian positivism) का दार्शनिक लूसियन लेवी-ब्रूल कभी भी दुरखीम संप्रदाय का सदस्य न था और कुछ बातों पर उसके सदस्यों ने उसकी आलोचना की है; किंतु उसके और संप्रदाय के कार्य में, यदि एक वास्तविक एकता नहीं फिर भी एक महत्त्वपूर्ण समानता है। *La Morale et la science des moeurs* मे उसने दुरखीम से बहुत मिलती-जुलती स्थिति ग्रहण की है, कि नैतिकता के एक अनुभवात्मक विज्ञान का निर्माण होना चाहिये और विद्यमान नैतिक धारणाओं और व्यवहारों के एक वस्तुगत अध्ययन द्वारा यह विज्ञान सामाजिक मार्गदर्शन के लिये एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करेगा।[१०३] इसके अतिरिक्त आदिकालीन लोगों की विचार, प्रक्रियाओं पर अपने अनेक और सुविदित अध्ययनों मे उसने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि उनकी मनोवृत्तियां "पूर्व-तार्किक" (Pre-logical)* है और हमसे मूलतः भिन्न है, क्योंकि वे "सामूहिक अभिव्यक्तियों" से शासित है।[१०४] इन कथित भिन्नताओं के पैदा करने मे रचनागत कारकों के निश्चित कार्य को इस पर्याप्त रूप से नही जांचा गया है जिससे कि एम० मौस और अन्य कट्टर दुरखीमवादी संतुष्ट हो सकें, जिन्होंने कि आदिकालीन और सभ्य विचार रूपों की विषमता की अपेक्षा उनके बीच विद्यमान विकासवादी निरंतरता

* यद्यपि बाद में लेवी-ब्रूल ने इस मत को ग़लत समझकर त्याग दिया।—अनुवादक

पर बल देना अधिक पसंद किया है। फिर भी समग्ररूप में, लेवी-ब्रूल की इन गवेषणाओं को दुरखीम के इस मत की अतिरिक्त पुष्टि के रूप में ग्रहण किया गया है कि विचारों के आधारभूत रूप समान और सार्वभौम नही है बल्कि वे परिवर्तनीय हैं, चूंकि वे समाज द्वारा ढाले गये हैं।

स्ट्रैसबुर्ग विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक चार्लस ब्लौदल की मानसिक जीवन के सामूहिक तत्वों में बहुत दिलचस्पी थी और उसके ऊपर समाजशास्त्रवादी दृष्टिकोण का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।[१०२] उसके विश्लेषण के अनुसार पागलपन का मुख्य कारण व्यक्ति के मन का विसमाजीकरण और बढ़ता हुआ पृथक्करण है। इच्छा का सामूहिक अनिवार्य आदेशों के व्यक्तिगत आज्ञापालन से अधिक महत्त्व नहीं है। इच्छा (Will) और तर्कशक्ति (Reason) ऐसे उपहार हैं जिन्हें कि हम समाज से बना-बनाया प्राप्त करते हैं, और जो अधिकांश मनुष्यों के लिये अपने दैनिक अनुभव में स्वीकृत विचारों और नियमों (लोक प्रतिबिब) के प्रयोग से अधिक महत्त्व नहीं रखते।[१०३] ब्लौंदल अपने *Introduction a la psychologie collective* में इस निष्कर्ष पर पहुंचा, कि यद्यपि मानसिक तथ्य केवल व्यक्ति के मन में विद्यमान हैं, किंतु वे अधिकांश में एक सामूहिक प्रकार के हैं, कि केवल सामूहिक मनोविज्ञान ही (जोकि व्यक्ति के मन में सामूहिक तत्व का अध्ययन करता है) उच्चतर मानसिक कृत्यों (बौद्धिक, रागात्मक और इच्छागत) को समझा सकता है; और यह कि व्यवित का एक समुचित स्वस्थ मनोविज्ञान मनोशरीरक्रियाशास्त्र (Psychophysiology) और सामूहिक मनोविज्ञान के निष्कर्षों पर आधारित होना चाहिये।[१०४]

दो अन्य मनोवैज्ञानिक जिन्होंने समाजशास्त्रवादी दृष्टिकोण के साथ सक्रिय सहानुभूति दर्शाई है वे हैं जौर्जस् ड्यूमा और हेनरी वालों। ड्यूमा ने अपनी महान् रचनाओं, *Traite de psychologie* और *Nouvcau traite de psychologie*, में दुरखीम की स्थिति को व्यक्त करने के लिये जौर्जस् डेवी को आमंत्रित किया और स्वयं यह घोषित किया कि, चाहे व्यक्ति पृथक्करण की स्थिति में ही क्यो न हो, सामहिक प्रतिमान ही मुख्यतः व्यक्ति के उद्वेगात्मक जीवन को निर्धारित करते हैं।[१०५] वालों ने हमें बालमनोवृत्ति का विश्लेषण दिया है, जोकि कुछ पहलुओं में आदिकालीन समाजों में लेवी-ब्रूल के पूर्वतार्किक चितन के अध्ययन से विशेषतया मिलता है।[१०६]

इतिहासकारों में जो व्यक्ति दुरखीम के दृष्टिकोण के सबसे निकट आया वह प्रसिद्ध चीनशास्त्री मार्सल ग्रानेत है; उसने चीनी सभ्यता के अध्ययन में निश्चित रूप से समाजशास्त्रवादी दृष्टिकोण अपनाया है।[१०७] विशेषकर चीन में, बुनियादी विचार शैली पर सामूहिक संरचना के प्रभाव की उसकी विवेचना ज्ञान के समाजशास्त्रवादी सिद्धांत की विस्तृत पुष्टि का अभी तक किया गया सबसे प्रभावोत्पादक प्रयास है।[१०८] अन्य प्रतिष्ठित

फ्रेंच इतिहासकार हेनरी बर ने इस प्रकार का समन्वयात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है जोकि सामाजिक कारकों पर एकांततः नहीं, किंतु पर्याप्त, ज़ोर देता है।[१०९]

फ्रांस का एक प्रमुख अर्थशास्त्री फ्रांसुआ सिमियांद शुरू से ही दुरखीम संप्रदाय के कार्य में सक्रिय सहयोगी था। वह अर्थशास्त्र की रूढ़िपंथी अवधारणाओं का एक योग्य आलोचक था; उसका अपना दृष्टिकोण बहुत कुछ अमेरिकन संस्थावादियों[११०] (Institutionalists) से मिलता जुलता है। इस कल्पना से प्रारंभ कर कि आर्थिक घटनायें प्रधानतः सामाजिक मूल्यों के निर्णयों की अभिव्यक्ति हैं। उसने मज़दूरी और कीमतों के कई विस्तृत संख्याशास्त्रीय अध्ययन किये।[१११] विधिशास्त्रियों में समाजशास्त्रवादी सिद्धांत से प्रभावित होनेवालों मे लियों ड्यूट, इमैनुअल लेवी और पॉल हुवेलिन सबसे प्रमुख है। ड्यूट का कानून का "विज्ञानवादी" (Positive) सिद्धात संभवतः कुछ अंशों में दुरखीम के विज्ञानवादी पद्धतिशास्त्र का ऋणी है और निश्चित रूप से वह उसके सावयवी एकता (Organic solidarity) के सिद्धात का बहुत ऋणी है, जो कि ड्यूट हाथों में आधुनिक क़ानून का वस्तुगत आधार बन गया है।[११२] इमैनुअल लेवी *L'annee sociologique* के मूल सहयोगियों मे था और उसने बराबर इस स्थिति को स्थापित किया कि क़ानून सामूहिक अंतरात्मा से उद्भूत विश्वासों पर निर्भर है। विधिशास्त्री कानून को इतिहासकार पॉल हुवेलिन दुरखीम के प्रथम शिष्यों मे से था। उसने व्यक्तिगत कानून के उद्गम में जादू (Magic) के कार्य और व्यावसायिक कानून के उद्विकास मे सामाजिक संरचना के प्रभाव पर ज़ोर दिया।[११३]

अंत मे फ्रांस मे तुलनात्मक भाषाविज्ञान ने द्रष्टव्य रूप में दुरखीम के प्रभाव को दर्शाया है। ज़ाहिरा तौर पर कोई भी अन्य सामाजिक घटना इतनी कम व्यक्तिगत सृष्टि पर निर्भर नहीं है, या व्यक्ति पर व्यवहार के सामूहिक प्रतिमानों की स्थापना को इससे बहतर व्यक्त नही करती। प्रारंभ में ही *L'annee sociologique* को महान् और अतिसम्मानित भाषाशास्त्रियों का सहयोग प्राप्त था; आतों मिलेत ने इसमे शब्दो के अर्थो में परिवर्तन लानेवाले सामाजिक समूहों के प्रभाव पर एक निबंध लिखा जोकि अब तक क्लासिक बन गया है।[११४] फर्डीनैंड ब्रूनो ने अपनी लब्धप्रतिष्ठ रचना *Histoire de la langue francaise* मे और अपनी विचार से भाषा के संबंध की क्रमबद्ध विवेचना में[११५] प्रायः एक समाजशास्त्रीय (यद्यपि सदैव स्पष्ट रूप में समाजशास्त्रवादी नहीं) दृष्टिकोण का सहारा लिया है। किंतु जिस समाजशास्त्री पर सबसे स्पष्ट रूप से दुरखीम का प्रभाव प्रकट हुआ है वह जैक वैन्द्रीस है, जोकि यह सिद्ध करने में व्यग्र रहा है कि व्यक्तियों द्वारा भाषासंबंधी नवप्रवर्तन (Innovations) केवल ज़ाहिरा है और मूलतः सभी भाषा संबंधी परिवर्तनों का उद्गम सामाजिक है।[११६]

टिप्पणियां

१. हम आधारभूत सिद्धांत (Substantive theories) जो एक सामान्य क्षेत्र में वैज्ञानिक अन्वेषण की वास्तविक वस्तु के विषय में सत्य बताने का प्रयास करता है और

द्धतिशास्त्रीय (Methdological) मत के बीच जो उन बोधात्मक प्रक्रियाओं का जिनके ारा वस्तु का अध्ययन का अध्यापन किया जाता है, विश्लेषण और मूल्यांकन करते ं, सावधानी से भेद करना चाहते हैं।

२. "Agelicism" शब्द का विशेषण रूप "agelic" है। "समूह यथार्थवाद" (Agelic realism) यह घोषणा करता है कि समूह अपने सदस्यों से बाहर और उनसे पृथक एक यथार्थ इकाई है। "समूह आत्मवाद" (Agelic personalism) यह घोषणा करता है कि समूह को मन, आत्मा, व्यक्ति या नैतिक एजेंट माना जाना वाहिये। "समूह परात्परवाद" (Agelic Trascendent) यह घोषणा करता है कि सामाजिक समूह एक अतिआध्यात्मिक, आदर्श या अलौकिक इकाई है। "समूह सृजनवाद" (Agelic creationalism) के अनुसार मूल्यों, संस्कृति और मानव व्यक्तित्व के समस्त उच्चतर तत्त्वों का उद्गम सामूहिक है इसलिये एक बुनियादी अर्थ में एक व्यक्ति समूह की उपज है। "समूह भाग्यवाद" (Agelic fatalism) घोषणा करता है कि व्यक्ति सामाजिक परिवर्तन की धारा को प्रभावित करने में शक्तिहीन है, चूंकि समूह स्वयं अपनी संरचना से उद्भूत आवश्यक नियमों से, जो उसके विकासवाद को निर्धारित करते है, बंधा हुआ है।

३. दुरखीम ने कोंत और ऐस्पिनास के प्रति अपने ऋण को खुलकर स्वीकार किया है (मिलाइये : S. Deploige, *Le Conflict de la morale et de la sociologie* 2d ed., Paris, 1912, pp. 393–413)। और दुरखीम के शिष्य और घनिष्ट सहयोगी उसे "le veritable heritiere d'Auguste Comte sur le terrain de la recherche scientifique" माना है। (मिलाइये C. Bougle, *Bilan de la sociologie francaise Contemporaine* Paris, 1935 p. 2)। G. Davy, *Sociologues d'hier et d'aujourd' hui* (Paris, 1931), p. 2. भी देखिये। विस्तृत दुरखीम ग्रंथ-सूची और दुरखीम के समाजशास्त्रीय विचारों के स्रोतों के सर्वेक्षण के लिये देखिये Harry Alpert, *Emile Durkheim and His Sociology* (New York, 1939).

४. जो पाठक दुरखीम की प्रणाली के विस्तृत विश्लेषण और समालोचना में अभिरुचि रखते है वे लेखक के अप्रकाशित डाक्टरेट निबंध "The Development of French-Sociologism and Its Critics in France" (विडनर पुस्तकालय, हारवर्ड विश्व-विद्यालय) देखें।

५. अन्यों में है रोगर लैकोंब, डेनियल एसरतियर, सेलेस्तिन बूले। शायद यह अतिशयोक्ति है, चूंकि समूहवाद के आवश्यक तत्त्व उस परंपरा में भी मिलते हैं जिससे दुरखीम उत्पन्न हुआ और ये उसकी सबसे पहली रचना में स्पष्ट है। हालांकि, पद्धति-शास्त्रीय शब्द लैकोंब द्वारा हमारी अपेक्षा अधिक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है।

४. दुरखीम ने अपने लिए "वैज्ञानिकतावादी" (Positivist) नाम अस्वीकार किया, संभवतः इसलिए कि इसे वह कोंत की प्रणाली का कटटर अनुयायी होना समझता था।

७. दुरखीम के "दर्शनशास्त्र की समस्याओं को पुनर्जीवित करने" के प्रयास और अपनी बाद की रचना में उसकी नैतिकता, मूल्यों धर्म, और ज्ञानमीमांसा (Epistomology) की समस्याओं में अतिव्यस्तता की गैस्तों रिचार्ड (*La Sociologie generale* Paris, 1912, pp. 364-65) और अन्यों ने भूल से यह समझकर आलोचना की कि उसने अपने प्रारंभिक वैज्ञानिकतावादी कार्यक्रम और विज्ञान और दर्शनशास्त्र के घोषित पार्थक्य को त्याग दिया। यह आलोचना वैज्ञानिकतावाद द्वारा कल्पित विज्ञान और दर्शन के प्रकार के पाठक की भ्रांत अवधारणा पर आधारित है। वस्तुतः दुरखीम ने अपनी प्रारंभिक अवधि मे यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि समाजशास्त्र के विकसित होने पर उसके महत्त्वपूर्ण दार्शनिक परिणाम होंगे, यद्यपि उसकी कभी भी कोई अनिवार्य दार्शनिक पूर्वस्थापनायें (Presuppositions) न होंगी (मिलाइये : *Les Regles de la methode sociologique* 3d ed. ; Paris, 1904 , pp. 172–75) (इसके बाद *Regles* नाम से उद्धृत)

८. *Regles* दूसरे संस्करण की भूमिका, p. x.

९. मोंटेसक्यू पर अपने लैटिन निबंध में दुरखीम ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में ग्रहण करने के लिए सार्वभौम नियतिवाद के पक्ष में मुक्त इच्छा के अभ्युपगम का त्याग आवश्यक है। मोंटेसक्यू की इस पुरानी अवधारणा को, "कि सामाजिक तथ्य पूर्णतः मनुष्य की इच्छा पर निर्भर हैं और परिणामतः वे सच्ची चीजें नही हैं", कभी-कभी त्यागने के लिए तारीफ की है (Durkheim. *Montesquieu : sa paart dans la fondation des sciences politiques et de la science des societes, Quid secundatus politicae scientiae institundae contulerit'* Bordeaux, 1892 ; एफ० एलंज्री द्वारा *Revue d'histore politique et constitutionnelle*, I, No. 3, July-September, 1937, 410 में फ्रेंच में अनूदित।

१०. *Regles*, p. 54.

११. यह द्रष्टव्य है कि दुरखीम के तीन अनुभवात्मक अध्ययन प्रायः सर्वथा इन प्रकार के न्यासों पर निर्भर हैं : *De la division du travail social* मुख्यतः कानून की संहिताओं पर; *Le suicide* (Paris, 1897) सामाजिक संख्याशास्त्र पर; और *Les Formes elementaires de la vie religieuse* (Paris, 1912) धर्मसिद्ध व्यवस्थाओं, पुराणों और कर्मकांड पर।

१२. *Regles*, chap. v.

१३. *Ibid.*, p. 135.

१४. *Ibid.*, p. 138.

१५. "Morphologie sociale," का परिचय *Annee sociologique*, II (1899), 520

१६. अन्यों के अतिरिक्त पी० बार्थ, आर० वॉर्म्स, जी० रिचर्ड और आर० लैकोंब द्वारा।

१७. दुरखीम ने इस लघु रचनागत-कारक की कारणात्मक अंतिम श्रेष्ठता पर यह कहकर तभी अपना स्पष्ट मत देने से बचने का प्रयास किया है कि विज्ञान के लिए वास्तव में कोई कारक अंतिम नहीं है और यह कि रचनागत तथ्य स्वयं अन्य प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं। (*Regles* p. 124)

१८. दुरखीम समाजशास्त्र में व्यावहारिक विचार और समस्याओं के प्रवेश का प्रबल विरोधी था, किंतु दूसरी ओर वह आशा करता था कि समाजशास्त्र के महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रयोग (Applications) होंगे। वस्तुतः, वह कहता है यदि उनकी केवल काल्पनिक अभिरुचि है" तो हम अपने वैज्ञानिक श्रम को एक घंटे के कष्ट के योग्य भी न समझेंगे" (*Division du Travail*)।

१९. *Regles*, pp. 61 ff. चिकित्सा शास्त्र के सादृश्य की सहायता समाज-शास्त्रवादी परंपरा की विशेषता है और वह सेंट-साइमन, कोंत, रॉबर्ती और एस्पिनास में मिलती है। फिर भी दुरखीम पहला लेखक है जिसने इस अवधारणा में निहित कठि-नाइयों पर गंभीर विचार किया है।

२०. *Ibid.*, p. 70.

२१. दुरखीम का एक अनुयायी और घनिष्ट शिष्य हालबॉख कहता है कि, अपने ही मापदंड के आधार पर दुरखीम को बढ़ती हुई आत्महत्या के डर को सामान्य (Normal) समझना चाहिये था। यह स्पष्ट लगता है कि सामान्यता या असा-मान्यता प्रदान करना एक सर्वथा वस्तुगत और यांत्रिक कार्य प्रणाली नही है बल्कि यह कुछ प्रच्छन्न और अपेक्षतया आत्मगत मूल्य के मानों पर निर्भर है।

२२. दुरखीम के सामाजिक रोगशास्त्र के सिद्धांत के योग्य समालोचकों मे जी० तार्दे, आर० लैकोंब, जी० बेलोत, सी० बूले, जी० रिचर्ड, जी० कैतेकोर, और ए० फले का जिक्र किया जा सकता है।

२३. *Regles*, p. 76. यह जीवित रहने या उपयोगिता को अंतिम मापदंड बनाता हुआ लगता है।

२४ *Le suicide* : *etude de sociologie* (नया संस्करण, Paris, 1930), p. 357.

२५. *Ibid.*, 346 ff.

२६. दुरखीम की "Representations individuelles et representations collectives," *Revue de metaphysique et de morale* Vol VI, (May, 1898)

में इसकी सबसे पूर्ण व्याख्या की गई है। दुरखीम की *Sociologie et philosophie* (Paris, 1924), chap. i, pp. 1–48 में पुनः मुद्रित।

२७. दुरखीम को समझने में एक प्रमुख कठिनाई "बंधन" (Constraint) शब्द के अर्थ को अत्यधिक (और संभवतः अनुचित) विस्तार देने से उत्पन्न हुई है। वर्तमान लेखक ने दुरखीम द्वारा इस शब्द के साथ पृथक् अर्थों के प्रयोग को पृथक् किया है, जैसा कि निम्न उदाहरणों से, जिनमें से सभी दुरखीम द्वारा सामाजिक बंधन के उदाहरण के रूप में दिये गये हैं, स्पष्ट है (१) एक क़ानून दंड की स्वीकृति से व्यक्ति को को आज्ञा-पालन के लिए बाध्य करता है। (२) एक व्यक्ति द्वारा जन-मत के भय से नैतिक नियम का पालन किया जाता है। (३) एक व्यक्ति द्वारा अपने सांस्कृतिक प्रभावों से अर्जित आदर्श या मूल्य एक विशेष प्रकार से कार्य करने के लिए है। (४) एक फ्रांसवासी, यदि वह अपने को समझाना चाहता है, तो वह फ्रेंच बोलने के लिए मजबूर है। इसी प्रकार यदि एक व्यापारी अपने व्यवसाय को जारी रखना चाहता है तो उसे सूद और मज़दूरी की प्रचलित दर देनी होगी। (५) यातायात और संचार के मार्ग संस्कृति के प्रवास और प्रसार को प्रभावित करते हैं। (६) एक व्यक्ति एक भीड़ में इस प्रकार के कार्य करने के लिए प्रेरित हो जाता है; जो कि व अकेले न करता। (७) शिक्षा या उपदेश कुछ सिद्धांतों की सत्यता को स्वीकृति देते हैं।

लेखक के मत में केवल पहले और दूसरे उदाहरण ही सामूहिक बंधन के सच्चे उदाहरण हैं। सामान्यतः दुरखीम (१) सामूहिक बंधन, जहां समूह जानबूझकर उस प्रकार की क्रियाओं को दबाना चाहता है जो व्यक्ति करना चाहते हैं; (२) सांस्कृतिक नियतिवाद, (Determinism) जहां शिक्षा और अनुकरण द्वारा संक्रमित विचारों, मूल्य और क्रियाओं के प्रतिमान लोगों के विश्वास और वे जिस प्रकार क्रिया करना चाहते हैं उसे प्रभावित करते हैं; (३) भौतिक नियतिवाद, जहां भूतल की बनावट या भौतिक संस्कृति विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं के स्वरूप को प्रभावित करती है; और (४) मनोवैज्ञानिक बाध्यता, जहां भीड़ की परिस्थिति कुछ असाधारण मनोवैज्ञानिक उद्दीपन प्रदान करती है, जो प्रबल उद्वेगात्मक प्रतिक्रियायें और असामान्य व्यवहार को उत्पन्न करती हैं, दुरखीम इनमें महत्त्वपूर्ण भेद करने में असफल रहा है।

२८. Durkheim, *De la division du travail social : etude sur l'organization des societes superieures* (Paris, 1893).

२९. हम देखेंगे कि दुरखीम के मन में व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक एकता इतनी घनिष्टतया संबंधित है कि वे व्यवहारतः एक ही इकाई बन जाती है।

३०. *Division du travail*, pp. 450-52.

३१. *Ibid.*, pp. 230 ff.

३२. *Idid.*, pp. 256 ff.

३३. *Ibid.*, pp. 269 ff. इसका प्रायः एक आश्चर्यजनक अपृथक्कृत तत्त्व के रूप

में निर्देश किया गया है। जी० बेलोत ने कहा है कि कोई यह भी कह सकता है कि एक दिवालिया व्यापारी मुनाफे की आशा से प्रेरित न था। इसके अतिरिक्त, यह संपूर्ण युक्ति उस पूर्ववयव पर आधारित है जो स्वयं दुरखीम के पद्धतिशास्त्रीय मानदंड में अस्वीकार्य है। उसकी मनुष्य की सुख प्राप्ति की क्षमता या आदिकालीन या सभ्य लोगों द्वारा भोगे गये सुख के विभिन्न अंशों की विवेचना दुर्भाग्य से उन मनमानी और आत्मगत मनोवैज्ञानिक प्रतिभानों पर निर्भर है जिन्हें दुरखीम ने अन्यत्र पूर्वाग्रह (Prenotions) कहकर निंदा की है। इसके अतिरिक्त, मानवप्रकृति की एक मूलतः स्थिर और अपनी इच्छाओं में सरलतया संतुष्ट अवधारणा उतनी ही अयथार्थवादी है जितनी कि उससे सर्वथा विपरीत, किंतु उतनी ही एकांगी मानव-प्रकृति की अवधारणा है जिसकी दुरखीम ने *Le Suicide* मे (मिलाइये p. 509 के नीचे) व्याख्या दी है।

३४. दुरखीम के समय से अब तक यह दर्शाने के लिए पर्याप्त मानवशास्त्रीय साक्षी उपलब्ध है कि आदिकालीन समाजों मे जनसंख्या की वृद्धि सामान्य की अपेक्षा एक असाधारण घटना है, और यह कि जनसंख्या का आकार स्वयं अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है। (देखिये Carr-Saunders, *Population Problem* (Oxford, 1922)। इसके अतिरिक्त दुरखीम को यह स्पष्ट होना चाहिए था कि जहा पर भी जनसंख्या की वृद्धि हुई है, वहां प्रवास या युद्ध हुए होंगे और यह कि, जहा श्रम-विभाजन को एक वरीय विकल्प के रूप मे चुना गया है वहां निर्णय करने में व्यक्तिगत प्रेरणा और व्यक्तिगत या सामूहिक कल्याण का विचार अवश्य प्रभावकर रहा होगा। इसलिए कारण कभी भी पूर्णतः "यांत्रिक" न रहा होगा।

३५. Durkheim, *Le Suicide*, (Paris, 1897).

३६. असाधारण समृद्धि की अवधियों में दृश्य-वृद्धि अगले अन्वेषणों से पुष्ट नहीं हुई है।

३७. दुरखीम ने एक तीसरे प्रकार की आत्महत्या ("परार्थी आत्महत्या") की अतिशय सामाजिक एकीकरण का परिणाम कहकर व्याख्या की है। दुर्भाग्य से इस प्रकार की आत्महत्या की प्रकृति बहुत अस्पष्ट है। दुरखीम ने इसकी ऐसी परिभाषा की है जिसमें दूसरों के कल्याण के लिए स्वेच्छा से जीवन का जाहिरा जीवन बलिदान सम्मिलित है (जैसे एक सिपाही को अपने साथियों को या एक माता का अपने बच्चे को बचाने के लिए)। फिर भी जैसा कि हालबॉख ने बाद मे निर्देश किया, कि इन्हें समाज द्वारा आत्महत्या नही माना जाता; इसलिए यह एक अच्छी समाजशास्त्रवादी परिभाषा नही है। इसके अतिरिक्त, यह द्रष्टव्य है कि स्वयं दुरखीम ने अपने अध्ययन के महत्त्वपूर्ण अंशों मे "परार्थी आत्महत्या" के विषय मे भूल की है। इस प्रकार वह इस तथ्य की सर्वथा उपेक्षा करते हुए कि उसके अधिकांश "परार्थी आत्महत्यायें" प्रायः आत्महत्यायें नही मानी जाती और उन्हें सरकारी आत्महत्या के आंकड़ों में नहीं चढ़ाया जाता, उसने आत्महत्याओं की कुल संख्या को आंकते समय साधारण आंकड़ों का प्रयोग किया है। यह भूल तब विशेष

रूप से दीखती है जब वह कहता है कि युद्धकाल में आत्महत्याओं की कुल संख्या घट जाती है। यदि स्वेच्छा से आत्मबलिदान के उदाहरण सम्मिलित किये जाते तो यह दर अत्यंत बढ़ जाती। ऐसा लगता है कि वह आत्महत्या की एक नैतिक पाप के रूप में अंधनिंदा में "परार्थी आत्महत्या" को भूल गया है।

३८. *Le Suicide* pp. 366 ff.

३९. दो प्रमुख समालोचनायें जिन्हें हम समझते हैं दुरखीम के आत्महत्या के सिद्धांत के विरुद्ध दिया जा सकता है, वे हैं: (१) दुरखीम ने एक संख्याशास्त्रीय औसत की कल्पना की है। आत्महत्या की दर की एकरूपता आत्महत्या पैदा करनेवाले बहुसंख्यक कारकों की प्रत्येक वर्ष एक समान शक्ति से उत्पन्न हो सकती है। (२) जहां समूह रचना, सामाजिक एकीकरण इत्यादि प्रभावकर है, वहां वे संभवतः व्यक्तियों की मूल प्रेरणाओं को प्रभावित कर आत्महत्या की दर पर असर डालते हैं और कार्यकारण की शृंखला में वे एक अपरिहार्य कड़ी है। आत्महत्या की दर पर समाज का प्रभाव उतना सामूहिक बाध्यता का विषय नहीं है जितना कि सांस्कृतिक नियतिवाद का। इस प्रकार, उदाहरण के लिए उन व्यक्तियों की आत्महत्याओं की जो एक मंदी में अपना रुपया खो बैठे उसकी कैफ़ियत मुख्यतः इस तथ्य से दी जाती है कि उन्होंने अपनी संस्कृति से कुछ मूल्य-निर्णय ग्रहण किये जिसमें हर हालत में अपने सामाजिक आर्थिक दर्जे को क़ायम रखने के औचित्य पर ज़ोर दिया गया था।

४०. Durkheim, "Representations individuelles et representations collectives," *Sociologie et philosophie* (Paris, 1924), chap. i, pp. 1–48.

४१. यह *Regles* में अपनाई गई इस स्थिति से, कि समाजशास्त्री को समस्त सामाजिक परिवर्तनों की आंतरिक सामाजिक वातावरण के परिवर्तनों के प्रसंग में व्याख्या करनी चाहिए, बिल्कुल हट गई है।

४२. दुरखीम ने इस सिद्धांत को सर्वप्रथम ११ फरवरी और २२ मार्च १९०६ में हुई Societe Francaise de Philosophie की सभाओं में प्रस्तुत किया था। यह निबंध और उसके बाद की चर्चा का विवरण *Bulletin de la Societe Francaise de Philosophie*, VI (Paris, 1906), 113 ff. में दिया गया है।

४३. *Ibid.*, pp. 121 ff. दुरखीम ने यह भी देखा कि ऐसा ही द्वैत पवित्रता की भावना में मिलता है, जो निषिद्ध भी है और प्रेरणाप्रद भी। उसका मत है कि तर्क और ऐतिहासिक दृष्टि दोनों से ही धर्म और नैतिकता में बहुत घनिष्ट संबंध है।

४४. "अनुभव के जगत् में अब मुझे केवल एक ही विषय ज्ञात है जिसे हमारी अपेक्षा अधिक समृद्ध और अधिक जटिल यथार्थ नैतिकता प्राप्त है: यह सामूहिकता है। नहीं, मैं गलती पर हूं; एक अन्य प्राणी भी इसी भूमिका को अदा कर सकता है; अर्थात्,

दैवी शक्ति। ईश्वर और समाज के बीच में अपना चुनाव करना होगा। मैं यहां पर उन कारणों की परीक्षा नहीं करूंगा जोकि एक या दूसरे समाधान के पक्ष के विरोध में हों। इसके अतिरिक्त, दोनों ही समाधान पूर्णतया संगत हैं। "मैं यह जोड़ना चाहूंगा कि मेरे दृष्टिकोण से यह पसंद उदासीनता का विषय है, चूंकि मैं दैवी शक्ति में समाज के रूपांतरण और उसकी कल्पित प्रतीति के अतिरिक्त कुछ नहीं देखता।" (*Ibid.* p. 129)। इस पर ध्यान दें कि कितनी स्पष्टता से यह दुरखीम के धर्म के अध्ययन के बुनियादी विचार को पूर्वव्यक्त करता है।

४५. *Ibid.*, p. 132.

४६. *Ibid.*, p. 116. लेखक की दृष्टि में दुरखीम के नैतिकता के सिद्धांत के प्रमुख दोषों का संक्षेप निम्न प्रकार दिया जा सकता है: (१) अन्य व्यक्ति वैध रूप से नैतिक व्यवहार का विषय हो सकते हैं और वह उचित रीति से नैतिक निष्ठा को अनुप्रेरित कर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि वे हमसे बेहतर हैं बल्कि वे हमसे गैर हैं; और गैरपन का यह गुण निष्ठा के उस तत्त्व को संभव बनाता है जो कोई संकीर्ण अहंवादी लक्ष्य अनुप्रेरित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, यह किसी प्रकार निश्चित नहीं है कि व्यक्ति की अपने को सुधारने या अपने को विकसित करने की इच्छा में नैतिक तत्त्व का पूर्ण अभाव है। इसलिए यह स्थापना आवश्यक नहीं है कि समाज एक प्राणी (Person) है। (२) सामाजिक समूह संस्कृति को संरक्षित करता है, किंतु अभी तक यह नहीं दर्शाया गया है कि यह संस्कृति को उत्पन्न करता है। संस्कृति और सभ्यता के प्रति हमारी निष्ठा हमें अनिवार्यतः उस विशेष समूह के प्रति जिससे हम संबंधित हैं वफादार होना जरूरी नहीं ठहराती। यदि वह समूह संस्कृति के साथ विश्वासघात करता या उसको अवरुद्ध करता है, हमारे लिए उसका त्याग या उसके आमूल-चूल पुनर्संगठन का प्रयास उचित हो सकता है। संक्षेप में, सामाजिक समूह के प्रति हमारी निष्ठा संस्कृति द्वारा संक्रमित बुनियादी मूल्यों के प्रति उसकी वफ़ादारी पर निर्भर है। (३) दुरखीम के सिद्धांत का अतिशय सापेक्षवाद एक विद्यमान नैतिक प्रणाली की अधिक व्यापक और सामान्य मानों के अर्थ में बाहर से आलोचना करना असंभव बना देता है; यदि प्रत्येक समाज को जिस नैतिक प्रणाली की आवश्यकता है वह प्राप्त है, तो बुनियादी नैतिक आलोचना का कोई आधार नहीं है और नैतिक प्रगति की कोई संभावना नहीं। केवल अनुदारता समाज के लिए, जिस प्रकार व्यक्ति के लिए नहीं उसी प्रकार समाज के लिए भी, पर्याप्त लक्ष्य नहीं है। एक व्यक्ति स्वेच्छा से एक नैतिक उद्देश्य के लिये अपने व्यक्तिगत अस्तित्व का बलिदान भी कर सकता है, और इसी प्रकार समाज केवल अपने अस्तित्व से परे लक्ष्यों के लिए अर्पित है।

४७. Durkheim, "Jugements de valeur et jugements de realite: communication faite au Congres international de philosophie de Boulogne, 6 avril 1911," *Revue de metaphysique et de morale*, July 3,

1911, pp. 436-53 में प्रकाशित ; *Sociologie et philosophie*, chap. iv, pp. 117 ff. में पुनःमुद्रित। हमारे संकेत इस पुनःमुद्रण से है।

४८. *Ibid.*, p. 133.

४९. *Ibid.*, p. 135.

५०. *Ibid.*, pp. 141-42.

५१. ऐसी सार्वभौम व्याख्याओं का स्पष्ट ही अल्प वैज्ञानिक मूल्य है। अगली समालोचना मे लेखक यह स्थापित करेगा कि मानसिक अन्तःक्रिया भौतिक निकटता पर थोड़ी ही निर्भर है, और मानसिक अन्तःक्रिया ही नये आदर्शों या मूल्यों के विकास में महत्त्वपूर्ण है। दुरखीम ने बहुत ही अल्पसाक्षी प्रस्तुत की है कि आदर्शों के निर्माण में शारीरिक निकटता (जैसा कि भीड़ मे) एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती है। संभवतः यह उनके द्रुत प्रसार के अनुकल उद्वेगात्मक धारणाओं का निर्माण करने में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

५२. Paris, 1912. संकेत जे० डब्ल्यू० स्वेन के श्रेष्ठ अंग्रेजी अनुवाद, *The Elementary Forms of the Religious Life* (London, 1915) से है।

५३. "एक धर्म पवित्र वस्तुओं से सापेक्षतया संबंधित विश्वासों और व्यवहारों की एक एकीकृत प्रणाली अर्थात्, पृथक्कृत और निषिद्ध व्यवहार और विश्वास उन सबको जो उनका अनुसरण करते है एक नैतिक समुदाय मे जिसे ऐसा कहा जाता है सगठित करते है।" (*Ibid.*, p. 47) दुरखीम ने इस परिभाषा में निहित तदुद्देशीय स्वरूप को मौनतः स्वीकार किया है जब वह लिखता है : "इस प्रकार वह दूसरा तत्त्व जो हमारी परिभाषा मे स्थान पाता है पहले की अपेक्षा कम आवश्यक नही है, चूंकि यह दर्शाकर कि धर्म का विचार चर्च से अभिन्न है, यह इसे स्पष्ट करता है कि धर्म को एक विशिष्ट सामूहिक वस्तु होना चाहिए" *Ibid.*।

५४. सामाजिक उद्गमो की समस्या के प्रति विकासवादी दृष्टिकोण दुरखीम के विरुद्ध अनेक गंभीर समालोचनाओं को जन्म देता है। उदाहरणार्थ, कुछ अधिकारी विद्वानों का दावा है कि अरुटाओं की अपेक्षा अन्य लोग (जैसे कि उदाहरण के लिए, अफ्रीकी पिगमी जो एकेश्वरवादी कहे जाते है) अधिक आदिकालीन हैं; और फिर, सर जेम्स फ्रेज़र का, जिसने सर्वप्रथम दुरखीम को टॉटमवाद की धार्मिक प्रकृति से परिचित कराया, बाद मे उसका मत बदल गया और उसने यह निर्णय किया कि टॉटमवाद वस्तुतः धर्म है ही नही। संभवतः सबसे गंभीर आपत्तियां समाजशास्त्र मे संपूर्ण विकासवादी दृष्टिकोण की सत्यता से संबंधित है। क्या आदिकालीन लोग हमारे ही विकासवाद की एक प्रारंभिक अवधि को व्यक्त करते है, या वे विकासवाद की दीर्घ और मुख्यतः स्वतंत्र धारा की उपज है? क्या आदिकालीनता को सरलता का पर्याय माना जा सकता है? क्या आदिकालीन समाज में जहां धर्म सामाजिक जीवन के अनेक अन्य पहलुओं से घनिष्टतया संबंधित है, (रिश्तेदारी-समूह, कबायली देश-प्रेम. प्राद्योगिक कार्य-

प्रणालियां इत्यादि) या एक अत्यंत सभ्य समाज में, जहां समस्त संस्थायें कहीं अधिक अंश में विभेदीकृत हैं और बाह्य तत्त्वों से मुक्त है, धर्म की अनिवार्य विशेषतायें अधिक स्पष्टता से प्रकट होंगी ?

५५. ".....यदि यह तत्काल ईश्वर और समाज का प्रतीक है, क्या इसका कारण यह नही है कि ईश्वर और समाज एक ही है ? यदि समूह और दैवी शक्ति दो पृथक वास्तविकतायें हैं तो इस प्रकार समूह का चिन्ह अर्ध-दैवी शक्ति की मूर्ति बनने में समर्थ हुआ ? अतः गोत्र का देवता, टॉटमी सिद्धांत टॉटम का कार्य करनेवाले पशु या पौधे के दृश्य रूप में कल्पना मे साकार और व्यक्त गोत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ न हो सकता" (*ibid*, p. 206)।

५६. *Ibid* . pp. 214-16.

५७. *Ibid*., pp. 206 ff.

५८. दुरखीम के धर्म के सिद्धांत की अनेक सभव समालोचनाओं मे से यहां पर तीन का संक्षिप्त संकेत किया जा सकता है : (१) समूह सदा एक विशुद्ध लौकिक और अस्तित्व में वास्तविकता कहता है। यह देखना कठिन है कि किस प्रकार यह केवल घनत्व की वृद्धि से पवित्र के आदर्श को जन्म दे सकता है। भीड की उत्तेजना अनिवार्यतः एक धार्मिक प्रकार की नही होती; और एक आस्ट्रेलियाई कोरोबोरी या एक पुनर्जागरण सभा मे उत्पन्न तीव्र उत्तेजना की स्थितियों का उद्गम और स्वरूप बहुत कुछ अधार्मिक हो सकता है। हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अत्यत तीव्र और असली धार्मिक अनुभव एकांत मे होते हैं। (२) ईश्वर और समाज के प्रति हमारी धारणाये बहुत कुछ वैसी नही है जैसी कि दुरखीम ने उन्हें बताने का प्रयास किया है, विशेषकर जब हम सामाजिक समूह और संस्कृति मे—जो बड़े अश मे अन्य समूहो से ग्रहण की गई है—भेद करें। और यदि ऐसी समता स्थापित हो सके, वह किसी भी प्रकार यह सिद्ध नही करेगी कि ईश्वर और समाज एक ही इकाई है। (३) चूंकि दुरखीम का धर्म का सिद्धांत धार्मिक लोगों की भावनाओं पर प्रबल आघात करता है (मिलाइये : G. Richard, "L'Atheisme dogmatique en sociologie religieuse," *Revue d'histoire et de philosophie religieuse*, 1923), ऐसा लगता है कि जिन सिद्धांतों की उसने आलोचना की है उन्ही के समान वह भी धर्म को एक भ्राति पर आधारित चित्रित करता है। एक धार्मिक व्यक्ति जान-बूझकर समाज की पूजा नही करता और यह कहना कि वह जिस इकाई की पूजा करता है वह केवल समाज का प्रतीक है, यदि वह उसके प्रतीकात्मक रूप को नहीं समझता तो उसे भयंकर भूल का अभियोग लगाना है। यदि इसका प्रतीकात्मक रूप समझा जाता, थोड़े ही धार्मिक लोग पूजा जारी रखेंगे, क्योंकि वे एक अनुभवगम्य वास्तविकता—समाज—मे ईश्वर का समुचित स्थानापन्न स्वीकार नहीं करेंगे जब तक कि वे दुरखीम की भांति समाज की स्तुति प्रारंभ नहीं करते।

५९. Durkheim और Mauss, "De quelques formes primitives de classification," *Annee sociologique*, VI (1901-2), 1-72.

६०. *Ibid.*, p. 6.

६१. इस सिद्धांत की मुख्य आलोचना संभवत: उस पाद-टिप्पणी में अंतर्निहित है जिसमें दुरखीम ने स्वीकार किया है : यह संभव है कि प्रारंभ से ही मनुष्य ने सदा ही अपने खाद्य साधनों को अल्पाधिक स्पष्टता से वर्गीकृत किया है" *Ibid.*, p. 66 । किंतु यदि आदिकालीन मानव सदा अपनी खाद्य सामग्रियों का वर्गीकरण कर सकता (और सामान्यत: परिस्थिति के प्राद्योगिक तत्त्वों का) तब वर्गीकरण की तार्किक शक्तियां पहले से उसकी थीं, और वे समूह की संरचना से प्राप्त वर्गीकरण की शक्तियों से पूर्व-विद्यमान और स्वतंत्र थी । यदि प्रकृति उसके मन की संरचना एक क्षेत्र में वर्गीकरण को पैदा कर सकती, तो व अन्य क्षेत्रों में भी वर्गीकरणों को क्यों पैदा नहीं कर सकती; और एक क्षेत्र में प्रयुक्त वर्गीकरण की आदतों के क्रमश: अन्य क्षेत्रों में विस्तृत होने को कौन रोक सकता था ? दुरखीम का यह अभ्युपगम कि समकालीन वैज्ञानिक वर्गीकरण का स्रोत लोक प्रतिबिंब (Collective representations) पर आधारित उद्वेगात्मक और पौराणिक वर्गीकरणों में है बहुत मनमाना लगता है, चूंकि समकालीन वैज्ञानिक वर्गीकरण तर्क और स्वभाव से उपयोगितावादी प्राद्योगिक वर्गीकरणों के अधिक निकट लगता है जिनके द्वारा आदिकालीन मानव अपने अस्तित्व की भौतिक अवस्थाओं पर कुछ अंश में पूर्वोक्ति और नियंत्रण करने में समर्थ था । एक अन्य दृष्टिकोण से हम यह भी पूछ सकते हैं कि क्या यदि व्यक्तियों के पास पहले से कम-से-कम वर्गीकरण की एक सामान्य शक्ति न थी, तो क्या वे पहचान सकते थे कि मानव प्राणी पशुओं से पृथक् वर्ग का निर्माण करते हैं या वे गोत्र, बिरादरी या परिवार जैसी धारणाओं पर पहुंच सकते थे ।

६२. इस विषय पर *The Elementary Forms of the Religious Life* विशेष रूप से देखिये (pp. 10 ff. और 440 ff.) के परिचय और निष्कर्ष मे विवेचना की गई है ।

६३. *Ibid.*, p. 18.

६४. *Ibid.*, p. 440.

६५. यहां पर दुरखीम की भाषा की भूले उसे पूर्ण अध्यात्मवाद (Absolute idealism) के बहुत निकट ला देती है, इसमें समाज पूर्ण है । "चूंकि जैसा इसे कल्पित किया जाता है उसके अतिरिक्त ब्रह्मांड का अस्तित्व नहीं है और चूंकि समाज को छोड़कर इसे पूर्णतया कल्पित नहीं किया जात, इसलिए यह समाज के आंतरिक जीवन का अंश बन जाता है, जबकि इस समग्रता के बाहर किसी चीज का अस्तित्व नहीं है" *Ibid*, pp. 44-42. इस स्थिति का एक परेशान करनेवाला पहलू यह है कि, जब पूर्ण अध्यात्मवादी केवल एक पूर्ण में विश्वास करते है, एक समाजशास्त्रीय सापेक्षवादी की

हैसियत से दुरखीम का आग्रह है कि अनेक समाज हैं और वे बुनियादी तौर पर विषम-तत्वीय हैं। अनेक समाजों की सह-उपस्थिति जिनमें से प्रत्येक में संपूर्ण ब्रह्मांड है दार्शनिक आत्म-अस्तित्ववादियों (Solipsists) की सभा का स्मरण कराती है!

६६. *Ibid.*, pp. 11–12.

६७. दुरखीम के ज्ञान के सिद्धांतों की अनेक दृष्टिकोणों से समालोचना की जा सकती है (और की जा रही है)। अनुभववाद के दृष्टिकोण से, निम्न आपत्तियां संगत लगती हैं: विस्तार, काल इत्यादि भौतिक जगत् के वास्तविक गुण है, सामाजिक मन द्वारा पैदा की गई कोई चीज़ नहीं। यह कहना बेहूदा है कि समाज व्यक्तियों पर इसलिए दिक् और काल की श्रेणियां लागू करता है जिससे कि वे एक निर्दिष्ट स्थान और काल में मिल सकें और अन्यथा सहयोग कर सकें; चूंकि यदि जगत् पहले से ही दिक्मय और कालमय (Temporal) न होता तो "मिलने" की कोई समस्या ही न उठती। समूह-जीवन की लय ज्योतिष के काल (दिन, मास, ऋतुएं इत्यादि) पर थोपी जती है और उसके द्वारा मापी जाती है, और सामाजिक समूह जिन दिक्मय रचनाओं को ग्रहण करता है वे पृथ्वीतल पर उसके सदस्यों और उनकी जायदाद का केवल एक विशेष वितरण है, जिसके पास किसी समाज से स्वतंत्र निश्चित दिक्मय गुण मौजूद हैं। प्रदत्त उदाहरण में, समाज नहीं है, बल्कि पड़ाव का स्थान वृत्ताकार है; और यदि यह स्थान बसा हुआ न होता व्यक्तियों द्वारा इसकी वृत्ताकारिता देखी जा सकती। श्रेणियों का मुख्य उद्देश्य हमें भौतिक जगत् के अनुकूल बनाना है; और यदि वे केवल एक विशेष समाज के संगठन को ही प्रतिबिंबित करें तो वे भौतिक जगत् के साथ इतनी अच्छी तरह फिट न बैठेंगे या विभिन्न समाजों के सदस्यों को सहयोग करने में समर्थ न हो पायेंगे। एक पूर्वानुभववादी (Apriorist) निम्न प्रकार की आपत्ति उठायेगा: यदि व्यक्तिगत मन को एक दिक्मय और लौकिक व्यवस्था मे सहज ही अपना अनुभव प्राप्त नही हुआ है तो संभवतः समाज ऐसी व्यवस्था को व्यक्तिगत मनों पर थोप सकता: ऐसे व्यक्ति के लिए जिसे शुरू से ही काल का भान न हो, काल के अर्थ को समझना सर्वथा असंभव होगा। सामाजिक प्रक्रियाओं की लय या पड़ाव के स्थान के प्रतिमान को जानने के लिये हमें सर्वप्रथम कालमयता और दिक्मयता को अनुभव करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। समाज दिक् और काल के विभाजन या विवरण की परंपरागत पद्धतियों को प्रभावित कर सकता है, किंतु वह हमें प्रतिभान के बुनियादी रूप प्रदान नही कर सकता। यही बात कारण, पदार्थ इत्यादि जैसी श्रेणियों के बारे में कही जा सकती है।

६८. सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या को ढूंढ़ने का गंभीर प्रयास केवल श्रम विभाजन पर लिखी गई पुस्तक में मिलता है, यह सामान्यतः स्वीकार किया गया है कि यह प्रयास असफल रहा है (ऊपर देखिये, p. 508 और टिप्पणियां ३३–३४)।

६९. समाजवाद में दुरखीम की अभिरुचि मुख्यतः उसकी इतिहास के विचार में दिखाई देती है। उसने संकेत किया है कि, यद्यपि उसे एक सिद्धांत के रूप में उसके न्याय

के आदर्श से पर्याप्त सहानुभूति है जिससे कि अतिशय व्यतिगत दावों या मांगों का नियमन किया जा सके (वह इस सिद्धांत को साम्यवाद कहता है "जो समाजवाद से पृथक् है"), वह उस प्रकार के समाजवाद के विरुद्ध है जो मुख्यतः रहनसहन के स्तर को उठाने में दिलचस्पी रखता है तथा जो संपत्ति के उत्पादन और वितरण के लिए एक अधिक कार्यकुशल प्रकार के आर्थिक संगठन के रूप मे समष्टिवाद का समर्थन करता है (*Le Sociolisme, sa definition, ses debuts, la doctrinaire Saint-Simonienne*, ed. M. Mauss (Paris, 1928.))।

७०. यह कार्यक्रम १९०२ में लिखित *De la division du travail social* के द्वितीय संस्करण के परिचय में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक रोगशास्त्र की अन्य समस्याओं का विवेचन *Regles, Suicide, L'Education morale* (*Paris*, 1925) और "La morale", *Revue philosophique*, LXXXIX (1920), (81—97) और "Morale professionnelle" "*Revue de metaphysique et de morale*, XLIV (527—44, 711—38) लेखों मे मिलता है। अंतिम तीन रचनाए दुरखीम की मृत्यु के पश्चात् मार्सल मॉस द्वारा प्रकाशित की गई थी।

७१. फासिस्टवाद के अंतर्गत पेशेवार समितिया वस्तुतः स्वायत्तशासित नही होती, वे व्यक्ति पर राज्य की सर्वव्यापी शक्ति को लादने का एक अतिरिक्त यत्र होती है। समग्रशक्तिवाद (Totalitarianism) से भिन्न, दुरखीम की योजना मे राज्य शक्ति मे वृद्धि को स्थान नही है बल्कि उसमें पेशेगत समितियो की शक्ति मे वृद्धि द्वारा अधिसत्ता का विकेंद्रीकरण प्रस्तावित है।

७२. द्रीफस मुकदमे के समय परंपरावादियों के विरुद्ध उसने इस प्रकार की युक्ति को अपनाया था ("Individualisme et les intellectuels," *Revue Bleu*, X (1898), 7–13.)।

७३. Marcel Mauss, "In Memorium," *Annee sociologique* (new. ser.) Vol. I.

७४. मृतको मे जिनका नाम लिया जा सकता है, वे थे : रॉबर्ट हर्ज़, मैक्सिम डेविड, एंतोयन बियांकोनी, जां रेनियर, आर० जैली और दुरखीम का पुत्र, आंद्रे दुरखीम।

७५. १९३९ तक विद्वानों की एक नई पीढ़ी आ चुकी थी जो इस समूह में शामिल हुई। सामान्यतः उन्होंने कम कट्टर नीति अपनाई और वह समूहवाद के त्याग या संशोधन की ओर अग्रसर हो रहे थे। इनमें रेमंड एरों, रॉबर्ट मारजोलीन, और रेमंड पोलीन जैसे होनहार युवक शामिल थे।

७६. "Divisions et proportions de divisions de la sociologie," *Annee sociologique*, Vol. II (new. ser. 1924-25). "Fragment d'un plan

de sociologie generale descriptive," *Annales sociologiques*, ser. A, Fasc. I, 1934.

७७. "Rapports reals et pratiques de la psychologie et de la sociologie," *Journal de psychologie*, Vol. XXI (December 15, 1924), "L'Expression obligatoire des sentiments," *ibid*, 1921 भी देखिये।

७८. उदाहरण के लिये, उसके ऐसे अध्ययन हैं : ऐस्किमो धार्मिक जीवन में ऋतु-परिवर्तनों के अध्ययन (*Annee sociologique*, Vol. IX, H. Beuchat के साथ); वर्गीकरण के आदिकालीन रूपों पर (*ibid.*, Vol. II, Durkheim के साथ); बलि के स्वरूप और कार्य पर (*ibid.*, Vol. II, H. Hubert के साथ); जादू के सामान्य सिद्धांत पर (*ibid.*, Vol III, H. Hubert के साथ), विनिमय के प्राचीन माध्यम के रूप में उपहार पर (*Ibid.*, (new. ser.) Vol I)। *Revue de l'histoire des religions*. (1896-97) में निम्न अध्ययन भी देखिये. "La Religion et les origines du droit penal" (1901); "Lecon d'ouverture du cours d'histoire des religions, etc". "L'Arte et le mythe, d'apres Wundt," "*Revue philosophique*, 1909. "L'Origine de la notion de mana," *Anthropologie*, 1914. और "L'Ethnographie en France et a l'etranger," *Revue de Paris*, 1913.

७९ *Durkheim : Introduction et morceaux choisis* (Paris, 1911). "Emile Durkheim : l'homme et l'oeuvre," *Revue de metaphysique et de morale*, 1919, 1920. और *Sociologues d'hier et d'aujoud'hui*

८० G Davy, "La Sociologie," G. Dumas, *Traite de psychologie*, Vol II (Paris, 1924).

८१. G. Dumas, *Nouveau traite de psychologie*, Vol. VI (Paris, 1939).

८२ Davy और Moret, *Des clans aux empires* (Paris, 1924)। डेवी ने विधिशास्त्रीय और शैक्षणिक समाजशास्त्र को अन्य देने दी हैं।

८३. *Le Droit, l'idealisme et l'experience* (Paris, 1922) : *Elements de sociologie applique a la morale et a l'education*, Vol. I : *Sociologie ploitique* (1924).

८४. "Sociologie et sciences sociales," *Revue philosophique*, 1903.

८५. *La Responsibilite* (Paris, 1920).

८६. *La Classe ouvriere et les niveaux de vie : recherches sui le hierarchie des besions dans les societes industrielles contemporaines* (Paris, 1913).

८७. *Les Cadres sociaux de la memoire* (Paris, 1925).

८८. *Les Causes du suicide* (Paris, 1930).

८९. *Ibid.*, p. 425.

९०. हालबॉख के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं : "La Doctrine d'Emile Durkheim," *Revue philosophique*, 1918 ; *Le Calcul des probabilites a la portee de tous* (M. Frechet के साथ) (Paris, 1923); "Matiere et societe," *Revue philosophique*, July-August, 1920, pp.120–22 ; "La Nuptialite en France, pendant et depuis la guerre," *Annee sociologique*, ser. E. Fasc. 1, 1935.

९१. मिलाइये विशेषकर *Les Sciences sociales en Allemagne, les methodes actuelles* (Paris, 1896), pp. 147 ff.

९२. *Les Idees egalitaires* (Paris, 1899).

९३. *Essais sur le regime des castes* (Paris, 1908).

९४. *La Democratie devant la science : etudes critiques sur l'heredite, le concurrence et la differenciation* (Paris, 1903) ; 3d ed. "La Sociologie monarchiste" (1923) इनमे से कुछ सामग्री सर्वप्रथम प्राणिशास्त्रीय समाजशास्त्र की समालोचना में लिखे गये निम्न दो उत्कृष्ट लेखों में प्रकाशित हुई थी : La sociologie biologique," *Revue philosophique*, 1900 ; और "Le Proces de la sociologie biologique," *ibid.*, 1901 ।

९५. Bougle ने समाजशास्त्रीय शिक्षाशास्त्र और सामाजिक विचारो के इतिहास के क्षेत्र में अनेक देनें दी हैं । प्रथम शीर्षक के अंतर्गत हम निम्न पुस्तकें दे सकते हैं : *Qu'est-ce que la sociologie* ? (Paris, 1907) (एक उत्कृष्ट परिचयात्मक वक्तव्य; *Guide de l'etudiant en sociologie* (Deat के साथ) (Paris, 1921) ; *Elements de sociologie* (एक स्रोत ग्रंथ) J. Raffault के साथ संपादित (Paris, 1926) । सामाजिक विचारों के इतिहास पर Bougle की पुस्तकों में मुख्यतः समाजवादियों और समाज-सुधारकों की विवेचना है : *Chez les prophetes socialistes* (Paris 1918) ; *La Sociologie de Proudhon* (Paris, 1911) ; *La Doctrine de Saint-Simon* (Elie Halevy के साथ) (Paris, 1924) ; *L'Oeuvre d'Henri de Saint-Simon* (चुने हुये अवतरण) (Paris, 1925) ; *Proudhon* (Paris 1929) । उसने शैक्षणिक समाजशास्त्र के विकास पर भी अपने को एक योग्य और संतुलित समालोचक सिद्ध किया ।

मिलाइये *Les Sciences sociales en Allemagne, les methodes actuelles* (Paris, 1896) ; "Un Sociologue individualiste : G. Tarde," *Revue de Paris*, 1905 ; "Individualisme et sociologie," *Revue bleu*, November, 1905 ; "La Sociologie et le droit compare," *Revue de l'enseignement francais hors de France*, 1926 ; "Sociologie et psychologie," *ibid.*, 1927। विशेषरूप से उल्लेखनीय है आधुनिक फ्रेंच समाजशास्त्र पर उसकी रूपरेखा, *Le Bilan de la sociologie francaise contemporaine* । हमें *Lecons sur l'evolution des valeurs* (Paris, 1922) शीर्षक रोचक भाषणमाला का भी जिक्र करना चाहिए जो १९२९ में हेलेन एस० सेलर्स द्वारा *The Evolution of Values* नाम से अंग्रेजी में अनूदित हुई। इसमें सामाजिक मूल्यों के स्वरूप और उद्गम के विषय में केवल एक मृदु समहवादी धारणा अपनाई गई है। Bouglo ने राजनीति और समाज-नीति की समस्याओं पर अनेक निबंध और पुस्तिकाएं भी लिखी हैं।

९६. G. Richard, *La Sociologie generale* (Paris, 1912) ; "Nouvelles tendences sociologiques en France," *Revue internationale de sociologie*, XXXVI, 648 ff. ; "A. Comte et E. Durkheim," *ibid.*, XI 603 ff. "La Pathologie sociole d'Emile Durkheim, *ibid.*, XXXVIII, 119 ff. ; "Le Conflict de la morale et de la sociologie," *Revue philosophique*, 1911 ; "L'Atheisme dogmatique en sociologie religieuse." *Revue d'histoire et de philosophie religieuse*, 1923.

९७. वह *L'Annee sociologique* मे जिसमें कि उसने उत्तरी अफ्रीका में विनिमय के अनुष्ठानों पर एक लेख लिखा (Vol. II (new. ser., 1924) और *L'Annales sociologiques* जिसमें उसने "Interest Groups and the Idea of Contract in North Africa" पर एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया (ser. C., Fasc. 2, 1927), दोनों में ही उसका सहयोगी था।

९८. मिलाइये Rene Maunier, *Introduction a la sociclogie* (Paris, 1929), pp. 15 ff.

९९. मौनियर के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है : *L'Economie politique et sociologie* (Paris, 1910) ; *L'Origine et la fonction economique des villes* (Paris, 1910) ; *La Construction de la maison en Kabylie* (Paris, 1926) ; और *Essais sur les groupements sociaux* (Paris, 1929).

१००. Paris, 1903 और अनेक बाद के संस्करण। एल्बर्ट बेयत ने इस दृष्टिकोण को *La Morale scientifique* (Paris, 1905) ; *La Science des faits moraux* (Paris, 1925) में और आगे बढ़ाया है। *Le Suicide et la morale* (Paris, 1922) में

उसने एक विशेष कर्म पर नैतिक निर्णय और धारणाओं के इतिहास के निपुल और कष्ट-साध्य अन्वेषण द्वारा अपने पद्धतिशास्त्रीय कार्यक्रम को कार्यान्वित किया है।

१०१. Levy-Bruhl, *Les Fonctions mentales dans les societes primitives* (1923) : *La Mentalite primitive* (1925) ; *L'Ame primitive* (1927) ; *Le Surnaturel et la nature dans la mentalite primitive* (1931) : *La Mythologie primitive* (1935) ; और *L'Experience mystique et les symboles chez les primitifs* (1938)। इनमे से पहली चार पुस्तकों का सुंदर अंग्रेजी अनुवाद L'Ilian A. Clare ने निम्न नामों से प्रस्तुत किया है : *How Natives Think* (New York, 1927) ; *Primitive Mentality* (New York, 1923) : *The "Soul" of the Primitive* (New York, 1928) ; और *Primitives and the Supernatural* (New York, 1935)।

१०२. *La Conscience morbide : essai de psychopathologie generale* (Paris, 1913).

१०३. Blondel, "Les Volitions," G. Dumas, *Traite de phsychologie* (Paris, 1924), II, 333–425.

१०४. Blondel, *Intorduction a la psychologie collective* (Paris, 1918) ब्लौदल ने दूरखीम के ज्ञान और धर्म के सिद्धातो की आलोचना की है (*ibid.*, pp. 96 ff) : और एक हाल की रचना (*Le Suicide*, Strasbourg, 1913) मे उसने आत्महत्या की समाजशास्त्रवादी व्याख्या की कटु आलोचना की है और अपनी ओर से मनोशरीरक्रियाशास्त्रीय, विशेषकर इस घटना के मनोचिकित्सक तत्वों पर जोर दिया है।

१०५. G. Dumas, "L'Expression des emotions," उसके *Traite de psychologie*, I, 641 मे उसने मानसिक जीवन की एकांगी समाजशास्त्रवादी व्याख्या की गंभीर आलोचना की है। (*ibid.*, II, 1150–53).

१०६. *L'Enfant turbulent* (Paris, 1925). "La Mentalité et celle de l'enfant," *Revue philosophique*, 1928.

१०७. मिलाइये Granet *Fetes et danses anciennes de la Chine* (Paris, 1919) ; *La Polygynie sororale et le sororat dans la Chine feodale* (Paris, 1920), *La Religion des Chinois* (Paris, 1922), *Danses et legendes de la Chine ancienne*, Travaux de *L'Annee sociologique* (2 vols., Paris, 1926) ; *La Civilisation chinoise*, "La Vie publique et la vie privee," "L'Evolution de l'humanite" (Paris, 1929).

१०८. *La Pensee chinoise* (Paris, 1934). मिलाइये *American Sociological Review*, I, 487–92 में लेखक की समालोचनात्मक समीक्षा।

१०९. Henri Berr, *La Synthese en histoire* (Paris, 1911). Berr *La Synthese historique* और "Bibliotheque de synthese historique" का संस्थापक और संपादक भी है।

११०. मिलाइये *La Methode positive en science economique* (Paris, 1912); *Statistique et experience : remarques de methode* (Paris, 1922); "Methode historique et science sociale," *Revue de synthese historique*, 1903; और "La causalite en histoire," *Bulletin de la Societe francaise de philosophie*, 1907.

१११. *Salaire des ouvriers des mines de charbon en France* (Paris, 1907); और *La Formation et les fluctuations des prix due charbon en France pendant vingt-cinq ans*, 1887—1912 (Prais, 1925)। सिनियांद का हालबॉख पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था।

११२. मिलाइये, अन्य रचनाओं में, *Traite de droit constitutionnel* (1911); *Le Droit social le droit individuel et la transformation de l'etat* (Paris, 1911), *Les Transformations generales du droit prive* (1912); और *Les Transformations du droit public* (1913).

११३. "Magie et droit individuel," *Annee sociologique*, Vo.. X (1907); और *Histoire du droit commercial* (Paris, 1904).

११४. Meillet, "Comment les mots changent de sens," *Annee sociologique*, Vol. IX (1950). उसके *Les Langues dans l'Europe nouvelle* (Paris, 1918); और *Linguistique historique et linguistique generale* (Paris, 1921); और अन्य अनेक लेखों में भी ऐसे ही समाजशास्त्रवाद पर जोर दिया गया है।

११५. *La Pensee et la langue* (Paris, 1922).

११६. "Le Caractere social due langage, "*Journal de psychollogie* (1921); और "Le Progress due langage," *Bulletin de la Societe francaise de philosophie*, 1922, *Le Langage : introduction linguistique a l'histoire* ("Bibliotheque de synthese historique" (1922)).

अध्याय आठ

विल्फ्रेडो परेटो : अवशिष्ट, भ्रांत तर्क और अभिजात वर्ग

डब्ल्यू० रेक्स क्रौफोर्ड

पेंसिलवानिया विश्वविद्यालय

१. परेटो की रुचियों और रचनाओं का सामान्य रूप

यदि किन्हीं अर्थों मे शिक्षा एक बढ़ती हुई निराशा है तो विल्फ्रेडो परेटो (Vilfredo Pareto) की रचनायें समस्त पूर्ववर्ती समाजशास्त्रीय सिद्धांतों में मूर्धन्य होंगी, क्योंकि समस्त महान् प्रणाली-निर्माताओं में वह सबसे निराश हैं । उसमें अतीत की पौराणिक कथाओं के प्रति श्रद्धा का सर्वथा अभाव है; वह भविष्य मे हमारी प्रगति और सुधार की सुंदर आशाओं की निर्ममता से आलोचना करता है; आधुनिक मन के आखिरी सहारे, विज्ञान में श्रद्धा को भी उठाकर फेंक दिया गया है । चूंकि वैज्ञानिक पद्धति का अब कोई उग्र समर्थक नही रह गया था, उसे कोई ऐसा प्रचलित विश्वास नहीं है कि वैज्ञानिक सत्य हमें मुक्त करेगा या अच्छा बनायेगा, या कोई सामाजिक उपयोगिता उत्पन्न करेगा। समाज मिथ्या और विज्ञान द्वारा जांचे गये सत्य पर फल-फूल सकता है, जिसका कि व्यक्ति सदैव अनुसरण करेगा और जो उसे स्वर्ग के बजाय नरक में ढकेल सकता है ।

यदि नैराश्य में परेटो को आखिरी बात कहनेवाला मान लिया जाय, फिर भी एक अन्य अर्थ में उसकी रचनाओं को उस युग का, जोकि कभी नहीं लौटेगा, मरसिया कहा जा सकता है, क्योंकि सामाजिक विचारों में प्रणाली-निर्माताओं के दिन अब समाप्त हो चुके हैं और विशेषीकृत गवेषणा इसे बहुत संदेह से देखती है । फिर भी यह स्मरण रहना चाहिये कि ऐसे व्यक्ति की प्रणाली का भी, जोकि समग्ररूप में महत्त्वाकांक्षी किंतु एक अस्वीकृत असफलता है, जो कुछ उन पहलुओं में भी असफल हुई है जिन पर कि उसने सबसे अधिक ज़ोर दिया, पर्याप्त प्रभाव पड़ सकता है। आल्डस हक्सले ने अपने विचारों पर इस प्रभाव को स्वीकार किया है; जेम्स हार्वी रॉबिनसन और अन्य अंग्रेज़ी लेखकों ने, यद्यपि इसे प्रत्यक्ष स्वीकार नहीं किया है, पर वहां भी इसकी उपस्थिति पर शक किया जा सकता है; और कुछ लोग इस तथ्य से प्रभावित हैं कि अपने लौजान के दिनों में मुसोलिनी ने परेटो के व्याख्यान सुने होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि परेटो की पद्धति का प्रत्यक्ष शैक्षणिक प्रभाव बहुत रहा है; वस्तुतः एक इटालियन अर्थ-शास्त्री ने इस लेखक को विश्वास दिलाया कि उसके देश में यह प्रभाव बहुत कम और

दूषित रहा है। हमारे लेखक की महानता उसकी पद्धति की अपेक्षा उसका मानवपन है। उसके कुछ विचार महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण हैं, परंतु उसकी प्रणाली समग्ररूप में निकम्मी लगती है। आज कोई भी अर्थशास्त्र की समस्त समस्याओं का उत्तर पाने के लिये थौर्सटीन वैबलन के पास नहीं जायेगा; किंतु एक बार उसे पढ़कर आप कुछ चीज़ें कभी नहीं भूल सकते; आपके अपने जीवन की अनंत परिस्थितियों में उसके सिद्धांत आपके मन में हठात् जाग उठेंगे, जबकि मार्शल और टौसिग भूल जाते हैं। परेटो भी इसी प्रकार का है। भाषा और शैली की कठिनाई के बावजूद, परेटो में कुछ ऐसी चीज़ है जोकि मनुष्यों के कार्य और दिलों में बैठ जाती है। अपने समाचारपत्र, रेडियो से उगले हुए राजनैतिक भाषणों तथा आपके द्वारा सुने गये धार्मिक उपदेशों के एक क़ीमती पूरक के रूप मे उसका अध्ययन सबसे अच्छा है। उसे अध्ययन के लिये अनिवार्य न समझिये, बल्कि उस जीवन को जिसे कि हम सब बिताते है समझने में सहायता पाने के लिये पढ़िये। उसकी पुस्तक केवल ऐतिहासिक विद्वत्ता का ही स्मारक नही है—हालांकि उसका बड़ा अंश तो उनके पल्ले ही न पड़ेगा जोकि अपने ग्रीक और रोमन इतिहास तथा फ्रेंच और इटालियन संसदीय इतिहास को नहीं जानते। याद रखिये कि भयंकर *Trattato di sociologia generale* के लेखक की आकृति धुंधले रूप मे आपको एक ऐसे व्यक्ति का स्मरण करा सकती है जिसे कि सोचने के बाद आप एक यहूदी सूदखोर समझें और वह स्विटज़रलैंड में सर्वोत्तम सुरागार का स्वामी होने की डींग मारता है।

विल्फ्रेडो परेटो का जन्म १५ जुलाई १८४८ में पेरिस में हुआ। वह देश-निष्कासित एक जिनेवा के राजदरबारी और फ्रेंच माता की संतान था। जबकि उसकी आयु दस वर्ष की थी उसका परिवार इटली लौट आया और उसकी कुछ शास्त्रीय और कुछ गणितिक और वैज्ञानिक शिक्षा तूरिन मे पूरी हुई। इटालियन रेलवे मे उसने एक इंजीनियर की हैसियत से कई महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। मुक्त-व्यापार (Free trade) की उसकी वकालत ने उसे इटालियन सरकार की नीतियों के स्पष्ट विरोध में ला दिया। वह निरंतर अध्ययन करता रहा और अंततोगत्वा लियों वालरस के प्रभाव के अंतर्गत आया जिसके आर्थिक संतुलन (Equilibrium) के सिद्धांत को उसने अधिक पूर्णता प्रदान की। परेटो की नौकरी से अवकाश लेने और विज्ञान में अपने को लगाने की इच्छा ने १८९३ में लौजान विश्वविद्यालय में नियुक्ति को उसके लिये बहुत ही स्वीकार्य बनाया। उसकी प्रमुख रचनायें पचास वर्ष की आयु के बाद लिखी गईं। वस्तुत: *Trattato* का अंग्रेज़ी अनुवाद *The Mind And Society* केवल १९१५ और १९१९ के बीच प्रकाशित हुआ। हम उसके अर्थशास्त्र पर विचार नहीं करेंगे। परेटो की मृत्यु १९ अगस्त, १९२३ में हुई।

परेटो की रचनाओं की महानता और मौलिकता को लाना कठिन कार्य है, क्योंकि, सभी टीकाकार इस पर सहमत है कि उसकी पुस्तक संसार में सबसे बेतरतीब पुस्तकों में से एक है। आज जो विद्यार्थी *Trattato* पढ़ना चाहता है वह सौभाग्यशाली

है कि उसे चार जिल्दों में उसका शानदार अंग्रेजी अनुवाद *The Mind and Society* प्राप्त है जिसे कि आर्थर लिविगस्टन ने संपादित किया है, और जिसे उचित ही "अभी तक किसी भी समाजशास्त्रीय रचना का सर्वोत्तम अनुवाद" कहा गया है। निस्संदेह यह इटालियन के मूल और फ्रेंच अनुवाद, जिसे कि परेटो की परामर्श का लाभ प्राप्त था, दोनों मे श्रेष्ठ है और इसने मूल के साथ कोई अनुचित स्वच्छंदता भी नही बरती है। उदाहरण के लिये इसमें परेटो के क्रम पैराग्राफ की संख्या को क़ायम रखा गया है, प्रस्तुत विवेचना मे उसी के सब हवाले दिये गये है। इसके विशाल प्रदेश पर एक विहंगम दृष्टि इसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट करती है और जैसे-जैसे हम इसके निचले भाग को खोजते है वे हमें बारंबार मिलती है। परेटो का लक्ष्य कम ऊंचा नहीं है; वह ऐसा समाजशास्त्र लिखना चाहता है जोकि विज्ञान हो। मानव क्रियायें समाज-शास्त्र के तथ्य हैं; और जैसी कि मानव प्रकृति है, ऐसी अधिकांश क्रियायें अनिवार्यतः अतर्कसंगत और भावुकतायुक्त होंगी; यह मानव प्रकृति में सूक्ष्म और देखने में अपील करनेवाले और जिनसे कि हम अपनी क्रियाओं को उचित ठहराते है उन क्षुद्र तर्कों (Derivations) की अपेक्षा ये मानव-प्रकृति में निर्दिष्ट रीति से कर्म करने (Residues) का परिणाम है। ये अवशिष्ट (Residues) और भ्रात तर्क (Derivations) क्या है, वे समाज के विभिन्न भागों और एक ही समाज में विभिन्न समयों में किस अनुपात में विद्यमान रहते है—यह समाज के स्वरूप और इतिहास द्वारा वर्णित हेर-फेर और परिवर्तनों की कुंजी है।

परेटो केवल अनुभव और अवलोकन को ही अपने मार्गदर्शक के रूप मे ग्रहण करना चाहता था, वह पहले से ही कोई कल्पना नही करना चाहता था, और वह निरंतर सत्य के अधिकाधिक समीप अनुमानो पर पहुंचने की आशा करता था। यह हो सकता है कि उसने बहुत कुछ बिना समझे यह मान लिया हो कि इंद्र-धनुष के छोर पर एक स्वर्णकलश रखा है, क्योंकि सत्य की सबसे संतोषजनक यही परिभाषा की जाती है कि उसे हम अधि-काधिक पढ़कर ही प्राप्त कर सकते है, अर्थात् जिसके विषय में हम केवल इसलिये संतुष्ट हैं कि हमने अपने मन मे यह ठान लिया है कि हम इस प्रकार की चीज़ से संतुष्ट होंगे। किंतु अधिकांश पाठक परेटो को पर्याप्त संदेहशील पायेगे, यहां तक कि वह स्वयं संदेहवाद (Scepticism) को एक आध्यात्मिक पूर्वानुभवगत सिद्धांत (Metaphyisical apriori theory) और भौतिकवाद को व्यवहारतः एक धर्म कहता है; रेमी द गूरमों के समान वह इतना स्वाधीन विचारक है कि वह "स्वतंत्र-विचारक" के लेबुल को लगाने से इन्कार करता है। परेटो के लिये परोपकारी या ईसाई समाजशास्त्र उतना ही बेहूदा है जितना कि ईसाई रसायनशास्त्र या मार्क्सवादी भौतिकशास्त्र। उसका यह आग्रह है कि अन्य किसी विज्ञान की भांति, जोकि विज्ञान कहलाने का अधि-कारी है, इस विज्ञान को भी परिणामों की परवाह किये बिना तर्क-परीक्षण-मूलक-पद्धति (Logico-experimental method) का अनुसरण करना चाहिये। यदि

कोई ऐसा क्षेत्र है जहां इस पद्धति का प्रयोग नही किया जा सकता, परेटो दृढ़तापूर्वक उससे बचता है। ठोस उदाहरणों से सामान्य सिद्धांतों पर पहुंचने की यह कार्यप्रणाली, हो सकता है हमें घटनाओं के मूल या उनके आध्यात्मिक सार तक न पहुंचाये, और हो सकता है कि वे सामान्य भ्रम के विपरीत सामाजिक या व्यक्तिगत रूप से कोई उपयोगी वस्तु उत्पन्न न कर सके, किंतु यही एकमात्र पद्धति है जिससे कि हम अनुमान के उन उच्चतम अंशों तक पहुच सकते है जिन्हें कि हम सत्य के रूप मे ग्रहण करते है।

यदि वस्तुगतता की इस बात मे—लेखक की अपनी भावनाओ को कोई स्थान न मिले—मानव समाज मे ज्ञात समानताओं के ज्ञान को अपनी हार्दिक इच्छा के अनुसार समाज को ढालने के प्रयास को पृथक् करने की इस व्यग्रता में कुछ परिचित सुर है, तो यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि परेटो ने इसे अनंत प्रकार से दर्शाया है और सभवत: इस पर कुछ अद्वितीय और अवैज्ञानिक ज़ोर दिया है। कुछ ऐसे भी लोग है जोकि तर्क-परीक्षणात्मक पद्धतियों पर भरोसा नहीं करते, क्योंकि मुख्य चीज़ जिससे कि हमें अपनी रक्षा करनी है वह छद्म-परीक्षणात्मक (Pseudo-experimental) और छद्म-तार्किक पद्धतियां है; सभी धर्म,—जिनमें कि परेटो द्वारा घृणित एकता और परोपकारवाद भी सम्मिलित है—हमे ऐसे छद्म-वैज्ञानिक सबूत प्रदान करते है जिनका कि समाजविज्ञानो के वस्तुत: वैज्ञानिक बन जाने पर कोई स्थान नही रहेगा। हमे किसी भी पूर्वानुभव (Apriori) सिद्धांतों से नहीं जिन्हें कि हर कीमत पर मानना और उनका समर्थन करना आवश्यक है, बल्कि केवल तथ्यों द्वारा बारबार जांचे गये तथ्यों और पूर्वकल्पो (Hypothesis) से प्रारभ करना चाहिये। सिद्धांत तथ्यों के आधीन होने चाहिये।

दर्शनशास्त्र से घृणा करनेवालो की भांति परेटो भी अपने इस भोलेपन में निश्चित देखता है कि वह केवल देखकर ही किसी तथ्य को जानेगा। उसका यह वक्तव्य महत्त्वपूर्ण है कि विश्वास, अधविश्वास, सच्चे या झूठे धर्म सामाजिक तथ्य है। पैराग्राफ़ ६९ मे (परेटो ने अपनी टीका में पैराग्राफों पर संख्या दी है और वह चाहता था कि उन संख्याओं का हवाला दिया जाय) उसने अपनी कार्य-प्रणाली का संक्षेप दिया है। यह एक ऐसी कार्य-प्रणाली है जिसका उद्देश्य समाजशास्त्र मे तर्क-परीक्षणात्मक सत्य प्रदान करना है। इसके परिणाम समाज के लिये लाभदायक भी हो सकते है और नही भी; अर्थात् वह इस पूर्वानुभव के सिद्धांत को अस्वीकार करता है कि परीक्षणात्मक सत्य और सामाजिक उपयोगिता सदैव एक है।

"ट्रैटो" मे उसने अपने वैज्ञानिक संकल्पों की विशुद्धता की अनेक घोषणाये की है और यह दावा किया है कि उसके पूर्ववर्तियों ने केवल भावुक आचारशास्त्र लिखा है। बड़ी बात ऐसे सिद्धांतों को, जिनकी परीक्षणात्मक जांच हो सकती है और जिनकी नहीं, पृथक् करना है; ऐसा भेद आगमनात्मक (Inductive) और निगमनात्मक (Deductive) पद्धतियों के प्रचलित भेद से कहीं अधिक बुनियादी है।

विज्ञान में प्रगति का अर्थ अधिकाधिक निश्चितता (Precision) है, यथासंभव भाषा और सामाजिक तथ्यों की परिमाणात्मक अभिव्यक्ति में निश्चितता है; यह हमें क्रमशः अधिकाधिक ऐसे संतोषजनक सिद्धांतों पर पहुंचा देगा जोकि तथ्यों के अधिकांश अनुपात को समझाते हैं। इसलिये उन पापों से बचकर, जोकि हमारी भावनाओं और उनसे प्रेरित शब्दों पर आसानी से छा जाते हैं, हम सामाजिक तथ्यों के वर्गीकरण से प्रारंभ करेंगे।

(ख) समाज में तर्कसंगत (Logical) और अतर्कसंगत (Nonlogical) क्रिया का सिद्धांत

परेटो ने अपनी समस्या को मानव-क्रियाओं में प्राणिशास्त्र के सदृश विभाजनों की खोज को अपनी समस्या बनाया है। उसने तर्कसंगत (जिसमें साधन को लक्ष्य के अनुरूप बनाया जाता है) और अतर्कसंगत क्रियाओं के सबसे उपयोगी वर्गीकरण पर विचार किया है। वस्तुतः आत्मगत रूप से (Subjectively) एक क्रिया वस्तुगत रूप के (Objectively) ऐसा हुए बिना ही तर्कसंगत लग सकती है। मानव क्रियाओं के अवलोकन के परिणाम का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि सर्वत्र और सभी कालों में अतर्कसंगत क्रियाओं ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। वे क्रियायें जो कि तर्क (Reasoning) से नहीं प्रत्युत् एक विशिष्ट मानसिक अवस्था से उत्पन्न होती हैं उनको सहारा दिया जाता है और उन्हें तर्कद्वारा उचित ठहराया जाता है—ऐसा लगता है कि परेटो अर्नेस्ट जोंस द्वारा आविष्कृत युक्तीकरण (Rationalization) शब्द से अनभिज्ञ था। स्वर्गीय प्रोफ़ेसर मैक्स हैडमैन ने संपूर्ण प्रक्रिया का यह संक्षेप दिया है: "परेटो के लिये सामाजिक जीवन की संपूर्ण घटना समीकरणों (Equations) की एक शृंखला बन जाती है जिसमें कि अपरिहार्य भावनायें उन आवश्यिक अभिव्यक्तियों के अपरिहार्य धक्के में अपने को छिपा लेती है जोकि अपने अतर्कसंगत रूप को अपने तथा दूसरों को तर्कसंगत लगने की उतनी ही अपरिहार्य आवश्यकता के अनुरूप बनाने का उत्कट प्रयास कर रहे हैं····अतएव मानवजाति का इतिहास तर्कसंगत लगने के प्रयासों का एक क्रम है"। [१]

एक प्रेरक शक्ति के रूप में तर्क इतना निर्बल है कि हम प्रायः यह कह सकते है कि प्रभावकर रूप से आचरण को निर्धारित करने के लिये इसे भावना में परिवर्तित हो जाना चाहिये, (पैरा १६८)। व्यवहार (B) अज्ञात मानसिक अवस्था (A) पर निर्भर है किंतु एक ऐसे सिद्धांत से समर्थित है (C), जोकि प्रायः (D) के साथ अपने संबंध में तर्कसंगत नहीं है। प्राचीन और ईसाइयत के कालों में जादू (Magic) सर्वथा अतर्कसंगत क्रिया के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसके लिये कभी धर्मशास्त्रीय, कभी तर्कअनुभवात्मक कैफ़ियतें दी जाती हैं। ऐसे उदाहरण अल्पाधिक स्थिर (Constant) क्रियाओं और शब्दों के मूल तत्व को दर्शाते हैं, जबकि उन पर

टंकी हुई तार्किक कैफ़ियतें सर्वथा गौण हैं और चिंतन की लोकप्रिय रीति के साथ बदलती रहती हैं (पैरा २१७)।

विभिन्न सिद्धांतों या सामाजिक तथ्यों के विवरणों में भी परेटो अतर्कसंगत के चिन्ह पाता है। अतीत के सिद्धांतनिर्माताओं ने, जिन्होंने अतर्कसंगत क्रिया के समस्त जटिल तथ्यों के लिये एक सिद्धांत पर पहुंचने की अपेक्षा तर्कसंगत क्रिया के सिद्धांतों का निर्माण अधिक सरल पाया, अतर्कसंगत क्रिया के महत्त्व को घटाकर बताया है, या उसे एक काला चश्मा लगाकर देखा है। यहां कोई भी यह वैध प्रश्न उठा सकता है कि क्या परेटो की दोनों क्षेत्रों की सापेक्ष जटिलता की कल्पना उचित है ? क्या मैकडुगल का मूलप्रवृत्तिवाद (Instinctivism) या कट्टर फ़ायडवाद, अतर्कसंगत पर ज़ोर देने के बावजूद, स्कालिस्तिकवाद के अनियमित तर्कसंगत आधारों की तुलना में बहुत सरल और कहीं अधिक उथला नहीं है ?

इस विषय पर परेटो का विवेचन कुछ प्रतिष्ठित लेखकों की तार्किक असफलताओं का बहुत कठोर स्पष्टीकरण है। फुस्तेल द कूलांजे, पॉलिबियस, मेन, यहां तक कि अरस्तू और प्लेटो की बुरी तरह से ख़बर ली गई है। कोंत, स्पेंसर और मिल की भावनाओं के महत्त्व की झलक मिली थी, किंतु वे कौडरसेत, मौंटेस्क्यू और वाल्तेयर के साथ मानव-क्रिया के अतर्कसंगत तत्व के प्रति सुसंतुलित धारणा स्थापित करने में असफल रहे। ऐसी क्रिया को केवल एक बेहूदा और रोगी (पैरा ३०९) या ऐसी विधि समझना भूल है जिससे कि, उदाहरण के लिये, एक पुरोहित जाति अपने लिये उपयोगी धर्म को दूसरों पर लादती है (पैरा ३१४)। समाजशास्त्र के अग्रणियों और संस्थापकों में भी वास्तविक निश्चितता का अभाव है और सामाजिक घटनाओं के विवरण के रूप में उनका अल्प महत्त्व है; यह इस भद्दे उदाहरण के रूप में ही हमारे अध्ययन के योग्य है जिससे हम यह जान सके कि मानव मन किस प्रकार कार्य करता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिये तार्किक दृष्टि से नगण्य कुछ सिद्धांतों का प्रबल प्रभाव बहुत शिक्षाप्रद है।

अनंत उदाहरण यह दर्शाते हैं कि कल्पित कठोर तर्क में भी निरर्थक स्वीकारोक्ति, भावना, "चाहिये" जैसे शब्दों की, जोकि किसी वस्तुगत वास्तविकता से मेल नहीं खाते, भरमार है। पुनः हमें यह घोषणा करनी चाहिये कि समाजशास्त्र को केवल वही संबंध खोजने चाहिये जोकि अनुभव दर्शाता है; बारंबार दोहराये गये परीक्षण से ऊंचा अन्य कोई सिद्धांत नहीं है। अधिसत्ता (Authority) और अंतःपर्यवेक्षण को धर्म के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, किंतु इनमें से किसी को भी तर्क-परीक्षणात्मक सत्यता प्राप्त नहीं है, और परेटो यह अनुभव करता है कि कोई भी धर्म दूसरे की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक नहीं है, यद्यपि उनमें से कुछ या सभी की सर्वाधिक सामाजिक उपयोगिता हो सकती है।

(ग) परेटो के समाजशास्त्र की अंतर्वस्तु : अवशिष्ट (Residues) और भ्रांत तर्क (Derivations)

इसके बाद परेटो ऐसे सिद्धातों की जांच की ओर अग्रसर होता है जोकि तर्क-परीक्षणात्मक पद्धतियों का एक सच्चा ढोंग करते हैं, वे सिद्धांत जिनमें गैरपरीक्षणात्मक अंश छिपा हुआ या अंतर्निहित है। ऐसे उदाहरण जिनमें कि हम जानते है कि पुराणों (Legend) और तदनुरूप, किंतु भिन्न, दोनो तथ्य हमे परीक्षणात्मक के साथ पूर्वानुभव (Apriori) का सामना करने मे समर्थ बनाते है। एक समालोचक के नाते यही उससे चिपटे रहने की पद्धति है जो हमे बहुत समृद्ध नही दीखता प्रत्युत् जो हमे सत्य नही, केवल उसकी एक नकल प्रदान करता है। ऐसी कार्यप्रणाली हमे यह दर्शाती है कि रेत के कण पर रवे की भाति पुराणो का निर्माण होता है, जोकि केवल एक भावना की ठोस अभिव्यक्ति है (६७५)। हमारा लेखक यह दर्शाता है कि किन रीतियो के क्रम से : अपूर्ण व्युत्पत्ति से, विचारों के आकस्मिक सहउपस्थिति से, वास्तविक तथ्यो के मिथ्या निष्कर्षों से, आदिकालीन भाषाओ से अनुवाद की प्रक्रिया मे तथ्यो के तोडे-मरोड़े जाने से इन पुराणो का निर्माण होता है। यहां पर अनेक पृष्ठो मे प्रसारवादी (Diffusionist) सिद्धांतों और अतीत की सभ्यता के विश्वासों और व्यवहारों की भ्रांत व्याख्याओ की आलोचना मे अनेक पृष्ठ लिखे गये है, किंतु लेखक ने स्वय इस दिशा मे अपनी कोई देन नही दी, जोकि वस्तुत: इटालियन संस्करण की दूसरी जिल्द से शुरू होती है।

हमारी स्वीकृति के लिये मार्ग तैयार कर दिया गया है कि एक बीज या अंतर्वस्तु (Core) है जोकि कहने को अनुष्ठानो का एक स्थिर (Constant) अंश है, और एक परिवर्तनीय (Variable) अंश है, जिसमे कि उनकी प्रयक्त विस्तृत पद्धतिया और उनकी प्रभावक्षमता के लिये दिये गये तर्क सम्मिलित है। स्थिर अश को परेटो ने "अवशिष्ट" (Residue) और परिवर्तनीय अश को "भ्रांत तर्क" (Derivation) कहा है। परेटो ने *Fatti e teorie* मे यह स्वीकार किया है कि ये नाम केवल सुविधाजनक शार्टहैंड सकेत है और इनके स्थान पर अन्य किन्ही सकेतों का भी प्रयोग हो सकता है। मानव व्यवहार मे ऐसे स्थिर तत्वो की व्याख्या के लिये जिन्हें कि उसने "अवशिष्ट" कहा है, परेटो हमे इस व्याक्यांश से अधिक कुछ नही देता कि ये "भावनाओं की अभिव्यक्तिया" है, जिन्हें कि मनोवैज्ञानिक को और अधिक अध्ययन करना चाहिये, लेकिन समाजशास्त्री को एक न्यास (Data) के रूप में स्वीकार करना चाहिए। वे कठोर तर्क के लिये पूर्ववयव (Premises) नही बन सकते, किंतु वे समाजशास्त्र के लिये उतने ही मूल्यवान् न्यास है जितने कि भाषाविज्ञान के लिये भाषा के अतार्किक रूप।

भूतकाल में समाजशास्त्रियों द्वारा अज्ञात रूप से अवशिष्ट खोजे गये है, चूंकि वे ऐसी शक्तियां है जो सामाजिक संतुलन की व्याख्या करती है। परेटो ने लगभग पचास अवशिष्टों की चर्चा की है, किंतु वे निम्न छ: श्रेणियों मे आते है (जिन पैराग्राफ़ों में इनमें से प्रत्येक की चर्चा हुई है हमने उन्हें भी साथ मे दे दिया है) :

१. सम्मिलन के अवशिष्ट (Residues of combination : ८८९–९९०)।
२. संग्रहों के स्थायित्व के अवशिष्ट (९९१–१०८८)।
३. प्रकट क्रियाओं द्वारा भावनाओं की अभिव्यक्ति के अवशिष्ट या आवश्यकतायें (१०८९–१११२)।
४. सामाजिकता से संबधित अवशिष्ट (१११३–१२०६)।
५. व्यक्ति की ईमानदारी के अवशिष्ट (१२०७–१३२३)।
६. यौन अवशिष्ट (१३२४–९६)।

यद्यपि इन अवशिष्टों की शक्ति और अनुपात विभिन्न कालों और विभिन्न सामाजिक समूहो मे बदलता रहता है, फिर भी वे किसी सामाजिक प्रणाली के स्थिर तत्व है।

पहली प्रकार के अवशिष्ट हमारे द्वारा कुछ ऐसी चीजों के मेल से उत्पन्न होते हैं जिनका कि प्राय: कोई तर्कमगत कारण नही होता, यद्यपि उनमे अपने विश्वास को हम तर्कसंगत कारण प्रदान करने के प्रयत्न करते है। इस प्रकार हम विश्वास करते है कि स्वप्न एक अंकों के खेल मे हमे जीतनेवाले अंको की लाभदायक सूचना देते है, कि कुछ दिन शुभ या अशुभ है, कि कुछ पौधों मे रोग ठीक करने का गुण है, हालाकि हमारे इस विश्वास का कोई तर्क-परीक्षणात्मक आधार नही। सम्मिलन को विश्वसनीय बतानेवाली समानता अत्यत विचित्र हो सकती है, जादू और इसी प्रकार नायको और सतो के जन्म से सबधित भविष्यवाणिया और पूर्वोक्तिया इसके अनत उदाहरण प्रस्तुत करते है। हम ऐसे विश्वासों के विषय मे जो कुछ कहते है वह वास्तविकता पर एक आवरण या परदा है, जोकि अवशिष्ट का कार्य है। परेटो की चितनशैली मे यह आधुनिक विश्वास कि भलाई सदैव प्रगति, प्रजातत्र, सार्वभौम मताधिकार और जनता से सयुक्त है, जादू जैसे स्पष्ट उदाहरणों की तुलना मे अधिक तर्कसगत नही है। शक्तिशाली और बहुव्याप्त भावनाये, जो रहस्यपूर्ण उपचारो को रहस्यपूर्ण रोगों और उसके कुछ अशो को कुलीनता या पूर्णता के साथ जोडती है, अभी भी अपना प्रभाव डाल रही है और वर्तमान सामाजिक घटनाओ की व्याख्या करने मे उनकी मदद ली जाती है। मानवतावाद और एकता उन सब सम्मिलनो से अधिक कुछ नही है जोकि हमारे बुद्धिवादियो की भावुकता को प्रसन्न करते है और तर्क के रग मे रगे होते है। निश्चय ही, *A* और *B* के तत्वो के सम्मिलन, परीक्षण से सिद्ध तत्वो को भावुकतावश विश्वास किये गये तत्वो से पृथक् करना कठिन है; परेटो के एक सुलभ उदाहरण (पैरा ९८१) मे इन स्थापनाओ के बीच ज़ाहिरा समानता है कि मुर्गियों से एक मुर्गा अडे और मुर्गी के बच्चे पैदा करता है, और यह कि जब एक मुर्गा आधी रात को बाग देता है तो उसका अर्थ किसी की मृत्यु है, दूसरी बात की सत्यता को सिद्ध करने के लिये कई दृष्टांत दिये जा चुके है।

दूसरे वर्ग के सग्रहों के स्थायित्व के अवशिष्ट मे यह निहित है कि, एक प्रकार की जड़ता से एक बार सग्रहों का निर्माण हो जाने या मूर्त (Personify) हो जाने पर

उनमें क़ायम रहने की प्रवृत्ति है; जैसा कि रेमी द गूरमों ने अपने *Dissociations des Idees* में यह निर्देश किया है कि उन्हें पृथक् करने के प्रयास में शक्तिशाली विरोध का सामना करना पड़ता है। प्रथाओं के कारणों के समाप्त हो जाने के बाद उनके स्थायित्व के समस्त अवशेष इस तर्क के अवशिष्टों को दर्शाते हैं, जिस प्रकार कि यौन "विद्रोहियों" को दंडित किया जाना, जोकि इनक्यूज़ीशन के समान धारणाओं की अभिव्यक्ति है। परिवार, नगर या देश की पूजा और नार्डिक श्रेष्ठता का विश्वास मूलत: एक मनुष्य और अन्य मनुष्यों या स्थानों के साथ एक संग्रह का स्थायित्व है। इसी प्रकार मृतों और जीवितों या मृतों और उनकी वस्तुओं के बीच विद्यमान संबंध केवल इस अवशिष्ट की, चाहे हम उसे "भ्रांत तर्कों" द्वारा कितना ही क्यों न ढंकें, अभिव्यक्ति है। प्रगति, समाजवाद और शांतिवाद जैसे प्रविवेक भी गत्यात्मक संग्रह हैं, जिनमें केवल मूर्तीकरण (Personifcation) का अभाव है। जिस प्रकार वर्ग १ के अवशिष्टों को नवप्रवर्त्तन (Innovation) का कारण कहा जा सकता है, उसी प्रकार वर्ग २ के अवशिष्ट विद्यमान रूप में चीज़ों के संरक्षण की व्याख्या करते हैं।

कार्ली ने (*Teorie sociologiche*) इन दोनों वर्गों के अवशिष्टों को पुनरावृत्तिमात्र कहकर आलोचना की है। वह पूछता है क्योंकि एक सम्मिलन के दृश्य तथ्य में एक अदृश्य अवशिष्ट को जोड़कर व्यवहारवाद (Behaviorism) का त्याग किया जाय? एक कम मूल्यवान् आलोचना यह है कि परेटो ने अपनी योजना में सर्वथा भिन्न न्यासों को ठोंक-पीटकर फिट कर दिया है। परेटो यह उत्तर दे सकता था कि यही उसके सामाजिक सिद्धांत का गुण है कि उसने दृश्यरूप में भिन्न घटनाओं के पीछे छिपी शक्ति की ओर निर्देश किया है और यह कि हमारे न्यूटन और अन्य महानतर वैज्ञानिक भी यही कर रहे है।

इसका एक उदाहरण सातवें अध्याय में दखा जा सकता है, जोकि वर्ग १ के अवशिष्टों की चर्चा से प्रारंभ होता है। शमनवाद और पुनरुद्धारवाद (Revivalism) का कुत्ते की पूँछ हिलाने से दूर का संबंध दीखता है, किंतु हमारा लेखक इन दोनों को बाह्य क्रियाओं में भावनाओं को व्यक्त करने की आवश्यकता का परिणाम समझता है। शमनवाद और आधुनिक सभ्यता के धार्मिक उद्रेक का एक-सा सार है, यद्यपि तथ्यों की व्याख्या करने में वे भिन्न भ्रांत तर्कों की कल्पना करते हैं।

मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनानेवाले अवशिष्ट को वर्ग ४ में रखा गया है। उनके द्वारा प्रेरित आचार को इस आवश्यकता में देखा जा सकता है कि एक व्यक्ति को अन्य सबों के समान बनना चाहिये, और प्रत्येक व्यक्ति जिस छोटे या बड़े सामाजिक समूह का वह सदस्य है उसकी रीति को अपनाता है, और उससे सब प्रकार की एकरूपता व्यक्त होती है। इस प्रसंग में स्थापित एकरूपता में व्याघात उत्पन्न करने के रूप में दया, क्रूरता, नवीनता के भय या नवप्रवर्तनों के भय की विवेचना की गई है। इसका एक सबसे रोचक उपविभाजन तापसीवाद (Asceticism), एक प्रकार का त्याग है,

अत्यंत तीव्रता और अल्प सामाजिक उपयोगिता इसकी विशषतायें हैं, और जो मध्य-कालीन ईसाइयत से बहुत परे भी मिलता है, चूंकि ईसाइयत का सिद्धांत इस वर्ग के अवशिष्टों को युक्तियुक्तता का रंग देने में प्रयुक्त विश्वसनीय भ्रांत तर्कों में से एक भ्रांत तर्क है। दुर्भाग्य से परेटो ने घटित सामाजिक प्रक्रियाओं की उसी प्रकार उपेक्षा की है, जिस प्रकार कि उसने प्रथा, परंपरा और जिन्हें कि हम अब सामान्यतः मानव-व्यवहार के "सांस्कृतिक" कारक कहते हैं, उनकी ओर बहुत कम ध्यान दिया है। सामाजिकता के अवशिष्ट का नाम देने के बावजूद, इस अभियोग में कुछ औचित्य है कि यहां तक परेटो केवल वैयक्तिक मनोविज्ञान पर लिख रहा है।

वर्ग ५ के अवशिष्ट अपने से पहले वर्ग के पूरक हैं, और उन भावनाओं को व्यक्त करते हैं जोकि सामाजिक संतुलन में परिवर्तन के विरोधी हैं। इन्हें परेटो ने "व्यक्ति और उसके आश्रितों की ईमानदारी के अवशिष्टों" का नाम दिया है। हममें से अधिकांश लोग ईमानदारी, संतुलन या अवशिष्टों के अर्थों में बात नही करते, हालांकि हम अवश्य "उचित" (Just) और "अनुचित" (Unjust) शब्दों का व्यवहार करते हैं, जोकि वस्तुतः संतुलन के क़ायम रहने या बिगड़ जाने का संकेत करते है। अच्छे तर्क की अपेक्षा शक्तिशाली भावनाये हम व्यक्तियों के रूप में, अपने पर या समाज पर जिसका कि हम अंश है, आक्रमण होने पर नाराज़ होने और नैतिक यथास्थिति को लाने के लिये प्रयास करने को प्रेरित करती ह, यद्यपि जो चीज़ की जा रही है वह अतार्किक या छद्म-तार्किक है। ग़लत व्यक्ति की लिचिग (नीग्रो-वध), जोकि प्रायः हुआ है, तार्किक दृष्टि से बेहूदा है, किंतु वह भावनाओं को संतुष्ट करता है; कि कुछ किया गया है।

वर्ग ६ के यौन अवशिष्टों का विश्लेषण विभिन्न सिद्धांतों में अंतर्निहित स्थिर तत्वों और मानव इतिहास मे दृश्य विचारधाराओं की लंबी चर्चा को समाप्त करता है। यह द्रष्टव्य है कि विभिन्न अवशिष्ट प्रायः जटिल रूपों में मिल जाते हैं, जैसे कि तापसीवाद के साथ यौन अवशिष्ट, जोकि हमें एसे निषेध—टैबू—प्रदान करता है जो कभी नहीं देखे जा सकते और जो अपनी कठोरता में पतन और प्रवंचना को, एक "यौन धर्म" बना देते है। जैसा कि वाल्टर लिपमैन ने कहा है, अमेरिका में हमारी एक कठिनाई यह है कि अमेरिकन "इतनी अधिक चीज़े करना चाहते हैं कि वे निषेध करना भी चाहते हैं।" वह यहां पर फ्रायड से सहमत होगा कि वह वहां पर भी विद्यमान है जहां कि स्त्री-पुरुष के संभोग के प्रति घृणा के विरुद्ध ज़ोरदार आपत्ति की जाती है। निस्संदेह यौन अवशिष्ट के बिना अधिकांश यूरोपीय साहित्य में कुछ नहीं रह जाता।

इसके बाद परेटो उन रीतियों पर विचार करता है जिन्हें कि मनुष्य अपने कार्यों के असली गुण के दिखाने, परिवर्तित करने तथा उनकी व्याख्या करने में प्रयुक्त करते हैं, अर्थात् भ्रांत तर्क (Derivation), चाहे वे तार्किक हों या परिष्कृत युक्तियां, चाहे उनकी स्थापनायें अनुभव के अनुरूप हों या नहीं, चाहे उनकी सामाजिक उपयोगिता हो या नहीं।

सामान्य मत के विरुद्ध, जोकि उन्हें भूल से तर्क-परीक्षणात्मक विज्ञान समझता है, वे हमारी तर्क करने की आवश्यकता की केवल अतर्क-परीक्षणात्मक अभिव्यक्तियां हैं और उनका महत्त्व सर्वथा गौण है। अवयवक्रम (Syllogism) के रूप में भ्रांत तर्क दुर्बलतम अंश को त्यागकर प्रायः ग़लत निष्कर्ष पर पहुंचते है। हमारा कार्य तर्कशास्त्री की भूल खोजने से कही अधिक है; हमारी दिलचस्पी इसमें है कि क्यों भूल को इतने अधिक लोगों द्वारा सत्य मान लिया जाता है। गौण उपविभाजनों को छोड़कर, भ्रांत तर्कों के (उन पैराग्राफों के साथ जिनमें कि उनका विश्लेषण किया गया है) निम्नवर्ग है

१ घोषणायें (Affirmations : १४२०–३३)।

२. अधिसत्ता (Authority : १४३४–६३)।

३. भावना या सिद्धातों से अनुरूपता (१४६४–१५४२)।

४. शब्द प्रमाण (Verbal proofs : १५४३–१६८६)।

वर्ग १ के भ्रांत तर्को से परेटो का तात्पर्य वे सरल घोषणाये या वक्तव्य है जो विज्ञान की भांति अनुभव के आधीन नहीं हैं, यद्यपि वास्तविक या काल्पनिक तथ्यों को भ्रात तर्क की उस पुष्टि मे उद्धृत किया जा सकता है। बिना स्वीकृति के ऐसे टैबुओं का कार्य आधुनिक समाज मे घट गया है। घोषणा की भाषा या यह तथ्य कि वह छापे के अक्षरों में प्रकाशित होती है, उसे अधिक स्वीकार्य बनाता है।

अधिसत्ता समझाती-बुझाती भी है और उसे एक सिद्ध प्रमाण भी स्वीकार किया जाता है, यद्यपि विशिष्ट क्षेत्र मे अधिकारियों या अधिसत्ताओ की योग्यता परीक्षण द्वारा पुष्ट हो सकती है, और नही भी। धर्म के प्रति संदेहशील व्यक्ति शराब के प्रभाव पर हीनतम अधिकारियो का मत स्वीकार कर सकते है। परपरा और प्रथा मे निहित भूतकाल की अधिसत्ता में अत्यत शक्ति है जिस प्रकार दैवी इच्छा (Divine Will) मे है; इसका जाचना भी असंभव है।

सामाजिकता के अवशिष्ट (Residues) उन भ्रात तर्को को शक्ति प्रदान करते है जो जनता की एकमतता को अपील करते है, यद्यपि इतिहास यह दर्शाता है कि बहुमत प्रायः ग़लत रहा है। इन भ्रांत तर्कों से मिलती हुई वे युक्तिया है जो परिकृष्त रूप से हमे यह समझाती है कि अन्यों के हित मे किया गया कार्य वस्तुत. हमारे ही हित मे है। बेंन्थम, कान्ट और अन्य दार्शनिकों के तर्कतः परस्पर-विरोधी अहंवादी (Egoistic) और परमार्थवादी (Altruistic) सिद्धांतों के समन्वय के प्रयास की कठोर आलोचना की गई है।

'ट्रैटो' की अंतिम जिल्द दो मे एक पूरे अध्याय मे "शब्दप्रमाण के प्रकार के भ्रांत तर्कों की अनंत जटिलताओं पर विचार किया गया है। ऐसे भ्रात तर्क प्रायः अन्य प्रकार के भ्रांत तर्कों से जुड़े रहते है और उनमें अनेक भिन्न अवशिष्ट अंतर्निहित हो सकते है। भूल का मुख्य स्रोत उन शब्दों का प्रयोग है जोकि चीज़ों से ठीक मेल नहीं खाता। इसलिये "स्वाधीनता" और "एकता" (Solidarity) शब्दों से जो अर्थ ग्रहण करना

करना चाहता है कर लेता है। या "सत्य", "सही", "वास्तविक" या वैज्ञानिक विशेषणों को "स्वाधीनता", "प्रेम," "धर्म," "विज्ञान", या "बिक्री कर" से पहले लगा दिया जाता है; ऐसे उदाहरणों मे सत्य का अर्थ आपकी भावनाओं से सहमति है, तथ्यों से नही। रूसो ने, जोकि तथ्यों के विषय मे असावधान था, आधुनिक समाज से जो कुछ वह नापसंद करता था उसे पृथक् कर दिया, और जो कुछ बाकी बचा उसे "प्रकृति" कहा। दर्जनो लेखको द्वारा प्रयुक्त रूपक और अलकारयुक्त युक्तियां परेटो के तीक्ष्ण विश्लेषण के लिये प्रचार-सामग्री प्रस्तुत करती है। ऐसी आलोचना तार्किक बेहूदगियो को स्पष्ट कर सकती है किंतु सामाजिक उपयोगिता को अछूता छोड सकती है, पौराणिक कथाये (Mythologies) वास्तविक नही है, किंतु वे उपयोगी हो सकती है।

'ट्रैटो' के पैराग्राफ १६८७–२०५९ मे अवशिष्टों और भ्रांत तर्कों के गुणों की लबी विवेचना है। वे एक निर्दिष्ट प्रकार के समाज का निर्माण करने मे किस प्रकार कार्य करते है? सामान्य मत भ्रात तर्कों को मानव क्रियाओं का कारण समझने की भूल करता है, जबकि परेटो ने सामाजिक घटनाओं के आदोलनो की व्याख्या को अवशिष्टों की परिवर्तित शक्ति मे देखा है और यह निर्देश किया है कि वर्ग १ के अवशिष्ट बहुत कम और बहुत धीरे बदलते है। वर्ग ५ के अवशिष्ट प्रायः बदलते है, किंतु कुछ अन्य उपप्रकार के भी पर्याप्त बदलते है। एक जनसमूह की सामाजिक स्थिति का सर्वोत्तम सूचक उसमे विभिन्न वर्ग के अवशिष्टो का अनुपात है। एक निर्दिष्ट समाज के अदर उस समाज के अनेक स्तरो मे अवशिष्ट भिन्न होते है, चूंकि वे पेशे, भौतिक वातावरण और सामाजिक वर्ग के अनुसार बदलते है और चूंकि वे तथ्य अवशिष्ट को प्रभावित करते है और वह उन्हे।

अर्तानिर्भरता के अन्य सबध अवशिष्टो की अन्य अवशिष्टो पर या भ्रात तर्कों की अवशिष्टो और अन्य भ्रान्त तर्कों पर हुई क्रिया है। भ्रांत तर्कों के अवशिष्टो पर भ्राततर्कों के प्रभाव को समाचारपत्रो से दर्शाया जाता है, क्योंकि उनकी युक्तिया अल्प और तार्किक रूप मे अच्छी नही होती, फिर भी वे भावनाओ को प्रभावित करती है, जब कि एक भ्रात तर्क का फैशन होता है, उसके समान अन्य भ्रात तर्क अनुकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न हो जाते है।

अवशिष्टो और भ्रात तर्कों के अतर्सबधों के अनंत उदाहरणों और रेखाचित्रों से हम केवल यह तीक्ष्ण निष्कर्ष सचित कर सकते है कि शक्तिशाली अवशिष्ट समाज के कल्याण के विरुद्ध नही हो सकते, अन्यथा वे जीवित ही न रह पाते इन अवशिष्टों और इन पर आधारित उपदेशो का तभी अच्छी तरह अनुसरण हो सकता है, यदि व्यक्तियों को यह विश्वास करा दिया जाय कि उनसे उनके ही सुख मे वृद्धि होगी। अतएव कोई भी समाज बिना किसी नैतिकता और बिना कुछ धर्म किये जीवित नही रह सकता। राजनीतिज्ञों के लिये एक सत्योक्ति के रूप मे परेटो ने यह प्रस्ताव रखा है: शाश्वत

न्याय की बात कीजिये, किंतु कार्य इस प्रकार कीजिये कि जैसे वह है ही नहीं। यह उपयोगी है कि लोग यह विश्वास करें कि उनके लिये देवता लड़ रहे हैं। यह विषय मैकियावेली का परिचय देता है, जिसके विषय में परेटो ने यह प्रश्न किया था जोकि अब साधारण बन गया है : क्या उसे केवल इसलिये अनैतिक कहेंगे कि उसने तथ्यों का ज़िक्र किया ?

(घ) अभिजात वर्ग (Elite), सामाजिक वर्ग और सामाजिक प्रगति

परेटो ने समाज में अभिजात वर्गों के संचार की तीक्ष्ण विवेचना प्रदान की है। यद्यपि समाज के रूप और सामाजिक संतुलन (Equilibrium) की विवेचना ने *Trattato* में अपेक्षतया थोड़ा ही स्थान घेरा है, फिर भी यह संपूर्ण रचना इसकी ओर उन्मुख है, और इसी संबंध में हमें परेटो के सामाजिक घटनाओं के 'चक्रीय गति के सिद्धांत' (Theory of cyclical movement) का सामना करना पड़ता है जोकि उसकी रचना का सबसे स्पष्ट समाजशास्त्रीय अंश है। इतिहास कुलीनतंत्रों का क़ब्रिस्तान है (पैरा २०५२) क्योंकि उच्च वर्ग में निकृष्टों या निम्नवर्ग में श्रेष्ठों के संचय से सामाजिक संतुलन में निरंतर व्याघात हो रहा है। विकासवाद तब अंतिम स्थिति पर पहुंचता है जब कि उच्चवर्गों के पास निम्नवर्गों पर शासन करने के अनुकूल अवशिष्ट नहीं रह जाते।

परेटो ने समाज के सामान्य रूप और उसमें अंतर्निहित सिद्धांतों के ऐतिहासिक दृष्टांतों की विवेचना से अपनी रचना का उपसंहार किया। समाज की स्थिति को संपूर्णता से निर्धारित करने के लिये भौतिक वातावरण को, अन्य समाजों की और विवेच्य समाजों की पिछली स्थितियों तथा आंतरिक कारकों के प्रभावों को, जिनमें कि केवल एक प्रभाव है, जानना आवश्यक होगा। ये और ऐसे ही कुछ अन्य वक्तव्य, जिन्हें कि परेटो ने इसी प्रकार जैसे हमने यहां दिया है, संक्षेप में दिये, वे यह दर्शाते है कि जब उसने किसी एक या केवल कुछ पहलुओं पर लिखा तब वह सामाजिक घटनाओं की जटिलता से अनभिज्ञ न था।

व्यक्ति समाज के विद्युत्कण (Molecules) है जिनमें कि अवशिष्टों द्वारा व्यक्त भावनायें विद्यमान है, जोकि स्वयं भ्रांत तर्कों मे व्यवत होती है। दुर्भाग्य से हमें केवल भ्रांततर्क ही ज्ञात हैं और वे भी अवशिष्टों के सर्वथा अनुरूप नही है।

कितने समाज हैं जोकि अपने निर्धारित लक्ष्य की दिशा मे बढ़ते है और भ्रात तर्कों से उपयोगिता का (जोकि हमारी प्रगति को मापती है) क्या संबंध है ? परेटो का कहना है कि कोई भी समाज अपने को तर्क द्वारा क़ायम नहीं रख सकता; उसके पास आवश्यक न्यासों का अभाव है। प्रत्येक भूतकालीन और वर्तमान समाज तर्क के बजाय शक्ति का प्रयोग करता है; समस्त देश शक्ति प्रयोग करनेवाले अल्पजनतंत्रों (Oligarchies) से शासित हैं। फ़ासिस्ट दर्शनशास्त्र के लिये इन सिद्धांतों की सुविधा स्पष्ट है। जब शासक वर्ग में शक्ति के प्रयोग करने की क्षमता या इच्छा नष्ट हो जाती है, तब यह उचित है कि शासित उसका उपयोग करे और सरकार उनके हाथों में चली जाय।

अनेक कारकों में से जो समाज के उस प्रकार को निर्धारित करते हैं जिन्हें कि परेटो सबसे महत्त्वपूर्ण समझता है और जिनकी ओर वह हमारा ध्यान आकृष्ट कर सकता है, वह दो वर्गों में समाज का विभाजन है : सट्टेबाज (*Speculators*) जिनकी आय अपरिवर्तनीय है और उनकी बुद्धिमत्ता पर निर्भर है, और किरायाखोर (*Rentiers*) जिनकी आय निश्चित या लगभग निश्चित है और अनुमान पर आश्रित नहीं है। पहले में वर्ग १ के अवशिष्टों की प्रबलता है, दूसरे में वर्ग २ के अवशिष्टों की। अब सबसे समृद्ध समाज वह है जिसमें कि सबसे महत्त्वपूर्ण अवशिष्ट इस अनुपात में मिलते हैं कि, जब वर्ग एक के अवशिष्ट राष्ट्र को नवप्रवर्तन की ओर ले जाने में और वर्ग २ के अवशिष्टों को नये सम्मिलनों से प्राप्त हो सकनेवाले समस्त लाभों को प्राप्त कराने में पर्याप्त सबल हैं। यह उचित है कि नेता सम्मिलन के अवशिष्टों में शक्तिशाली हों और अनुयायी संग्रहों के स्थायित्व के अवशिष्टों में।

नेता शक्ति के विभिन्न सम्मिलनों और विद्यमान भावनाओं और सामान्य प्रवृत्तियों के कुशल प्रयोग द्वारा अपनी सत्ता को क़ायम रखते हैं। स्वार्थों (आर्थिक) का व्याप्त होना, अभिजातवर्ग के संचार की तीव्रता जो शासकवर्ग में संपत्ति उत्पादन करनेवालों को लाती है, और उन व्यक्तियों को संपत्ति अर्जित करने के अवसर प्रदान कर जोकि शासकवर्ग के लिये ख़तरनाक सिद्ध हो सकते हैं, उन्हें इस वर्ग में भर्ती करना आधुनिक युग की विशेषता है। यदि ऐसी भर्ती न हो तो शक्ति के मुक्त प्रयोग के अभाव में, शीघ्र या विलंब से विद्रोह और वर्गों की उलट-पुलट होगी।

३. परेटो के सामाजिक विचारों का संक्षिप्त मूल्यांकन

परेटो के समाजशास्त्र के विषय में उठाई गई सभी व्यक्तिगत आपत्तियों में एक सर्वव्याप्त समालोचना अंतर्निहित है—यह विज्ञान नहीं है, इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता; परेटो ने अपने सिद्धांत को स्पेंसर या फ़्रेजर के ढंग पर अनंतरूप से दर्शाया है, किंतु दूसरा व्यक्ति उसकी सामान्य प्रणाली को स्वीकार कर भी अवशिष्टों (Residues) और भ्रांत तर्कों (Derivations) के सर्वथा भिन्न क्रम पर पहुंच सकता है। एक प्रदत्त व्यक्ति भ्रांत तर्क के पीछे परेटो से सर्वथा भिन्न अवशिष्ट खोज सकता है। और फिर भी इनमें से किसी को ग़लत सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह फ्रायडवादियों और उनके प्रतीकों, उनकी अंतर्निहित स्वप्न की अंतर्वस्तु की भांति निराशाजनक है। इसमें मूल प्रवृत्तिवादी (Instinctivist) सिद्धांतों की सामान्य कमियां हैं; वे मानव प्राणियों में कुछ मूलप्रवृत्तियां रख देते है और फिर जो कुछ उन्होंने उसमें रखा है उससे समस्त आचार की व्याख्या करते हैं। परेटो ने मानव आचार में एकरूपता पाने का दावा किया है; क्या यह उसे मिली या उसने स्वयं उन्हें बनाया और चुना है? संभवतः, जैसा कि हैंडमैन ने उपसंहार में कहा है, उसकी रचना "वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिये उस उत्कट उत्साह के कारण ही जिस पर कि वह नहीं पहुंच पाती और अपने से भिन्न अनेक पूर्व अवधारणाओं पर वह जो भीषण चोट करती है, उसके कारण ही इतनी स्मरणीय

और स्थायी है।" उसकी रचना की सामान्य धारणा का फलप्रद प्रभाव है; किंतु निश्चित रूप से इसने वह मार्ग दिखाया है जिस पर कि अभी चलना है, और हमारे मत में कभी भी उसके बहुत उपयोगी होने की संभावना नहीं है। हम परेटो की अपेक्षा वृहत् ऐतिहासिक सामान्यीकरणों के प्रति अधिक संदेहशील हैं; दिखावटी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से संतुष्ट होने के लिये कम तैयार हैं। हाल की समाजशास्त्रीय रचनाओं में यह किसी भी मस्तिष्क की एक सबसे प्रभावशाली उपज है, एक मार्गदर्शक बनने की अपेक्षा उसकी रचना के एक स्मारक बने रहने की अधिक संभावना है।

परेटो पर चुने हुए संदर्भ ग्रंथ

Barnes, H. E., and Becker, Howard, *Social Thought from Lore to Science* (2 vols. . Boston, 1938), II, 1013–23.

Borkenau, Franz, *Pareto*, New York, 1936.

Bousquet, G. H., *The Work of Pareto*, New York, 1936.

Handman, M. S., "The Sociological Method of Vilfredo Pareto," S.A. Rice, *Methods in Social Science—a Case Book* (Chicago, 1931), pp. 139–53 में

Henderson, Lawrence, *Pareto's Sociology . A Physiologist's Interpretation*, Cambridge, Mass., 1935.

Homans, G. C. and Curtis, C. P., *An Introduction to Pareto : His Sociology*, New York, 1934.

Pareto, Vilfredo, *Mind and Society*, Arthur Livingston, 4 vols, New York, 1935.

Sorokin, Pitrim, *Contemporary Sociological Theories*, New York, 1928, pp. 37–62.

लेख

Ascoli, Max, "Pareto's Sociology," *Social Research*, Vol. III (February, 1936).

Bongiorno, Andrew, "*A study of Pareto's Treatise of General Sociology*," *American Journal of Sociology*, XXXVI (November, 1930), 349–70.

Ginsberg, Morris, "Pareto's General Sociology," *Sociological Review*, Vol. XXVIII (July, 1936), 221–45.

टिप्पणियां

१. *Methods in Social Science—A Case Book*, ed. Stuart A. Rice (Chicago, 1931, p. 121.

अध्याय नौ

लियोनार्ड ट्रिलौनी हॉबहाउस : प्रजातंत्र और समाज-सुधार की सेवा में विकासवादी दर्शन

हैरी एल्मर बार्न्स

१. हॉबहाउस की रचनाओं और उसकी विचार-प्रणाली की सामान्य प्रकृति

क. हॉबहाउस और स्पेंसर

यह कुछ विचित्र-सा लगता है कि हरबर्ट स्पेंसर के देश ने उसके "समाजशास्त्र के सिद्धांत" की पहली जिल्दों के प्रकाशन के पश्चात् पांच दशकों में केवल एक ही ऐसा विद्वान् पैदा किया जिसकी रचनायें इस उच्चकोटि की थीं कि उसे इंगलैंड के महान् दार्शनिक और समाजशास्त्री का योग्य उत्तराधिकारी कहा जा सके।[1] यह लेखक प्रोफ़ेसर लियोनार्ड ट्रिलौनी हॉबहाउस (Leonard Trelawney Hobhouse १८६४–१९२९) था।[2] स्पेंसर की भांति हॉबहाउस ने भी अपनी समाजशास्त्रीय प्रणाली को विकासवाद (Evolution) के सामान्य दर्शन के एक अंश के रूप में विकसित किया। दोनों प्रणालियों में और भी अधिक समानतायें हैं, जैसे कि स्पेंसर ने विकासवादी प्रक्रिया को प्रगतिशील विभेदीकरण (Differentiation) और बेहतर समायोजन (Adjustment) की प्रक्रिया कल्पित किया था, और हॉबहाउस ने उसे सहसंबंध (Correlation) और समन्वय (Harmony) की वृद्धि के रूप में देखा, और दोनों ने ही समाज को एक सावयवी एकता (Organic Unity) माना। किंतु यहां पर उनकी समानता समाप्त हो जाती है। स्पेंसर यह मानता था कि विकासवाद का क्रम मानव के हस्तक्षेप की परवाह किये बिना स्वतः चलता रहता है। उसका विश्वास था कि इस हस्तक्षेप का अधिक से अधिक एक निष्क्रिय प्रभाव हो सकता है, और यह बहुत संभव है कि वह प्रक्रिया में बाधक है। इसके विपरीत, हॉबहाउस का दावा था कि, विकासवादी प्रक्रिया चाहे कितनी ही स्वतः कार्य करनेवाले कारकों पर निर्भर हो, जैसे कि जीवित रहने के लिये संघर्ष, सामाजिक विकासवाद अब अधिकाधिक मानवमन के चेतन नियंत्रण पर आश्रित हो गया है। हमारे युग से आगे, प्रगति मुख्यतः सामाजिक मन द्वारा सामाजिक प्रक्रिया के चेतन संचालन पर निर्भर होती है। पुनः, जबकि स्पेंसर के समाज की सावयवी प्रकृति की अवधारणा प्राणिशास्त्रीय सादृश्य (Biological analogy) के विस्तृत प्रयोग पर आधारित थी, हॉबहाउस ने पारिभाषिक प्राणिशास्त्रीय

शब्दों के प्रयोग का त्याग किया और उसने केवल सामाजिक जीवन की मूल एकता और अंतर्निर्भरता को ही निहित माना।

यद्यपि दोनों ही अंग्रेज़ी राजनीति में माने हुए उदारवादी (Liberals) थे, स्पेंसर का उदारवाद कौब्डन और ब्राइट के मध्य-विक्टोरियन व्यक्तिवादी छाप का था, जब कि हॉबहाउस एसक्विथ और लायड जार्ज के नये उदारवाद का समर्थक था, जिसमें इससे पहली अवधि के अधिकांश निर्हस्तक्षेपनीति (Laissez faire) के सिद्धांतों को त्याग दिया गया था। उदारवाद के इस आधुनिक पहलू की वृद्धि ने ही स्पेंसर को अपने अंतिम वर्षों में अनुदार दल (Conservative party) की नीतियों के पक्ष में अधिक आकृष्ट किया।[३]

इस प्रकार हम हॉबहाउस में एक ऐसे लेखक का रोचक मिश्रण पाते है जोकि सबसे पूर्ण और नये प्रकार के विकासवाद के दार्शनिक के दृष्टिकोण से समाज की समस्याओं पर विचार करता है और किसी भी देश में अपनी विद्वत्ता की गंभीरता और विस्तार में बेजोड़ है, तथा राजनीति में एक उदार-प्रजातंत्रवादी है। ऐसे लेखक में जिसमें समाज-शास्त्रीय चिंतन के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का मिश्रण हुआ है, हम उस देन का नमूना देख सकते हैं जोकि समाज और राज्य के सिद्धांत को समाजशास्त्री को देनी है।

(ख) हॉबहाउस के सामाजिक दर्शन का आधार

अब हम हॉबहाउस की सामान्य दार्शनिक प्रणाली की मुख्य स्थापनाओं पर, जिन्हें कि उसने सामाजिक घटनाओं की व्याख्या मे संगत रूप से प्रयोग किया, संक्षेप में ध्यान दे सकते है।

सर्वप्रथम हॉबहाउस ने यह पूर्ववयव (Premise) रखा है कि किसी भी सत्य विचार-प्रणाली को सबसे नूतन वैज्ञानिक प्रयासों की पद्धतियों और खोजों पर टिका होना चाहिये। इसकी सत्यता की वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार अनुभव द्वारा परीक्षा कर जांच होनी चाहिये। चूंकि विकासवाद समस्त आधुनिक विज्ञान का आधार है, इसलिये तर्कतः इसे किसी भी आधुनिक सामाजिक विचार-प्रणाली का आधारशिला माना जा सकता है। अतः एक दार्शनिक के रूप में हॉबहाउस को एक विकासवादी और एक अनुभववादी (Empiricist) कहा जा सकता है। इन बातों पर अपनी स्थिति को उसने निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है: "इस बीच में मुझे यह विश्वास हो गया था कि जिस दर्शनशास्त्र में कल्पनात्मक (Speculative) अभिरुचि से अधिक अभिरुचि हो सकती है उसे विज्ञान द्वारा व्याख्या किये गये अनुभव के संश्लेषण (Synthesis) पर आधारित होना चाहिये, और यह कि विकासवाद की सामान्य अवधारणा ऐसे संश्लेषण की कुंजी प्रदान करती है।"[४]

मानवप्रगति पर विकासवादी सिद्धांत के लागू करने पर जो परस्परविरोध प्रकट होते हैं, जिनका हक्स्ले ने उल्लेखनीय रूप से निर्देश किया है, उनका कारण विकास-वाद के कट्टर व्याख्याताओं और छद्म-डार्विनवादी लेखकों द्वारा समस्त मानसिक

और सामाजिक प्रक्रियाओं की एक समान स्तर पर व्याख्या करने और प्राणिशास्त्रीय सामाजिक प्रक्रियाओं के बीच वास्तविक प्रकार की भिन्नताओं की उपेक्षा या उससे इन्कार करने के प्रयास थे। इस कठिनाई का असली हल इसके वास्तविक मार्ग को जानने के लिये मानसिक और सामाजिक विकासवाद का निष्पक्ष और शांत अध्ययन है।[५]

मनुष्य से पहले, पशुजगत् और आदिकालीन मनुष्यों में भी विकासवाद की प्रक्रिया अपने विकास में मुख्यतः स्वचालित (Automatic) रही होगी। किंतु धीरे-धीरे भौतिक कारकों पर मन का चेतन नियंत्रण बढ़ता गया, और मानवता के विकास की एक विशेष अवस्था में समस्त प्रक्रिया अपने भावी मार्ग के लिये मुख्यतः समाज के सामूहिक मन के बुद्धिसंगत (Rational) नियंत्रण पर निर्भर हो जाती है। इसलिये मानव प्रगति को न तो अवश्यंभावी और न ही स्वचालित कल्पित किया जा सकता है। विकासवाद में तब तक जीवित रहने के लिये संघर्ष और प्राकृतिक चुनाव का प्रभुत्व रहा जब तक कि मानव मस्तिष्क का विकास भौतिक बाधाओं पर नियंत्रण पाने के लिये पर्याप्त मानसिक सुविधायें और क्षतिपूर्तियां न उत्पन्न कर सका।

जब तक ये मानसिक सुविधायें दुर्बल शारीरिक शक्ति की कमी को पूरा करने के लिए पर्याप्त न थीं, एक अधिक ताकतवर और पाशविक सभ्यता एक अधिक सुसंस्कृत सभ्यता का सफ़ाया कर सकती थी। यह ख़तरा केवल तभी दूर हो सका जबकि मानसिक विकासवाद उस अवस्था पर पहुंच गया जबकि वह मानव जीवन की समस्त महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं पर नियंत्रण कर सके : "अब मुझे ऐसा लगा कि बिल्कुल इसी रीति से आधुनिक सभ्यता ने अपनी मुख्य प्रगति की है, कि यद्यपि विज्ञान जीवन की भौतिक अवस्थाओं का नियंत्रण प्रारंभ कर रहा हो, और आचार और धर्म के पहलुओं में यह उस प्रजातीय एकता और मानव विकास की सामान्य आवश्यकताओं के लिये जो अपेक्षित नियंत्रण की शर्तें हैं, प्रजाति की एकता और क़ानून, नैतिकता और सामाजिक संविधानों की एकता के विचारों का निर्माण कर रहा है।"[६]

लेस्टर एफ० वार्ड की समाजशास्त्र को देन से इस थीसिस की समानता स्पष्ट है, किंतु वार्ड से अनेक बातों में भिन्न मत होने और अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों द्वारा जिनमें कि विस्तार से उसने अपने मत का प्रतिपादन किया, हॉबहाउस की मौलिकता सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त, वार्ड की अपेक्षा हॉबहाउस के लिये सामाजिक और सांस्कृतिक विकासवाद के न्यासों पर कहीं अधिक अधिकार ने उसे अधिक निश्चितता और अधिकार के साथ कुछ कहना संभव बनाया।

इस प्रकार हॉबहाउस के अनुसार विकासवाद को चेतना और आत्म-चेतना के विकास की अवस्थाओं के रूप में और उसके परिणामस्वरूप जीवन की परिस्थितियों पर मन के नियंत्रण में देखा जा सकता है।[७] हॉबहाउस ने हीगल से इस मत की व्यापक समानता को स्वीकार किया है और यह माना है कि वह हीगल की आध्यात्मिक (Metaphysical) विक्षिप्तताओं और उसके इस दावे को कि वास्तविकता सर्वथा

आध्यात्मिक है, त्यागते हुए भी उसके द्वारा प्रस्तुत सत्य के अंश को स्वीकार करता है। ' तब फिर, उसकी प्रणाली को स्पेंसर और हीगल की प्रणालियों के मूल्यवान् अंशों को समन्वित (Harmonize) करने का प्रयास, दूसरे शब्दों मे विकासवादी भौतिकवाद और तत्वज्ञानीय अध्यात्मवाद (Metaphysical idealism) के बीच वैज्ञानिक समझौते का प्रयास माना जा सकता है। वास्तविकता को विशुद्ध यांत्रिक और भौतिकवादी प्रणाली से समझाने के स्पेंसर के प्रयास और आध्यात्मिक वास्तविकता पर हीगल के आग्रह को अस्वीकार किया गया, जबकि स्पेंसर की सश्लेषण (Synthesis) रूप मे विकास की अवधारणा को हीगल के चेतना और लक्ष्य के विकास के मत से मिलाकर मानवप्रगति का एक महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है।

यदि जीवन की अवस्थाओ पर चेतन नियत्रण की वृद्धि विकासवादी प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है, तब अन्वेषण मे किसी वैज्ञानिक अभिरुचि या सत्यता के लिये चेतना की इस वृद्धि को मापने की एक पद्धति की व्यवस्था होनी चाहिये। हॉबहाउस ने इस माप के मान को सहसबंध (Correlation) के सिद्धात में खोजा है : 'मैने अपने अनुभव के विभिन्न भागों के बीच या विभिन्न क्रियाओं और उद्देश्यो के बीच चेतना मे हुए सहसंबध को वर्गीकरण का आधार माना है—सहसंबध द्वारा ही मन व्यवस्था लाता है और नियंत्रण स्थापित करता है।" ' सहसंबंध का सिद्धात विशेष-रूप से उपयोगी है, चूंकि यह निम्न सावयवों की प्राथमिक मानसिक स्थितियो को और साथ ही मनुष्य की उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं, सामाजिक संरचना के उद्विकास और सभ्यता की प्रगति को मापने के काम आयेगा। मानसिक विस्तार की वृद्धि और नियत्रण तथा मानव-सस्कृति के विकास के बीच एक व्यापक सहसंबध है, जोकि पुनः एक स्वस्थ समाजशास्त्रीय आचारशास्त्र का विकासवादी आधार जुटाता है।

सहसंबंध को केद्रीय विषय मानकर मापी हुई चेतना की वृद्धि को और इस प्रकार विकासवाद की अवधारणा के दार्शनिक विश्लेषण द्वारा विकासवादी प्रक्रिया के विस्तृत आगमनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप, हॉबहाउस विकासवाद की एक सोद्देश्य प्रक्रिया के रूप मे ग्रहण करने को प्रेरित हुआ . "यहां इसे एक सुदृढ़ कामचलाऊ पूर्व-कल्पना (Hypothesis) के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है कि विकासवादी प्रक्रिया को सीमित अवस्थाओं के अतर्गत, जिन्हें कि वह क्रमशः अपने नियंत्रण में लाती है, धीरे-धीरे कार्य करनेवाले उद्देश्य का प्रभाव समझा जा सकता है।" [10]

पहलेपहल विकासवादी प्रक्रिया के प्रयोजनमूलक (Teleological) दृष्टिकोण के विरुद्ध होते हुए भी हॉबहाउस अपने विस्तृत अनुभवात्मक अध्ययनो द्वारा इस निष्कर्ष को स्वीकार करने को बाध्य हुआ। इस प्रकार प्रकट हुए सोद्देश्य तत्व को संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है : "यांत्रिक अवस्थाओं के अंतर्गत, जिन पर कि वह क्रमशः अधिकार पा लेता है, मन द्वारा नियंत्रण के विस्तार से सावयवी समन्वय (Harmony) का विकास....." उच्चतर सावयवों में नये सहसंबंधों के स्थापित करने का कार्य

और इसलिये विशेष रूप से सावयव को एक उच्चतर संश्लेषण के अनुकूल बनाने का कार्य मन की और विशेषकर मन के कृत्यों को उस एकता की क्रिया है जोकि चेतना का निर्माण करते हैं। यदि प्रारंभ से ही नहीं, फिर भी समन्वय की वृद्धि मन की वृद्धि के समरूप बन जाती है।" [१२]

समन्वय के इस जीवंत सिद्धांत की, जोकि सावभौम उद्देश्य को प्रकट करता है, उसने संक्षेप में यह परिभाषा की है : "संपूर्ण के दो या अधिक तत्वों के बीच पारस्परिक सहयोग।" [१३] अतः एक समन्वित प्रणाली वह है, जिसमें कि पृथक् अंग संगति और सहयोग से कार्य करते हैं। प्रगति को संपूण के भागों में वर्धमान एकीकरण और सहसंबंध द्वारा प्रदर्शित समन्वय का उद्विकास माना जा सकता है। जैसे कि मॉरिस गिसवर्ग ने इसे रखा है, हॉबहाउस ने विकास को "मूलतः संघर्षरत तत्वो की मुक्ति द्वारा संश्लेषणों की शृंखला द्वारा समन्वय के विस्तार में और विभिन्न अंशों में नमनीय, विस्तृत और संगत संरचनाओं के निर्माण में" कल्पित किया है।

इस समन्वयात्मक रूप से संगठित प्रणाली के विकास में, जोकि विकासवादी प्रक्रिया का सार है, तर्क (Reason) एक प्रमुख भाग अदा करता है। इस प्रकार हॉबहाउस ने आज के कुछ मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र की बुद्धिवाद-विरोधो धारणा के विरुद्ध अपना मत स्थिर किया है। वह कहता है :

"तर्क अनुभव में व्याप्त समन्वय और इसे एक संपूर्ण सावयव में क्रियान्वित करने का सिद्धात है; इस प्रकार ग्रहण करने पर, तर्क मन में इसलिये सर्वोच्च है कि यह अनुभव के प्रत्येक तत्व मे व्याप्त है, यह प्रत्येक अनुभूति और विचार को आपस में जोड़ता है, प्रत्येक सुझाव और प्रत्येक सहजप्रवृत्ति पर निष्पक्षता से विचार करता है, और उन सबसे एक ऐसा तानाबाना बनाता है जोकि कभी नष्ट नहीं होता बल्कि सदैव नमनीय और ग्रहणशील रहता है। यह समन्वय की उस सहज प्रवृत्ति की चेतन अभिव्यक्ति है जोकि मन के संपूर्ण उद्विकास पर हावी है, और प्रक्रिया की तर्कसंगतता इसकी अंतिम सफलता की सबसे बड़ी गारंटी है।" [१४]

हालांकि हॉबहाउस ने विकासवादी प्रक्रिया के सबसे जीवंत पहलू के रूप में मानसिक विकास पर ज़ोर दिया है, किंतु वह अध्यात्मवादी अद्वैतवाद (Monism) का कोई समर्थन नही करता। वह केवल यही मानता है कि जैसे-जैसे विकासवाद आगे बढ़ता है मानसिक तत्व अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है : "वास्तविकता की संरचना और गति मे एक एकीकृत आध्यात्मिक तत्व है, और विकासवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह सिद्धांत अपने को उन अवशिष्ट अवस्थाओं का स्वामी बना लेता है जोकि पहले तो इसके जीवन पर शासन करती है और इसके प्रयत्नों को विफल करती है।" [१५] यदि इसे स्पष्टरूप से कहें, तो मन वास्तविकता के अंतर्गत व्यवस्थित वृद्धि का सिद्धांत प्रदान करता है।

प्रोफ़ेसर हॉबहाउस ने अपनी विचारप्रणाली को पहले चार वृहत् और विद्वत्तापूर्ण रचनाओं में विकसित किया जिन्हें तैयार करने में छब्बीस वर्ष लगे। उसकी प्रणाली के विकास में ये क्रमिक अवस्थाओं का निर्माण करते हैं। विचारों की उचित प्रणाली की रचना के लिये अपेक्षित आधारशिलायें और पूर्वकल्पनायें १८९६ में प्रकाशित 'ज्ञान के सिद्धांत'—*The Theory of Knowledge* में प्रस्तुत की गई। पशु-चेतना के विकासवाद और मानव-मनोवृत्ति में संक्रमण को १९०१ में प्रकाशित 'विकासवाद में मन'—*Mind in Evolution* में प्रतिपादित किया गया। मानव और सामाजिक चेतना के विकासवाद का १९०६ में प्रथम बार प्रकाशित 'विकासवाद में नैतिकता'—*Morals in Evolution* में विस्तार से विश्लेषण किया गया।[१६] अंत में *Mind in Evolution* और *Morals in Evolution* में किये गये अनुभवात्मक अध्ययनों को १९१३ में प्रकाशित 'विकास और उद्देश्य'—*Development and Purpose* में विकासवाद की प्रक्रिया में अंतर्हित दार्शनिक दृष्टिकोण से समन्वित किया गया इस ग्रंथ में विकासवाद की प्रक्रिया को एक सोद्देश्य विकास के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अपने को मानसिक प्रक्रियाओं और सामाजिक संबंधों की समन्वित और तर्कसंगत प्रणाली में क्रियान्वित करने में व्यक्त होती है।

"मौरेल्स इन इवोल्यूशन" को छोड़कर, प्रस्तुत लेखक किसी भी प्रकार इनमें से अन्य किन्हीं भी ग्रंथों पर योग्य प्रामाणिक निर्णय देने का दावा नहीं कर सकता, बहुसंख्यक विशेषज्ञों द्वारा, जिनकी समीक्षाओं की सहायता ली गई है, उनकी श्रेष्ठता की प्राय एकमत प्रशंसा, और साथ ही उनका विस्तृत-क्षेत्र हॉबहाउस को आधुनिक समाज शास्त्रियों में एक रचनात्मक दार्शनिक के रूप में सर्वोच्च स्थान देने लगते हैं। निःसंदेह एक क्रमबद्ध समाजशास्त्री के रूप में अब उसका दर्जा कहीं अधिक नीचा होगा। मौरिस गिर्सबर्ग ने *Encyclopaedia of the Social Sciences* में हॉबहाउस पर अपने लेख में निम्न श्रद्धांजलि अर्पित की है :

"हॉबहाउस की रचनाओं का विस्तार विश्वकोषीय था। वह तुलनात्मक मनोविज्ञान के अग्रणियों में से एक था; उसने मानवशास्त्र के विस्तृत और अराजक न्यास को प्रयोग में लाने की प्रविधि विकसित की; उसने वैज्ञानिक समाजशास्त्र की नींव रखी आचारशास्त्र और सामाजिक दर्शन में उसने तर्कवाद की सूक्ष्म और फलप्रद पुर्नव्याख्या की है; और उसने इस पैमाने पर वैज्ञानिक और दार्शनिक अध्ययनों के संश्लेषण का प्रयास किया जिससे कि उसे संसार के क्रमबद्ध विचारकों में एक ऊंचा स्थान मिलना चाहिये।" हॉबहाउस ने अपने सामाजिक दर्शन को चार संक्षिप्त पुस्तकों में दुबारा लिखा, संक्षिप्त किया और स्पष्ट किया, वे हैं, "राज्य का आध्यात्मिक सिद्धांत"—*The Metaphysical Theory of State* (१९१८), 'तर्कसंगत भलाई'—*The Rational Good* (१९२१), 'सामाजिक न्याय' के तत्त्व' *Elements of Social Justice* (१९२१

और 'सामाजिक विकास : उसकी प्रकृति और अवस्थायें'—*Social Development : Its Nature and Conditions* (१९२४)।

'दि मिटाफिजीकल थियरी आफ दि स्टेट' मुख्यतः युद्ध की उपज थी और वह हीगल और जर्मन अध्यात्मवादी दार्शनिकों की राजनैतिक रचनाओं में व्यक्त राजनैतिक सर्वशक्तिमत्ता और शक्तिप्रधान राजनीति (*Realpolitik*) की धारणा के प्रति हॉबहाउस की घृणा को दर्शाती है। इसकी तुलना जर्मन-दर्शन और राजनीति पर जान डयूई की पुस्तक से की जा सकती है। यह एक सुधारक के रूप में मूल्यवान् है, किंतु वैसे वह हॉबहाउस की रचनाओं में सबसे कम शांत और दार्शनिक है।

'दि रैशनल गुड' हॉबहाउस की रचनाओं में उस बुनियादी मूल विषय का विस्तार है, कि सच्ची सामाजिक भलाई में समाज में समन्वय, एकीकरण और समायोजन की विजय निहित है। समन्वय का सिद्धांत हॉबहाउस की सामाजिक आचारशास्त्र की प्रणाली की कुंजी है। *The Elements of Social Justice* में इसी धारणा को दोहराया गया है और इसमें हॉबहाउस के सामाजिक आचारशास्त्र के सिद्धांत को ऐसे व्यावहारिक क्षेत्रों मे क्रियान्वित किया गया है, जैसे कि अधिकार और कर्त्तव्य, स्वतंत्रता और स्वाधीनता, न्याय, जायदाद, संपत्ति का पुनर्विभाजन और प्रजातंत्र को व्यवहार में लाना। *Social Development* मानसिक और सामाजिक विकास के माप के रूप में हॉबहाउस के सहसंबंध के सिद्धांत की अवधारणा का अंतिम वक्तव्य है। इसे इस पुस्तक में समाज के सावयवी सिद्धांत की युक्तियुक्त व्याख्या द्वारा ज़ोर दी गई समन्वय और समायोजन की धारणा के साथ मिला दिया गया है। यह पुस्तक हॉबहाउस के सामाजिक दर्शन का संक्षिप्त विश्लेषण है जिसमें उसके विकासवाद के बुनियादी मत को, सामाजिक आचार की उसकी व्याख्या के साथ संयुक्त किया गया है। वह इस विषय को ऐसे समाप्त करता है कि कहां तक समाजविज्ञान, सामाजिक न्याय सामान्य कल्याण के मार्गदर्शन के लिये सामाजिक नियम प्रस्तुत कर सकते हैं।

यद्यपि हॉबहाउस के सामाजिक विचारों का विद्यार्थी इन पुस्तकों की उपेक्षा नहीं कर सकता, ये पिछली रचनाओं में अधिकांश इस विषयों के अधिक पूर्ण और समृद्ध विवेचन का स्थान नहीं ले सकतीं।

हॉबहाउस की रचनाओं के किसी सर्वेक्षण में उसकी अंतिम कृति, जो उसकी मृत्यु से कुछ ही पहले लिखी गई थी, "ईसाइयत" पर *Encyclopaedia of Social Sciences* में उसके लेख को भी अवश्य सम्मिलित करना चाहिये। यह तर्कवादी दृष्टिकोण से ईसाइयत की एक सबसे योग्य सहानुभूतिपूर्ण व्याख्या है। हॉबहाउस ने ईसाइयत के सार को सामाजिक आचार के आधार के रूप में अपने समन्वय और समायोजन से मिलता हुआ पाया। उसने उपसंहार में लिखा कि ईसाइयत की सामाजिक शिक्षाओं के सार को "किसी भी ऐसी चीज़ में जज़्ब करना चाहिये जोकि अपने को समाज का तर्कसंगत पुनर्संगठन कह सके।"

(ग) हॉबहाउस के सामाजिक दर्शन की सामान्य प्रकृति

सामाजिक प्रक्रिया की व्याख्या के साधन के रूप में हॉबहाउस ने अपने सामान्य विकासवादी सिद्धांतों को अपनी सामाजिक प्रणाली में निरंतर स्थान दिया। उसके सिद्धांतों का संक्षेप उसकी छोटी विचारोत्तेजक पुस्तक *Social Evolution and Political Theory* मे मिलता है, जिसका कि स्पेंसर की *Study of Sociology* से वही संबंध कहा जा सकता है जोकि विकासवाद के दर्शन पर हॉबहाउस के ग्रंथों का *Synthetic Philosophy* से है। *Social Evolution and Political Theory* मे हॉबहाउस की विकासवादी प्रणाली से संबंधित रचनाओं और राजनैतिक सिद्धांत पर अन्य दो कृतियों *Democracy and Reaction* और *Liberalism* मे विकसित समाज-शास्त्र सामान्यीकरणों का संक्षेप है।

पहले तो, जहां तक समाजशास्त्र के सामान्य क्षेत्र का संबंध है, हॉबहाउस का मत है कि इसे मुख्यतः मानवप्रगति का विज्ञान माना जा सकता है। वह कहता है :

"दार्शनिक विश्लेषण द्वारा मानव प्रगति की न्यायोचित अवधारणा की रचना, इतिहास के प्रवाह में अपनी बहुल-जटिलता में इस प्रगति को ढूंढ़ना, सावधानीपूर्ण वर्गीकरण और खोजपूर्ण तुलनाओं द्वारा इसकी वास्तविकता की परीक्षा, इसकी अवस्थाओं की जांच, और यदि संभव हो तो इसके भविष्य की पूर्वोक्ति करना—यह व्यापक समस्या है जिसकी ओर समस्त समाजशास्त्रीय विज्ञान को बढना चाहिये और जिसके समाधान पर अंततः तर्कसंगत समाजशास्त्रीय प्रयास निर्भर है।" [१७]

सामाजिक प्रक्रिया का बुनियादी तत्व और साथ ही सामाजिक विकासवाद का मुख्य विषय मानव-प्रेरणाओं की अंतःक्रीड़ा और और मानव-प्राणियो की अंतर्क्रिया सामाजिक जीवन का आधारभूत तथ्य है, और इसमे भाग लेनेवाले व्यक्तियों पर यह जो प्रभाव छोड़ती है वह सामाजिक विकासवाद का आधारभूत तथ्य है।" [१८]

सामाजिक प्रगति, जो समाजशास्त्रीय अध्ययन का प्रमुख लक्ष्य है, सामाजिक विकासवाद के ठीक समान नही है। दूसरा शब्द अधिक व्यापक है और उसमे पीछे जाना और आगे बढ़ना दोनों सम्मिलित हो सकते है : "विकासवाद से मेरा तात्पर्य किसी भी प्रकार की वृद्धि है; जबकि सामाजिक प्रवृत्ति से है सामाजिक जीवन की उन गुणों मे वृद्धि जिन्हें कि मानवप्राणी बुद्धिमत्तापूर्वक महत्त्व देते है या दे सकते है।" [१९] न ही सामाजिक प्रगति मुख्यतः प्राणिशास्त्रीय कारकों पर निर्भर है, यह एक सांस्कृतिक मद है और मुख्यतः मनोवैज्ञानिक और सामाजिक शक्तियों का परिणाम है।

"यह कहना पड़ेगा, कि जहां कही भी सामाजिक परपरा का कारण कार्य करता है और जहां तक कि उसका प्रभाव विस्तृत होता है वहां प्रगति है। हम यह अनुमान कर सकते है कि जब प्रजाति अपेक्षतया स्थिर रही है, समाज तेजी से विकसित हुआ है, और हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिये, चाहे यह अच्छा हो या बुरा, कि सामाजिक परि-

वर्तन मुख्यतः नस्ली प्ररूप के परिवर्तन से नहीं, बल्कि सामान्य कारणों की अंतर्क्रियाओं द्वारा परंपराओं के संशोधन से होते है। प्रगति नस्ली नही, बल्कि सामाजिक है।" [२०]

"जहा तक कि सुप्रजनन (Eugenic) सिद्धांत प्राकृतिक के स्थान पर बुद्धि-संगत चुनाव का समर्थन करता है, वहां तक अमूर्त रूप मे वह ठोस आधार पर है। जहां यह स्पष्टतः सिद्ध किया जा सकता है कि एक नस्ली स्कंध (Stock) आनुवंशिक दोष से इतना अधिक दूषित है कि उससे उसके गुण दब जाते है, तो वहां यह उचित है कि वह अंश न क़ायम रहे··दूसरी ओर, जीवित रहने के लिये संघर्ष के स्थान पर व्यवस्थित सामाजिक सहयोग के उद्देश्य से बनाये गये कानून के विरुद्ध सुप्रजनन-शास्त्रीय युक्तियों का प्रयोग इस सिद्धांत का दुरुपयोग है। यह नये रूप और एक नई शब्दावली के अंतर्गत प्राकृतिक चुनाव के पुराने विचारों के अवशेष पर निर्भर है।" [२१]

अंतिम विश्लेपण मे, हॉबहाउस ने सामाजिक प्रगति को समाज से मानव के विभिन्न प्रकार के सामाजिक सगठनों मे परस्पर और समग्ररूप से समाज की उसके वातावरण के साथ समन्वित समायोजन की वृद्धि माना है : "मानव-प्राणियो मे सामाजिक प्रगति को सम्मिलन, व्यवस्था, सहयोग, समन्वय के सिद्धांत का विकास माना जाता है।" [२२] जिस आदर्श समाज की ओर सामाजिक प्रगति को ले जाना चाहिये, वह है जिसमें कि यह समन्वय विद्यमान है . "आदर्श समाज को समग्ररूप मे कल्पित किया गया है जोकि अपने अंगो की समन्वित वृद्धि से जीवित रहता और फलता-फूलता है, इनमे से प्रत्येक अंग अपनी रीति पर और अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित हो समग्ररूप से अन्यों के विकास को सहारा देता है।" [२३]

समाज मे इस समन्वित समायोजन की वृद्धि, जोकि सामाजिक प्रगति का सार है, एकमात्र स्वतः कार्य करनेवाले कारको का परिणाम नही है; इसे संकल्प और बुद्धि की चेतनक्रिया द्वारा ही पूर्णतः प्राप्त किया जा सकता है; किंतु जैसा कि पहले ही सकेत किया जा चुका है अपने सपूर्ण अर्थ मे समन्वय ऐसी चीज़ है जो अपने आप नहीं हो जाता बल्कि वह अल्पाधिक अश में प्रयत्न द्वारा, अर्थात् बुद्धि और संकल्प द्वारा प्राप्त किया जाता है।" [२४] इस प्रकार जीवन की अवस्थाओ पर बुद्धिसंगत सामाजिक नियंत्रण की वृद्धि को सामाजिक प्रगति की कसौटी समझा जा सकता है : "इसलिये हम सामाजिक मन की वृद्धि और जीवन की अवस्थाओ पर उसके नियत्रण को प्रगति का माप मान सकते है।" [२५]

सभ्यता की आधुनिक अवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह अब उस बिंदु पर पहुंच गई है जहां कि सामाजिक मन जीवन की वाह्य परिस्थितियों पर नियंत्रण पा चुका है : "हमारे काल की विशिष्ट विशेषतायें है कि पहली बार सभ्यता की प्रभुता है, कि जीवन की भौतिक परिस्थितियां तेज़ी से अधिकाधिक मानव-नियंत्रण के अंतर्गत आ रही हैं, और कम-से-कम एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की नींव रखी जा सकी है जिसमें कि स्थायी और अविच्छिन्न विकास संभव होगा।" [२६]

(घ) हॉबहाउस की राजनैतिक रचनाओं का स्वरूप

प्रोफ़ेसर हॉबहाउस की राजनैतिक रचनायें, जिनके प्रमुख निष्कर्ष *Social Evolution and Political Theory* में दिये गये हैं, मुख्यतः तीन हैं : *Democracy and Reaction* (१९०५), *Liberalism* (१९१२) और *The Metaphysical theory of the State* (१९१८)। इनमें से पहली दो पुस्तकों में मुख्यतः अंग्रेज़ी उदारवादी सिद्धांतों और अल्पअंश में प्रजातंत्र के सामान्य समाजशास्त्रीय मूलाधारों की व्याख्या है। *Democracy and Reaction* में, जोकि इन तीनों पुस्तकों में से सबसे अधिक जोशीली है, मुख्यतः उन उदारवादी और समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का स्पष्टीकरण करती है जो राष्ट्रवादी साम्राज्यवाद और इस सिद्धांत के विरुद्ध हैं कि जीवित रहने के लिये भौतिक संघर्ष से प्रगति आती है। साम्राज्यवाद और राष्ट्रीय अहंवाद के विरुद्ध यह एक तीक्ष्ण अभियोग है और यह जोसेफ़ चैबरलेन के साम्राज्यवादी संघवादियों (Unionists) के विरोध में लिखी गई थी। हॉबहाउस का विश्वास था कि यह दल इंलैंड को उन सब सामाजिक लाभों से वंचित कर रहा है जोकि उसने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्राप्त किये थे। *Liberalism* कम कटु है और यह ब्रिटिश उदारवादी नीति की वृद्धि और परिवर्तनों की संक्षिप्त ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक व्याख्या के रूप में किसी भी अन्य पुस्तक की तुलना में बेजोड़ है।[२७]

हॉबहाउस के राजनैतिक सिद्धांत स्पष्टतः उन अवस्थाओं को प्रतिबिंबित करते हैं जिनके अंतर्गत वे लिखे गये थे। वे हैं : (१) विकासवाद के प्राणिशास्त्रीय कारकों की भ्रांत व्याख्या पर आधारित प्रबल बुद्धिवाद का विरोध, जिसने कि प्राकृतिक चुनाव में भाग्यवादी विश्वास उत्पन्न किया; (२) साम्राज्यवादी कार्यक्रम जिसे कि उसने इस सिद्धांत की एक शाखा बतलाया; (३) समकालीन समाजों में बहुप्रचलित सामाजिक सुधार के समस्त एकांगी और जल्दबाज़ी के प्रयास; और (४) एक निरंकुश राज्य की अध्यात्मशास्त्रीय पूजा के विरुद्ध प्रतिक्रिया।

२. सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांत को विशिष्ट देनें

(क) सामान्य अवधारणायें और परिभाषा

समाजशास्त्र से राजनीतिविज्ञान के संबंध के प्रश्न की विवेचना करते हुए हॉबहाउस ने यह बताया कि राजनीतिविज्ञान एक वह विशेष ज्ञान है जो सामान्य समाजशास्त्र की बुनियादी पद्धति से निकला है, अर्थात्, वह विशेष ज्ञान जो समाज के अंतर्गत राजनैतिक संगठन के रूप मे राज्य का अध्ययन करता है। राजनैतिक दर्शन का पुराना शास्त्र, जो अरस्तू से बेंथम तक प्रचलित था, इन दोनों से अधिक व्यापक था। इसमें मोटे तौर से अब जिसे समाजशास्त्र कहा जाता है, और साथ ही राजनैतिक विज्ञान तथा नैतिक दर्शन सम्मिलित थे।[२८]

बाह्यरूप से हॉबहाउस समाजशास्त्र को न तो समाज का एक बुनियादी या मूलतत्वीय विज्ञान समझता है, जैसा कि प्रोफ़ेसर गिडिंग्स का मत था, न ही वह उसे संश्ले-

षणात्मक सामाजिक विज्ञान समझता है, जैसा कि प्रोफ़ेसर स्मॉल का मत था। इसके बजाय वह इसे सामाजिक समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण की एक व्यापक पद्धति समझता है। यह दृष्टिकोण प्रोफ़ेसर दुरखीम के दृष्टिकोण से बहुत मिलता है। यह उसे केवल एक पद्धति ही नहीं मानता बल्कि यह मानता है कि इसका क्षेत्र मुख्यत: इसकी पद्धति से निर्धारित होता है। इस विषय पर वह कहता है :

"उचित रूप से विचार करने पर सामान्य समाजशास्त्र न तो अपने आपमें संपूर्ण और विशेषीकरण के प्रारंभ होने से पहले का पृथक् विज्ञान है, न ही यह समाजविज्ञानों का संश्लेषणमात्र है जिसमें कि उसके निष्कर्षों को यंत्रवत् एक दूसरे के निकट रख दिया गया है। इसके बजाय यह एक शक्तिदायक सिद्धांत है जो समस्त सामाजिक अन्वेषण में व्याप्त है, उसे पुष्ट करता है और पुन: उससे पुष्ट होता है, खोज को उद्दीप्त करता है, निष्कर्षो मे संशोधन करता है, संपूर्ण के जीवन को अंगों में प्रदर्शित कर और अगों के अध्ययन से संपूर्ण को पूर्णत: हृदयंगम करने के लिये पुन: लौटता है।" [२९] समाजशास्त्र की विषय-वस्तु की उसकी अवधारणा जिसमें कि विस्तृततम पहलुओं में मुख्यत: सामाजिक प्रगति का अध्ययन निहित है, की ओर पहले ही ऊपर निर्देश किया जा चुका है।

राज्य के स्वरूप का प्रोफ़ेसर हॉबहाउस का दृष्टिकोण विशेष रूप से स्वस्थ और अद्यतन है, और समाज से राज्य, सरकार और राष्ट्र का उसका भेद स्पष्ट है। उसका मत है कि समाज परस्पर हित से बंधे हुए अंतर्क्रियारत बहुसंख्यक व्यक्ति है—"उनके भौतिक वातावरण द्वारा स्थापित अवस्थाओं के अंतर्गत व्यक्तियों की अंतर्क्रिया" [३०] से उत्पन्न भौतिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों की उपज है। इस प्रकार समाज सबसे विस्तृत और व्यापक प्रकार का मानव समूह है।

राज्य मानव साहचर्य का वह रूप है जोकि दमनशक्ति (Coercive power) के होने और उसके प्रयोग से पहचाना जाता है। यह सच है कि अन्य प्रकार की समितियों (Associations) के पास भी दमनशक्ति होती है और वह उसका प्रयोग भी करती है किंतु स्वैच्छिक प्रकार की समिति के सदस्य उसे छोड़कर दमन से बच सकते है। किंतु राज्य में एक नागरिक इस शक्ति से नहीं बच सकता जब तक कि वह राज्य के अधिकारक्षेत्र के अंतर्गत भूभाग को ही न छोड़ दे, और मुक्ति का यह मार्ग भी सदैव खुला नही रहता : "राज्य अन्यों में से एक प्रकार की समिति है, जो अपनी दमनशक्ति के प्रयोग, अपनी सर्वोच्चता और अपनी भौगोलिक सीमाओं में बसनेवाले सब लोगों के नियंत्रण के दावे से पृथक् है।" [३१] फिर भी राज्य अनेक समितियों में से, जोकि सामाजिक जीवन को कायम रखने और उसके सुधार में प्रयत्नशील है, एक समिति है और एक अनिर्वचनीय और रहस्यवादी इकाई के रूप में इसे हीगल की पूज्य भावना से देखने का दावा नहीं किया जा सकता :

"राज्य मानवप्राणियों की एक समिति है—महान् विश्वधर्मों को छोड़कर यह सब समितियों में महानतम है। इसे कोई रहस्यवादी पवित्रता या प्रामाणिकता प्राप्त नहीं है जोकि इसे नैतिकता से श्रेष्ठ ठहराये या उन नियमों से मुक्त करे जिनका उल्लंघन स्वयं चरित्र के पतन द्वारा दंडित होता है। यह एक ऐसी समिति है जिसका अपना विशेष संविधान और परिस्थितियां हैं, और ठोस रूप में इसके कर्तव्यों और अधिकारों को प्रत्येक अन्य समिति और प्रत्येक सदस्य के कर्तव्यों और अधिकारों की भांति इसे संविधान और इन परिस्थितियों के प्रसंग मे जांचना चाहिये।" [१२]

हॉबहाउस ने अपनी *Metaphysical Theory of the State* में हीगल के राज्य के सिद्धांत पर, जैसा कि उसे स्वयं हीगल और उसके बोसांके जैसे अंग्रेज़ी शिष्यों ने प्रस्तुत किया, एक घातक प्रहार किया है। उसने हीगल निम्न प्रकार से के राज्य के सिद्धांत और राज्य की आधुनिक प्रजातांत्रिक अवधारणा का भेद किया है.

"विवाद राज्य के इन दो दृष्टिकोणों के बीच है। प्रजातांत्रिक या मानववादी दृष्टि से यह एक साधन है। अध्यात्मशास्त्रीय (Metaphysical) दृष्टि से यह एक साध्य या लक्ष्य है। प्रजातांत्रिक दृष्टि में यह दो अर्थों मे मानवता की सेवक है कि यह अपने सदस्यों के जीवन के लिये क्या करती है और यह मानवजाति के समाज मे क्या भाग अदा करती है, इससे इसे जांचा जाना चाहिये। अध्यात्मशास्त्रीय दृष्टि से यह स्वयं ही समस्त नैतिक मूल्यों का एकमात्र संरक्षक है। प्रजातात्रिक दृष्टि मे प्रभुशक्ति-सपन्न राज्य का विनाश अभी से निश्चित है, यह विश्व के समुदाय के आधीन होगा। अध्यात्मशास्त्रीय दृष्टि से यह मानव-संगठन की चरम सफलता है।" [१३]

हॉबहाउस ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि राजनैतिक दर्शन के विद्यार्थी बहुत समय से हीगल के राज्य के सिद्धांत से परिचित हैं, किंतु इसके व्यावहारिक महत्त्व को बहुत कम ही समझा गया है और इसे एक निरासक्त अध्यात्मशास्त्री की रचना कहकर छोड़ दिया गया है :

"पिछले दिनों में हम हीगल की राज्य की स्तुति को एक स्वप्नदृष्टि की आलकारिक उक्तियां कहकर छोड़ देते थे, यह ग़लती थी। यह संपूर्ण अवधारणा यूरोप के इतिहास के सबसे भीषण विकास के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। जर्मन सैनिकवाद को एक सुंदर भावुक अध्यात्मवाद (Idealism) के विरुद्ध, जिसका कि बिस्मार्क मे पहले युग मे आधिपत्य था, प्रतिक्रिया की उपज के रूप में कल्पित करने का फैशन बन गया है। राजनैतिक प्रतिक्रियावादिता हीगल से शुरू हुई, जिसके संप्रदाय ने शुरू से लेकर आखिर तक अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस, सोलहवीं शताब्दी के हालैंड और सत्रहवी शताब्दी के इंगलैंड से प्रारंभ होनेवाली प्रजातांत्रिक और मानवतावादी अवधारणा का सबसे गंभीर विरोध किया। यह हीगल के राज्य की कल्पना ही थी जिसने कि स्वाधीनता के सिद्धांत की धार को मोड़कर स्वाधीनता को क़ानून से मिला दिया; क्षमता को हटाकर अनुशासन की अवधारणा दी; स्वयं व्यक्तित्व को नष्ट कर व्यक्ति को राज्य में विलीन

कर दिया; और राज्य का एक सर्वोच्च और मानव समिति के अंतिम रूप में निर्माण कर मानवता को समाप्त कर दिया।"[३४]

हॉबहाउस का विश्वास है कि हीगल के राज्य की धारणा केवल सामान्यत: खतरनाक और दूषित सिद्धांत ही नहीं है, प्रत्युत् इसने निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की उस धारणा को प्रोत्साहित किया जिसने कि प्रथम विश्व-महायुद्ध को जन्म दिया।

जहां तक कि राज्य और सरकार के संबंधों का प्रश्न है, हॉबहाउस आधुनिक राजनीतिविज्ञान और समाजशास्त्र की सामान्य सर्वसम्मति से सहमत है, अर्थात् यह कि सरकार एक एजेंट है जिसे राज्य राजनैतिक नियंत्रण का व्यावहारिक कार्य हस्तांतरित करता है : "सरकार को स्वय असंदिग्ध अधिसत्ता का स्रोत नहीं, बल्कि एक कार्य के रूप मे कल्पित किया गया है जिसमे कि कुछ व्यक्तियों को समग्ररूप से जनता के सेवक या 'मंत्री' की हैसियत से कार्य करने के लिये नियुक्त किया गया है।"[३५]

हॉबहाउस ने इसी स्पष्टता से राज्य और राष्ट्र का भेद किया है। तार्किक दृष्टि मे, राष्ट्र की अवधारणा राज्य या एक नस्ल या प्रजाति (Race) दोनों से भिन्न है। राष्ट्रीयता प्रधानत. एक मानसिक या सास्कृतिक विषय—एकता की भावना—है जोकि प्रकट रूप मे कबायली समाज मे विद्यमान रिश्तेदारी (Kinship) पर आधारित एकता की पुरानी भावना की प्रत्यक्ष दाय या उसका विस्तार है :

"वस्तुत राष्ट्रीयता उचितरूप मे प्रजाति का विषय नही है। अधिकाश जनसमूह जो अपने को एक राष्ट्र अनुभव करते है, उनका नस्ली उद्गम अत्यत जटिल है, फिर भी राष्ट्रीयता की भावना स्वीकृत रूप मे रिश्तेदारी के समान है : यह तार्किक विश्लेषण की अपेक्षा एक शक्तिशाली तथ्यगत एकता, है जोकि भाषा, परंपरा, धर्म और रीतिरिवाजों का मिश्रित प्रभाव है जो कुछ लोगो को एक दूसरे के साथ एक और बाक़ी ससार से पृथक् अनुभव कराता है। अहकार और स्वाभिमान इससे घनिष्टतया सयक्त है, और राष्ट्रीयता का हनन एक अश मे उनके अहकार पर चोट करना और पौरुष को नीचा दिखाना है जोकि उससे बधे हुए थे।"[३६]

राज्य और राष्ट्र एक तार्किक अवधारणा के रूप में चाहे कितने ही भिन्न हों, उनका व्यावहारिक सबध अत्यंत घनिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। यदि एक राज्य में एक एकीकृत राष्ट्र है, तो उसमे उस राज्य की अपेक्षा जहा कि राजनैतिक प्रभुसत्ता अनेक राष्ट्रों के अनेक रूपी समूहों मे विस्तीर्ण है, राजनैतिक प्रशासन की कठिनाइया बहुत कम होंगी।

"हम इसका (राष्ट्रीयता का) चाहे किसी प्रकार विश्लेपण करे यह एक महान् शक्ति है, और उन राज्यों में जो राष्ट्रीय एकता मे आबद्ध है जीवित रहने की बहुत शक्ति है, जोकि उन्हें बहुत कठिनाइयो से पार कर देगी। किंतु ऐसे भाग्यशाली राज्य कम ही हैं जिनकी एक राष्ट्रीयता हो, और किसी भी राजनीतिज्ञ के लिये अल्पसंख्यक राष्ट्र के साथ व्यवहार करने की समस्या का समाधान सबसे कठिन है।"[३७]

"जैसे चाहिये" इस भिन्नता का विश्लेषण और व्याख्या कीजिये; वह राज्य जो राष्ट्र भी है उसका जीवन उस राज्य की अपेक्षा भिन्न होगा जोकि अणुओं की एक आकस्मिक राशि है, या अनेक विजेयों का यंत्रवत् योग है। इस भिन्नता की उपेक्षा करना राजनैतिक भविष्यवाणी के मानचित्र पर एक विशाल गड़ी हुई चट्टान को अचिन्हित छोड़ देना है।" [१८]

राज्य के सामान्यतः सहमतिप्राप्त गुण—भूभाग, जनसंख्या और प्रभुशक्ति—में हॉबहाउस, जैसा कि निर्देश किया जा चुका है, यह जोड़ेगा कि राज्य को मूलत सामाजिक अवस्थाओं की एक उपज और मानव-जाति के सामूहिक हितों के लिये बनाई गई एक सार्वजनिक प्रकार की समिति समझा जाना चाहिये। अधिकांश समाजशास्त्रियों की भांति हॉबहाउस राज्य को समाज के गर्भ से उत्पन्न मानता है, और अन्य प्रकार की समितियों से पहले नहीं।

(ख) सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं का ऐतिहासिक उद्विकास

राज्य के उद्गम और ऐतिहासिक विकास का प्रोफ़ेसर हॉबहाउस का सर्वेक्षण किसी भी भाषा में प्राप्त अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ संक्षेप है। राज्य के उद्गम के किसी भी विवरण में, जोकि ऐतिहासिक सत्यता के अनुरूप है, लेखक को इस अभ्युपगम (Assumption) से प्रारंभ करना चाहिये कि मानव जाति पहले से ही सामाजिक रूप में संगठित है। यह सिद्धांत कि राजनैतिक बंधन पहली चीज़ है जिसने कि मनुष्य को समूहों में मिलाया, इसकी न तो इतिहास से और न मनोविज्ञान से पुष्टि होती है। एकीकरण का सिद्धांत जो कि मानव साहचर्य का आधार था वह परस्पर स्वार्थ और सहानुभूति थी, जोकि प्रोफ़ेसर स्मॉल द्वारा सुझाई गई मानव अभिरुचियों की सूची और प्रोफ़ेसर गिडिग्स के "एक होने की चेतना" के सिद्धांत से व्यापक रूप में मिलती है। इस सामाजिक सूत्र को अनेक घटकों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे कि सहानुभुति, अपने साथियों में अभिरुचि, परोपकारवृत्ति और शत्रुओं के विरुद्ध सुरक्षा के लिये और औद्योगिक सहयोग का लाभ पाने के लिये एक होना।

मानव-साहचर्य के इस सामान्य आधार के अतिरिक्त, सामाजिक विकासवाद की प्रत्येक अवधि में किसी प्रबल सामाजिक सूत्र को ढंढ़ा जा सकता है। यद्यपि यह पारस्परिक स्वार्थ इतना आधारभूत नही है, फिर भी यह अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट है और "समग्ररूप से समाज को चरित्र प्रदान करता है।" सामाजिक संगठन के इतिहास ने ऐसे तीन विशिष्ट सामाजिक सूत्रों को उद्घाटित किया है—रिश्तेदारी (Kinship) अधिसत्ता (Authority) और नागरिकता (Citizenship)। [१९]

आदिकालीन समाज में रिश्तेदारी का सिद्धांत प्रबल सामाजिक सूत्र है। आदिकालीन लोगों में सामाजिक संगठन का सबसे भोंडा प्रकार अंतर्विवाही (Endogamous) गिरोह (Horde) है, किंतु वर्तमान मानव-समाजों में यह रूप एक अपवाद है। सबसे विशिष्ट आदिकालीन समूह वास्तविक और काल्पनिक रक्तसंबंध पर आधारित

वहिर्विवाही गोत्र (Exogamous Clan) है । मोटे तौर पर गोत्र एक विस्तृत परिवार है जो एक समूह में रहता है और पुरुष या स्त्री पूर्वजों से वंश के सूत्र द्वारा आपस में बंधा रहता है। यदि वंश (Descent) को पुरुष से माना जाता है तो गोत्र पैतृक; यदि इसे स्त्री से खोजा जाता है तो यह मातृक है।

हॉबहाउस बुद्धिमत्ता से इस मत से अपनी सहमति देने से अलग रहा कि संस्थाओं के इतिहास में गिरोह, मातृक गोत्र और पैतृक गोत्र एक अपरिवर्तनीय शृंखलाक्रम को दर्शाते हैं; इस प्रकार वह उन ऐतिहासिक समाजशास्त्रियों की मुख्य ग़लतियों से बचा रहा जोकि अपने सामान्यीकरणों को प्रारंभिक विकासवादी जातिशास्त्रियों (Ethnologists) और समाजशास्त्रियों के कार्य पर आधारित करते हैं।

आदिकालीन समाज के बड़े समूह सामान्यतः स्थानीय समुदाय थे, जोकि प्रायः अनेक सहवर्ती वहिर्विवाही और बृहत्तर क़बायली संघ से, जिसमें कि ऐसे अनेक स्थानीय समुदाय सम्मिलित थे, मिलकर बने थे।

समाज की इस रिश्तेदारी अवस्था मे पाये जानेवाले सरकार के रूप और अंश का वर्णन करते हुए हॉबहाउस ने गिसवर्ग और ह्वीलर के साथ लिखी गई अपनी 'सरल लोगों की भौतिक संस्कृति और सामाजिक संस्थाओं'—*Material Culture and Social Institutions of the Simpler Peoples* में संकलित आंकड़ों के न्यासों का प्रयोग किया है। उसने पाया कि वे समूह जिनमें घर को छोड़, कोई प्रभावी सरकार नहीं है, उनमें से लगभग आधे निम्नकोटि के शिकारी है, दसवां भाग कृषि और पशुपालन में संलग्न लोग हैं और उच्चकोटि के कृषकों मे वे प्रायः नहीं मिलते। ऐसे लोग जिनमें स्वीकृत सरकारी संगठन है उनमें एक चौथाई से लेकर एक तिहाई तक शिकारी है, लगभग आधे कृषक और पशु-पालक लोग हैं, और तीन चौथाई से अधिक उच्चकोटि की कृषि करनेवाले लोग है, जिनमें अंतिम प्रकार के लोग प्रायः एक प्रारंभिक राजतंत्र (Dictatorship) को विकसित करते हैं। इन रिश्तेदारी समितियों में "पर्याप्त जीवनशक्ति, एकता और सहनशीलता है, किंतु ये संकीर्ण है और अपनी शक्ति के अनुपात में कठोर, आत्म-सीमित और परस्पर शत्रुता रखते हैं। इसके अतिरिक्त, वे केवल कठोर आर्थिक अवस्थाओं और जीवनकला की प्रारंभिक अवस्था के ही अनकूल है, जिसके द्वारा राजा की अधिसत्ता के वेष में कही बड़े जनसमूहों को एक साथ रखा जा सकता है और अधिक नियमित व्यवस्था क़ायम रखी जा सकती है।"[४०]

रिश्तेदारी सिद्धांत की सीमितताओं ने ही स्वभावतः उस प्रकार के राजनैतिक संगठन को जन्म दिया जोकि पहले तो बल पर आधारित हुआ किंतु बाद में अधिसत्ता (Authority) के सिद्धांत में रूपांतरित हो गया। यह संक्रमण प्रायः तब आता है जब कि एक सुसंगठित पैतृक गोत्र किसी कारण से विजय की ओर अग्रसर होता है। इस संक्रमण की प्रक्रिया में, विजेताओं और विजितों दोनों के द्वारा प्रायः स्वाधीनता का अपहरण हुआ है। सफलता के लिये आवश्यक एकता और अनुशासन

कायम रखने के लिये विजेता प्रायः मुखिया को असीमित सत्ता प्रदान करने के लिये बाध्य हुये, जबकि विजित लोग, यद्यपि कभी-कभी मौत के घाट उतारे गये, प्रायः दासता या भूमिदासता की स्थिति में ला दिये गये। विजय ने प्रायः विजेता मुखिया की शक्ति को बढ़ाया, जिससे कि वह धर्म द्वारा अपनी श्रेष्ठता की स्वीकृति प्राप्त कर राजा मे परिवर्तित हो गया।

इस प्रकार एक राजनैतिक समाज का सूत्रपात् हुआ, जोकि निरंकुशता पर आधारित और धर्म द्वारा पुष्ट था। यह नये प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था अधिक समय तक केवल बल पर आधारित नही रखी जा सकती थी, प्रत्युत् उसे अपनी सत्ता के औचित्य के लिये एक सैद्धांतिक औचित्य भी विकसित करना था, "निरंकुशता की सरल और व्यापक संहिता मे केवल यही दिया गया है कि एक व्यक्ति अन्य सबों के लिये क्या श्रेष्ठ है इसका निर्णय करने के लिये ईश्वर द्वारा नियुक्त किया गया है, और इससे वह मनमानी शक्ति को उचित अधिसत्ता और दासतापूर्ण आधीनता को निष्ठायुक्त सेवा मे रूपातरित करता है।"[४१] इस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था की विशेषताओं और देनो को हॉबहाउस ने निम्न प्रकार संक्षेप मे रखा है :

"यदि निरकुश सिद्धांत के निष्कर्षों का सार दिया जाय—चाहे हम उसे अततोगत्वा बल पर आधारित अधिसत्ता माने या अधिसत्ता मे रूपातरित बल–तो इसने हमे यह दिया है:

"पहला, हमे प्राप्त समाज का स्वरूप—

"(क) पूर्ण राजतत्र, जहा कि राजा दैवी है और बिना किसी बाधा के अपनी प्रजा के शरीर और सपत्ति का स्वामी है। अपेक्षतया छोटे और बर्बर समुदायों में यह प्रकार सबसे शक्तिशाली है।

"(ख) सामतवादी राजतत्र, जिसमे कि शक्ति को दूसरो को दे दिया जाता है और शासकवर्ग एक पदसोपान (Hierarchy) का निर्माण करता है, अधिक विस्तृत क्षेत्रों के अनुकूल है।

"(ग) साम्राज्य (Empire), अनेक छोटी रियासतो से मिलकर बनता है, जोकि राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण कर अत्यत विभिन्न अशों मे एकता और स्थानीय स्वाधीनता प्रदर्शित करती है।

"दूसरा, सरकार की प्रकृति से संबंधित है। यह शासितों के प्रति नैतिक कर्तव्य की भावना-प्राप्त एकता के अनुपात में विकसित होती है, किंतु सर्वत्र ही कानून को अधिसत्ता पर आधारित और सामाजिक प्रणाली को एक वर्ग की दूसरे वर्ग द्वारा आधीनता पर आधारित कल्पित किया गया है। इस व्यवस्था के लिये सामान्यतः शासक के साथ भगवान् के विशेष संबंध और प्रायः शासन प्रजाति, या जाति या अंततः उनके विजय और सभ्य बनाने के उद्देश्य की एक धार्मिक स्वीकृति ढूंढ़ ली जाती है।

"अंत मे यदि हम मानव-विकासवाद में इस सिद्धांत के कार्य को एक वाक्य में देने का प्रयास करें, तो हम कह सकते है कि यह संस्कृति में विस्तार और जीवन-कला में सुधार के युगोंसे संयुक्त है। यह एक तरीका है जिससे कि आदिकालीन गोत्र या समुदाय की अपेक्षा स्वशासन की अधिक सुविधाओं से युक्त और आंतरिक व्यवस्था के कायम रखने के लिये बड़े समुदायों का निर्माण किया जा सकता है।" [२]

तीसरे प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था वह है जोकि नागरिकता के सूत्र पर आधारित है और जो व्यक्तिगत अधिकारों को स्वीकृति प्रदान कराने और सार्वजनिक भलाई की प्रगति के लिये प्रयत्नशील है। नागरिकता पर आधारित किसी भी राज्य की दो आधार-भूत विशेषतायें है, "उत्तरदायी व्यक्ति जोकि नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों से पूर्णतः ओतप्रोत है और उत्तरदायी सरकार जोकि कानून और प्रशासन में संपूर्ण समाज की इच्छा को व्यक्त करती है।" [३] इस तीसरे प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था मे अधिसत्ता और शक्ति की पहली अवस्थाओं की पहली अवस्था की परिस्थितियों की तुलना में शासित और शासकों के संबध बिल्कुल उलट जाते है। अब सरकार अंतिम या प्रभुत्व अधिसत्ता का स्रोत नही रहती, प्रत्युत् समग्ररूप से जनता की एक अधिकार-प्राप्त एजेट बन जाती है। कानून अब एक स्वेच्छाचारी का अध्यादेश नही रहता, बल्कि अपने द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त जनता की इच्छा है : "एक सरकार के प्रजाजन अब एक राज्य के नागरिक बन गये है, और नागरिक के अधिकार प्राप्त है जोकि उनके कर्तव्यों से कम महत्त्वपूर्ण नही है। ये अधिकार सरकार के विरुद्ध भी उतने ही प्रभावकर है जितने कि अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध, क्योकि नागरिकता पर आधारित राज्य की यह मुख्य विशेषता है कि यह कानून का राज स्थापित करता है और अपने अधिकारो को इस निर्वैयक्तिक प्रभुसत्ता (Sovereign) के आधीन करता है।" [४]

नागरिकता पर आधारित इस प्रकार का राजनैतिक सगठन सर्वप्रथम एथेन्स के ग्रीक लोगो मे उत्पन्न हुआ, जहां कि नागरिक आदर्शवाद सभवतः समस्त इतिहास में उच्चतम स्तर पर पहुंचा। इसके साथ ही ग्रीक प्रणाली में जन्मजात कमजोरियां थी जिन्होंने कि उसका जीवित रहना असंभव बना दिया। एथेन्स के तथाकथित "प्रजा-तांत्रिक राज्य" मे एक बड़ा दास वर्ग था, और सरकार के प्रशासन मे सम्मिलित कार्य-वाही का अभाव और उसके साथ विभिन्न नगर-राज्यों मे तुच्छ द्वेष ने उस बड़े पैमाने पर राजनैतिक संघ का निर्माण न होने दिया जोकि जीवित रहने के लिये अनिवार्य था।

रोमन प्रणाली नागरिकता की अपेक्षा अधिसत्ता पर आधारित राजनैतिक अवस्था में परिवर्तित हो गई। गणतांत्रिक नगर-राज्य की सरकार अपने प्रशासकीय यंत्र को तेज़ी या सफलता से प्रादेशिक विस्तार के अनुकूल न बना सकी और जिस समय तक संघ का विचार सफल हो सका, रोमन गणतंत्र समाप्त हो चुका था।

मध्यकालीन नगर-राज्य दासता के कलंक से बचे रहे, जोकि ग्रीक और रोमन

लोगों के लिये अभिशाप था, किंतु उनके आंतरिक मतभेद और स्थानीय पृथक्करण और एकांगीयता ग्रीकों की अपेक्षा अधिक उग्र थी।

इन प्रारंभिक असफलताओं के कारण, नागरिकता के सिद्धांत पर एक राजनैतिक प्रणाली को स्थापित करने के परीक्षक को प्रजातंत्र और राष्ट्रीय राज्य के उदय और विकास में पुनः दोहराना पड़ा। इस अंतिम परीक्षण में दो अवस्थायें आ चुकी थीं—निरंकुशवाद (Absolutism) की अवधि जिसमें कि इससे पहले के अधिकारपूर्ण सिद्धांत की प्रभुता के तुल्य राजनैतिक एकत्रीकरण और प्रादेशिक आक्रमण का आविष्कार हुआ था, और निरंकुशवाद के विरुद्ध प्रजातांत्रिक प्रतिक्रिया की अवधि। इस दूसरे संघर्ष के परिणामस्वरूप जिसने कि आधुनिक इतिहास का अधिक अंश घेरा है, "सरकार यह स्वीकार करने लगी कि इसकी स्थिति का औचित्य केवल सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य सुख की वृद्धि के कार्य से ही सिद्ध है·····व्यक्तित्व के सिद्धांत ने एक के बाद दूसरे अधिकार की स्वीकृति प्राप्त की है—न्यायालयों से संरक्षण या मनमाने दंड से मुक्ति का अधिकार, धार्मिक मामलों में स्वाधीनता, सर्वप्रथम विश्वास की स्वाधीनता, उसके बाद विचार व्यक्त करने और सार्वजनिक पूजा करने की स्वाधीनता, सरकार के कार्यों की विवेचना और आलोचना करने का अधिकार, सभा करने और आपस में मिलने का अधिकार, और अंततोगत्वा देश की सरकार में परोक्षरूप से भाग प्राप्त कर, इन स्वाधीनताओं को प्राप्त कराने का राजनैतिक अधिकार—ये समस्त अधिकार मिलकर आधुनिक राज्य को ऐसा बनाते हैं जैसा कि वह है।" [४५]

हॉबहाउस स्वीकार करता है कि राष्ट्रीयता के सिद्धांत पर आधारित आधुनिक राज्य का उद्विकास मानव-स्वाधीनता के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील कदम है, किंतु वह राष्ट्रीय आक्रमण के ख़तरे से भी परिचित है: "राष्ट्रीयता जैनस देवता की भांति है। यह दोनों ओर देखता है—स्वाधीनता की ओर और आक्रमण की ओर भी। आक्रांताओं और विजेताओं के विरुद्ध पराधीन राष्ट्रीयताओं के संघर्ष ने स्वाधीनता के इतिहास के महान् अध्याय को पूरा किया है। किंतु जो राष्ट्रीयतायें स्वाधीन हुई, वे प्रायः अन्यों को दास बनाने के लिये निकल पड़ीं····इसलिये राजनैतिक स्वाधीनता की प्रथम अवस्था में अनिवार्य राष्ट्रीयता का उदय शांति और व्यवस्था के लिये एक स्थायी ख़तरा भी है।" [४६]

फिर भी दलित राष्ट्रों की मुक्ति स्थायी और सुदृढ़ अंतर्राष्ट्रीयता के लिये एक अपरिहार्य पहली शर्त है: "जिस अनुपात में राजनैतिक एकता को राष्ट्रीय भावना के अनुरूप लाया जा सके उसी में उतनी ही अंतर्राष्ट्रीय संघ की संभावनायें बढ़ेंगी।" [४७]

एक जन्मजात कमज़ोरी के कारण राष्ट्रीय प्रादेशिक राज्य से राजनैतिक विकास की अंतिम अवस्था बनने की संभावना नहीं है। राष्ट्रीयता पर आधारित सैनिक महत्त्वाकांक्षा स्वयं राज्य के अंतर्गत आंतरिक स्वाधीनता और सामाजिक समन्वय के विकास से

सरकार के लिये तथा दूसरा आधीन सरकारों के लिये—साम्राज्यवाद की वृद्धि ने अभी से उदार और प्रजातांत्रिक संस्थाओं की सत्ता के लिये गंभीर ख़तरा उत्पन्न कर दिया है।

हॉबहाउस का मत है, जैसा कि कान्ट और कई अन्य विद्वानों का आजसे एक शताब्दी पूर्व था, कि भविष्य की राजनैतिक आशायें अंतर्राष्ट्रीयता के विकास की भावनाओं पर निर्भर हैं, जोकि राष्ट्रीय आक्रमण और उससे सयुक्त राष्ट्रीय संपत्ति के विनाश और राजनैतिक निरंकुशता के प्रोत्साहन को समाप्त करेगी, और एक राष्ट्र को अपनी आंतरिक समस्याओं को शांति से सुलझाने में लगने और सामाजिक न्याय को कार्यान्वित करने की अनुमति देगी।

"राज्य का भविष्य अंतर्राष्ट्रीयता के साथ जुड़ा हुआ है। यदि सभ्य राष्ट्रों की होड़ और द्वेष को इस सीमा तक रोका जा सके कि वह मिलकर शांति के लिये कार्य कर सकें, तब यह आशा करने का उचित कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र में सत्य का शासन क़ायम रह सकेगा और वह विकसित हो सकेगा। यदि इसके विपरीत, युद्ध केवल शस्त्रों से लैस शांति की अवधि प्रदान करते हैं, प्रत्येक देश समान रूप से अधिनायक (Dictatorship) के शासन पर लौट जायेगा। इसलिये देश-राज्य को कठिनाई से ही राजनीति का अंतिम लक्ष्य कहा जा सकता है, किंतु यदि यह प्रगति जारी रहती है तो यह अंतर्राष्ट्रीयता के उन कीटाणुओं को शीघ्र जीवन प्रदान करती रहेगी जिन्हें कि उन्नीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठतम राजनीतिज्ञों ने अनिश्चितता की अवस्था में जन्म दिया था।" [४८]

एक सिद्धांत के रूप में संघवाद (Federalism) ने साम्राज्य और प्रजातंत्र के विचारों के समन्वय का एक तरीक़ा सुझाया है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय पंचनिर्णय (Arbitration), यदि उसकी अधिक और सार्वभौम रूप से सहायता ली जाय, अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने का एक अन्य ऐसा ही प्रभावकर साधन है।

राजनैतिक विकासवाद की विवेचना का उपसंहार करते हुए हॉबहाउस ने यह स्पष्ट किया है कि उसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य के विकास में यह तीन अवस्थायें सदैव समस्त उदाहरणों में एक निश्चितक्रम में एक के बाद एक कर आई हैं। उसका केवल यही तात्पर्य है कि वे राजनैतिक विकासवाद की प्रबल विशेषतायें हैं। "इससे यह अर्थ निकला कि हम यह नहीं कह सकते कि जब हम संस्कृति के सोपान पर चढ़ते हैं तब इनमें से कोई एक रूप एक शृंखला के रूप में दूसरे के बाद आता है। दुर्भाग्य से समाज का इतिहास इतना सरल नहीं है। हम निश्चितता से केवल यही कह सकते हैं कि तीनों सिद्धांतों को पृथक् किया जा सकता है और उनसे उत्पन्न सामाजिक संघ या सम्मेलन के रूप दिये गये क्रम में आनेवाली अवस्थाओं में प्रबल रहते हैं।" [४९]

इस विवेचन में ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधिशास्त्र में हॉबहाउस के सुयोग्य विचरण का विश्लेषण नहीं किया जा सकता, किंतु चलते-चलते यह कहा जा सकता है कि इतने पृष्ठों में किसी भी भाषा में इसके मुक़ाबले की चीज़ नहीं है। अपने मुख्य निष्कर्षों का निष्कर्ष उसने निम्न अवतरणों में दिया है :

"सार्वजनिक न्याय के विकासवाद की मुख्य अवस्थाओं का संक्षिप्त जिक्र करते हुए हम देखते हैं कि प्रारंभ में समुदाय मुख्यतः उन आधारों पर हस्तक्षेप करता है जिन्हें कि हम अलौकिक कह सकते हैं और जो कार्य उसके अस्तित्व के लिये ही खतरनाक समझे जाते है। अन्यथा न्याय, जैसा कि हम उसे अधिकारों की निष्पक्ष स्थापना और गलती करने पर निष्पक्ष दंड देने के अर्थ में ग्रहण करते हैं, अज्ञात है। इसके स्थान पर प्रारंभ में हमारे पास केवल निजी और व्यक्तिगत प्रतिरोध है। यह संगठित परिवारों और गोत्रों की लगातार खूनी दुश्मनियों मे विकसित हो जाता है। इस अवस्था पर उत्तरदायित्व सामूहिक है, समाधान सामूहिक है, इरादे की उपेक्षा की जाती है और व्यक्ति के गुण-दोष के अनुसार दंड के निर्णय करने का प्रश्न नहीं उठता। जब कि मुद्रा में भुगतान के प्रवेश से प्रतिशोध कम हो जाता है तब भी आचारशास्त्रीय सिद्धांत मे कोई परिवर्तन नहीं आता। केवल तभी जबकि सामाजिक व्यवस्था झगड़ों के निपटारे और अपराध के निवारण के लिये एक स्वतंत्र संस्था को विकसित करती है आचारशास्त्रीय विचार भूसी से पृथक् होता है और धीरे-धीरे व्यक्ति अपने परिवार से पृथक् कर दिया जाता है और उसके इरादों पर विचार किया जाता है, मामले के मूल न्याय द्वारा उसकी ईमानदारी या औपचारिक ईमानदारी के अभाव को पीछे छोड़ दिया जाता है, जादुई विधियां त्याग दी जाती है और कानून तथ्यों को खोजने और तदनुसार सत्य को स्थापित करने या अपराध के लिये दंड देने का लक्ष्य सामने रखता है।"

"सार्वजनिक न्याय के उदय ने मुकदमे के दो दलो के बीच संघर्ष की संपूर्ण अवधारणा को क्रमशः त्यागना आवश्यक बना दिया है, और इसके स्थान पर वास्तविक सत्य को जानने का विचार ला दिया है ताकि न्याय किया जा सके। पहलेपहल यह कार्य अलौकिक साधनों अर्थात् दिव्यी (Ordeal) और शपथ से लिया जाता था। बाद मे इनका स्थान साक्षी और तर्कसंगत प्रमाण द्वारा सच्ची न्यायिक जांच ले लेती है। इगलैंड मे यह संक्रमण मुख्यतः तेरहवी शताब्दी में हुआ, इन्नोसेंट तृतीय द्वारा १२१५ मे दिव्यी परीक्षाओं का निषेध एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। नवविकसित केंद्रीय शक्ति द्वारा प्रशासित सार्वजनिक न्याय की प्रारंभिक अवस्थाओं में अपराध के अन्वेषण और दंड में अतिशय बर्बरता का प्रयोग हुआ। संसार को यह सिद्ध करने मे कुछ और शताब्दियां लगी कि ऐसे मामलों मे कार्यक्षमता के साथ मानवता और सत्य की प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम साधनो के तर्कसंगत विचार का समन्वय किया जा सकता है। इतनी लंबी और चक्करदार प्रक्रिया से जो परिणाम प्राप्त हुआ, वह आज हमारे मनो मे अत्यंत सरल और स्पष्ट है।" [५०]

(ग) सरकार के स्वरूप और प्रजातंत्र की समस्यायें

प्रजातंत्र को छोड़ अन्य अनेक प्रकार की सरकारो के विषय मे प्रोफ़ेसर हॉबहाउस ने बहुत कम ही कुछ कहा है; उसकी प्रजातंत्र की प्रकृति, मूल्य और सीमितताओं की विवेचना विस्तृत और विचारोत्तेजक है।

सर्वप्रथम प्रजातंत्र के अर्थ के संबंध में हॉबहाउस ने ठीक ही निर्देश किया है कि इस शब्द का दो भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जा सकता है। इसका अर्थ जनसाधारण द्वारा सरकार के कार्यों में प्रत्यक्ष भाग लेना होता है। एक सरकार के स्वरूप के रूप में, इस अर्थ में अब प्रजातंत्र व्यावहारिक नहीं है। सरकार के कार्य अब इतने जटिल और बहुमुखी बन गये है कि न तो नागरिक को वह प्रशिक्षण प्राप्त है और न ही उसके पास इतना समय है कि वह सरकार के कार्य को संभाल सके। अमेरिका तक में, जिस देश ने कि प्रजातंत्र की इस अवधारणा को सबसे अधिक संजोया है, यह स्वीकार किया गया है कि यह त्याज्य आदर्श है, और एक विशेषज्ञ और प्रशिक्षित नागरिक सेवक-वर्ग दीक्षित हो गया है।

प्रजातंत्र की दूसरी अवधारणा वह है जोकि अंतिम लोकप्रिय प्रभुशक्ति के विचार पर--प्रजातांत्रिक सरकार से भिन्न प्रजातांत्रिक राज्य के विचार पर--आधारित है, हालांकि हॉबहाउस ने इस महत्वपूर्ण भेद को स्पष्ट नही किया है। इस दूसरे अर्थ में भी प्रजातंत्र का सफल संचालन, यद्यपि असंभव नहीं है, फिर भी कठिन है। इसका कारण अधिकांश राजनैतिक मामलों और संस्थाओं की जटिलता और परस्पर दूरी है, जोकि औसत मतदाता की अभिरुचि को अधिक अंश मे आकर्षित नही कर सकती।

मामलों की अस्पष्टता से, जो अंशत: दलीय संगठनों द्वारा जान बूझकर विषयों को धुंधला करने और उससे बचने का परिणाम है,और जोकि मतदाता को बुद्धिमत्ता से कार्य करने के संबंध में निराश कर देती है, यह समस्या और भी बढ़ जाती है। हॉबहाउस ग्रैहम वालेस से सहमत है कि सबसे आवश्यक क़दम, जिसे उठाना अनिवार्य है, साधारण मतदाताओं के मन में विषयों को स्पष्ट करना और सरकार के मामलों में अभिरुचि और उत्तरदायित्व की भावना को जगाने के लिये स्थानीय स्वशासन की शक्ति को पुनर्जीवित करना है।

साधारण नागरिकों से लोकप्रिय प्रभुसत्ता के शासन के अंतर्गत जिस चीज़ की आशा की जाती है वह यह है कि वे उन उपायों के संबंध में अपनी सहमति देगे जो समाज-कल्याण में वृद्धि करते हैं। उनसे प्रत्येक सार्वजनिक प्रश्न के गुण-दोष के स्वतंत्र अन्वेषण की आशा नहीं की जा सकती, किंतु एक सफल प्रजातंत्र पहले से यह मान लेता है कि जनता को मार्ग दिखाने के लिये योग्य नेता होंगे और स्वयं जनता नेताओं के इस परामर्श पर ध्यान देने मे पर्याप्त अभिरुचि दिखायेगी। प्रजातंत्र से राजतंत्र या नौकरशाही से अधिक कार्यकुशल सरकार देने की कल्पना नहीं की जा सकती, किंतु यह उचित दावा किया जा सकता है कि जनता मे अभिरुचि जाग्रत् कर और उन्हें शिक्षित कर प्रजातंत्र अन्य किसी सरकार की अपेक्षा उनके निजी व्यक्तित्व को काफ़ी अधिक सीमा तक विकसित कर सकता है। यदि जनता को सार्वजनिक प्रश्नों का अध्ययन करने के लिये तैयार नही किया जा सकता, तो प्रजातंत्र के लिये अभी समय नहीं आया है। हॉबहाउस ने निम्न अवतरण में प्रजातंत्र के लाभों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है :

"अपने सब दोषों के बावजूद स्वशासन में सरकार के कर्तव्यों और जनता के अधिकारों की स्वीकृति अंतर्निहित है, यह एक अंश तक व्यक्तिगत स्वाधीनता और समस्त वर्गों को समान मान्यता की स्थापना का क़दम है। यह सामाजिक एकता की बढ़ती हुई भावना का स्वाभाविक साधन और राष्ट्रीय जीवन में हलचल उत्पन्न करने का उपयुक्त यंत्र है। एक शब्द में, यह उचित (Right) के विचार की राजनैतिक अभिव्यक्ति है जिस पर कि आधुनिक राज्य टिका हुआ है, और यदि सरकार का कोई अन्य प्रकार है जो समता के उस विचार को अच्छी तरह क़ायम रख सके, तो उसे उत्पन्न होना अभी बाक़ी है।" [५१] यदि प्रजातंत्र इतना महत्त्वपूर्ण है तो वह जिन कुछ कठिनाइयों का सामना करता है उनमें से कुछ पर और भविष्य में इसके कार्य को अधिक प्रभावकर बनाने के लिये आवश्यक सुधारों की जांच करना उपयुक्त है।

हॉबहाउस ने प्रजातंत्र और प्रतिक्रियावाद पर अपनी रचना का अधिकांश भाग इस थीसिस को पुष्ट करने में लगाया है कि राष्ट्रवादी साम्राज्यवाद, जिसमें कि निकृष्ट प्रजातियों पर निरंकुश शासन होता है, स्वदेश में प्रजातांत्रिक स्वशासन की सत्ता या सफलता से असंगत है। विदेशी प्रशासन के लिये अहंकारपूर्ण और गुस्ताख़ नौकरशाही के विकास से उसी सिद्धांत को घरेलू मामलों पर प्रतिक्रिया की हानि से बचना असंभव है। दूसरी ओर प्रजातंत्र और साम्राज्य संघ के विस्तार में जिसमें कि वृहत्तर इकाइयों के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन की सुविधा है, कोई आवश्यक विरोध नहीं है। समग्र रूप से साम्राज्यवाद के बजाय अंतर्राष्ट्रीयतावाद ही प्रजातंत्र का साथी है।

पुनः, यहां पर एक आधुनिक प्रजातंत्र ने उत्तरदायित्व के "ह्रास" (Dilution) और समस्याओं की जटिलता और अस्तव्यस्तता की गंभीर बाधा है जिसकी ओर पहले ही निर्देश किया जा चुका है: "अतएव सरकार के एक निर्दिष्ट कार्य के लिये एक साधारण मतदाता जो कुछ अनुभव करता है, वह यह है कि यह उन मनुष्यों का कार्य है जिनके शक्ति पाने में उसने बीस लाख या उससे भी अधिक मतों में से, हो सकता है तीन या चार साल पहले, जबकि संभव है सर्वथा भिन्न प्रश्नों की चर्चा हो रही थी, एक वोट दिया था, और जिन्हे शायद वह दो या तीन साल गुज़रने से पहले नहीं हटा सकेगा, तब तक पुनः अन्य प्रश्न उठ खड़े होंगे।" [५२] इस कठिनाई के लिये एक उपाय जो उसने सुझाया है, वह है स्थानीय स्वशासन की शक्ति में वृद्धि—जिसकी ओर पहले भी निर्देश किया जा चुका है।

प्रजातंत्र की एक अन्य कठिनाई योग्य नेता उत्पन्न करने की है। प्रजातंत्र की अपेक्षा अन्य किसी भी प्रकार की सरकार अपनी सफलता के लिये योग्य राजनीतिज्ञों पर इतनी निर्भर नहीं है, फिर भी यह स्वीकार करना चाहिये कि प्रजातंत्र ऐसे व्यक्तियों के पैदा करने के लिये बहुत अनुकूल नहीं है। एक प्रजातंत्र में जो आदमी अपने को एक सार्वजनिक नेता के रूप में सामने लाता है उसमें कुछ बेहयाई होना ज़रूरी हो जाता है, और यह गुण कम ही महापुरुषों में होता है। पर राजनीतिज्ञों में यह गुण इतनी अधिक मात्रा में है

कि उससे धक्का लगता है। इसलिये जबकि प्रजातंत्र को विशेष रूप से ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जोकि जनमत को बुद्धिमत्ता तथा सोच-समझकर चला सकें, इस प्रकार की सरकार इससे प्रायः उल्टे व्यक्तियों के लिये विशेष रूप से राजनैतिक मार्गदर्शन का कार्य प्राप्त करना विशेषकर सुलभ बनाती है :

"अंततः प्रत्येक प्रकार की सरकार को जिस प्रकार के आदमी को वह आगे लाती है, उसके लिये उत्तरदायी ठहराना चाहिये, और जो प्रजातंत्र के गुण-दोषों को तौलना चाहते हैं उन्हें प्रजातांत्रिक नेता के चरित्र पर ध्यान देना चाहिये। उसे हमारे जैसे समाज में एक आदमी को सामने लाने के लिये बेहयाई और निर्लज्ज विज्ञापन की शक्ति को मापना चाहिये; उसे यह स्वीकार करना चाहिये कि शक्ति हथियाने की योग्यता देश की सेवा करने की क्षमता के प्रमाण की अपेक्षा बहस में छुरे या कोड़े जैसी चोट के प्रभाव पर निर्भर है, जबकि अपनी शक्ति को क़ायम रखने की कला अपनी दिखावटी प्रतिष्ठा को बनाये रखना, क्षणिक सफलता के दिखावे को क़ायम रखना, जनता की ढील और राजनैतिक स्मृतियों की अल्पता पर भरोसा कर बिना सूक्ष्म जांच के वास्तविक अंतिम परीक्षा से बचना है। एक लोकप्रिय नेता से दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाने की आशा नहीं की जाती। वह अगले साधारण चुनाव से आगे कम ही देखता है। कभी तो ऐसा लगता है कि वह संसद में अगले मतदान से आगे नहीं देखता, और जब तक कि वह अपना बहुमत बनाये रखता है, वह इस बात की अधिक परवाह नहीं करता कि उसके शब्दों का एक ऐतिहासिक दल के भविष्य पर या अन्यथा क्या प्रभाव पड़ सकता है; यह राष्ट्र के व्यापक हितों पर भी पड़ सकता है; वह एक सुदूर देश के कुछ पीड़ित लोगों की दुर्दशा को बढ़ा सकता है। यदि एक राजनैतिक शासक में पर्याप्त कृत्रिम कुशलता और बहस करने की तत्परता है, तो वह एक अत्यंत अनुत्तरदायी प्राणी बन सकता है।" [५२]

इसलिये मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रजातंत्र को वह कल्पनायें करनी पड़ती हैं जोकि जिस हद तक में वह अनुभव द्वारा नहीं जाँची जा सकतीं, उसी हदतक उसकी स्थिति को अनिश्चित बना देती हैं। सरकार के समस्त स्वरूपों में से प्रजातंत्र ही एक सामान्य या सार्वजनिक इच्छा (Will) की कल्पना करता है। समुदाय की इच्छा के ऐसे संगठन के बिना प्रजातांत्रिक प्रणाली निकम्मी हो जायगी या केवल ऐसे रूप मात्र में पतित हो जायगी जिसमें कि प्रजातंत्र की वास्तविकता अनुपस्थित होगी। चूंकि जनसाधारण द्वारा विवाद-ग्रस्त प्रश्नों का विस्तार से अध्ययन करना, एक समान मत पर पहुंचना और सार्वजनिक मामलों में सम्मिलित अभिरुचि व्यक्त करना प्रायः असंभव है, अतः यह विशेष रूप से आवश्यक है कि समाचारपत्रों द्वारा उन्हें शिक्षित किया जाय, "किंतु अधिकांश सामाचार-पत्र जनता के सम्मुख कोई ऐसी चीज़ नहीं उठायेंगे जोकि लोकप्रिय न हो। इसका कारण अपने स्वामी के गरूर को गुदगुदाना है और गंभीरता से यह बताना है कि उसका कर्तव्य उसी दिशा में है जिस ओर के उसके पूर्वाग्रह उसे ले जाते हैं, और उसके नाम पर की जाने वाली ऐसी सब चीज़ों को, जोकि उसकी प्रीतष्ठा को हानि पहुंचा सकती हैं, ढंकना और

छिपाना है। कुछ लोग जोकि सच्ची बात कहने पर डटे रहते हैं उन्हें दरबारियों की भीड़ के सम्मुख एक ईमानदार परामर्शदाता का ही भाग्य बदा होता है।"

अंत में बहुमत के शासन की समस्या है, जिसमें कि अल्पमत के संरक्षण और जल्दी में क़ानून-निर्माण से बचने की समस्या सम्मिलित है। इस समस्या पर प्रायः क्रांतिकारी क़ानूनों के निर्माण से बचने की दृष्टि से देखा गया है, और प्रगतिशील उपायों की अनुचित जल्दबाज़ी से बचने के लिये एक कुलीन और अनुदार द्वितीय सदन में समाधान प्रस्तुत किया गया है। हॉबहाउस ने ठीक ही निर्देश किया है कि इसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसपर विचार करना चाहिये। फ़िलहाल सभी प्रतिबंध प्रगतिशील प्रवृत्तियों पर लगे हैं और प्रतिक्रियावादी आंदोलनों पर कोई भी नहीं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिससे कि अनुदार बहुमत द्वारा प्रस्तावित उग्र उपायों का निराकरण किया जा सके, जबकि सामान्यतः उदारवादी बहुमत को कुलीन उच्चसदन, न्यायालय और प्रायः अल्पमत को मान्य समाज की अनुकूल प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः हॉबहाउस ने इसे १९११ के पार्लियामेंट एक्ट के पास होने से कई वर्ष पहले लिखा था जिससे कि हाउस आफ़ लार्ड्स की वीटो शक्ति छीन ली गई।

अल्पसंख्यकों के संरक्षण को निष्पक्षता से कार्यान्वित करने के लिये हॉबहाउस ने एक निष्पक्ष द्वितीय सदन का सुझाव दिया है, जिसे सरकार को हटाने की शक्ति न होगी किंतु उचित विषयों पर जनता का मत जानने के लिये भेजने का अधिकार होगा। इस प्रकार उसने जनमत के हवाले (Referendum) के सीमित प्रयोग का समर्थन किया है, किंतु यह भी कहा है कि वित्तीय विषय और कुछ ही स्वार्थों या स्थानों को प्रभावित करनेवाले अन्य विषय इस प्रकार की कार्यप्रणाली से पृथक् कर दिये जाने चाहिये।

हॉबहाउस ने निर्देश किया है कि किस प्रकार इंगलैंड के अनुभव ने प्रजातंत्र के विरुद्ध एक सामान्य अभियोग को, अर्थात् यह कि यह निकृष्ट लोगों के हाथ का खिलौना है, असिद्ध किया है। अंत में जैसे ही इंगलैंड मे १८६७ और १८८४ में जनता को मताधिकार मिला उसने वैसे ही अनुदार दल के हाथ में शक्ति प्रदान की और दो दशकों तक अधिकांश समय उसे वहां रखा: "नये ब्रिटिश प्रजातंत्र का पहला कार्य अनुदारों को सत्ता पर प्रतिष्ठित करना और आंशिक अपवादों को छोड़ उन्हें लगभग बीस वर्ष तक क़ायम रखना था। कभी भी दोनों पक्षों के भयों या आशाओं में इतनी अधिक निराशा नही हुई।"[५५]

हॉबहाउस ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या हम एक कार्यकुशल नौकरशाही या एक अंशतः गड़बड़ करनेवाले प्रजातंत्र में से किसी एक को पसंद करें! उसका विश्वास है कि प्रजातंत्र अपने समस्त दोषों के साथ भी मानवजाति के भविष्य के लिये अधिक आशा प्रदान करता है। नौकरशाही कार्यकुशल प्रशासन का श्रेष्ठ साधन है किंतु बड़े पैमाने पर नीति निर्धारित करने के लिये वह बहुत कम अनुकूल है। यह "एक लक्ष्य को निर्धारित करने की अपेक्षा एक लक्ष्य का साधन है।" पुनः, एक नौकरशाही अपने कार्य में यंत्रवत् हो जाती है और वह व्यक्तिगत व्यक्तित्व के विकास के लिये कोई व्यवस्था नहीं

करती : 'जब प्रशासनिक कार्यकुशलता को सर्वोच्च लक्ष्य मान लिया जाता है, तब व्यक्तिगत स्वाधीनता और धार्मिक तथा राष्ट्रीय भिन्नतायें गौण और आधीन विषय जाती है।

यहां पर कमज़ोर भाई का विशेष ख्याल नहीं किया जाता, न ही दोषी के साथ अधिक सहनशीलता बरती जाती है। मशीन के चक्के में मानवता के ये कोमल तत्व पिस जाते हैं।[५६]

हॉबहाउस ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार, अंतिम विश्लेषण में प्रजातंत्र का भविष्य सभ्यता की सामान्य प्रगति और राजनीति के समाजीकृत सिद्धांत के विकास से संयुक्त है। कोई भी जनता अपनी पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता का उपभोग नहीं करती जब तक कि उसकी औद्योगिक अवस्था ऐसी है जिससे जनता की जीवनशक्ति का शोषण होता है या जब तक कि इसके अंतर्राष्ट्रीय मामले ऐसी अवस्था में है कि सशस्त्र तैयारी आवश्यक है : "हम उचित रीति से यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि प्रजातांत्रिक सरकार का मत व्यक्तिगत स्वाधीनता, स्वच्छंद शासन के विरुद्ध क़ानून की सर्वोच्चता, राष्ट्रीय अधिकार, आक्रमण करने की भूल, प्रजातीय और वर्गसत्ता सिद्धांत और व्यवहार में घनिष्टतया एक दूसरे से संयुक्त है।" [५७]

(घ) प्रभुशक्ति, स्वाधीनता और राष्ट्रीय अधिकार

हॉबहाउस का प्रभुशक्ति (Sovereignty) शब्द का प्रयोगक्रम मुश्किल से ही स्पष्ट या संगत है। ऐसा लगता है कि अधिकांश उदाहरणों मे उसने इसे क़ानून निर्मात्री और प्रशासक शक्ति के अर्थ में प्रयोग किया है, हालाकि कभी-कभी इससे संविधान के पीछे विद्यमान अंतिम शक्ति के अर्थ का भान होता है, जोकि प्रजातांत्रिक देशों में जनसाधारण मे निहित है। मूलतः यह वैध और राजनैतिक प्रभुशक्ति के बीच डायसी का भेद है; हॉबहाउस ने स्पष्टता से यह नही बताया कि विभिन्न समयों में उसके मन में कौन-सा प्रयोग था। अपने 'मारेल्स इन इवोल्यूशन' में उसने कहा है कि नागरिकता पर आधारित राज्य की पृथक् विशेषता यह तथ्य है कि क़ानून अब लोक-इच्छा का अवतार है और सरकार क़ानून की प्रभुसत्ता के आधीन है। उसने कहा है कि संयुक्त-राज्य(अमेरिका) की संघप्रणाली की विशेषता राज्यों और राष्ट्र में प्रभुशक्ति का विभाजन है। निस्संदेह सामान्यतः स्वीकृत अर्थों में, प्रभुशक्ति का यह आधारभूत गुण है कि उसे विभाजित नहीं किया जा सकता; किंतु ऐसा लगता है कि यहां पर प्रोफेसर हॉबहाउस सरकारी शक्ति का ज़िक्र कर रहा है। अपनी रचना 'लिबरैलिज्म' में [५८] उसने फिर यह कहा है कि "पूर्ण निरपेक्ष का प्रभुशक्ति का पुराना सिद्धांत मर चुका है। आज के बड़े राज्य सरकार के अंदर सरकार की जटिल प्रणाली, अधिसत्ता द्वारा सीमित अधिसत्ता की एक जटिल प्रणाली को दर्शाते है।" यहां पुनः "प्रभुशक्ति" से उसका तात्पर्य सरकारी शक्ति होना चाहिये, क्योंकि किसी भी महत्त्वपूर्ण आधुनिक राज्य में वास्तविक प्रभुशक्ति विभाजित और वितरित नहीं है।

अपनी 'डिमोक्रेसी एंड रिएक्शन' में एक अंतर्राष्ट्रीय राज्य या अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के प्रशासन की संभावना की विवेचना करते हुए उसने यह युक्ति दी है कि यदि क़ानून के प्रशासन के लिये प्रथासम्मत पूर्व उदाहरण पर्याप्त सबल है, तो क़ानून को उसके पीछे प्रभुशक्ति के हुए बिना भी प्रशासित किया जा सकता है। किंतु उसने अनेक स्थानों पर जनता द्वारा सरकार के परोक्ष नियंत्रण—मतदाताओं की क़ानून और राजनैतिक नीति के प्रश्नों को निर्धारित करने की अंतिम शक्ति के रूप में अंतिम लोकप्रिय प्रभुशक्ति की अवधारणा का भी ज़िक्र किया है। इन दृश्य असंगतियों के बावजूद भी, यह न समझा जाना चाहिये कि उसे प्रभुशक्ति की प्रकृति की स्पष्ट और निश्चित अवधारणा न थी, क्योंकि उसकी रचनाओं में इस शब्द के आकस्मिक संकेत ही मिलते हैं और कहीं भी उसने इस अवधारणा की एक औपचारिक परिभाषा व व्याख्या करने का प्रयास नहीं किया।

हॉबहाउस की स्वाधीनता की विवेचना और अधिसत्ता से उसका समन्वय विशेष रूप से स्पष्ट और संतोषजनक है। उसने अत्यंत सामान्य अर्थ में स्वाधीनता की परिभाषा की है: "मानसिक और नैतिक और सब प्रकार के साहचर्ययुक्त तथा व्यक्तिगत जीवन की अवस्था का विस्तार जोकि अपने महत्त्व के लिये बुद्धि और इच्छा की सहज अनुभूति और सच्चे सहयोग पर निर्भर है।" [९] व्यवहारतः, स्वाधीनता का अर्थ व्यक्तिगत आचार की उन क्रियाओं में स्वतंत्रता है जो समाज के अन्य सब सामान्य सदस्यो के ऐसे विशेषाधिकारों में बाधक नहीं हैं। अतएव परिभाषानुसार स्वाधीनता में प्रतिबंध की उपस्थिति निहित है और वस्तुतः एक समाज में स्वाधीनता को कार्यान्वित करने का कार्य समूह के अंतर्गत प्रतिबंधों की एक प्रणाली को सफलतापूर्वक संगठित करने की समस्या है। इसलिये स्वाधीनता और अधिसत्ता के परस्पर-विरोध की पुरानी परंपरा समाप्त हो जाती है—एक सार्वभौम रूप से अनुभूत आदर्श के रूप में, पहली दूसरे के बिना जीवित नही रह सकती; "राज्य द्वारा दमन (Coercion) के कार्य का उद्देश्य व्यक्तिगत दमन को समाप्त करना है, और निस्सदेह, राज्य के अंदर किसी समिति द्वारा व्यक्तियों के दमन को समाप्त करना है। इसी साधन द्वारा यह अपनी विचार व्यक्त करने की स्वाधीनता, व्यक्ति और संपत्ति की सुरक्षा-संविदा की सच्ची स्वतंत्रता, सभा करने और मिलने के अधिकार और अंत में व्यक्तिगत सदस्य के प्रतिरोध के सामने सफलतापूर्वक समान उद्देश्यों को पूरा करने की शक्ति को क़ायम रखता है।" [१०]

हॉबहाउस ने स्वाधीनता को इसके विभिन्न पहलुओं में बांटा है—नागरिक, वित्तीय, व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, घरेलू, स्थानीय, नस्लीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और राजनैतिक। प्रत्येक में अंतर्हित स्वाधीनता के अंश और गुण और उनके लिये आवश्यक प्रतिबंधों का निर्देश कर उसने इस चर्चा को उच्चकोटि की ठोसता प्रदान की है जोकि अन्यथा आध्यात्मिक सामान्यताओं में उलझी रहती।

इसमें व्यक्तियों और समग्ररूप से समाज, दोनों में अंतर्हित स्वाधीनता और प्रतिबंध के प्रश्न स्वभावतः इस प्रश्न पर ले जाते हैं कि प्रतिबंधों का क्या औचित्य है। प्रायः यह

औचित्य व्यक्तियों के तथाकथित अधिकारों में पाया जाता है, और हॉबहाउस ने इन अधिकारों का वस्तुतः क्या अर्थ है और समाजशास्त्रीय दृष्टि से इनमें क्या अंतर्हित है इसके विश्लेषण पर ध्यान दिया है। उसने देखा कि अपने सबसे सामान्य अर्थ में अधिकार एक आशा है जोकि समुदाय के सामान्य कल्याण की वृद्धि के अनुकूल होने के नाते एक निष्पक्ष व्यक्ति को आकृष्ट करेगी। व्यक्ति का ऐसा कोई अधिकार नहीं हो सकता जोकि समुदाय की समान भलाई के विरुद्ध हो या समाज से स्वतंत्र हो। अतएव पुराने आध्यात्मिक और कानूनी अर्थ में, जिनके अनुसार मनुष्य को समाज और सरकार से पहले और उससे स्वतंत्र अधिकारों से युक्त कल्पित किया गया था, कोई "प्राकृतिक अधिकार" नहीं हो सकते। फिर भी यदि कोई उद्विकसित समाज के समन्वित कार्य को प्राकृतिक कल्पित करे तो वह समाजशास्त्रीय अर्थ में तत्काल प्राकृतिक अधिकारों को देख सकता है। ऐसे प्राकृतिक अधिकार वे अपरिहार्य स्वाधीनतायें और मुक्तियां हैं जोकि समाज समग्र रूप से समाज के कल्याण और उसके घटक सदस्यों की भलाई के उचित समायोजन को प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को प्रदान करेगा :

"मनुष्य के अधिकार वे आशायें हैं सामान्य भलाई जिनके चाहने का समर्थन करती है और हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं कि ये मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार हैं यदि हम यह मान लें कि सामान्य भलाई समाज के जीवन को प्रभावित करनेवाली कुछ प्राथमिक अवस्थाओं पर निर्भर है, जोकि जनता चाहे स्वीकार करे या न करे, सत्य सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक अधिकार वे आशायें हैं जिनकी कि समाज को अपने सदस्यों को गारंटी करना उचित है, चाहे वह वस्तुतः उनकी गारंटी करे या न करे। यदि यह मत स्वीकार कर लिया जाय तो सामान्य भलाई की अवधारणा जितनी निश्चित होगी उतनी ही पूर्णता से समाज व्यक्तिगत सदस्यों के प्राकृतिक अधिकारों की गारटी देगा।" [११]

अतएव एक अधिकार व्यवहारतः केवल सामाजिक कल्याण की ही एक शर्त है, और ऐसे अनेक अधिकार होने चाहिये; यह "सिद्धांतत : सामाजिक दर्शन द्वारा परिभाषा करने और व्यवहार में राजनैतिक दूरदर्शिता द्वारा विभिन्न शर्तों के परिणामों के समायोजन की समस्या है।" [१२]

इस प्रकार स्वाधीनता एक सामाजिक अवधारणा है जिसमें कि व्यक्ति और समूह के आधार पर इस अंश तक संयम (Restraint) अंतर्हित है जिस अंश तक कि वह समाज और अपने घटक सदस्यों के लिये अधिकतम स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है। यह संयम स्वयं व्यक्तियों के अधिकारों से, जोकि सार्वजनिक कल्याण की अनिवार्य शर्तें है, पुष्ट होता है। इस प्रकार स्वाधीनता और अधिकार दोनों का ही सामाजिक उद्गम और औचित्य है, और स्वाधीनता के साथ अधिसत्ता का समन्वय यह सिद्ध कर किया जाता है कि वस्तुतः यह अपने जन्म, जीवन और क़ायम रहने के लिये अधिसत्ता पर निर्भर है।

(ङ) राज्यक्रिया का उचित क्षेत्र

राज्य के प्रत्येक सिद्धांत की जटिल समस्याओं के विवेचन में राजनैतिक क्रिया के कार्य और क्षेत्र तथा अधिसत्ता और स्वाधीनता के सामंजस्य की हॉबहाउस की विवेचना समाजशास्त्रीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है। सर्वप्रथम, उसने एक सामान्य नियम प्रस्तुत किया है कि निश्चित अर्थों में वहां राज्यक्रिया के क्षेत्र की परिभाषा का प्रयास करना और साथ ही प्रत्येक समाज के लिये उस परिभाषा को सत्य प्रमाणित करना निरर्थक है। राज्यक्रिया का क्षेत्र किसी समाज में विद्यमान बुनियादी सामाजिक अवस्थाओं पर निर्भर है। यदि समाज अत्यंत एकतत्वीय है, राज्य सफलतापूर्वक पर्याप्त अंश में क्रिया और हस्तक्षेप कर सकता है, जबकि अनेक राष्ट्रीयताओं, विभिन्न प्रथाओं और आदर्शों से निर्मित समाज में एक ऐसा कार्यक्रम क्राति पैदा कर देगा। समस्या को यदि गणित की भाषा में रखा जाय तो राज्यक्रिया का क्षेत्र विवेच्य समाज की रचना, प्रगति और संगठन का कार्य (Function) है : "राज्य का वैध क्षेत्र विचारणीय समाज की संपूर्ण परिस्थितियों पर निर्भर है। अपेक्षित प्रकार की बाध्यता, जिस अंश में यह बाध्यता कार्यान्वित की जा सकती है, और समाज के सामान्य जीवन पर इसके प्रयोग के हस्तक्षेप परिणाम मूलत: समुदाय की रचना और सरकार से उसकी प्रजा से संबध पर निर्भर होगे।" [६३]

किंतु इसका यह अर्थ नही कि सामान्य अर्थों में राज्यक्रिया के उचित क्षेत्र को, जोकि किसी भी समाज पर लागू हो, परिभाषित नहीं किया जा सकता। एक सामान्य सिद्धांत के रूप में यह कहा जा सकता है कि राज्यक्रिया का उचित क्षेत्र उन क्रियाओं को करने में निहित है जिनमे कि समाज के लिये एकरूपता और सम्मिलित क्रिया अपेक्षित है :

"राज्यक्रिया के इस कार्य को अब सामान्य अर्थों मे परिभाषित किया जा सकता है कि यह सामान्य जीवन के लिये श्रेष्ठतम अवस्थायें प्राप्त कराने का कार्य है, (क) जहां तक कि यह सार्वजनिक साधनों और सरकारी यंत्र द्वारा श्रेष्ठतम रीति से पाये जा सकते हैं, (ख) जहां तक कि ये अवस्थायें केवल बाध्यता द्वारा प्राप्तव्य है : अर्थात् जहां कि सार्वभौम न होने पर क्रिया असफल रहती है और पुन: जहां कि नियम के अभाव में एक आदमी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे दूसरे पर दबाव डाल सकता है, उसके अधिकारों का उल्लंघन कर सकता है, उसके तर्कसंगत चुनाव मे बाधा डाल सकता है, या उसकी दुर्बलता अथवा अज्ञान का लाभ उठा सकता है।" [६४]

राज्य सामूहिक रूप से मनुष्यों से और अत्यंत सामान्य विषयों से निपटने के लिये एक समिति है, और इसलिये इसके प्रशासन में उस नमनीयता का अभाव है जोकि सामाजिक जीवन के उच्चतर पक्षों या ऐसे प्रश्नों में जिनमें कि मत और क्रिया की भिन्नतायें उचित हैं, आवश्यक है। इसका कार्य मुख्यत: सामाजिक कल्याण की उन आधारभूत साधारण बुनियादी स्थापनाओं से निपटना है, जोकि स्वैच्छिक प्रयास और क्रिया की संरचना को सुरक्षा और सामंजस्य से कार्य करने देंगे।

"राज्य का जीवन संस्थाओं के निश्चित संस्थाओं के रूप में संगठित है, इसके अध्या-देशों को सार्वभौम प्रयोग के क़ानूनों और और नियमों में सम्मिलित करना पड़ता है, और इसे मनुष्यों से सामूहिक रूप में और समस्याओं से सामान्य के अनुसार निपटना चाहिये, विशेष के अनुसार नही। अतएव कठिनाई से इसे जीवन की वैयक्तिकता के अनुकूल बनाया जाता है। यह मानवीय भिन्नता से निपटने के लिये एक भोंडे यंत्र की तरह है। बेकन के शब्दों में, यह मानव प्रकृति की सूक्ष्मता से निपटने के लिये अपर्याप्त है। इसका क्षेत्र सामान्य शुष्क और साधारण है; इसका कार्य समाज की सजावट की अपेक्षा उसकी संरचना को सुदृढ़ करना है। यह उन मामलों की अपेक्षा जिनमें कि मत की भिन्नतायें है, ऐसे मामलों को संभाल सकता है जिन पर कि साधारण जनता सहमत है।" [५]

वस्तुतः यह अवधारणा "पूर्णताप्राप्त बुद्धिसंगति" (Perfected Rationality) के रूप में हीगल की राज्य की अवधारणा से बहुत दूर है, किंतु संभवतः यह सत्य के कहीं अधिक निकट है।

इस प्रकार हॉबहाउस ने सामान्य अर्थों मे राज्यक्रिया के वैध क्षेत्र को इस प्रकार स्थापित किया : वह क्षेत्र जोकि जहां आवश्यक है वहां दमन द्वारा मुख्यतः एकरूपता लाने से, उन अवस्थाओं की उन्नति से जोकि समाज और व्यक्ति के सावयवी और संतुलित विकास को संभव बनाती है और अंततः, साधारण दैनिक विषयों के संभालने से संबंधित है।

प्रथम, यहां तक कि राज्य की व्यक्तिगत संपत्ति के प्रति उचित धारणा का संबंध है, उसने पुरानी आध्यात्मिक और जन्मजात प्राकृतिक संपत्ति के अधिकार के क़ानूनी सिद्धांत तथा समाजवादी दृष्टिकोण के मध्य का मार्ग अपनाया है, जो इस सीमा तक संपत्ति के सामाजिक आधार पर ज़ोर देता है कि यह व्यक्तिगत मिल्कियत के मनोवैज्ञानिक महत्त्व के तत्व की उपेक्षा करता है। संपत्ति की बुनियाद मूलतः सामाजिक है, चूंकि समुदाय की संगठित शक्ति के संरक्षण के बिना, व्यक्ति की संपत्ति अत्यंत अरक्षित रहती है, और समाज के सहयोगी श्रम के बिना संपत्ति का बहुत कम ही उत्पादन होता है।

"समस्त आलोचना के बावजूद, अभी भी कुछ लोग इस प्रकार संपत्ति के अधिकार के विषय में बात करने लगते है मानो कि प्रकृति या ईश्वर ने कुछ भाग्यवान् व्यक्तियों को दान किये है, और मानो कि इन व्यक्तियों को राज्य को अपने सेवक के रूप में, क़ानून के यंत्र का मुफ्त में लाभ उठाकर अपनी संपत्ति का निर्विघ्न भोग करने के लिये अपने नौकर की तरह आदेश देने का अधिकार है। वे भूल जाते है कि समाज की संगठित शक्ति के बिना उनके अधिकारों का धेला भर महत्त्व नहीं।" [६]

दूसरी ओर, प्रयास को प्रोत्साहित करने में व्यक्तिगत सांपत्तिक अधिकारों के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। बिना इस व्यक्तिगत उपक्रम के समाज उतनी ही अक्षमता से कार्य करता जितना कि वह आर्थिक जीवन के सामाजिक आधार के अरक्षित होने पर करता : "इस व्यक्तिगत प्रयास को जारी रखना और प्रोत्साहित करना अच्छे आर्थिक

संगठन की एक आवश्यकता है, और यहां बिना यह पूछे कि समाजवाद की कौन-सी विशिष्ट धारणा इस आवश्यकता को पूरा करेगी या नही, हम विश्वासपूर्वक यह कह सकते हैं कि समाजवाद का कोई भी रूप जो इसकी उपेक्षा करेगा शायद ही कभी स्थायी सफलता पा सके।" [६७]

संपत्ति की समस्या का उचित समाधान व्यक्तिगत प्रयास को पुरस्कृत होने देना है जोकि इसके कार्यकुशल संपादन को सुनिश्चित करेगा और सामूहिक कल्याण की वृद्धि के लिये बाक़ी संपत्ति को समाज के हाथ में दे देगा।

"अतएव उदारवादी अर्थशास्त्र का केंद्रबिंदु समान सेवा और पुरस्कार का समीकरण है। यह सिद्धांत है कि सामाजिक महत्त्व के प्रत्येक कार्य के लिये ऐसा पारिश्रमिक अपेक्षित है जोकि उसके प्रभावकर संपादन को उद्दीप्त कर सके और जारी रख सके; कि प्रत्येक व्यक्ति जो ऐसा कार्य संपादित करता है उसे आचारशास्त्र के कठोर अर्थों में ऐसा पारिश्रमिक पाने का अधिकार है और इससे अधिक पाने का नही; कि सामाजिक उद्देश्यों के लिये विद्यमान संपत्ति का अवशेष समुदाय के अधिकार में होना चाहिये।" [६८]

हॉबहाउस ने आज के बड़े संपत्तिवालों से, जोकि संपत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व की सेवाओं के अनपात से कहीं अधिक उनके जायदाद और राजनीति पर नियंत्रण को दर्शाती है, निपटने के लिये जिस पद्धति की सिफ़ारिश की है, वह उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति पर, व्यक्तिगत संपत्ति के समाज द्वारा उत्पन्न रूपों और अत्यधिक बड़ी आयों पर कर लगाने की प्रगतिशील योजना है : "कर-आरोपण का वास्तविक कार्य समाज के लिये संपत्ति के उस तत्व को जिसका कि सामाजिक मूल है, यहां अधिक व्यापक रूप मे, उस सबको, जोकि जीवित व्यक्तियों के प्रयासों की सृष्टि का परिणाम नही है, समाज के लिये उपलब्ध कराना है।' [६९]

यदि हॉबहाउस आज जीवित होता, तो वह साम्राज्यवाद और युद्ध के विनाशकारी प्रभावों के संबंध में अपनी अशुभ भविष्यवाणियों और अत्यंत धनी लोगों पर कड़े कर लगाने के अपने प्रस्तावों को नाटकीय और पूर्णरूप से पुष्ट हुआ पाता। द्वितीय विश्वमहायुद्ध ने ब्रिटिश सामाज्य को साहूकार से क़र्ज़दार में रूपांतरित कर दिया और उसकी समृद्धि और साख को छिन्न-भिन्न कर दिया। इन भारों ने १३ मार्च १९४७ मे समाप्त होनेवाले वित्तीय वर्ष में उस कठोर कर-सूची को प्रस्तुत किया जिसमे कि कुल पांच करोड़ की आबादी में से कर देने के बाद पचास से भी कम व्यक्तियों की आय २४,००० डालर से अधिक रह सकी।

समाज को यथासंभव अर्जित (Earned) और अनर्जित (Unearned) आय के बीच भेद करना चाहिये। उसे अनर्जित प्रकार पर ख़ूब अधिक और अर्जित आय पर पर्याप्त ऊंचा कर लगाना चाहिये। जिससे कि वे समाज को जोकि आय प्राप्त कर देता है उससे अनुचित रूप में ऊंची न उठ सकें। हॉबहाउस स्वीकार करता है कि इसका निर्णय करना कठिन होगा कि एक महान् प्रतिभा समाज को क्या राशि प्रदान करती

है किंतु वह मानता है कि यह कभी भी एक व्यावहारिक प्रश्न नहीं है, "चूंकि प्रतिभाशाली व्यक्ति अपनी तीव्र प्रेरणा द्वारा देने को बाध्य होता है और समाज से वह केवल एक ही पुरस्कार मांगता है कि उसे अकेला छोड़ दिया जाय और उसे कुछ शांति और ताज़ी हवा लेने दी जाय।" [७०]

अर्नजित आयों का यह सामाजिक अपहरण यह प्रश्न उठाता है कि इस प्रकार प्राप्त राजस्व का क्या किया जाय। यह समस्या किसी भी प्रकार इतनी कठिन नहीं है जितनी कि उस विधि को जुटाना जिससे कि समाज संपत्ति की सृष्टि में अपने योगदान का उचित पुरस्कार पाने में समर्थ होगा। सार्वजनिक शिक्षा और सफ़ाई के क्षेत्र में उपयोगी व्यय के अवसर किसी भी अर्थ मे समाप्त नहीं हुए हैं। फिर ग़रीबों की दशा सुधारने का प्रश्न सदैव विद्यमान है। हॉबहाउस ने इस उद्देश्य के लिये धनिकों पर कर लगाने के विरुद्ध दी गई युक्ति की भ्रांति की ओर निर्देश किया है, जोकि "पाल का भुगतान करने के लिये पीटर को लूटना" वाक्यांश में व्यक्त की जाती है। वह दर्शाता है कि यह अभियोग किस प्रकार निराधार है, क्योंकि, पहले तो व्यक्ति को उसके द्वारा स्रजित संपत्ति की अपेक्षा अधिक संपत्ति पाने की अनुमति देना उसे समाज को लूटने की अनुमति देना है, दूसरे सावयवी और समन्वित सामाजिक जीवन की पूर्ति की आवश्यकतायें यह मांग करती हैं कि किसी को भी पर्याप्त भौतिक सुविधा के अभाव में कष्ट सहने न दिया जाय। उसका यह भी विश्वास है कि ग़रीबी के प्रश्न को सुलझाने की उचित विधि व्यक्तिगत निर्धनता को राहत देने के बजाय सामाजिक निवारण के लक्ष्य को अपनाना है। वृद्धावस्था में पेशनें और सामाजिक बीमा सही दिशा में क़दम हैं।

ग़रीबी के संबध मे राज्य की क्रिया के क्षेत्र की चर्चा स्वभावतः हमे इस विश्लेषण की ओर ले जाती है कि श्रमिको के प्रति राज्य की क्या सामान्य धारणा हो। श्रमिकों की समस्याओं मे राज्य के वैध हस्तक्षेप का आधार दोहरा है। पहला, राज्य का यह कर्तव्य है कि वह उन औद्योगिक सविदाओं (Contracts) को नियंत्रित करे जोकि ऐसी अवस्थाओं के अंतर्गत किये जाते है जिनमें कि एक पक्ष को स्पष्ट सुविधा प्राप्त है। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि अपने स्वामी से सौदा तय करने मे एक श्रमिक को असुविधा है। इस कर्तव्य के स्वीकार किये जाने के फलस्वरूप ऐसे क़ानून बने है जिनमें पहले स्त्रियों और बच्चो के श्रम की अवस्थाओं का नियम है और क्रमशः वयस्क पुरुष श्रमिकों की अवस्था के ऊपर सरकार के निरीक्षण का विस्तार हुआ है। श्रम में राज्य के हस्तक्षेप का अन्य औचित्य राज्य द्वारा अपने साधारण नागरिकों के जीवन के सामान्य संचालन के लिये आवश्यक सुविधायें जुटाने के कर्तव्य में मिलता है :

"यदि हम इस विचार के अनुसार जिससे कि हम अभी तक कार्य ले रहे हैं, हम यह स्वीकार करें कि समस्त स्वस्थ प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों से यह आशा की जाती है कि वे सभ्य प्राणियों, मेहनती श्रमिकों, अच्छे माता-पिताओं, नियमित और कार्यकुशल नागरिक की भांति जीवन बितायें तो दूसरी ओर समाज के आर्थिक संगठन का यह कार्य है कि वह

उन्हें ऐसा जीवन बिताने के लिये भौतिक साधन प्राप्त कराये, और समाज का यह तात्कालिक कर्तव्य है कि वह ऐसे स्थलों को निर्दिष्ट करे जहां कि ये साधन कमी को पूरा करने में असफल हैं। इस प्रकार सामाजिक कार्यकुशलता की अवस्थायें अल्पतम औद्योगिक पारिश्रमिक निश्चित करती हैं, और यदि उन्हें राज्य की जान-बूझकर की हुई क्रिया के बिना प्राप्त न कराया जा सके तो उन्हे राज्य की इच्छित क्रिया द्वारा प्राप्त कराना चाहिये।" [७१]

इससे आगे यह समस्या है कि राज्य किस सीमा तक परिवार के मामलों और धर्म के मामलों तथा शिक्षा में उचित हस्तक्षेप कर सकता है। राज्य परिवार के मामलों में उसे व्यक्तियों की स्वाधीनता में हस्तक्षेप के निवारण के लिये और "माता-पिता द्वारा संरक्षण की उपेक्षा के विरुद्ध बच्चे के अधिकारों, एक भावी नागरिक के रूप में और सामाजिक प्रणाली मे एक वयस्क व्यक्ति के नाते अपना स्थान लेने के लिये अपेक्षित प्रशिक्षण के समान अवसर के आधार पर" [७२] वह हस्तक्षेप को उचित ठहराता है। धर्म के मामलों मे राज्य को किसी विशिष्ट प्रकार की पूजा की व्यवस्था का प्रयास करने से बचना चाहिये, किंतु साथ ही उसे ऐसी धार्मिक रीतियों का, जोकि समाज-कल्याण को हानि पहुंचाती हैं, निराकरण करना चाहिये : "व्यक्ति को इसकी स्वाधीनता तो है कि वह तर्कमदा के सिद्धांत या मुहम्मद के धर्म की शिक्षा दे। किंतु व्यक्ति को उनकी ऐसी शिक्षाओं को अमल में लाने की छूट नहीं है जोकि अन्य के अधिकारों का हनन करे, या शांति को भंग करे।" [७३] शिक्षा के संबंध में, व्यक्ति का समाज से समन्वित समायोजन का और समाज के सावयवी संचालन का संपूर्ण सिद्धांत, जो हॉबहाउस के सामाजिक सिद्धांतों का आधार है, यह मांग करता है कि व्यक्ति को सामाजिक जीवन मे सक्रिय भाग लेने के लिये तैयार किया जायेगा। इसलिये राज्य गंभीरतम असंगति का दोषी हुए बिना अपने भावी नागरिकों को पर्याप्त शिक्षा प्रदान करने के कर्तव्य की उपेक्षा नही कर सकता।

हॉबहाउस एक शताब्दी पहले प्रस्तुत कान्ट के इस मत से सहमत है कि एक राजनैतिक समाज की आंतरिक व्यवस्था का सुधार और पूर्णतया बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था से अभिन्नतया जुड़े हुए हैं। अपनी "डिमोक्रेसी एंड रिएक्शन' और प्रथम विश्वयुद्ध के काल में लिखी गई पुस्तकों में सर्वत्र हॉबहाउस ने स्वदेश में सामाजीकृत प्रजातंत्र और वैदेशिक नीति में सैनिकवाद और साम्राज्यवाद के बीच बुनियादी विरोध को बहुत स्पष्टता से दर्शाया है : "लीग आफ़ नेशंस का समर्थक तब तक आंतरिक सुधार की आवश्यकता में एक शुभ नारा ही देखता है जब तक कि बाहरी अशांति के विरुद्ध सुरक्षा की गारंटी नहीं दी जाती। [७४]

(च) क्या सामाजिक प्रगति को चेतन प्रयास द्वारा प्राप्त किया जाय ?

राजनैतिक और सामाजिक सुधार की अपनी विवेचना में हॉबहाउस ने अपनी दो आधारभूत थीसिसों पर ज़ोर दिया है—सामाजिक समन्वय (Harmony) की अधिकाधिक सफल प्राप्ति के रूप में प्रगति का विचार और यह सिद्धांत कि पाश्चात्य समाज अब इस अवस्था पर पहुंच गया है कि जहां वह सामाजिक मन की इच्छित क्रिया

द्वारा अधिक विकास को प्राप्त कर सकता है। सबसे पहले तो "निरंतर, स्वचालित, अवश्यंभावी प्रगति" की पुरानी स्पेन्सरीय और छद्म-डार्विनीय अवधारणा को त्याग देना चाहिये, क्योंकि सामाजिक विकासवाद प्राणिशास्त्रीय विकासवाद से अल्पाधिक भिन्न है, और उसके तत्व अपने संचालन में सावयवी विकासवाद में प्राणिशास्त्रीय कारकों से बहुत भिन्न है। यद्यपि मानवविकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में सामाजिक प्रगति की प्राप्ति के लिये स्वेच्छा से आयोजित क़ानून, यदि अज्ञात नही तो असामान्य अवश्य था, अब समाज इस स्थिति पर पहुंच गया है जहां कि वह, यदि चाहे तो, अपने विकास की दिशा और अंश को नियंत्रित कर सकता है। यहां पर हॉबहाउस ने वार्ड को मुख्य थीसिस को अपनी सहमति दी है : "विचारों के विकासवाद में, अब जैसा कि मैं इसे समझता हूं, तब मोड़ आता है जबकि मानवता के विकास की अवधारणा मानव-प्रयत्न के सचालक सिद्धांत के रूप में स्पष्ट चेतना के क्षेत्र में प्रवेश करती है, और जिस अनुपात में इस वावयांश को ठीक प्रकार समझा जा सकता है, इसमें अपनी समस्त विविधता में मानव-उद्देश्यों के योग को सम्मिलित किया जाता हुआ देखा जा सकता है, प्रगति में पूर्ण सामाजिक सहयोग की अवस्थाओं का अनुभव और जीवन का बुद्धिसंगत नियंत्रण का विस्तार निहित है।" [७५]

केवल प्रगतिशील क़दमों को ही सामाजिक मन के इच्छित नियंत्रण के अंतर्गत नहीं लाना चाहिये; बल्कि उन्हें अपने दृष्टिकोण मे संश्लेषणात्मक और अपने उद्देश्य में समाज की समन्वित विकास की वृद्धि होनी चाहिये, क्योंकि यही प्रगति का सार है। वहीं पर ज़तरा पैदा होता है जहां समाज-सुधार के लिये संकीर्ण आंदोलन केवल सुधार की एक आवश्यकता या एक विधि पर ही ध्यान देते है। समाज-सुधार की कोई भी योजना तब तक स्थायी रूप से सफल नही हो सकती जब तक कि वह समस्त समाज के लिये समन्वित और सावयवी विकास की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती। इस संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को संभव बनाने के लिये जिस चीज़ की आवश्यकता है वह समाज का एक व्यापक और सुसंतुलित विज्ञान है।

(छ) अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का समाजशास्त्र

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विवेचन मे हॉबहाउस आधुनिक राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद का सबसे कट्टर आलोचक था, वह सामाजिक प्रगति की वृद्धि के लिये युद्ध की आवश्यकता के विचार और इस धारणा का कि वैदेशिक मामलों के क्षेत्र में व्यक्तिगत संबंधों का आचारशास्त्र लागू नही होता, कठोर शत्रु था। वस्तुतः यह कौबडन द्वारा स्थापित ग्लैडस्टन द्वारा जीवित रखी गई उदारवादी परंपरा के अनुरूप था। एक उत्कृष्ट अवतरण में उसने कमज़ोर लोगों को हानि पहुंचा अन्य देशों पर आक्रमण के लिये साम्राज्यवादी कैफ़ियत की बुनियादी प्रवंचना का पर्दाफ़ाश किया है :

"निस्संदेह आक्रमण के प्रत्येक उदाहरण में कोई अच्छा कारण प्रस्तुत किया जाता रहा है। हम सदैव ही अपनी रक्षा करते रहे है। हमारा युद्ध में कूदने का कोई इरादा न था।

युद्ध में प्रवेश करने के बाद भी हमारा देश पर अधिकार करने का कोई इरादा न था। अस्थायी रूप से देश पर कब्ज़ा कर लेने पर भी हमारा यह निश्चय था कि हम उसे नहीं हड़पेंगे। उसे हड़पने के बाद हमें यह विश्वास हो गया कि यह संपूर्ण प्रक्रिया शुरू से आखिर तक अवश्यंभावी थी। प्रत्येक अनेक अवसरों पर हमने विशुद्ध रक्षा के लिये कार्य किया, और प्रत्येक अनेक अवसर पर हम अपने आक्रांता पड़ोसियों की भूमि पर आधिपत्य जमाने में सफल हुए। ऐसी काल्पनिक कथा का अभी भी गंभीरता से समर्थन किया जा सकता है। नंगा तथ्य यह है कि हम बड़े पैमाने पर और अत्यंत दृढ़ता के साथ आक्रमणात्मक युद्ध की स्पष्ट नीति का समर्थन कर रहे हैं और निरंतर इस तथ्य से आंख मूंदने के प्रयास का एकमात्र परिणाम आत्म-प्रवंचना, या एक शब्द में अपनी राजनीति में झूठ के वातावरण का प्रवेश कराना है, जोकि शायद सत्य की निर्लज्ज स्वीकृति से अधिक पतित करनेवाला है।" [७६]

निस्संदेह प्रत्येक साम्राज्यवादी देश अन्यों के अधिकारों को कुचलने के फलस्वरूप स्वदेश में हानि उठाता है। जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है, हॉबहाउस की मान्यता है कि साम्राज्यवाद और प्रजातंत्र परस्पर भिन्न हैं और विदेश में साम्राज्यवादी कार्यक्रम के अनुसरण से स्वदेश मे इसकी प्रतिक्रिया प्रजातांत्रिक शासक के सुधारवादी कार्यक्रम को नष्ट करने में होती है।

प्रजातंत्र पर साम्राज्यवाद की दुर्भाग्यपूर्ण सामान्य प्रतिक्रिया के साथ-साथ, यह स्वदेश में सुधार की आवश्यकता से जनता का ध्यान हटाती है और राज्य के राजस्व को घरेलू सामाजिक अवस्थाओं के सुधार की दिशा में लगाने की अपेक्षा उसे महंगे शस्त्रों में लगाती है।

साम्राज्यवाद की समस्या के एक उपाय के रूप में हॉबहाउस ने व्यवितगत आचार की स्वीकृत संहिता को एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र से व्यवहार के क्षेत्र मे विस्तृत करने का सुझाव दिया है। उसका विश्वास है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी आंतरिक स्थिति को सुधारने और अन्य राष्ट्रों को भी ऐसा करने के लिये स्वाधीन छोड़ उसमें लगना चाहिये। यदि किसी राष्ट्र के पास अन्य राष्ट्र मे स्वेच्छा पूर्वक हस्तक्षेप करने का कोई बहाना हो भी, तो वह विशुद्ध मानववादी आधार पर होना चाहिये। वह स्वीकार करता है कि "जो राष्ट्र कर्तव्य और सम्मान के उच्च मानदंड के पालन करने का प्रयास करेगा या वह अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता की वर्तमान स्थिति में उस व्यक्ति की स्थिति में होगा जोकि सट्टे के बाज़ार में ईसाई सिद्धांतों को कार्यान्वित करना चाहता है, या वह उस क्वेकर की स्थिति में होगा जोकि डाकुओं की संगति में भी अपने धर्म के कठोर नियमों का पालन करेगा।" [७७] फिर भी वह अनुभव करता है कि यदि प्रत्येक राष्ट्र अपने ही अधिकारों को क़ायम रखने के आग्रह पर ही रुक जाय, तो वह इस संबंध में अपने पड़ोसियों को सहयोग देने में कहीं अधिक उद्यतता पायेगा। अंत में उसका विश्वास है कि अंतर्राष्ट्रीय क़ानून के नियमों को प्रशासित करने के लिये एक अंतर्राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के अभाव के बावजूद भी, यदि राष्ट्र हृदय से और सच्चाई

से अपनी कठिनाई को पंचनिर्णय के लिये प्रस्तुत करें तो, प्रथा की शक्ति और बहिष्कार का भय अंतर्राष्ट्रीय क़ानून को कार्यान्वित कराने के लिये सर्वथा पर्याप्त होगा।"[८८]

जैसा कि मानव-संबंधों के सजग और विचारपूर्ण विद्वान् से आशा की जाती है, प्रोफ़ेसर हॉबहाउस की प्रथम विश्वमहायुद्ध में निहित आधारभूत समाजशास्त्रीयसमस्याओं, उसके कारणों और उसके संभावित परिणामों में गहरी दिलचस्पी थी। *The World in Conflict* शीर्षक अपनी छोटी सी पुस्तक में उसने इनका संक्षिप्त विश्लेषण किया है। उसने देखा कि ठीक उस समय जबकि पुरानी यूरोपीय मैत्रियां और सम्मेलन नैतिक पतन से छिन्न-भिन्न हो रहे थे, यूरोप को आक्रमणात्मक सैनिकवाद के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय गारंटी के बिना छोड़ा जा रहा था, उस समय योग्यतम के जीवित रहने के प्राणिशास्त्रीय सूत्र के पतन से पशुबल और शक्तिप्रधान राजनीति (*Realpolitik*) का बहुत ख़तरनाक दर्शन विकसित किया जा रहा था :

"विकासवाद के प्राणिशास्त्रीय सिद्धांत की, जो उन्नीसवीं शताब्दी के विज्ञान का चरमोत्कर्ष था, शक्ति और आत्म-स्थापन (Self-Assertion) के औचित्य के रूप में व्याख्या की जाती है। तब यह क़ानून और नैतिकता और विशेषकर ईसाइयत की नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह का सिद्धात बन गया।....तब युद्ध से पहले वर्षों तक हिंसा का विचार हवा मे था; और यह केवल वह हिंसा न थी जोकि सहज ही क़ानूनी उपचार से निराश होने पर उत्पन्न होती है। वहां शक्ति का एक इच्छित सिद्धांत था, मनुष्यों को सिखाया जा रहा था कि वह बहुत आगे के विषय में न सोचें, तब तक इंतजार न करें जब तक कि वे यह न देख सकें कि वह कहां जा रहे हैं, जान-बूझकर एक बुद्धिसंगत नीति का अनुसरण न करें, बल्कि इसके बजाय अपने को सजह प्रवृत्ति के हवाले कर दें, एक ऐसी चोट करें जो किसी भी चीज़ को तोड़कर संसार में एक गूंज उत्पन्न करे, चाहे उन्हें ठीक तरह यह पता न भी हो कि वह क्या तोड़ रहे है, या उसका क्या नतीजा होगा।"[८९]

यह सिद्धांत, जोकि १९१४ से पहले पाश्चात्य जगत् मे पर्याप्त सामान्य था, कुछ हाल के संबंधित बहुप्रचलित विचारों के जुड़ जाने से जर्मनी में उग्र और अतिशय बन गया : "हीगल का दिव्यराज्य, ट्रीटस्के की शक्ति और नीट्शे की संयम की उपेक्षा उस श्रद्धा में मिल गये है जो जर्मनी के राजनैतिक सैनिक और शैक्षणिक शासकवर्ग को उत्प्रेरित करती है—यह प्रतियोगिता और जर्मन प्रजाति की नियतश्रेष्ठता द्वारा प्रगति की कुछ धुंधली अवधारणा के माध्यम में विलीन हो गई है।"[९०]

इस पुस्तक के बाद के भाग में और अपने *Questions of War and Peace* में हॉबहाउस ने युद्ध के बाद, यदि भविष्य में संसार के १९१४–१८ जैसी प्रलयंकारी विपदाओं से मुक्त होने की कोई आशा की जा सकती है तो, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के आवश्यक पुनर्निर्माण के प्रश्न पर विचार किया है।

हॉबहाउस संसार के राज्यों के सामने दो विकल्प देखता है—एक ओर सैनिकवाद जारी रहना, तैयारी, अधिक युद्ध और पाश्चात्य सभ्यता का संचयात्मक आत्म-विनाश

और दूसरी ओर "राष्ट्रों में मेलजोल को संचालित करने के लिये किसी नियमित रीति की" व्यवस्था। [८१] मानवतावाद और मुक्त व्यापार पर आधारित पुराना सार्वभौमवाद (Cosmopolitalism) कौबडेन के साथ मर गया था। अब सार्वभौमवाद को पुनर्जीवित करने की कोई आशा नहीं है, केवल राष्ट्रीय राज्य की स्वतंत्रता और अंतर्निर्भरता की स्वीकृति पर आधारित अंतर्राष्ट्रीयवादी भविष्य के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिये उचित नींव बन सकता है। हॉबहाउस ऐसे प्रस्तावित समाधानों को जैसे कि हेग ट्रिब्यूनल और पंचनिर्णय के समझौतों, अंतर्राष्ट्रीय क़ानून का उल्लंघन करनेवाले आक्रांता राज्य के विरुद्ध संगठन, और राष्ट्रों के क़ानून को भंग करनेवालों के आर्थिक बायकाट को भावी शांति की अपर्याप्त गारंटी समझता है। वह कहता है: "मै इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्य हूं कि हमें या तो आगे बढ़ना चाहिये या बिल्कुल न चलने का प्रयास करना चाहिये, और मै अपने मित्र मि० हौब्सन से सहमत हूं, कि अंतर्राष्ट्रीय राज्य के निर्माण को छोड़ स्थायी शांति की कोई सैद्धांतिक गारंटी नही है।" [८२] हॉबहाउस का विश्वास है कि विश्वराज्य के निर्माण का सबसे व्यावहारिक तरीक़ा १९१४–१८ की आतोत एलायंस (Entente Alliance) से एक संघ को विकसित करना है, फिर इसे तटस्थ राष्ट्रों के संघ से मिलाकर, और अंततः, जब यह निश्चित हो जाय कि शांति के तत्व जर्मनी में प्रबल है, तब उस देश को भी इसमें सम्मिलित करना है। निम्न अवतरण उसकी योजना का संक्षेप है : "तब मै वर्तमान एलायंस को एक नियमित संविधान और निश्चित कार्ययुक्त स्थायी लीग या फिडरेशन में परिवर्तित होता हुआ देखूगा, जिसमें युद्ध की सामग्री के उत्पादन के नियंत्रण का उपाय भी सम्मिलित होगा किंतु प्रारंभ से ही मैं नये सदस्यों के मुक्त प्रवेश द्वारा लीग के विस्तार की कल्पना करूंगा····यह इसे तत्काल एक साधारण एलायंस से एक विश्वसंघ के सदृश चीज़ में रूपांतरित कर देगा"। [८३]

इसमे तनिक भी संदेह नही कि १९१९ के पेरिस शांति-सम्मेलन की घटनाओं और परिणामों ने आतोंत एलायंस को लीग आफ़ नेशंस का उचित और स्थायी आधार बनने के विषय में अनेक आशावादी उदारवादियों की भांति हॉबहाउस को भी निराश किया। [८४] फिर भी इस पर कोई संदेह नही कर सकता कि शांति-सम्मेलन के नैतिक पतन और उसके बाद की घटनाओं ने हॉबहाउस की इस थीसिस को कि यदि प्रथम विश्वसंघर्ष में यूरोपीय राष्ट्रों को हुई हानि को दूर करने से अपेक्षित अधिक समय तक शांति को क़ायम रखना है तो किसी प्रकार के विश्वसंगठन की व्यवस्था करनी होगी, निर्दित होने की अपेक्षा पुष्ट किया है।

(ज) सामाजिक नियंत्रण के वैधेतर रूप

उपलब्ध स्थान में हॉबहाउस के साधारण संकेत के अतिरिक्त समाज द्वारा व्यक्ति पर लगे सामाजिक नियंत्रण के वैधेतर (Extra-Legal) रूपों की उत्पत्ति और वृद्धि

की विस्तृत विवेचना संभव नहीं है। सारतः उसने दर्शाया है कि किस प्रकार मानव आचार का एक बड़ा अंश उन सामाजिक प्रथाओं और परंपराओं की अज्ञात दमन शक्ति का परिणाम है, जोकि अपने प्रभुत्व में संहिताबद्ध कानून की अपेक्षा प्रायः कहीं अधिक अत्याचारी है, किंतु वे व्यक्ति के लिये कम घृणित हैं, चूंकि वह उन्हें सामान्य रूप से यों ही ग्रहण कर लेता है, या सर्वथा अनजाने में उनके प्रभाव में आ जाता है :

"प्रत्येक मनुष्य के वैयक्तिक अनुभव का अधिक अंश जीवन के अनेक संबंधों में हुई अंतर्क्रिया से मिलकर बना है, और ये संबंध मानव समाज के प्रारंभिकतम ज्ञात समय से ऐसी प्रथा द्वारा नियंत्रित हैं जोकि सामाजिक जीवन की आवश्यकता द्वारा पैदा होती है और सामाजिक परंपरा द्वारा क़ायम रखी जाती है। इस परंपरा द्वारा समाज व्यक्ति पर निरंतर नियंत्रण करता है, जिसमें कि स्वीकृत और स्पष्ट दमन सबसे कम महत्त्वपूर्ण तत्व है। जीवंत तथ्य यह है कि शिशुकाल से लेकर आगे तक वह जिस सामाजिक वातावरण में पैदा होता है उसके विचार और इच्छा में अंतर्प्रवेश कर जाता है और उसकी वैयक्तिकता को उसके जीवन के काल और स्थान की सृष्टि में रूपांतरित कर देता है।" [८५]

निष्कर्षरूप में हॉबहाउस ने विस्तार से इसका निर्देश किया है कि किस प्रकार एक काल का राजनैतिक और सामाजिक सिद्धांत जिस काल में वह उत्पन्न होता है उसकी सामाजिक और बौद्धिक अवस्थाओं का प्रतिबिंब है। उसने अंग्रेजी उदारवादियों के राजनैतिक मत के विकास के संबंध में इसे विस्तार से खोजा है। [८६]

(झ) निष्कर्ष

प्रोफेसर हॉबहाउस की रचनाओं के स्वरूप और सामाजिक और राजनैतिक सिद्धांतों को उसकी देनों का संक्षेप करते हुए यह कहा जा सकता है कि विषय को प्रस्तुत करने का उसका ढंग विशिष्ट रूप से अंग्रेजी है। अधिकांश अंग्रेज़ी समाजवैज्ञानिकों की भांति वह अपने समाज सिद्धांतों को अमूर्त आध्यात्मिक प्रश्नों से पृथक् रखता है और वह अपने विश्लेषण में विशिष्ट रूप से व्यावहारिक ठोस और तथ्यगत है।

सामाजिक विकासवाद के उचित लक्ष्य के रूप में समन्वित सामाजिक विकास की आवश्यकता और समस्या के समाधान के लिये श्रेष्ठतम रचनात्मक चिंतन के औचित्य पर उसका आग्रह, और इस प्रकार उसे कृत्रिम रूप से संचालित आंदोलन बनाने की अधिक प्रशंसा नहीं की जा सकती।

पुनः उसके प्रजातंत्र के स्पष्टतापूर्ण विश्लेषण जिसमें कि उसने उसके अनेक दोषों को स्पष्ट किया है और फिर भी उतनी ही स्पष्टता के साथ यह दर्शाया कि इसके लिये अभी तक कोई उचित विकल्प खोजा नहीं जा सका है, ऐसा विश्लेषण है जोकि प्रजातंत्र के आत्मतुष्ट समर्थकों को चौंका देगा किंतु साथ ही इसका उद्देश्य उन्हें साहस प्रदान करना है जोकि इसके दोषों को दूर करना चाहते हैं और मानवता की भलाई के लिये इसके गुणों को बचाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त, उसने स्पष्टरूप से सामाजिक, आर्थिक

और राजनैतिक प्रजातंत्र के बीच विद्यमान अत्यंत घनिष्ट संबंध और उनकी अंतर्निर्भरता की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की है, जिसकी कि अनेक लेखकों ने उपेक्षा की है।

वह उन स्पष्ट चिंतन करनेवाले विचारकों में है जो समझते हैं कि आधुनिक राज्य एक पृथक्कृत इकाई नहीं है बल्कि वह अपनी आंतरिक समृद्धि और प्रगति के लिये बाह्य आक्रमण से सुरक्षा और संभावित युद्धों और साम्राज्यवाद के लिये विस्तृत शस्त्रास्त्र जुटाने के विनाशकारी व्यय से मुक्ति पर निर्भर है। इसलिये उसने समाजविज्ञान के एक विद्वान् की हैसियत से उनके समर्थन में अपना प्रभाव डाला जोकि एक स्थिर और शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना के लिये कार्य कर रहे हैं।

टिप्पणियां

१. प्रोफेसर स्मॉल की व्याख्या के लिये देखिये *American Journal of Sociology*, XVIII (1912-13), 206-7. हॉबहाउस के सामाजिक दर्शन का सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण है Hugh Carter, *The Social Theories of L. T. Hobhouse* (Chapel Hill, N. C., 1927).

२. लंदन विश्वविद्यालय में मार्टिन ह्वाइट सोशियोलॉजी का प्रोफेसर (१९०७-२९) और *Sociological Review* का प्रथम संपादक। वास्तव में इस वक्तव्य में कठोरतम अर्थों में समाजशास्त्रियों का ज़िक्र है और इस प्रकार इसमें सामाजिक घटनाओं के अनेक अंग्रेज़ जातिशास्त्री, समाजमनोवैज्ञानिक, राजनीतिवैज्ञानिक, नीतिशास्त्री, सुप्रजननशास्त्री और अध्यात्मशास्त्रीय विद्वान् छूट गये हैं।

३. हॉबहाउस की छोटी पुस्तक *Liberalism* (New York, 1911) ब्रिटिश उदारवाद में इस बुनियादी संक्रमण का संभवतः सर्वश्रेष्ठ विश्लेषण है।

४. *Development and Purpose* (New York, Intod. p. xviii) सामाजिक मसलों और समस्याओं पर हॉबहाउस के दृष्टिकोण के लिये देखिये Carter, *op. cit.*, Chaps. i, iv, vii.

५. *Development and Purpose*, p. xix ; *Social Evolution and Political Theory* (New York, 1913), chaps. i—ii.

६. *Development and Purpose*, Introd., pp. xx—xxii ; मिलाइये *Social Evolution and Political Theory*, chaps. ii, iv, vii ; *Democracy and Reaction* (London, 1904) chap. iv ; *Morals in Evolution* (New York, 1915) p. 637 ; *Social Development : Its Nature and Conditions* (New York, 1924), chaps. iv—x.

७. *Development and Purpose*, Introd., pp. xix—xxiii 364.

८. *Ibid.*, pp. xxvii, 154-55. हॉबहाउस द्वारा हीगल के विकासवादी सूत्र की संशोधित स्वीकृति में किसी भी प्रकार यह निहित नहीं है कि वह हीगल के राज्य के सिद्धांत को स्वीकार करता है। इसका वह खंडन करता है और उसकी कटु आलोचना करता है। देखिये *The Metaphysical Theory of the State* (New York, 1918), pp. 6, 23-24, 137.

९. *Development and Purpose*, Introd., p. xxiii ; *Social Development*, pp. 301 ff.

१०. *Development and Purpose*, p. xxvi.

११. *Ibid.*, p. 372.

१२. *Ibid.*, p. 364.

१३. *Ibid.*, p. 284.

१४. *Ibid.*, p. xxix ; *Democracy and Reaction*, chap. iii.

१५. *Development and Purpose*, Introd. p. xxvii.

१६. तीसरा और संशोधित संस्करण (१९१५)। Norman Wildo ने *Journal of Philosophy, Psychology and Scientific Methods*, 1907 ; pp. 183–86 में, और James Seth ने *International Journal of Ethics*, 1907-8, pp. 375–81 में इसकी समीक्षा की। मानवता के मानसिक और सांस्कृतिक विकासवाद के अध्ययन पर यह रचना संभवतः सबसे उल्लेखनीय अकेली देन है। यह मूल्यांकन Frazer की *Golden Bough* और Westermarck के *Origin and Development of the Moral Ideas* जैसे वृहद् ग्रंथों को ध्यान में रखकर किया गया है। पहला ग्रंथ अपने सैद्धांतिक पहलुओं में जातिशास्त्र के किसी विद्यार्थी द्वारा गंभीरता से ग्रहण नहीं किया जाता, जबकि दूसरा यद्यपि अत्यधिक बेहतर है, फिर भी उसमें शास्त्रीय मानवशास्त्र के अनेक दोष है और हॉबहाउस के ग्रंथों की तुलना में वह मानवीय सांस्कृतिक विकासवाद के स्वरूप में कहीं कम सूक्ष्म अंतर्दृष्टि को व्यक्त करता है। देखिये Cartor, *op. cit.*, chap. iii.

१७. *Sociological Review*, i, ii. संपादकीय परिचय।

१८. *Social Evolution and Political Theory*, p. 33.

१९. *Ibid.*, p. 8.

२०. *Ibid.*, p. 39.

२१. *Ibid.*, pp. 75–76 ; *Democracy and Reaction*, chap. iv.

२२. *Social Evolution and Political Theory*, p. 127, p. 185. सामाजिक भलाई के सार के रूप में समन्वय के अधिक पूर्ण निरूपण के लिये देखिये *Elements of*

Social Justice (London, 1921), chap. i ; *The Rational Good* (London, 1921), chaps. iv–vi.

२३. *Liberalism*, p. 136 ; *Social Evolution and Political Theory*, pp. 87, 92–93, 204–5 ; और *Social Development*, chap. iii.

२४. *Social Evolution and Political Theory*, p. 93 ; pp. 162 ff.

२५. *Ibid.*, p. 101.

२६. *Ibid.*, p. 163. इस मत का Graham Wallas, *The Great Society* (New York, 1914), p. 323. में व्यक्त मत से मुक़ाबला कीजिये, जहां उसने यह सिद्ध किया है कि समाज की वर्तमान स्थिति का विशिष्ट लक्षण है कि, समाज ने सर्वप्रथम अपने सामूहिक जीवन की अवस्थाओं को अपने नियंत्रण से बाहर जाने दिया है।

२७. हॉबहाउस की बाकी रचनाओं का भी ज़िक्र किया जा सकता है, *The Labour Movement* (3d ed.) ; इंगलैंड में श्रमिक आंदोलन और उसकी आर्थिक सीमितताओं और औचित्य का विश्लेषण ; *The Material Culture and Social Institutions of the Simpler Peoples* (London, 1915). तुलनात्मक जातिशास्त्र के अध्ययन में संख्याशास्त्रीय पद्धतियों के विस्तार का अग्रणी प्रयास; *The World in Conflict* (London, 1915) विश्वयुद्ध के समाजशास्त्रीय कारणों और पेचीदगियों का संक्षिप्त और गंभीर अध्ययन; *Questions of War and Peace* (London, 1916). युद्ध के कारणों, प्रगति और मसलों पर एक गंभीर चर्चा जिसके अंतिम अध्याय में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के भविष्य पर भी लिखा गया है। हॉबहाउस के जीवन और साहित्यिक कार्यकलाप के लिये देखिये J. A. Hobson और Morris Ginsberg, *L. T. Hobhouse : His Life and Works* (London, 1931). अध्यात्मशास्त्री और दार्शनिक के रूप में हॉबहाउस पर देखिये J. A. Nicholson, *Some Aspects of the Philosophy of L. T. Hobhouse* (Urbana, III., 1928) हॉबहाउस के सामाजिक दर्शन के सर्वश्रेष्ठ संक्षेप हैं ; J. S. Burgess, "Certain Concepts and Contributions in the Social Science and Social Philosophy of L. T. Hobhouse," *Chinese Social and Political Science Review*, XIII (1929), 119–43 ; और Carter, *op. cit.* बाद की पुस्तक को हॉबहाउस की सूची तथा दर्शन और समाजविज्ञान को उसकी देन के लिये देखिये pp. 133 ff.

२८. "Editorial Article," *Sociological Review*, I (1908), 4–9.

२९. *Ibid.*, p. 8.

३०. *Social Evolution and Political Theory*, pp. 29–30, 127–28 ; *Social Development*, chap. ii.

३१. *Liberalism*, p. 133.

३२. *Democracy and Reaction*, p. 207.

३३. P. 137.

३४. *Ibid.*, pp. 23-24. हॉबहाउस ने *Contemporary Review*, January, 1899 में ह्रीगलीय दर्शन और बिस्मार्की नीति के संबंध का निर्देश करते हुये मि० क्लार्क के लेख का ध्यान दिलाया है।

३५. *Morals in Evolution* (3d ed., 1915), p. 60 ; *Democracy and Reaction*, p. 221.

३६. *Social Evolution and Political Theory*, p. 146 ; *Democracy and Reaction*, pp. 158 ff.

३७. *Social Evolution and Political Theory*, p. 146.

३८. *Democracy and Reaction*, p.160.

३९. *Ibid.*, p. 128 ; *Morals in Evolution* (3d ed., 1915), pp. 42-43 ; *Social Develonment*, chap. xi. हॉबहाउस द्वारा सामाजिक विकासवाद की समस्याओं से निपटने के लिये तुलनात्मक पद्धति के उचित प्रयोग के लिये देखिये Carter *op. cit.*, chap. iii.

४०. *Social Evolution and Political Theory*, p. 147.

४१. *Morals in Evolution*, pp. 57-58.

४२. *Ibid.*, pp. 59-60 ; *Social Evolution and Poltical Theory*, pp. 138-39.

४३. *Morals in Evolution*, p. 63 ; *Social Evolution and Political Theory*, p. 140.

४४. *Morals in Evolution*, p. 60.

४५. *Ibid.*, p. 67 ; मिलाइये *Liberalism*, chaps. ii-iii.

४६. *The World in Conflict*, p. 63.

४७. *Ibid.*, p. 86.

४८, *Morals in Evolution*, p. 68.

४९. *Ibid.*, p. 69 ; *Social Evolution and Political Theory*, p. 148. भी मिलाइये।

५०. *Morals in Evolution*, pp. 130-31.

५१. *Democracy and Reaction* pp. 186-87 ; हॉबहाउस के प्रजातंत्र के अंतिम मूल्यांकन के लिये देखिये *Elements of Social Justice*, chap. xi.

५२. *Democracy and Reaction*, pp. 182-83.

५३. *Ibid.*, 184-85.

५४. *Liberalism*, pp. 183-84.

५५. *Democracy and Reaction*, p. 50.

५६. *Ibid.*, pp. 119–24.

५७. *Ibid.*, p. 166 ; *Liberalism*, pp. 248–51.

५८. P. 238.

५९. *Social Evolution and Political Theory*, p. 200 ; *Elements of Social Justice*, chaps. iii-iv.

६०. *Liberalism*, pp. 146-47.

६१. *Social Evolution and Political Theory*, p. 198 ; *Elements of Social Justice*, chap. ii.

६२. *Social Evolution and Political Theory*, pp. 198-99 ; *Liberalism*, p. 127 और *Democracy and Reaction*, pp. 131–37.

६३. *Social Evolution and Political Theory*, p. 188.

६४. *Ibid.*, pp. 200–201 : सामाजिक और राजनैतिक न्याय पर हॉबहाउस के विस्तृत विश्लेषण के लिये देखिये *Elements of Social Justice*, chaps. vi-vi.

६५. *Social Evolution and Political Theory*, pp. 186-87. यह व्यवहारतः दुरखीम के मत के समान है।

६६. *Liberalism*, p. 189 ; संपत्ति पर हॉबहाउस की अवधारणा के लिये देखिये *Elements of Social Justice*, chaps. viii-ix ; और Charles Gore (ed.) *Property : Its Rights and Duties* (New York, 1922), chap. i.

६७. *Liberalism*, p. 191.

६८. *Ibid.*, p. 209 ; *Elements of Social Justice*, chap. ix. संभवतः हॉबहाउस इससे सहमत होगा कि यह सामान्यीकरण समस्या के व्यावहारिक समाधान की अपेक्षा उसका अच्छा संक्षिप्त वक्तव्य है।

६९. *Liberalism*, p. 202.

७०. *Ibid.*, pp. 195–202.

७१. *Ibid.*, pp. 204-5 ; pp. 163-64, 185-86.

७२. *Ibid.*, pp. 39-40.

७३. *Ibid.*, pp. 29–31 : *Social Evolution and Political Theory*, pp. 181-82.

७४. *Metaphysical Theory of the State*, p. 106 ; *Democracy and Reaction*, pp. 49 ff.

७५. *Social Evolution and Political Thoery*, pp. 155-56 ; *Development and Purpose*, pp. 281 ff.

७६. *Democracy and Reaction*, pp. 28-29 ; विश्व की समस्याओं पर हॉबहाउस द्वारा समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के प्रयोग के श्रेष्ठ विवेचन के लिये देखिये Carter, *op. cit.*, chap. v.

७७. *Democracy and Reaction*, pp. 204-5.

७८. *Democracy and Reaction*, chap. viii, में इन युक्तियों का संक्षेप दिया गया है । *Morals in Evolution* के १९१५ के संस्करण की एक पादटिप्पणी में यह कहा है कि उसका यह वक्तव्य कि प्रजातंत्र और सामाजिक प्रगति का भविष्य अंतर्राष्ट्रीयतावाद के साथ जुड़ा हुआ है प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने से पहले लिखा गया था ।

७९. *The World in Conflict*, pp. 38, 50.

८०. *Ibid.*, p. 56.

८१. *Questions of War and Peace*, pp. 183–86.

८२. *Ibid.*, pp. 192-99.

८३. *The World in Conflict*, p. 94.

८४. देखिये J. M. Keynes, *Economic Consequences of the Peace* (Now York, 1920), उस रीति के सबसे तीक्ष्ण विश्लेषण के लिये जिससे पता चलता है कि पेरिस सम्मेलन में पुरानी कूटनीति और अंतर्राष्ट्रीय नीतियों का कितना प्रभाव था ।

८५. *Social Evolution and Political Theory*, p. 94 ; *Morals in Evolution* Part II.

८६. मिलाइये *Liberalism*, *passim*, विशेषकर chap. iii ; *Democracy and Reaction*, chaps. i–iii, ix.

अध्याय दस

आर्नल्ड जोसेफ टॉयनबी : आधुनिक वेष में ओरोसियस और ऑगस्टाइन

हैरी एल्मर बार्न्स

१, टॉयनबी का प्रशिक्षण और अभिरुचि

एच० जी० वेल्स की 'आउटलाइन ऑफ हिस्टरी' और ओसवाल्ड स्पेंगलर के 'डिकलाइन ऑफ दि वेस्ट' के प्रकाशन के पश्चात् इतिहास के क्षेत्र में किसी भी अन्य रचना ने इतनी अधिक अभिरुचि को आकृष्ट नहीं किया, इतनी विस्तृत और विविध प्रशंसा को प्राप्त नहीं किया, या इतने अधिक और प्रभावशाली अनुयायियों को एकत्रित नहीं किया जितना कि आर्नल्ड जे० टॉयनबी (Arnold J. Toyanbee) के 'इतिहास के अध्ययन' —*A Study of History* ने और न तो वेल्स और न ही स्पेंगलर एक पंथ (Cult) विकसित कर सके, जोकि टॉयनबी निर्मित कर सका और वह उसका नेतृत्व कर रहा है। निस्संदेह उसकी पुस्तक ने एक हलचल पैदा की है जिसकी तुलना वाल्तेयर के *Essai*, एच० टी० बकल की 'हिस्टरी ऑफ सिवेलिजेशन', जे० डब्ल्यू० ड्रेपर की 'हिस्टरी ऑफ दि इंटलेक्चुयल डेवलपमेंट ऑफ योरोप', एंड्रयू डी० ह्वाइट की 'हिस्टरी ऑफ दि वारफेयर ऑफ साइंस विद थ्योलॉजी', ब्रुक्स एडम्स की 'लॉ ऑफ सिविलिजेशन एंड डिके' और वेल्स और स्पेंगलर की उपरोक्त पुस्तकों से की जा सकती है। चूंकि टॉयनबी की रचना का प्रायः एक समाजास्त्रीय इतिहास या ऐतिहासिक और तुलनात्मक समाजशास्त्र कहकर जिक्र किया जाता है, अतः समाजशास्त्रीय इतिहास में उसका विश्लेषण करना उचित है।

टॉयनबी का जन्म १८८९ में हुआ था, उसने आक्सफोर्ड में शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त की और फिर पुरातत्व के कार्य में प्रवेश किया। किंतु प्रथम विश्वयुद्ध ने उसकी अभिरुचि को सार्वजनिक समस्याओं की ओर मोड़ दिया और तब से वह ऐतिहासिक लेखन, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और निकटपूर्व के समकालीन इतिहास पर लिखने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में सक्रिय कार्य कर रहा है। उसने १९१८ में ब्रिटिश वैदेशिक कार्यालय में प्रवेश किया और वह १९१९ के पेरिस शांति-सम्मेलन में एक सलाहकार था। उसने राष्ट्रीयता और युद्ध पर अपनी प्रथम और योग्य रचना 'राष्ट्रीयता और युद्ध'—*Nationality and the War* लिखी जिसमें कि प्रथम विश्वयुद्ध के साथ राष्ट्रीयता के संबंध पर विचार किया गया है। दो विश्वयुद्धों के बीच की अवधि में उसका अधिकांश बौद्धिक कार्य रायल (ब्रिटिश) इंस्टीच्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स द्वारा प्रकाशित *Survey of*

International Affairs संपादन करने और लिखने का रहा। उसने समकालीन ग्रीस और तुर्की पर भी श्रेष्ठ पुस्तकें लिखीं और पुरानी और नई दुनिया में पर्याप्त विस्तृत यात्रायें कीं। उसने १९४६ के ग्रीष्मकाल में पेरिस में हुई कौंसिल ऑफ फॉरेन मिनिस्टर्स के अस्थायी सलाहकार की हैसियत से कार्य किया।

इस अवधि मे उसने विश्व सभ्यताओं के अध्ययनों को भी प्रारंभ किया, जोकि उसकी प्रसिद्ध 'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' मे प्रकाशित हो चुके हैं। इस रचना की पहली किश्त १९३३ में तीन जिल्दों में प्रकाशित हुई थी।[१] इनमे मुख्यतः सभ्यताओं के उत्थान और पतन की समस्या, उनके अध्ययन में पालन किये जानेवाले ऐतिहासिक सिद्धांतों और सभ्यताओं की उत्पत्ति में अंतर्हित प्रक्रिया का वक्तव्य था। १९३९ में तीन और जिल्दें आ गई।[२] उनमें मुख्यतः सभ्यताओं की परिपक्वता, पतन और विघटन का विवरण था। तीन और जिल्दों का वायदा किया गया है और यह घोषणा की गई है कि यह आनेवाली जिल्दे सभ्यताओं के संपर्कों और लयों, पाश्चात्य सभ्यता के भविष्य, इतिहासकारों की प्रेरणा के स्रोतों और इस संपूर्ण उद्योग की मानवजाति के लिये शिक्षाओं का विवेचन करेंगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् टॉयनबी के विचारों के प्रति आकस्मिक और विस्तृत अभिरुचि ने डी० सी० सोमरवेल द्वारा प्रथम छः जिल्दों के संक्षेप के तैयार करने और उसे प्रकाशित करने की प्रेरणा दी।[३] यह संक्षेप सामान्य पाठक के लिये एक बहुत संशोधित पुस्तक है, चूंकि इसमे विपुल भ्रांति-उत्पादक और प्राय. उबा देनेवाले और संदिग्ध ब्योरों को छाट दिया गया है, किंतु मूल कथा के समस्त अनिवार्य तत्वों और युक्तियों को कायम रखा गया है।

'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' को पूरा करने के अतिरिक्त, टॉयनबी अब रायल इंस्टीच्यूट ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स और राकफेलर फाउंडेशन द्वारा आर्थिक सहायताप्राप्त विश्व-युद्ध के एक विस्तृत इतिहास के संपादन में संलग्न है। इस सबसे यह सब स्पष्ट है कि टॉयनबी का यह विश्वास है कि इतिहासकार को रोज़मर्रा की समस्याओं मे हिस्सा लेना चाहिये और साथ ही अपनी विद्वत्ता और शक्ति को अपने देश और संसार के उपयोग के लिये लगाना चाहिये। इस अर्थ में वह अपने प्रतिष्ठित ब्रिटिश पूर्ववर्ती विद्वान् लार्ड ब्राइस के सदृश है। किंतु यहीं पर यह सादृश्य समाप्त हो जाता है। ब्राइस एक स्वतंत्र विचारक था जिसका कि भावी श्रेष्ठ सरकार, विशेषकर श्रेष्ठ प्रजातांत्रिक सरकार में विश्वास था। टॉयनबी एक श्रद्धालु ईसाई रहस्यवादी है जो मानवजाति की मुक्ति की समस्त आशा को इस संभावना में देखता है कि शीघ्र ही पाश्चात्य सभ्यता ईसा के अवतार में निहित अर्थों और प्रेरणा को ग्रहण कर सके।

२. ईसा के महाकाव्य का पुनर्जीवन : नव-ऑगस्टाइनवाद

थोड़ी ही पुस्तकें टॉयनबी के 'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' के समान गलत समझी गईं या

गलत समझाई गई हैं। इसका कारण यह प्रवृत्ति है कि पाठकों, आलोचकों और समीक्षकों ने इसे लौकिक इतिहास का एक गंभीर अध्ययन—यह जानने का सच्चा और सीधा प्रयास समझा है कि इतिहास की क्या दिशा रही है और किस प्रकार वस्तुतः सभ्यतायें विकसित और पतित होती है। इसे लियोपाल्ड फॉन रांके की शैली पर लिखित वैज्ञानिक इतिहास, जिसमें घटनायें ठीक जिस प्रकार घटित होती है उन्हें अपने अपूर्ण विश्व-इतिहास में फॉन रांके से कल्पित कहीं अधिक विस्तृत कैनवैस पर चित्रित किया गया है। दुर्भाग्य से टॉयनबी की योजना और लक्ष्य को समझने के लिये बौद्धिक इतिहास और इतिहास लेखन (Historiography) दोनों पर अच्छा अधिकार होना चाहिये। जब हम इसे ऐसे ज्ञान की पृष्ठभूमि में देखते है, तब यह पुस्तक सर्वथा भिन्न, सभवतः अधिक महान्, किंतु वैसी ही नहीं दीखती। जैसा कि हॉवर्ड बेकर ने इस बात को अच्छी तरह व्यक्त किया है, सीधे इतिहास या वैज्ञानिक समाजशास्त्र की अपेक्षा यह एक "दैवी न्याय" (Theodicy) है। कोष में दैवी न्याय की यह परिभाषा दी गई है: "संसार में पाप होने देने के लिये दैवी न्याय का औचित्य।" टॉयनबी के शब्दों में, यह तब हुआ जबकि मनुष्य यिन (*Yin*) की सुंदर निष्क्रिय अवस्था से सृजनात्मक अवस्था में आया, किंतु इस यांग (*Yang*)* की अवस्था मे भाग लेने में विनाश और कष्ट निहित था।

"ए स्टडी ऑफ हिस्टरी" वस्तुतः एक भव्य और शानदार पुनरुद्धार है जिसे कि जार्ज सांतायन ने ऑगस्टाइन और उसके सहयोगियो द्वारा प्रतिपादित "ईसाई महाकाव्य" (Christian Epic) कहा है। इस महाकाव्य को भव्य और अखिल विश्व-स्तर पर पुनःप्रतिपादित किया गया है, और व्यापक और विविध ज्ञान तथा बीसवी शताब्दी के विचारों और अनुभवों के प्रसंग मे उसकी व्याख्या की गई है। टॉयनबी का प्रधान लक्ष्य भूतकाल के नरक-दंड (Damnation) और मानवता की अंततोगत्वा संभावित मुक्ति के नाटक का उद्‌घाटन करना है लेकिन गंभीर और प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्याख्या नही उसी के अपने शब्दों मे, वह मानो कि अवतार (Incarnation) की दूसरी और अंतिम कल्पित "चुनौती" (Challenge) का जॉन बैपटिस्ट है।

हेनरी औसबोर्न टेलर की भांति टॉयनबी इतिहास में ईश्वर की प्रमुख भूमिका में दृढ विश्वास रखता है। इतिहास मे ईश्वर सबसे सक्रिय शक्ति है और मानव जाति के ऐतिहासिक विकास का लक्ष्य ईश्वर का राज्य (Kingdom of God) है। ईसा का अवतार मानव-इतिहास का केंद्रीय तथ्य है जिसके जन्म पर बैथलम मे देवताओं ने गायन किया। वह "न तो हेलास का पुनर्जन्म था न ही हेलेनिक जीवजाति के अन्य समाजों का नया जन्म था। यह मानव शरीर में ईश्वर के राज्य के राजा का जन्म था।"

*यांग और यिन, प्रकाश और अंधकार एक ही वृत्त के भीतर समान प्रतीकों का सिद्धांत चीनी दर्शन में आधारभूत है। यांग और यिन जीवन और सृष्टि में एक-में-दो सिद्धांत को दर्शाते है। —अनुवादक

ऐतिहासिक विकासवाद के अपने मुख्य सूत्र "चुनौती और प्रत्युत्तर' (Challange and Response) में टॉयनबी ने एक रहस्यवादी और अवतारी तत्व का प्रवेश करा दिया है : प्रत्येक नवजात सभ्यता को ईश्वर द्वारा निर्धारित भूमिका को पूरा करना होगा। हालांकि टॉयनबी ने इतिहास में किसी भी प्रकार के भौतिकवादी नियतिवाद (Determinism) के विचार का दृढ़ता से त्याग किया है फिर भी उसकी संपूर्ण रचना सृजनात्मक, आध्यात्मिक निर्णायकवाद की वास्तविकता को स्थापित करने का एक भव्य प्रयास है। रक्षक (Savior) की भूमिका इतिहास में शक्तिशाली कारक है और समस्त ऐतिहासिक रक्षकों में ईसा अद्वितीय था। टॉयनबी स्वयं अपने पंथ की दृष्टि में, "रक्षक की सृजनात्मक प्रतिभा के समान" भूमिका में प्रकट हुआ है। जैसा कि जार्ज कैटलिन ने लिखा है, टॉयनबी ने "ईसाइयत के महत्त्व के प्रश्न, पशुबल के 'संसार' में मुक्ति और मूल पाप के प्रयोग को एक विवाद का प्रश्न" बना दिया है। टॉयनबी के लिये ऐतिहासिक प्रक्रिया मुख्यतः एक आध्यात्मिक विषय है। ब्रह्मांड के दैवी विधान और मनुष्य के भाग्य के ईश्वर द्वारा नियत्रण में श्रद्धा उस आध्यात्मिक सृजनशीलता को उत्पन्न करती है जिसे टॉयनबी मानव इतिहास का गत्यात्मक कारण मानता है। जैसा हैजो होलबोर्न ने इसे व्यक्त किया है, टॉयनबी "सभ्यताओं के जन्म, जीवन और मृत्यु को मानव आत्मा में एक संघर्ष की भाति मानता है।" टॉयनबी अपनी जननिक विचारधारा में मार्क्स की अपेक्षा प्लोटीनस के अधिक निकट है। उसके लिये, न तो तर्क, न ही भौतिक कारक इतिहास में कोई निर्णायक भूमिका अदा नही करते हैं।

जब ऑगस्टाइन ने अपने "सिटी ऑफ गॉड" मे ईसाई महाकाव्य का शास्त्रीय और शक्तिशाली वक्तव्य, दिया, वह अपने शिष्य पॉलस ओरोसियस की 'सेविन बुक्स ऑफ हिस्टरी अगेस्ट दि पैगनस' मे दिये हुए ऐतिहासिक दृष्टिक्रम का उपयोग कर सका था, किंतु टॉयनबी ने ईसाइयत के तत्वावधान में पैगनों के दु.खमय इतिहास और मानवजाति के लिये ईश्वर की योजना के प्रतिमान दोनों को प्रदान किया है।

ऑगस्टाइन और ओरोसियस पाश्चात्य रोम साम्राज्य में समाज के विघटन और बर्बरो के हमले से भयभीत थे। उन्होंने इस सबमे ईश्वर की इच्छा और दैवी योजना ी जाच की। इसे इन्होंने ईडन मे मनुष्य के पतन (Fall of Man) मे खोजा और उन्होंने भविष्य की आशा को ईसा के दूसरों के लिये किये गये बलिदान मे देखा। जैसा कि ओरोसियस ने निर्देश किया है : समस्त पैगन ईश्वर का कोपभाजन बने, और उनकी समस्त संस्कृतियां पतित हो समाप्त हो गईं या विस्तृत हो गईं। एक नये युग का सूत्रपात हुआ था, और मानवजाति के रक्षक ईसा में एक नई आशा थी। इस सबको टॉयनबी ने कहीं अधिक बड़े पैमाने पर दुहराया है। वह प्रथम विश्वयुद्धजनित बरबादी, ब्रिटिश सामाज्य की शक्ति और समृद्धि के पतन से अधिक युद्धों के भय से और पूर्व में नये "बर्बरों" के उदय से निराश था। टॉयनबी के लिये मानवजाति के महान् नाटक की आधारशिला वही है जोकि ऑगस्टाइन के साथ थी—पुण्य और पाप का संघर्ष। यह पुनः ईश्वर और शैतान

के बीच संघर्ष है, जोकि मनुष्य द्वारा यिन की स्थिति में दिव्य पूर्णता निष्क्रियता की पूर्ण अवस्था के दुर्भाग्य के त्यागने और यांग के सर्जक कष्ट में प्रवेश करने में परिलक्षित होती है, जिसमें कि अनेक शताब्दियों के प्रयास और कष्ट सहने के पश्चात् पैगन-समाज विलुप्त हो जाते हैं ।

ऑगस्टाइन और ओरोसियस ने अपने को पाश्चात्य जगत् और मनुष्य के एक पतन तक सीमित किया। टॉयनबी का विस्तार कोरिया से यूकटान तक है और उसने एक नहीं बल्कि बीस "पतनों" का जिक्र किया है। यदि पाश्चात्य सभ्यता शीघ्र ही ईसा और मुक्ति की चुनौती का प्रत्युत्तर नहीं देती तो इक्कीस या उतने ही "पतन" घटित होंगे जितनी कि मानव अनभुव में सभ्यतायें हो चुकी हैं । प्रत्येक ऐतिहासिक सभ्यता ईश्वर द्वारा निर्धारित नियति (Destiny) को पूरा करती है, और यह नियति सदैव अंतिम विनाश रही है, जोकि ईसा के काल से पहले रहने या उसके बाद उसे पूर्णतः या उसकी भावना को अस्वीकार करने के दंड की विपुल और अशुभ चेतावनी है । कट्टर पुराणपंथी-बाइजेंटाइन और कट्टर पुराणपंथी-रूसी सभ्यतायें ईसा की सभ्यताओं से परिचित थीं किंतु वे कभी भी उसके वास्तविक भवन में प्रवेश न कर सकी; उन्होंने संगठन और सांप्रदायिक राजनीति पर रक्षक सिद्धांतों की बलि दे दी । इसके अतिरिक्त वे कभी भी तलवार को म्यान में न रख सकीं और ईश्वर की शांति को स्थायी रूप से स्थापित न कर सकीं ।

टॉयनबी के ग्रंथ का उद्देश्य यह दर्शाना है कि किस प्रकार वे सभ्यतायें, जो ईसा को न जान सकीं या जिन्होंने उसके रक्षक मिशन का परित्याग किया, दुःख को प्राप्त हुई । हालांकि ब्यौरे के संबंध मे कुछ मतवैषम्य था, किंतु जन्म, परिपक्वता, पतन और विनाश का सामान्य प्रतिमान सभी स्थानों और सभी कालों में समान था। वे प्रक्रियायें और अवस्थायें जिनके द्वारा सच्ची श्रद्धा (True Faith) से शून्य समाज नष्ट हो गये वे 'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' के सिद्धांत और क्रिया दोनों का निर्माण करती हैं, और अब हम इस पर अपना ध्यान दे सकते हैं ।

३. विनाशगामी सभ्यताओं के दैवी न्याय का नाटक

एक पेशेवर इतिहासकार और लेखक के नाते टॉयनबी मुख्यतः निकटपूर्व और विशेषकर समकालीन ग्रीस के आधुनिक इतिहास का विशेषज्ञ है । उसके वृहत् अध्ययन के लिये यह शक्ति और दुर्बलता दोनों ही का कारण है । माइसीनियन युग (Mycenaean Age) से इलास (ELAS) तक संपूर्ण ग्रीक सभ्यता की पूर्ण जानकारी के कारण टॉयनबी का ग्रीक सभ्यता के जन्म और उत्थान-पतन का विवरण विशेषरूप से एक विशेषज्ञ का है । किंतु उसने ग्रीक सभ्यता को समस्त सभ्यताओं के जन्म, वृद्धि और पतन के सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिये एक प्ररूप या प्रतिमान के रूप में प्रयोग किया है, तथा इस प्रकार उसे अपने तथ्यों को प्रायः एक ऐसे प्रतिमान या ढांचे में ठूंसना पड़ा जिसमें कि वह सदैव फिट नहीं बैठते । स्पष्ट ही अन्य बीस सभ्यताओं में जिनका कि टॉयनबी ने अध्ययन

किया है, मूलरूप तक में भी बुनियादी ग्रीक अनुभव से अनेक भिन्नतायें थी। मूलतः ईश्वरीय या धार्मिक उद्देश्य और अनुस्थिति (Orientation) के अतिरिक्त, टॉयनबी की रचना का मुख्य दोष इस तथ्य में है कि वह ग्रीक ऐतिहासिक अनुभव के समन्वय और वस्तुतः अपने द्वारा जांची गई इक्कीस सभ्यताओं का सर्वेक्षण प्रारंभ करने से पहले ही अपने मुख्य निष्कर्षों पर पहुंच चुका था।

जैसा कि हम बाद में देखेंगे, टॉयनबी एक सभ्यता के अंतर्गत संकीर्ण राज्यों के बीच युद्धों को एक समाज की महान् समस्या या चुनौती मानता है। ग्रीक नगर-राज्यों के बीच हुए युद्धों ने उसे यह संकेत दिया था। रोमन-विजय ने इन युद्धों का अंत किया, अतः रोमन साम्राज्य के उदय ने उसे एक संकीर्ण युद्ध को रोकने के साधन के रूप में सार्वभौम राज्य (Universal State) की स्थापना का विचार प्रदान किया। फिर रोमन साम्राज्य के पतन ने उसे सभ्यता के पतन के संबंध मे अधिकांश तथ्य और सामान्य निष्कर्ष दिये जिन्हें कि बाद में उसने इक्कीस सभ्यताओं के जीवन-वृत्त के विश्लेषण में प्रयुक्त किया। जब हम ग्रीक ऐतिहासिक चक्र में, जिसमें टॉयनबी ने रोमन-इतिहास को सम्मिलित किया है, ईसा के महाकाव्य की श्रद्धायुक्त स्वीकृति को भी जोड़ देते हैं, हमें उसके इतिहास-दर्शन और ऐतिहासिक सूत्रों की सभी मुख्य मदें मिल जाती है।

टॉयनबी की एक सही बुनियादी कार्यप्रणाली यह तथ्य है कि वह अपने ऐतिहासिक सिद्धांत की इकाई के रूप में, राज्यों को नहीं, राष्ट्रों को नहीं, सभ्यताओं को लेता है। यह अच्छी तरह कहा जा सकता है कि टॉयनबी ने किसी क्षमता के अभाव में राष्ट्रों की समस्या को नही छोड़ा, चूंकि वह प्रथम विश्वयुद्ध से राष्ट्रीयता के संबंध पर एक अधिकारपूर्ण पुस्तक का लेखक था। उसने राष्ट्रीय प्रतिमान का इसलिये परित्याग किया, चूंकि उसका विश्वास है कि कोई भी संस्कृति विशुद्ध राष्ट्रीय नहीं है; अतएव सभ्यताओं के अध्ययन को एक राष्ट्रीय चितनप्रणाली पर आधारित नहीं किया जा सकता या उसे राष्ट्रीय सीमाओं में बंद नहीं किया जा सकता। उसका मत है कि राष्ट्रवाद के द्वारा, जिसे वह "संकीर्ण प्रभुसत्तासंपन्न राज्य" कहता है, कार्य करने ने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की वृद्धि को रोक दिया है और उसे ख़तरे में डाल दिया है।

टॉयनबी द्वारा ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई के रूप में राष्ट्रों का परित्याग, इतना अधिक आवश्यक या महत्त्वपूर्ण नही है जैसा कि वह पहले-पहल लग सकता है। सही अर्थों में, आधुनिक काल से पहले राष्ट्र न थे, और अभी तक टॉयनबी ने आधुनिक इतिहास को थोड़ा ही स्थान दिया है। यहां तक कि पुराने ढंग के इतिहासकार भी पाश्चात्य यूरोप में सामंतवाद के विघटन से पहली अवधि में सभ्यताओं—मिस्री, मैसोपोटामी, ग्रीक, रोमन और मध्यकालीन सभ्यताओं के ही अध्ययन के अभ्यस्त थे। अतएव, जहांतक कि अभी तक प्रकाशित जिल्दों का संबंध है, सभ्यताओं पर टॉयनबी के केंद्रीकरण में कोई विशेष अद्वितीयता नही है। इसके अतिरिक्त, चूंकि टॉयनबी अपनी इक्कीस सभ्यताओं में से प्रत्येक को मूलतः स्वसीमित मान लेता है जिसकी कोई महत्त्वपूर्ण संपर्क और सांस्कृतिक

अंत:क्रिया नहीं है, अत: सभ्यताओं के उद्विकास का उसका विवेचन उतना ही "संकीर्ण" (Parochial) है जितना कि राष्ट्रों का पहला विवेचन । जैसा कि एक समालोचक ने कहा है, टॉयनबी की सभ्यतायें केवल "वृहत् राष्ट्र" हैं। इस संबंध में टायनबी के दृष्टिक्रम में कोई वास्तविक सार्वभौमता नहीं है ।

विशिष्ट सभ्यताओं के उद्गम और नियति (Destiny) के अन्वेषण की इकाई के रूप में, टॉयनबी ने देखा कि इतिहास की धारा में सब मिलाकर लगभग इक्कीस इकाइयां हैं, जिनमें कुछ सीमांत संस्कृतियां भी सम्मिलित है जो कभी भी एक सृजनात्मक सभ्यता का पद प्राप्त न कर सकीं। उसने पहले ऐसी उन्नीस सभ्यतायें गिनाई है : मिस्री, सुमेर, बैबीलोनी, हित्तीत, सीरियाई, मिनोई, ग्रीक, ईरानी, अरबी, हिंदू, इंडिक, सिनी (चीनी), सुदूरपूर्वीय, ऐडीय, यूकटक, माया, मेक्सिकी, कट्टरईसाई (Orthodox Christian) और पाश्चात्य । कट्टर ईसाई को कट्टर बाइजटाइन और कट्टर रूसी में, और सुदूरपूर्वीय को चीनी और कोरियाई-जापानी में विभक्त कर उसे अपनी इक्कीस सभ्यतायें प्राप्त होती है ।

लिखित इतिहास की अवधि मे "सभ्यकरण" (Civilizational) प्रक्रिया ने सात को छोड़कर इन सभी विश्व सभ्यताओ को समाप्त कर दिया है। ये सात हैं : कट्टर ईसाई, कट्टर रूसी, इस्लामी (जिसमे मूल सूची की प्राचीन ईरानी और अरबी सभ्यतायें मिली हुई हैं, हिंदू, चीनी, कोरियाई-जापानी और पाश्चात्य (पाश्चात्य यूरोप, ब्रिटिश राष्ट्रमंडल, संयुक्त राज्य और लैटिन अमेरिका) ।

पाश्चात्य सभ्यता को छोड़कर सभी अब अपनी अंतिम अवस्था में है और वह पहले ही पाश्चात्य सभ्यता के दायरे मे आ गई है । उनके बुनियादी विश्रृंखलता की अवधि कट्टर ईसाइयत के लिये १४७७ से प्रारंभ हो इस्लामी सभ्यता के लिये १५०० में समाप्त होती है । पाश्चात्य सभ्यता का परिणाम भी अत्यंत अनिश्चित है, और यह हो सकता है कि उसकी विश्रृंखलता की अवधि को पंद्रहवी शताब्दी के कौसिलियर आंदोलन या सोलहवी शताब्दी के धार्मिक युद्धों मे ढूंढ़ा जाय । पाश्चात्य सभ्यता के सन्निकट विनाश से बचने का मुख्य आश्वासन दो तथ्यों में निहित है : (१) हम अभी तक सार्वभौम राज्य की अवधि तक नहीं पहुंचे हैं जोकि सदैव अवश्यंभावी विनाश का संकेत करता है; (२) हमारे पास उस नियति को, जिसके लिये ईश्वर ने हमे बनाया है, समझने की सुबुद्धि और प्रेरणा और अपनी दैवी विरासत को ग्रहण करने का समय बाकी है। मुक्ति के दूसरे संभावित मार्ग की मुख्य आशा ईसाई धर्म और उत्साह के महान् पुनरुद्धार में निहित है, प्रत्येक विनाशगामी (Damned) सभ्यता में विश्रृंखलता की अवधि उस समय से पहले आई जिसे कि प्राय: उस सभ्यता का उच्चतम काल समझा जाता है; इसलिये समस्त सभ्यताओं के स्वर्णयुग अनिवार्यत: "भारतीय ग्रीष्म ऋतु" की अवधियां है ।

अब हम टॉयनबी की उस अवधारणा का संक्षेप दे सकते हैं जिसे कि स्वर्गीय एलबियन डब्ल्यू० स्मॉल ने सभ्यता की "प्रक्रिया"—उसका जन्म, परिपक्वता और पतन कहा था ।

उसने सभ्यता की वृद्धि और गुण में नस्ली कारकों को वैध शक्तियां मानना अस्वीकार किया। जब कि सभ्यता के उद्विकास में भौतिक वातावरण अपनी भूमिका अदा करता है, वह स्वयं अपने आपमें संस्कृतियों के उत्थान की व्याख्या नहीं कर सकता। केवल सभ्यताओं के जन्म की ही नहीं बल्कि उनके पतन की व्याख्या करने में भी टॉयनबी ने एक महान् ऐतिहासिक सूत्र को ढूंढा जिसे कि उसने "चुनौती और प्रत्युत्तर" (Challenge and Response) कहा है जोकि, जैसा कि हावर्ड बेकर ने निर्देश किया है, बहुत कुछ डब्ल्यू० आइ० टॉमस द्वारा प्रयुक्त "चरमस्थिति" (Crisis) की सामाजिक-मानसिक यंत्ररचना से बहुत मिलता है। इसकी बहुत कम संभावना है कि टॉयनबी तनिक भी टॉमस से प्रभावित हुआ होगा, चूंकि इस बात का कोई संकेत नही मिलता कि वह अमेरिकी समाजशास्त्र के साहित्य से परिचित है। यह सुझाया गया है कि हो सकता है उसने चुनौती और प्रत्युत्तर का अपना मूलसूत्र एक समय अत्यंत लोकप्रिय विनवुड रीड की 'दि मार्टियरडम ऑफ मैन' पुस्तक से ग्रहण किया हो, जोकि सर्वप्रथम १८७२ में प्रकाशित हुई और बाद मे अनेक संस्करणों मे पुनःमुद्रित हुई।

प्रारंभ में यह चुनौती मुख्यतः भौतिक वातावरण द्वारा दी जाती है और इसका प्रत्युत्तर इस चुनौती को पूरा करने और उस पर विजय पाने का समाज का प्रयास है। आदर्श प्रारंभिक चुनौती वह है जो मानवजाति के यथासभव अधिकतम प्रयास को प्रेरित कर सके, किंतु साथ ही वह इतनी अधिक विकट न हो कि उसके पूरा करने में समस्त मानव शक्ति ही नष्ट हो जाय। यदि चुनौती अत्यंत कठोर है तो उसका प्रत्युत्तर मानव-शक्ति और उपक्रम को इतना अधिक समाप्त कर देगा कि तब केवल एस्किमो जैसी अवरुद्ध सभ्यता ही उत्पन्न हो सकेगी। यदि चुनौती बहुत हल्की है, तो मानवजाति सभ्यता की सीमा पर आराम से और निष्क्रियता से विचरण करेगी तथा एक उच्च संस्कृति की सृष्टि न कर सकेगी।

चुनौतियों और प्रत्युत्तरों के प्रथम महान् प्रतिमान या संकुल वे थे जो सभ्यताओं के उदय की अवधि मे भौतिक और सामाजिक वातावरण में निहित थे। सभ्यता प्राप्त होने के पश्चात् चुनौतियों और प्रत्युत्तरो का दूसरा प्रमुख प्रतिमान प्रकट होता है। यह नया संकुल प्रत्यक्ष रूप से भौतिक वातावरण से नहीं, बल्कि उत्पन्न हुई सभ्यता को सफलतापूर्वक संचालित करने की समस्याओ से, दूसरे शब्दों में, सामाजिक समस्याओं और सार्वजनिक जीवन से, संबंधित है। इनमें से गंभीरतम समस्याये—चुनौतियां, जिनका एक परिपक्व सभ्यता को सामना करना पड़ता है, नेताओं मे पर्याप्त आध्यात्मिक सृजनशक्ति को क़ायम रखना और प्रत्येक सभ्यता का निर्माण करनेवाले टॉयनबी के "लघुराज्यों" (Parochial states) के बीच युद्धों का निराकरण है।

यदि सभ्यता को प्राप्त करने के संघर्ष से उत्पन्न संस्थाये और सामाजिक नीतियां एक परिपक्व संस्कृति में सामाजिक संबंधों की चुनौती पर अधिकार पाने की बाद की आवश्यकता के अनुरूप नहीं है तो प्रत्युत्तरों के दूसरे क्रम के असफल होने की आशंका है, और

सभ्यता की विशृंखलता प्रारंभ हो जाती है। प्रायः इसके बाद, जिसे कि सभ्यता की अधिकतम शान की अवधि कहा जाता है आती हैं, किंतु इस शान में घातक बीज और पतन के लक्षण होते हैं। सभ्यतायें सदा ही बाहरी आक्रमणों की अपेक्षा आंतरिक दुर्बलता के कारण नष्ट होती हैं। नेताओं के पुनर्जीवन द्वारा, जिसे टॉयनबी निवृत्ति और पुनरागमन (Withdrawal-and-Return) कहता है, ऐतिहासिक विकास की व्याख्या में दूसरा महान् सूत्र है और जिसका हम शीघ्र ही जिक्र करेंगे, सभ्यता को स्थायी रूप से छिन्न-भिन्न होने से बचाया जा सकता है। ऐतिहासिक विकास की व्याख्या में यह उसका दूसरा महान् सूत्र है जिसका हम शीघ्र ही विवरण देंगे।

एक विशिष्ट सभ्यता के जीवनवृत्त की मुख्य अवस्थाओं और गुणों का टॉयनबी का चित्रण निम्न प्रकार है : सभ्यता की प्रारंभिक और वर्धमान अवधि में—जबकि मानव-जाति भौतिक या प्राकृतिक वातावरण की चुनौतियों के प्रथम महान् प्रतिमान का प्रत्युत्तर दे रही है—ऐतिहासिक प्रक्रिया, जिसे कि टॉयनबी "सृजनात्मक अल्पसंख्या" (Creative Minority) कहता है, उसके द्वारा संचालित होती है, जिसमे कि महान् धार्मिक नेता सबसे आवश्यक और प्रभावशाली तत्व है।

सहज प्रशंसा और विश्वास के कारण जनसाधारण स्वेच्छा से और बिना नूनच के सृजनात्मक अल्पसंख्या का अनुसरण करते हैं। टॉयनबी ने उत्साह और संगति से इतिहास के "महापुरुष" (Great Man) सिद्धांत का समर्थन किया है।

जब एक सभ्यता भलीभांति स्थापित हो जाती है, तब अनिवार्यतः एक प्रवृत्ति कार्य करने लगती है जो समस्त सभ्यताओं के पतन का सार्वभौम और स्थायी कारण है। सृजनात्मक अल्पसंख्या, जिसने मानवजाति को आदिमवाद से सभ्यता में प्रविष्ट कराया था, अपनी आध्यात्मिक शक्ति और सृजनात्मक उत्साह को कम-से-कम पर्याप्त रूप में अपनी निर्देशात्मक और प्रेरणात्मक जीवनशक्ति (*elan*) खो बैठती है जिससे कि वह अब समाज को उच्चतर स्तरों पर नहीं ले जा सकती। इस आध्यात्मिक सृजनात्मकता की हानि के फलस्वरूप सृजनात्मक अल्पसंख्या जिसे कि टॉयनबी ने "प्रबल अल्पसंख्या" (Dominant Minority) कहा है, उसमें रूपांतरित हो जाती है। यह प्रबल अल्पसंख्या एक या दूसरे प्रकार के बल द्वारा अपने को क़ायम रखती है, क्योंकि इसमें जनसाधारण को सम्मान और प्रशंसा की स्थिति में रखने के लिये अपेक्षित आध्यात्मिक उत्साह, प्रेरणा और आविष्कारक्षमता का जैसा कि इससे पहले सृजनात्मक अल्पसंख्या में थी, अभाव होता है। अभी तक समस्त सभ्यताओं के अवश्यंभावी पतन के चाहे कितने भी अनेक और विविध अन्य कारण रहे हों; बुनियादी तथ्य अल्पसंख्या में सृजनात्मकता का नष्ट हो जाना है।

जब नेताओं की आध्यात्मिक सृजनशक्ति के नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप सृजनात्मक अल्पसंख्या का स्थान प्रबल अल्पसंख्या ले लेती है, तब सभ्यता में जिसे कि टॉयनबी ने "कष्टों का काल" (Time of Troubles) कहा है, आता है, "ये कष्ट

समाज के अंदर वर्गसंघर्षों और संकीर्ण विरोधों का और समाजों या सभ्यताओं और एक या अनेक पड़ोसी सभ्यताओं के बीच युद्धों का रूप धारण कर लेते हैं। किंतु इनमें सबसे गंभीर कष्ट वह है जिसे टॉयनबी ने सभ्यता के अंदर "लघु राज्यों" (Parochial states) के बीच युद्ध कहा है। यहां उसका जो तात्पर्य है, ग्रीक नगर-राज्यों के बीच युद्ध उसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

समस्त "कष्टों" के बावजूद अभी भी सभ्यता को "निवृत्ति और पुनरागमन" (Withdrawal and Return) द्वारा बचाने का और इसके परिणामस्वरूप टॉयनबी के शब्दों में नेताओं का ऊर्ध्वीकरण (Etherialization) हो जायेगा। अभी भी सर्जक प्रतिभायें रहती हैं, और वे ईश्वर के साक्षात्कार, ब्रह्म के चिंतन और अपनी आत्माओं के पर्यवेक्षण द्वारा आध्यात्मिक पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिये जनसाधारण से हट जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप होनेवाला आध्यात्मिक कायाकल्प पुनर्जन्म, दैवकृपा और नैतिक विश्वासों का पुनःसंस्कार टॉयनबी की भाषा में ऊर्ध्वीकरण की उपज है। ये प्रबुद्ध नेता पुनः जनसाधारण को अनुप्रेरित करने के लिये लौटते हैं, जैसा कि सभ्यता के उद्गम की अवधि मे सृजनात्मक अल्पसंख्या ने किया था। मोज़ज का सिनाइ पर्वत पर आरोहण, सीजर के गॉल-युद्ध, ईसा का वन मे उपवास, पॉल का अरब के रेगिस्तान मे चले जाना, गौतम का सात वर्ष के लिये संसार-त्याग, एक कारवां व्यापारी के रूप में मुहम्मद का पंद्रह वर्ष का अनुभव और पाश्चात्य यूरोप में पीटर महान् की यात्रा ऐसी निवृत्ति और पुनरागमन के उदाहरण हैं। फिर भी यह प्रबुद्ध नेतृत्व कभी भी एक सभ्यता को अंतिम पतन और विलुप्त होने से न बचा सका—जब तक कि, यह अपवाद इस नियम को सिद्ध करता है, हम पाश्चात्य जगत् के लोग अधिक देर होने से पहले ईसा के संदेश को स्वीकार न करें। अन्य समस्त सभ्यताये पहले ही विलुप्त या विनष्ट हो चुकी हैं।

जैसा कि हम संकेत कर चुके हैं, दूसरे क्रम में कष्टों की अवधि में—महानतम सार्वजनिक चुनौती सभ्यता के अंतर्गत लघु राज्यों के युद्धों की है। इस चुनौती के प्रति प्रबल अल्पसंख्या का प्रत्युत्तर टॉयनबी की भाषा में "सार्वभौम राज्य" की सृष्टि है, यद्यपि यह कभी भी अक्षरशः सार्वभौम नही होता—उसका तात्पर्य एक महान् राजनैतिक साम्राज्य से है, जैसा कि रोम ने ग्रीक सभ्यता के लघु राज्यों के बीच युद्ध रोकने के लिये निर्माण किया था। लेकिन यह इलाज बीमारी जितना ही बुरा साबित हुआ, चूंकि तथाकथित सार्वभौम राज्य की स्थापना अनिवार्यतः उसे प्रतिष्ठित करानेवाली प्रत्येक सभ्यता की मृत्यु का आवाहन करती है।

सम्मान उत्पन्न करनेवाली सृजनात्मकता की अपेक्षा बल द्वारा प्रबल अल्पसंख्या के शासन का प्रयास जन-साधारण और उनके नेताओं की अल्पसंख्या के बीच एक खाई खोद देता है। जनसाधारण दो समूहों में आते हैं: "आंतरिक श्रमिक" (Internal Proletariat) या समाज के अंतर्गत स्थित नागरिक, और "बाह्य श्रमिक"

(External Prolelariat) या "द्वारस्थित या अंतर्गत बर्बर" (Barbarians at or within the gates) ऐसा लगता है कि टॉयनबी ने आंतरिक और बाह्य श्रमिकों की अवधारणा महान् रूसी समाज इतिहासज्ञ माइकेल आइ० रोस्टोव्टजेव से ग्रहण की। प्रबल अल्पसंख्या के बल पर आश्रित शासन से लड़ने तथा असृजनात्मक नेताओं द्वारा नियंत्रित सार्वभौम राज्य का विरोध करने के लिये आंतरिक श्रमिक वर्ग एक सार्वभौम धर्म को ग्रहण करता है और एक "सार्वभौम चर्च" का निर्माण करता है। बाह्य श्रमिकवर्ग अपने विदेशी विचारों और जीवनरीति को सभ्यता में प्रवेश कराने का प्रयास करता है। यह संघर्ष सार्वभौम राज्य के विघटन में समाप्त होता है जबकि प्रबल अल्पसंख्या आतरिक श्रमिक वर्ग के सार्वभौम धर्म को स्वीकार करती है और बाह्य श्रमिक वर्ग के रिवाजों और कलाओं को ग्रहण करती है। तब मरणासन्न सभ्यता अल्पाधिक क्रमिक, किंतु निश्चित और अपरिहार्य पतन की ओर अग्रसर होती है।

कष्टों की अवधि और पतन अपने दामन में राजनीति और नागरिकों की आत्माओं में दरार डाल देते है। पहले प्रकार का विभाजन वर्ग-संघर्षो और विदेशी युद्धों का रूप धारण करता है। आत्माओं का विभाजन मानसिक संघर्षो, विभक्त व्यक्तित्वों, व्यक्तिगत पतन (नौरडाउ से तुलना कीजिये) और विभक्त निष्ठाओं मे व्यक्त होते है।

यह मनुष्य को उसके कष्टों और कठिनाइयों से उद्धार करने के लिये रक्षकों (Saviors) के प्रकट होने का समय है। अनेक प्रकार के रक्षक होते है। प्रबल अल्पसंख्या की सृजनात्मक प्रतिभाये, खड्गधारी रक्षक—महान् योद्धा—विजेता, ढाइम-मशीनवाले रक्षक या कल्पित लोकों (Utopias) के विक्रेता, प्लेटो के दार्शनिक-राजा के वेश मे रक्षक, जैसे कि मार्क्स औरेलियस, और ऐसे रक्षक जो ईश्वर का अवतार होने का दावा करते है, जिनमे कि केवल एक ईसा मसीह ही ऐसा है जिसके दावे सच्चे थे। भूतकाल में यह सभी रक्षक रक्षा करने मे असफल रहे। पाश्चात्य सभ्यता की आशा ईसा की दिव्यता में निहित अवसर के उपयोग करने और एक महान् पुनरुद्धार को लाने की क्षमता पर निर्भर है जोकि, "पृथ्वी पर शांति, मनुष्यों मे सद्-भावना" लायेगी और इस भांति जीवन को एक प्रकार का निरंतर क्रिसमस बना देगी।

४. टायनबी के 'इतिहास के एक अध्ययन' का मूल्यांकन

अपने विचित्र गुण के कारण टॉयनबी की 'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' का मूल्यांकन बहुत कठिन है। क्योंकि अपने उद्देश्य मे पूर्णतः और अपने संपादन में अंशतः, यह रचना मुख्यतः न तो इतिहास है और न ही समाजशास्त्र, अतः इसका इन दो विषयों के प्रसंग में उचित मूल्यांकन नही हो सकता।

यह खुलेतौर से स्वीकार किया जा सकता है कि यह छः जिल्द अपने लेखन के प्रारंभ से ही किसी एक लेखक की ऐतिहासिक रचना पर धार्मिक श्रद्धा के प्रभाव का सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है। और इसकी जितनी ही जिल्द निकलती है उसका परिणाम उतना ही प्रभावशाली है। पीट्रिम सोरोकिन की 'सोशल एंड कल्चरल डायनैमिक्स' और

इस लेखक की संबंधित रचनाओं के संभव अपवाद को छोड़कर, ये जिल्दें तुलनात्मक समाजशास्त्र में सांस्कृतिक केस-अध्ययन पद्धति पर ईसाइयत के सबसे विपुल प्रभाव को दर्शाती हैं। यदि टॉयनबी ऐतिहासिक लेखन का ऑगस्टाइन है, तो सोरोकिन भी समकालीन समाजशास्त्र का ऑगस्टाइन है। सोरोकिन की प्रत्यक्षवादी (Sensate) संस्कृति की निंदा और ईश्वर और ब्रह्म पर लौटकर परोक्षवादी (Ideational) और आध्यात्मिक सभ्यता को अपनाने की वकालत, केवल टॉयनबी की ईसा के अवतार की अद्वितीयता के उपयोग की अधिक प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत अपील का ही समाज-शास्त्रीय प्रविवेक है।

दैवी न्याय (Theodicy) और इलहाम (Apocalypse) और ब्रह्मांड और मानव अनुभव के दैवी उद्देश्य की टॉयनबी की ईश्वरीय और काव्यमय यात्रा की सत्यता और वैधता का उचित निर्णय तो स्वयं ईश्वर ही कर सकता है। इस मायने में यह अपने किस्म की आख़िरी पुस्तक हो सकती है या नहीं भी, लेकिन निस्संदेह यह अभी तक सबसे प्रभावशाली पुस्तक है। क्या इतिहासकार इतिहास में ईश्वर की भारी और आक्रोशयुक्त बाहु के चित्रण में कभी सफल होगा या नहीं, टॉयनबी ने अवश्य ही सबसे शानदार प्रयास किया है।

इस अज्ञेय और अवर्णनीय क्षेत्र को छोड़कर हम इतिहास और समाजशास्त्र के अधिक सांसारिक और लौकिक क्षेत्र में प्रवेश कर अधिक ठोस आधार पर आ सकते है। हम यहां पर उसकी विशिष्ट शब्दावली को साधारण दोष समझकर छोड़ सकते हैं; यन और यांग और इसी प्रकार की विचित्र शब्दावली को प्रायः घिसी हुई और संदेहास्पद सादृश्य, रहस्यवादी अभिप्राय और धार्मिक रंग और अंतिम आरोह को गौण दोष समझकर छोड़ सकते हैं।

एक सामाजिक इतिहास के तौर पर, राष्ट्रीय और राजवंशों की धारा की अपेक्षा अपने मूल विषय के रूप में सभ्यताओं के उत्थान व पतन को ले लेने में टॉयनबी की रचना सामाजिक इतिहास के रूप मे शक्तिशाली है। टॉयनबी की रचना में अध्ययन की गई सभ्यताओं के इतिहास की विवेचना में अनेक अतिश्रेष्ठ और ज्ञानवर्धक अंश है, विशेषकर जहां कि टॉयनबी की जानकारी सर्वश्रेष्ठ है, जैसे कि ग्रीक इतिहास और पाश्चात्य यूरोप का इतिहास। उसका इस रीति का विवरण जिसमें आधुनिक औद्यो-गिक युग और प्रजातांत्रिक समाज में अंतर्निहित वरदान राष्ट्रवाद और युद्धों द्वारा विकृत और विनष्ट हो गया है, एक ऐसी चीज़ है जिस पर कि हमारे युग को समझने और श्रेष्ठ युग के निर्माण के लिये कार्य करने के लिये बराबर ज़ोर देना जरूरी है।

टॉयनबी की पूर्वधारणायें उसे सदा उन ऐतिहासिक न्यासों की, जिन्हें वह सबसे अच्छी तरह जानता है, एक सही तस्वीर देने से वंचित करती है। उसका श्रद्धा और आध्यात्मिक सृजनात्मकता के परात्परवादी महत्त्व का अभ्युपगम (Assumption) उसे पेरीक्लीज़ के युग में ग्रीक बुद्धिवाद (Rationalism) और कानून की महान्

पद्धति के निर्माण तथा पाश्चात्य जगत् में शांति और एकता लाने में रोम के महत्त्वपूर्ण योगदान की महान् उपलब्धियों को छोटा बताने के लिये प्रेरित करता है। टॉयनबी रोमन साम्राज्य को ग्रीक सभ्यता का एक पहलू—एक सार्वभौम राज्य के रूप में पतनोन्मुख पहलू मानता है—और सभ्यता के पतन के उसके अनेक सामान्य सिद्धांत स्पष्ट ही रोमन विशृंखलता की धारा पर आधारित है। किंतु यहां पर उसने अधिक महत्त्वपूर्ण कारकों का बहुत अपूर्ण ज्ञान प्रदर्शित किया है, या उन्हें इसलिये छोड़ दिया है क्योंकि वे उसकी इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या में फिट नही होते।

समाजशास्त्र के रूप मे टॉयनबी की देन जिसे कि समाजशास्त्री अब संस्कृति–केस-अध्ययन कहते है, मुख्यतः इसमें निहित है, और हावर्ड बेकर ने घोषणा की है कि "टॉयनबी ने समाजशास्त्रियों को ऐतिहासिक समाजशास्त्र में सस्कृति-केस-अध्ययन की संभावनाओं का एक शानदार उदाहरण दिया है।" [५] इसके आगे, समग्ररूप मे समाजशास्त्र के दृष्टि-कोण से टॉयनबी की रचना तुलनात्मक समाजशास्त्र की एक विस्तृत यात्रा है जोकि क्लासिकल मानवशास्त्रियों और ऐतिहासिक समाजशास्त्रियों के पूर्ववर्ती अध्ययनों से मुख्यतः इसमें भिन्न है कि यह प्रधानतः आदिकालीन समाजों में सीमित होने की अपेक्षा मुख्यतः ऐतिहासिक सभ्यताओं पर विचार करती है।

कठोर इतिहास के रूप में टॉयनबी के दोष मुख्यतः इस तथ्य में निहित है कि सच्चे वैज्ञानिक इतिहास मे उसकी अभिरुचि केवल आकस्मिक है। पुस्तक के शीर्षक के बावजूद, यह प्रधानतया एक इतिहास या (१) "इतिहास का एक अध्ययन" नहीं है। यह एक वस्तुगत या व्याख्यात्मक इतिहास भी नही है। यह धर्मशास्त्र है, जिसमें ईश्वर की इच्छा को दर्शाने के लिये इतिहास के चुने गये तथ्यों का प्रयोग किया गया है, जिस प्रकार कि इन्हीं परिणामो को प्राप्त करने के लिये मध्यकालीन पशुओं की शिक्षा-प्रद कथाओं में प्राणिशास्त्रीय कल्पनाओं का उपयोग किया गया है। टॉयनबी की रचना ओरोसियस और ऑगस्टाइन से मुख्यतः इस बात मे भिन्न है कि उसने उसी बात को सिद्ध करने के लिये दैवी प्राणियों की अपेक्षा मनुष्यों की क्रियाओं का अपेक्षतया अधिक प्रयोग किया है। टॉयनबी की विपुल सामग्रियां इतिहास की वास्तविक प्रक्रियाओं की अपेक्षा टॉयनबी के मन की प्रक्रियाओं पर कहीं अधिक प्रकाश डालती है।

टॉयनबी का उद्देश्य और प्रेरणा ही केवल सभ्यता के इतिहासकार से भिन्न नहीं है, बल्कि सभ्यता के एक विस्तृत तुलनात्मक इतिहास को पूरा करने के लिये उसकी पेशेगत तैयारी बहुत थोड़ी है। वह एक रहस्यवादी है, एक क्लासिकल विद्वान् है, एक योग्य राजनैतिक इतिहासकार और पत्रकार है। और उसके पास उस आकर्षण का अथाह सागर है जिसे कि वह सृजनात्मकता का स्रोत तथा चिन्ह समझता है। किंतु उसके पास सांस्कृतिक मानवशास्त्र, ऐतिहासिक समाजशास्त्र और सामाजिक इतिहास की टेक्नीकों और विषयवस्तुओं पर अपरिहार्य अधिकार नहीं है, जोकि उसके विरुद्ध इसके अतिरिक्त चाहे जो कुछ भी कहा जा सके, सोरोकिन के पास है। अनेक समालोचकों

ने टॉयनबी की महान् विद्वत्ता और श्रम और अनेक भाषाओं पर उसके अधिकार पर ज़ोर दिया है। इसे बिना किसी आपत्ति के, बहुत कुछ ईर्ष्या से स्वीकार किया जा सकता है। किंतु असली मुद्दा यहां पर यह नहीं है कि एक व्यक्ति कितना पढ़ सकता है और कितनी अधिक भाषाओं में, बल्कि यह है कि क्या उसने "सही चीजें"—जोकि प्रस्तुत कार्य के लिये अपरिहार्य सामग्रियां हैं—पढ़ी है या नहीं। यहां यह कहना आवश्यक है कि टॉयनबी इस परीक्षा में असफल है। यह कही बेहतर होता कि उसने केवल अंग्रेज़ी भाषा में ही उपलब्ध संबंधित साहित्य को पढ़ा होता। अनिवार्य प्रविधियों पर अधिकार न होने की क्षमता ने टॉयनबी के लिये जो कुछ उसने पढ़ा है, जो विस्तृत और विपुल है, उसके सुयोग्य प्रयोग को असंभव बना दिया है। उसकी धार्मिक अनुस्थिति और अभिप्राय उसे ऐतिहासिक सामग्रियों के एक निश्चित चुनाव के प्रतिमान और एक निश्चित व्याख्या की ओर प्रेरित करते हैं। वह इस प्रकार इतिहास लिखता है जिस प्रकार कि वह समझता है इसे लिखा जाना चाहिये, वह जो कुछ रहा है उसके बजाय, उससे मुक्ति के लक्ष्य को प्रोत्साहन देना चाहिये।

इस धर्मशास्त्रीय विकृति के बिना भी, टॉयनबी के लिये जननिक दृष्टिक्रम के अभाव मे, जोकि सांस्कृतिक मानवशास्त्र, ऐतिहासिक समाजशास्त्र और सामाजिक इतिहास की जानकारी से आता है, सभ्यता के महान् इतिहास की रचना कठिन होती। यह उसके बुनियादी थीसिस से, कि सब सभ्यताये मूलतः समकालीन हैं क्योंकि वे सब पिछले छः हजार या इतने ही वर्षों मे उदित हुई हैं, घातक रूप से स्पष्ट है। वह इस तथ्य की उपेक्षा करता है कि पहले दस लाख वर्षो की अपेक्षा पिछले छः हजार वर्षो मे मानव जीवन और संस्थाओ मे अधिक परिवर्तन घटित हुए हैं और पहले पांच हजार वर्षों की अपेक्षा पिछले दो शताब्दियों के रूपांतर कही अधिक हैं। किसी भी अक्षरशः और निश्चित अर्थ में औद्योगिक क्रांति के पहले और बाद के काल की सभ्यताओं की तुलना करने का प्रयास सच्ची ऐतिहासिकता का निर्लज्जतापूर्ण उल्लंघन है। और इतिहास में तर्क, विज्ञान और प्राद्योगशास्त्र (Technology) के प्रभाव को घटाना या उसकी उपेक्षा करना मानव विकास उन सबसे गत्यात्मक कारकों को दृष्टि से ओझल करना है जिन्होंने आधुनिक सभ्यता का निर्माण और समकालीन समस्याओं की सृष्टि की है जिनको समझने और समाधान करने मे सहायता देना इतिहास का मुख्य उद्देश्य है।

टॉयनबी का ऐतिहासिक तथ्यों का विवेचन और व्यवस्थापन मुख्यतः इस प्रकार किया गया है जिससे कि उसके तुलनात्मक कार्यक्रम और केस-अध्ययन की विशेष योजना की आवश्यकतायें पूरी हो सकें। उन्हें इस प्रकार खोजा और प्रस्तुत किया गया है जिससे कि उसके दैवी न्याय (Theodicean) के नाटक का औचित्य सिद्ध किया जा सके और जो अनिवार्यतः अध्ययन की गई इक्कीस सभ्यताओं के वास्तविक विकास के पूर्णक्रम के अनुरूप नहीं है। विभिन्न सभ्यताओं के उसके किसी एक इतिहास को भी उस सभ्यता के एक पूर्ण और वास्तविक इतिहास के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

हम कभी भी इस बात पर सदा निश्चित नहीं हो सकते कि विवेचित सभ्यतायें वस्तुतः प्रदत्त कारणों के कारण और वर्णित रीति के अनुसार पतित हुई या वे पुस्तक में उसी प्रकार "गिरती" हैं जोकि उनके लिये टॉयनबी की पूर्व-निर्धारित ह्रास और विनाश की योजना में मेल खाते हैं।

टॉयनबी की सभ्यताओं के गिरने की अवधारणा सामाजिक इतिहासकारों की उस बढ़ती हुई प्रवृत्ति के विरुद्ध है जो "गिरावट" या विनाश के तत्व पर संदेह करती है, या उसे छोटाकर बताती है। उदाहरण के लिये, जैसा कि एलफोंस डौप्श ने विद्वत्तापूर्वक दर्शाया है, अब हमें बताया जाता है कि रोम कभी भी नहीं गिरा बल्कि पश्चिम में रोमन सभ्यता क्रमशः मध्यकालीन यूरोप की सभ्यता में विलीन हो गई। फैरोनी मिस्र की किसी भी अवधि की अपेक्षा हैलेनी या ग्रीक मिस्र की सभ्यता अधिक शानदार थी। इसी प्रकार न तो सार्गोन, और न ही नेबूकैदनज़र और न ही दैरियस को किसी ऐसी चीज़ का ज्ञान था जिसकी कि बगदाद में हारूं अल-रशीद के नीचे मुस्लिम सभ्यता की शान से मुक़ाबला किया जा सके, अस्तु।

राष्ट्र और राजवंश नष्ट हो सकते है, और विशेष नस्लों की प्रभुता बदल सकती है, किंतु इस सबके बावजूद भी सभ्यता जीवित रह सकती है। यदि ऐसा है, तो यह टॉयनबी के ऐतिहासिक मूल्यों और वास्तविकताओं के अपने मानदंड से भी एक महत्त्वपूर्ण मद है, चूंकि उसने भी प्राथमिक ऐतिहासिक कारकों के रूप में राष्ट्रों, राजवंशों व नस्लों का निराकरण किया है। इसके आगे इस अभ्युपगम (Assumption) में कि यह समस्त पूर्वी सभ्यतायें वस्तुतः "गिर गई" हैं, कुछ पाश्चात्य अहंकार हो सकता है। मुस्तफ़ा क़माल ने यह दिखाया कि आधुनीकरण होने पर इस्लामी सभ्यतायें क्या कर सकती हैं। यदि चीन और भारत कभी राजनैतिक एकता, आंतरिक शांति और औद्योगीकरण प्राप्त कर सकें, वे शक्ति और समृद्धि में पाश्चात्य सभ्यता को काफ़ी पीछे छोड़ सकते है। सुदूरपूर्व की भावी प्रभुता की भविष्यवाणी करने मे स्पेंगलर बहुत कुछ सही हो सकता है। एक ऐतिहासिक रचना विद्यमान है जिसने कि ठीक वही कार्य किया है जोकि टॉयनबी के प्रशंसक समझते है कि उसने किया। यह रैल्फ ई० टर्नर की 'महान् सांस्कृतिक परंपरायें'—*The Great Cultural Traditions* है।[६] वर्तमान विवाद में कोई भी चीज़ इन दोनों पुस्तकों को पढ़ने और तुलना करने पर उससे अधिक शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक नहीं हो सकती। टर्नर के पास सभ्यता का वास्तविक इतिहास लिखने की तैयारी थी और वह धर्मशास्त्र को धर्मशास्त्रियों के लिये छोड़ने को इच्छुक था।

इसी प्रकार समाजशास्त्र में संस्कृति-केस-अध्ययन की देन के रूप में, टॉयनबी की रचना का महत्त्व इस कारण घट जाता है कि उसने प्रायः अध्ययन करने से पहले ही अपने "केस" को सूत्रबद्ध कर लिया है और वह अपने कार्यक्रम के अनुकूल उसे तैयार करता है। एमील दुरखीम और मैक्स वैबर जैसे संस्कृति-केस-अध्ययन के महान् उस्तादों के कार्य की तुलना में टॉयनबी के सभ्यताओं के केस-अध्ययन "घिसे-पिटे"

प्रकार के लगते हैं जो इस प्रकार के अन्वेषण और विश्लेषण की तैयारी के लिये सांस्कृतिक मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के सिद्धांतों में दक्षता प्राप्त करने में असफल रहने का अवश्यंभावी परिणाम है ।

तुलनात्मक ऐतिहासिक समाजशास्त्र के रूप में टॉयनबी की रचना उसी दोषयुक्त पद्धतिशास्त्र के अंतर्गत आती है जिसने कि पुराने क्लासिकल, तुलनात्मक या विकासवादी मानवशास्त्रियों और ऐतिहासिक समाजशास्त्रियों की रचनाओं के बड़े अंश को विस्तृत कर दिया था और जिसका कि बोआस, लोवी और गोल्डनवीजर ने स्पष्टता से भ्रमोच्छेदन किया है। क्लासिकल मानवशास्त्रियों की भांति टॉयनबी ने भी एक सामाजिक प्ररूप या ऐतिहासिक प्रतिमान की सार्वभौमता को मान लिया है और फिर वह उसे सत्य सिद्ध करने के लिये इतिहास के न्यास ढूंढ़ता है। यह कहना अनुचित नहीं है कि वह ल्यूइस हेनरी मार्गन जैसे विकासवादी मानवशास्त्रियों की अपेक्षा ग़लत है, जिन्होंने दृढ़ता से प्राकृतिक विकासवादी शक्तियों को पकड़ा और उनके नाम पर ईश्वर के हाथ का आवाहन नहीं किया। यहां पर मार्गन टॉयनबी से कहीं अधिक आगे है जैसे कि हरबर्ट स्पेंसर के 'फ़र्स्ट प्रिंसिपल्स' ऑगस्टाइन के 'सिटी ऑफ गॉड' से। यदि हम ऐतिहासिक समाजशास्त्री की हैसियत से टॉयनबी के दर्जे का कुछ अनुमान करना चाहते है तो विलियम क्रिस्टी मैकलियड की 'ओरीजिन एंड हिस्टरी ऑफ पालिटिक्स'[७] से उसकी पुस्तक की तुलना करने से अधिक श्रेष्ठ अध्ययन न हो सकेगा ।

तुलनात्मक पद्धति केवल तभी सत्य है जबकि तुलना की जानेवाली चीजें तुलनीय है। इतिहास की समस्त अवधियों में प्राद्योगशास्त्र, संस्थाओं और विचारों की भिन्नता पर उचित ध्यान दिये बिना सभ्यता की प्रक्रियाओं की समता और तुलना सर्वथा अनैतिहासिक है। टॉयनबी ने खुले तौर से व्यौरों की भिन्नताये स्वीकार की है किंतु उसका मत है कि बुनियादी प्रक्रियाये सर्वत्र और सब कालों मे समान है। यह प्राचीन रोम के कष्टों और कठिनाइयो मे आधुनिक अमेरिका के लिये चेतावनी ढूंढने के लोकप्रिय प्रयास से मिलता है। कुछ लोगों द्वारा यह आग्रह किया जा सकता है कि कम-से-कम मानव प्रकृति (Nature) तो समान है, चाहे वह ३००० ई० पू० का चीन हो या १९४७ का सयुक्त राज्य; किंतु मानव पोषण और शिक्षण (Nurture) बहुत भिन्न है और यही चीज है जो महत्त्वपूर्ण है; स्वयं टॉयनबी ने नस्ल के कारक को इतिहास में निर्णायक शक्ति मानने से इन्कार किया। एक प्राचीन कृषक अलौकिकवाद की अवधि की लौकिक और नगरी-उद्योगवाद के युग की सभ्यता की प्रक्रिया से तुलना करने में किसी प्रकार की सत्यता नहीं है ।

टॉयनबी की चुनौती और प्रत्युत्तर की अवधारणा भी, जो एक सामान्य सिद्धांत के रूप में सत्य है, प्रायः ऐतिहासिक तथ्यों की संदेहास्पद व्याख्याओं और अस्थिर मानव-भूगोल पर आधारित है। महापुरुषों और नायकों की "निवृत्ति और पुनरागमन" की अपेक्षा प्राद्योगिक परिवर्तनों द्वारा प्रसूत नये विचार, संस्थागत परिवर्तन, वर्ग-परिवर्तन

और संस्कृतियों के संपर्क सुधार के कार्यक्रमों की व्याख्या में कहीं अधिक सहायक है। यह पूछा जा सकता है कि उन नये विचारों का क्या स्रोत था जिनका अध्ययन करने के लिये पीटर महान् निवृत्त हुआ। टॉयनबी के अधिकांश विश्लेषण की जटिलता की आवश्यकता पर भी आपत्ति की जा सकती है। जैसा कि हक्स्ले ने एक बार कहा था कि व्याख्या जितनी सरल होगी उतनी ही अधिक उसके सत्य होने की संभावना है, बशर्ते कि वह समुचित हो। स्पेसर का "मृत-हाथ" (Dead hand) और ऑगबर्न का सांस्कृतिक पश्चायन (Cultural Lag) से उन अनेक परिवर्त्तनों व संघर्षों की कैफ़ियत दी जा सकती है जिन्हें टॉयनबी ने जटिल शब्दजाल और धर्मशास्त्रीय विक्षिप्तताओं में छिपा दिया। और लौकिकवाद की विजय के युग में आध्यात्मिक पूर्वनियति और पुनरुद्धार के दर्शन के औचित्य और संगति पर संदेह किया जा सकता है।

क्यों टॉयनबी का विश्लेषण इतना प्रभावकर है इसका एक कारण यह है कि उसके अधिकांश पाठकों ने समाजशास्त्र नही पढ़ा है या पढ़ा भी है तो बहुत कम। अनेक प्रकार से तो टॉयनबी की रचना कोंत की 'प्रिस्पिल्स ऑफ ए पॉजिटिव पॉलिटी' के समान भी अद्यतन और संतोषजनक नही है। निस्संदेह नव-ऑगस्टाइनवाद की अपेक्षा कोंत का "मानवता का धर्म" आज बुद्धिवादियों के लिये अधिक आकर्षक होना चाहिये। मैक्स वैबर के पूर्व और पाश्चात्य सभ्यताओं के अध्ययनों की तुलना में टॉयनबी का सामाजिक ऐतिहासिक न्यासों का उपयोग प्रायः बचकाना और अपरिपक्व है।

अपनी रचना की अत्यंत स्तुति और उसके स्वरूप और महत्त्व के अतिशयोक्तिपूर्ण अनुमानों के लिये श्री टॉयनबी को दोषी ठहराना अनुचित होगा। अपने मित्रों से, जो उन्हें अच्छी तरह जानते है, मुझे मालूम हुआ है कि वह एक सरल और सीधे आदमी हैं जो मुख्यतः संसार की भलाई करने के लिये कृत-संकल्प हैं। टॉयनबी को इतिहासशास्त्र का "कोपर्निकस" या "आइंस्टीन" मानना अवश्य ही अतिशयोक्ति है। यह कहना तो और भी बड़ी बेहूदगी होगी कि अब से ऐतिहासिक रचनाओं को "टा० पू" और "टा० प०" (टॉयनबी से पूर्व और पश्चात्) नामकरण किया जाना चाहिये। यदि उसकी धारणा और दृष्टिकोण भविष्य में ऐतिहासिक लेखन की शैली को निर्धारित करें, तब हम ओटो ऑफ फ्रीजिग और जॉन जोनोरैस के बीसवी शताब्दी के संस्करण की शैली पर इतिहास की वर्तमान और भावी फसलों की आशा कर सकते है। यह अधिक सभव नही है कि अनेक इतिहासकार टॉयनबी के प्रतिमान का अनुसरण करेंगे क्योंकि उनमें से किसी के भी इस प्रकार के कार्य को इतनी अच्छाई से या इतनी पूर्णता से, चाहे और कोई कारण न भी हो, करने में समर्थ होने की अधिक संभावना नही हैं। और इस प्रकार की अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं है।

५. टायनबी की रचनाओं की लोकप्रियता के कुछ कारण

स्पष्ट ही यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्यों इसी समय और विशेषकर १९४७ म टॉयनबी की इतनी व्यापक और विपुल प्रशंसा होनी चाहिये। उसकी पहली तीन जिल्दें

सत्ताइस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थीं और उनमें उसके अधिकांश बुनियादी विचार सम्मिलित थे। उसके बाद की तीन जिल्दें १९३९ में इक्कीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुईं। कुछ लोग कह सकते हैं इसलिये कि उसका एक जिल्द में संक्षेप उपलब्ध है, किंतु यह इसका उत्तर नहीं है, वास्तव में बढ़ते हुए टॉयनबी के पंथ की पुकार ने संक्षेप का विचार सुझाया। ऐसा लगता है कि कम-से-कम पांच ऐसे समूह हैं, और विशेषकर अराजक युद्धोत्तरकाल में, जिन्हें इस रचना की विशेष और सामयिक अपील है।

टॉयनबी के निष्ठावान् अनुयायियों की सेना में सबसे बड़े अंश की अभिरुचि के स्रोत को समझने के लिये, हमें पश्चिम में रोमन साम्राज्य की विशृंखलता के समय में साक्षर जनसंख्या में विद्यमान बौद्धिक भयों, आशंका और "स्नायुक विशृंखलन" (Loss of nerve) के पहले एक पहले उदाहरण पर, जिसका कि गिलबर्ट मरे ने विवरण दिया है, लौटना होगा। भटकने और तरसने के उन वर्षों में ओरोसियस की "सेविन बुक्स ऑफ हिस्टरी अगेंस्ट दि पैगन्स" और सबसे अधिक ऑगस्टाइन के 'सिटी ऑफ गॉड' ने भयभीत और असंतुष्ट वर्ग को एक ऐसा ऐतिहासिक दृष्टिक्रम, एक ब्रह्मांड का दर्शन और एक ऐसी श्रद्धा दी जिसमें वह चिपट सके। टॉयनबी ने हमारी संस्थात्मक विघटन की अवधि में वही कार्य किया है जोकि अराजकता और संक्रमण के पहले युग के लिये ऑगस्टाइन और ओरोसियस ने किया था।

टॉयनबी के अनुयायियों का एक दूसरा समूह उनका है जो दो दशकों या उससे पहले उनके द्वारा प्रस्तावित नीतियों को वस्तुतः कार्यान्वित करने के परिणामस्वरूप संसार की दुःखद स्थिति से हतप्रभ हो गया है। वे अब शोक मनानेवालों के स्थान पर आ गये हैं और अपने पापों का प्रायश्चित्त कर अच्छे भविष्य के लिये आश्वासन चाहते हैं। क्लिफटन फैडीमैन ने टायनबी की रचना की हृदय से पुष्टि की है।

फिर अनेक साहित्यिक लोग और पत्रकार हैं जो अंशतः इस ग्रथ से इसलिये आकृष्ट और अभिभूत हैं क्योंकि उन्हें इतिहास, इतिहासशास्त्र या समाजशास्त्र का थोड़ा ही ज्ञान है। कइयों को उनके मालिकों ने प्रोत्साहन दिया है, अन्यों को इसके लिये कार्य दिया गया है और कुछ अच्छी पांडुलिपि की सभावना को सूंघकर इस गाडी में कूद पड़े हैं। इस प्रकार के प्रशंसकों में केवल ग्रैनविल हिक्स ने ही सामान्य पाठकों के लिये टॉयनबी के विचारों की अत्यंत मैत्रीपूर्ण व्याख्या में संशोधन और संदेह की रक्षक भावना दर्शाई है।

चौथा वर्ग उन लोगों का है जिनकी उद्वेगात्मक इच्छायें सदैव अगम्य शब्दाजल, विचित्र शब्दावली और रहस्यवादी वातावरण से पूरी होती हैं, जो उन्हें उस सीमा तक बुद्धिमत्तापूर्ण लगते हैं जिस सीमा तक वह अज्ञात है। श्रीमती एडी की 'साइंस एंड हैल्थ' की शक्ति का यह प्रमुख स्रोत था। जेम्स टी शॉटवैल ने कहा था कि धार्मिक और रहस्यवादी का उद्रेक वस्तु की प्रतीति में है समझने में नहीं। टॉयनबी की रचना अनेक व्यक्तियों को यह प्रस्तुत करती है। जैसा कि चार्ल्स ऑस्टिन बीयर्ड ने कहा है : "उसके अध्यायों की संरचना में काल्पनिक अध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) के कुछ अंश

अंतर्हित हैं; किंतु उन अंशों से एक प्रणाली का निर्माण करना प्रायः असंभव है; न ही ऐसा लगता है कि लेखक ने स्वयं ही ब्रह्मांड की जिस अंतिम योजना के विषय मे विस्तार से लिखा है, अपना मत स्थिर किया है। उसकी विद्वत्ता और अध्यात्मशास्त्र उसकी आलंकारिक भाषा और सादृश्यों का प्रयोग, संपूर्ण को एक विचित्र और पलायमान गुण प्रदान करते हैं।"[९] या, जैसा कि हॉवर्ड बेकर ने इसे रखा है : "तीसरी जिल्द के अंत तक रहस्यवादी अभिप्राय इतना तेज़ हो जाता है कि वह क्रमबद्ध-अनुभवगत मूल विषय को प्रायः दबा देता है।"[१०]

टॉयनबी की रचना के युद्धोत्तरकाल में उसके उत्साहयुक्त अंतर्राष्ट्रीयवाद और "एक विश्व" के राजनैतिक दर्शन जिसकी पुष्टि में इस तथ्य के बावजूद उसने बहुत कुछ धार्मिक श्रद्धा ला दी है, और उसने यह निर्देश किया है कि भूतकाल में सार्वभौम राज्यों की अपूर्ण स्थापना तक भी आसन्न सामाजिक विघटन का प्रायः अभिन्न लक्षण और चेतावनी रही है, टॉयनबी के बहुसंख्यक पाठकों को कुछ हैरत में डाल दिया है।

उन लोगों के अतिरिक्त जो श्रद्धा और सच्चाई से, चाहे कुछ दशाओं में भूल से ही टॉयनबी का अनुसरण करते हैं, एक ऐसा आयोजित प्रयास भी हो रहा है कि उसे हमारी पीढ़ी की सबसे महानतम ऐतिहासिक विभूति बनाया जाय। उसे द्वितीय विश्वयुद्ध का सरकारी ऐंग्लो-अमेरिकन इतिहास तैयार करने के लिये नियुक्त किया गया है और उसके लिखवाने में सहायता करने और निरीक्षण के लिये खुले हाथ आर्थिक सहायता दी गई है। इस हद तक कि उसे सर्वशक्तिमान् अपतित दिखाया जा सके ताकि दुष्ट संशोधनवादियों के लिये उसकी खोजों और निष्कर्षों पर आक्रमण करना कठिन हो जाये।

वस्तुतः टॉयनबी पंथ के सभी सदस्य उसकी रचना के आकार—१९३४ तक छः जिल्दें और तीन उसके बाद आनेवाली जिल्दों—से अत्यंत प्रभावित है। कोई भी निष्पक्ष समालोचक टॉयनबी की महान् विद्वत्ता या विपुल श्रम से इन्कार न करेगा, किंतु उसकी पुस्तक का आकार एक विशेष कैफ़ियत है। संपूर्ण संस्करण एक परिष्कृत और सुसंगठित उत्कृष्ट साहित्य-रचना नहीं है, किंतु अंशतः यह अध्ययन और टिप्पणियों का संग्रह है। यदि महान् मध्यकालविद् जेम्स वैस्टफॉल टॉम्सन ने अपने भाषणों और गोष्ठियों की टिप्पणी के साथ यही किया होता, उसका परिणाम छः या नौ जिल्दें नहीं, बल्कि शायद उन्नीस जिल्दें होतीं। इसके अतिरिक्त, इतिहास और समाजशास्त्र में अन्य कोई पद्धति पृष्ठों को इकट्ठा करने में इतनी अधिक समर्थ नहीं होती जितनी कि तुलनात्मक पद्धति जिसमें कि पहले से ही लेखक अपना कार्यक्रम सूत्रबद्ध कर लेता है, और उसे पुष्ट करने के लिये न्यास ढूंढ़ता है। क्लासिकल मानवशास्त्रियों की विस्तृत रचनायें देखिये, विवाह और नैतिकता पर वैस्टरमार्क की कई जिल्दें, हरबर्ट स्पेंसर की 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलाजी' और इससे भी आगे सर जेम्स जी० फ्रेजर की 'दि गोल्डन बाउ' और चार्ल्स लेतूर्नो की अक्षय जिल्दें।

फिर भी जिस प्रकार श्री टॉयनबी को उनके पंथ के लिये दोष नहीं दिया जा सकता, उसी प्रकार जनता द्वारा उन्हें प्रदत्त प्रशंसा के लिये भी नहीं। 'ए स्टडी ऑफ हिस्टरी' के चाहे कुछ भी गुण या दोष हों, श्री टॉयनबी एक असली चीज़ है; केवल उनका पंथ एक धोखा और जाल है। ग्रैनविल हिक्स ने उसके ग्रंथ को ठीक ही एक "महाकाव्य—एक महा-कल्पनाशील उड़ान·····कवि-सुलभ कल्पना की उपलब्धि" कहा है। दुर्भाग्य से, यह महान् कल्पना मुख्यतः अंग्रेज़ी तत्वावधान में ईश्वर के द्वितीय आगमन पर केंद्रित है। एक प्रतिष्ठित ऐतिहासिक उपन्यासकार ने टॉयनबी की उपलब्धियों का इन शब्दों में चुटीला संक्षेप किया है : "टॉयनबी ने एक अंग्रेज़ी कब्रिस्तान में ब्रह्मांड को दफ़ना दिया।"

टिप्पणियां

१. *A Study of History* (Amer. ed,; New York, 1934), Vols. I-III.

२. *Ibid.*, Vols. IV-VI (New York, 1939).

३. *A Study of History* (Vols. I-VI; D. C. Somervell कृतसंक्षेप) (New York, 1947.)

४. *Somervell* कृतसंक्षेप p. 532.

५. H. E. Barnes and Howard Becker, *Contemporary Social Theory*, (New York, 1940), p. 513.

६. 2 vols.; New York, 1941.

७. New York, 1931.

८. *Harper's Magazine*, February, 1947,

९. *American Historical Review*, April, 1940, p. 593.

१०. Barnes and Becker, *op. cit.*, p. 512.

अध्याय ग्यारह

फ्रैंकलिन हेनरी गिडिंग्स के समाजशास्त्रीय सिद्धांत : सजातीयता की भावना बहुलवादी व्यवहार और संख्याशास्त्रीय पद्धति

क्लेरेंस एच० नार्थकॉट

यॉर्क, इंगलैंड

१. गिडिंग्स की रचनाओं का विवरणात्मक और विकासवादी गुण

प्रोफेसर फ्रैंकलिन हेनरी गिडिंग्स (Franklin Henry Giddings) [१] के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के प्रयास में उन्हें किसी पूर्ण और अंतिम रूप में पाने की कठिनाई का सामना करना पड़ता है।[२] एक हद तक प्रत्येक पुस्तक ग्रंथमाला की अन्य पुस्तकों की पूरक है; अतएव कालक्रमानुसार उनका अध्ययन समाजशास्त्रीय सिद्धांत की पूर्ण प्रणाली के बिना किसी दावे के, जोकि लेखक भी नहीं करेगा, उनके लेखक के मुक्त मन और विश्लेषणात्मक शक्ति का यथार्थवादी प्रभाव डालती है। संशोधन और एकीकरण का अभाव भी विद्यार्थी को द्विविधा में डाल देता है कि गिडिंग्स ने अपने जीवन के अंतिम काल में किन्हें स्वीकार या अस्वीकार किया और वह किनका संशोधन करता। इसके अतिरिक्त भाषणकक्ष में उसका व्यक्तिगत संपर्क भी विशेष सहायक नहीं है। किसी भी तात्कालिक महत्त्व के प्रश्न पर अपने विश्लेषणात्मक मस्तिष्क को लगाने की उसकी आदत, चाहे वह एक नई पुस्तक के प्रकाशन द्वारा, एक नये सिद्धांत के प्रतिपादन हो या किसी राजनैतिक नीति के प्रयोग द्वारा प्रेरित हो, और अपने विश्लेषण के परिणामों को, पुरानी बोतलों में नई शराब को भरने की आदत, किसी भी अस्थायी प्रणाली की रूपरेखा को छिन्न-भिन्न कर देगी। बावजूद इसके, जिन बुनियादी सिद्धांतों पर उसकी समाजशास्त्रीय प्रणाली का निर्माण हुआ है वे इतनी स्पष्टता से प्रस्तुत किये गये हैं कि उनके संश्लेषण का प्रयास किया जा सकता है।

यद्यपि गिडिंग्स में महान् मानसिक मौलिकता थी, फिर भी उसकी समाजशास्त्रीय प्रणाली और विचार उसके अपने समाजशास्त्रीय पूर्ववर्तियों और समकालीनों की रचनाओं के विस्तृत अध्ययन पर आधारित थे। ऑगस्त कोंत से उसने एक बुनियादी या आधारभूत समाजविज्ञान की आवश्यकता का विचार ग्रहण किया। जैसा कि गिडिंग्स ने इस विश्वास को बलपूर्वक व्यक्त किया : "उन व्यक्तियों को, जिन्होंने समाजशास्त्र के प्रथम सिद्धांतों को भी नहीं सीखा है, उन्हें जातिशास्त्र (Ethnology), इतिहास का दर्शन, अर्थशास्त्र

और राजनीति के सिद्धांत पढ़ाना उसी तरह है जिस प्रकार कि उस व्यक्ति को ज्योतिष या तापगतिशास्त्र (Thermodynamics) पढ़ाना जिसने कि न्यूटन के गति के नियम नहीं सीखे है।" कोंत की 'पॉजिटिव पालिटी' से उसने सभ्यता के इतिहास की मुख्य अवस्थाओं की रूपरेखा प्राप्त की। उसने समाज के विषय मे कोंत के धर्मशास्त्रीय और अध्यात्मशास्त्रीय चिंतन की अस्वीकृति को भी पूर्णतः अपनाया और इस मत का समर्थन किया कि वैज्ञानिक युग के योग्य बनने के लिये समाजशास्त्र को सदैव एक अनुभव-मूलक (Empirical) विज्ञान होना चाहिये। डार्विन और हरबर्ट स्पेंसर से उसने यह सीखा कि वैज्ञानिक सामाजिक चिंतन को परिणामतः विकासवादी होना चाहिये, और वह दृढ़तापूर्वक अपने जीवनभर स्वस्थ विकासवादी प्रकृतिवाद (Naturalism) पर डटा रहा। गिडिंग्स की प्रारंभिक समाजशास्त्रीय प्रणाली मूलतः 'फर्स्ट प्रिंस्पिल्स' के बाद के अंश में प्रतिपादित स्पेंसर की प्रणाली का एक संस्करण और स्पष्टीकरण है। लेस्टर एफ० वार्ड से उसने यह धारणा ली कि समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य नागरिक सुधार और सामाजिक उत्थान का वैज्ञानिक मार्गदर्शन है। उसकी "सजातीयता की भावना" (Consciousness of kind) की अवधारणा मुख्यतः एडम स्मिथ की मननजन्य सहानुभूति की धारणा से ग्रहण की गई थी। अपने कुछ समाज मनोविज्ञान के लिये वह तार्दे की ओर झुका और सामाजिक बंधन (Constraint) पर उसके विचार डार्विन, दुरखीम और सुमनर की अवधारणाओं से प्रभावित हुए है। उसका सामाजिक मूल्यों का मनोविज्ञान अंशतः आस्ट्रियन स्कूल और जॉन बेट्स के आर्थिक सिद्धांतों के अध्ययन से लिया गया था। अंत मे, वैज्ञानिक पद्धति और संख्याशास्त्र पर गिडिंग्स के विचार मुख्यतः जॉन स्टुअर्ट मिल, स्टेनली जेवंस, लियो, वालरस और कार्ल पियर्सन से ग्रहण किये गये।

२. मानवसमाज का उद्गम और विकासवाद

गिडिंग्स के अनुसार समाजशास्त्री के अध्ययन के लिये चार सामान्य समस्यायें है : (१) समाज का उद्गम और विकासवाद (Evolution); (२) समाज के तात्कालिक और सामान्य कृत्य के रूप में सामाजिक बंधन (Constraint) और प्ररूप (Type) के साथ व्यहार और चरित्र की अनुरूपता ; (३) चुनाव पर सामाजिक बंधन का प्रभाव; और (४) प्रगति की राशि या दर के रूप मे कल्पित सामाजिक बंधन का अंतिम परिणाम। उसके चिंतन का अधिकांश भाग प्रथम समस्या मे व्यय हुआ, यद्यपि उसने अपनी बाद की रचनाओं में अन्य सबों पर भी कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

समाज को, जिसे उसने अपनी बाद की रचनाओं में समस्त दलों, रेवड़ों और पशुओं के झुंडों से पृथक् किया है, वह साहचर्य (Association) की उपज मानता है, जिसे उसने सामाजिकता (Gregariousness) से पृथक् किया है। ये समस्त घटनायें अर्थात् सामाजिकता और रेवड़, साहचर्य और समाज, उसके मत में जीवित रहने के लिये एक सामूहिक या बहुलवादी रीति (Pluralistic mode) की उपज हैं। बहुलवादी व्यवहार

एक "बहुवचन", अर्थात् एक स्थान और एक समय पर अनेक जीवों (पशुओं या मानव प्राणियों) का व्यवहार है जो एक ही प्रकार की परिस्थितियों और क्रियाओं और एक दूसरे पर प्रतिक्रियाओं से होता है। व्यवहार भौतिक वातावरण से, जो उद्दीपन (Stimuli) के एक "अनंत विभेदीकृत समूह" [३] प्रदान करता है, प्रभावित होता है। ये उन प्राणियों पर कार्य करते हैं जो जन्म से ही साथ रहे है या जीवित रहने के संघर्ष के दबाव से एक साथ मिल गये हैं। संतानों की वृद्धि केवल सामाजिक जीवन को ही सहायता नहीं देती बल्कि वह प्राप्ति या प्रतिरोध के लिये आवश्यकताओं और क्षमताओं की पारस्परिकता को सुनिश्चित करती है। एक निर्दिष्ट निवास में इस प्रकार के अनेक समूह सम्मिलित होंगे, जिनकी सदृशताओं के तत्व उनकी समानता के अंश को मापेगे ।

उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण समानतायें उनके व्यवहार में पाई जायेंगी। जीवित सावयव (Organism) की प्राथमिक क्रिया अपनी सुरक्षा और भोजन की प्राथमिक अवस्थाओं को संतुष्ट करने के लिये अपने को वातावरण के अनुकूल बनाना है। मानव प्राणियों में ये अनुकूलन महत्त्व-वृद्धि (Appreciation) के,अर्थात् चेतना में परिवर्तन जिससे एक वस्तु की अपेक्षा में दूसरी वस्तु में अभिरुचि या कोई मूल्य दिया जाता है, आधार है। महत्त्व-वृद्धि उन प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होती है, जोकि पहले सहज प्रवृत्तिमूलक, फिर स्वभावगत और बाद में तर्क द्वारा पुष्ट की जाती हैं। जब बाद में मनुष्य को वातावरण की उन सीमाओं का पता चलता है जो उसके अनुकूलन को अवरुद्ध करती हैं, वह वातावरण के साथ अपने अनुकूलन की विपरीत प्रक्रिया प्रारंभ करता है। उसकी अभिरुचि अपने साथियों के व्यवहार में हो जाती है, जो अपने प्राणिशास्त्रीय संबंध और समान वातावरण के दबाव के कारण साथ ही साथ उसके व्यवहार में अभिरुचि रखते है। उसकी और उसके साथियों की प्रतिक्रियायें एक समान होने लगती है और आत्म-उद्दीपन के प्रति बाह्य उद्दीपन की समानता का बोध उत्पन्न होता है। यह समान सावयव के समान व्यवहार के प्रति एक सावयव के समायोजन (Adjustment) से एकीकृत हो जाता है, यह प्रक्रिया अनुकरण और मननजन्य सहानुभूति से बढ़ावा पाती है। यह अंतरुद्दीपन (Interstimulation) नाटकीय व्यवहार को जन्म देता है; "सहयोगी प्राणियों की उपस्थिति मे क्रिया अभिनय बन जाती है।" [४] जब भाषा उत्पन्न हो जाती है, ऐसा व्यवहार परंपरागत बन जाता है; इसकी चर्चा होती है और वस्तुओं, क्रियाओं, व्यवहार और व्यक्तियों की भिन्नताओं और समानताओं को अनुभव किया जाता और देखा जा सकता है। इससे एक सजातीयता की भावना पैदा होती है, जिसमे "सावयवी सहानुभूति, सदृशता का बोध, चेतन या मननगत सहानुभूति, स्नेह और स्वीकृति पाने की इच्छा" मिश्रित है। [५] "सजाति में एक पृथक् उद्दीपन है, उसके प्रति एक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया है और साथ ही उसकी एक सूक्ष्म अवगतता है। प्राकृतिक चुनाव इस पर अपनी क्रिया करता है; और चूंकि प्रतियोगिता और जीवित रहने के लिये संघर्ष सहयोग और पसंद के साहचर्य की ओर ले जाते हैं, वहां वह सामूहिक व्यवहार उत्पन्न होता है जिससे सामाजिक संगठन प्रारंभ होता है। तब

ऐसी स्थिति आ जाती है कि बातचीत और सजातीयता की भावना राशीकरण को साहचर्य में और रेवड़ या झुंड को समाज मे परिवर्तित कर देती है।

व्यवहार की सबसे प्रारंभिक समानताओं में सहिष्णुता (Toleration) की आदतें हैं—एक समूह में रहनेवाले व्यक्ति अनिवार्यतः एक दूसरे को सहन करने लगते है। एक समूह में संघर्ष स्वाभाविक है, चूंकि प्रकृति और स्वभाव की मौलिक भिन्नताओं और प्रभुता तथा विजय की प्रवृत्ति के कारण सजातीयता की भावनाओं की सीमा कभी भी पूर्ण नहीं है : "फिर भी विरोध स्वसीमित है; यह अनिवार्यतः सहिष्णुता के संतुलन मे समाप्त होता है।"[६] समूह के व्यक्तिगत सदस्य इतने बराबर के सिद्ध होते है कि लड़ना उचित नहीं ठहरता। इस प्रकार मुक्तियों और सहिष्णुता की स्वाधीनता के अर्थ मे आधारभूत प्राकृतिक अधिकार विचारयुक्त स्वीकृति की प्राप्ति से बहुत पहले ही भोगे जाते है। शीघ्र ही एक समान ख़तरे या एक समान अवसर के दबाव से व्यवहार की ये समानतायें अचेतनरूप से सहज सामूहिक क्रिया मे विकसित हो जाती है। संचार, अनुकरण, सुझाव और बाद में नेतृत्व और आधीनता के उद्दीपन के अंतर्गत यह प्रभाव उत्पन्न होता है। वह समूह जो सामूहिक रीति से कार्य करता है, प्रयास के संग्रह और मितव्ययता को दर्शाता है। समूह का संग्रहीत प्रयास सहयोग अर्थात् समान उद्देश्यों की बेहतर प्राप्ति के लिये चेतन व्यावहारिक समझौता बन जाता है।

वह संगठनात्मक शक्ति या प्रभाव जिससे इस प्रकार का सामाजिक संगठन शुरू किया जाता है प्रतिक्रियाओं के अंशों के विश्लेषण मे पाया जाता है। कुछ व्यक्ति अधिक शीघ्रता से, कुछ अधिक प्रभावशीलता से, कुछ अधिक दृढता से प्रतिक्रिया करते है। पहले प्रकार की प्रतिक्रिया मुख्यतः संवेदन और उद्वेग की है, व्यवहारतः जिसे सभी अनुभव करते है। इससे भी थोड़े व्यक्ति परीक्षा, पूछताछ, विचार और चर्चा करेंगे, बाकी अल्प संख्या क्रिया को प्रेरित करेगी। ऐसा करनें में वे नई परिस्थितियां उत्पन्न करते है, अन्यों को जिनके अनुकूल बनना होगा। आदितंत्र (Protocracy) या शासक अल्पसंख्या का केंद्र उस समूह का सहयोग प्राप्त करता है जिसने उन्हें शक्ति और अधिसत्ता प्रदान की है और इस वर्ग को या तो सहयोग देना चाहिये या विरोध करना चाहिये। किंतु आदितंत्र अन्यों से पहले संपत्ति और शक्ति के अवसरों को देखने और वफ़ादारी और निष्ठा के निश्चित आश्वासन पर कृपा प्रदान करने की स्थिति में है। जहां आदितंत्र वस्तुतः शासन नहीं करता वहां भी यह अपनी योग्यता, ईमानदारी या कल्याणकारी उद्देश्य के कारण प्रभुता रखता है। "इस प्रकार सम या विषम, द्रुत या मंद, स्थायी या अस्थायी, प्रत्युत्तर के अर्थो में, प्राकृतिक समूहीकरण और सामूहिक व्यवहार की समस्त घटनाओं को प्रस्तुत और उनकी व्याख्या की जा सकती है।"[७]

कुछ लोगों के शासन या प्रभुत्व से सामाजिक संगठन प्रारंभ हुआ, बाद में सामूहिक निर्णय किये गये और संगतियुक्त इच्छा (Concerted volition) का जन्म हुआ। इच्छाओं की संगति की, सहज प्रवृत्तिप्रधान, सहानुभूतियुक्त, कट्टर या विचारयुक्त व्यक्तियों के

अनुसार विभिन्न अंशों में पूर्णता होती है। एक अपेक्षित सहजप्रवृत्त्यात्मक या सहानुभूति-युक्त धारणा की अपेक्षा बहुत थोड़े ही व्यक्ति एक सामूहिक विचारयुक्त निर्णय को स्वीकृति देने में भाग लेते हैं। इससे संगति में इच्छा का नियम निकलता है, कि "एक सामान्य जनसंख्या में एक सामूहिक निर्णय में भाग लेनेवालों की संख्या का अनुपात निर्णय की बौद्धिक गुण की वृद्धि के साथ घटता है।" [१] सामूहिक क्रिया की बढ़ती हुई आवश्यकता के साथ सामाजिक संगठन आंतरिक जटिलता विकसित करने और एक श्रेणीबद्ध रूप धारण करने की ओर प्रवृत्त होता है।

एक दृष्टिकोण से ये श्रेणियां उन विभागों को दर्शाती हैं जोकि सामूहिक संघर्ष और बहुसंख्या और अल्पसंख्या की एक दूसरे पर प्रतिक्रियायें उत्पन्न करते हैं। विजय, विशेषाधिकार और अधिमान्यता के प्रदर्शन और सिफारिश (Commendatio) के प्रयोग द्वारा सामाजिक संगठन के अंदर वे समूह उत्पन्न होते हैं जो विशेषाधिकारप्राप्त और बंद, चुने हुए लोगों के लिये खुले या बिना भेदभाव के खुले हो सकते हैं.

"एक विशेषाधिकारप्राप्त और बंद समूह की सदस्यता का अधिकार मूल स्रोत के विचार से शासित होता है, पहली पीढ़ी में समूह के सदस्यों की वंशजता (Descent) सबसे पुरानी और सर्वविदित योग्यता है। एक पूर्ववर्ती समूह या श्रेणी की सदस्यता एक शर्त हो सकती है। चुने व्यक्तियों के लिये खुले समूह में सदस्यता का अधिकार समूह के के सामूहिक रूप से संकलन के लिये व्यक्तिगत रूप से सदस्यों के कार्यात्मक मूल्य से निर्धारित होता है। भेदभावशून्य खुले समूह में कोई योग्यता-परीक्षायें नहीं होती।" [२]

"सामाजिक संगठन के ऐतिहासिक विकासवाद में बंद और खुले समूहों में समूहांतर्गत (Intragroup) संघर्ष पैदा होते हैं।" [३]

प्रजातीय एकता या रिश्तेदारी पर आधारित समूह का स्थान नागरिक एकता पर आधारित समूह ले लेता है। विदेशियों को जनता के विशेषाधिकार और कर देने तथा सैनिक सेवा के कर्तव्य प्रदान कर दिये जाते हैं। कर्तव्य और अवसर की यह पारस्परिकता सभ्यता का आधार है, इसलिये इसे, "राजनीति, धर्म, व्यापार और शिक्षा में बंद वर्गों के स्थान पर रीतिगत और विशिष्टत खुले समूह द्वारा प्रतिस्थापन" परिभाषित किया जा सकता है।"

खुले समूह के अंतर्गत संबंधों के संगठन और सहयोग की स्थापना द्वारा आदितंत्र राजनैतिक शक्ति या प्रभुसत्ता ग्रहण करता है। आज्ञापालन के लिये बाध्य करने में यह कभी भी अनियंत्रित शक्ति नहीं हो सकती, बल्कि निश्चित और सशर्त संतुलन और शक्तियों की संतुलन और रचना पर निर्भर होती है। सामाजिक विकासवाद में प्रभुसत्ता ने चार स्पष्ट रीतियां ग्रहण की हैं। व्यक्तिगत प्रभुसत्ता, सबल व्यक्तित्व की आज्ञा का पालन होता है, किंतु वह इसके लिये मजबूर नहीं कर सकता है। मानसिक और नैतिक श्रेष्ठता होने पर कुलीन, पूंजीवादी या श्रमिक वर्ग आज्ञापालन के लिये प्रेरित कर सकता है या उसे संपत्ति के नियंत्रण द्वारा प्राप्त कर सकता है। जनसाधारण की प्रभुसत्ता में

बहुमत को संख्या या श्रेष्ठ अंतर्हित शक्ति द्वारा कुछ समय तक पर्याप्त मात्रा में आज्ञापालन के लिये बाध्य करने की शक्ति होती है। अंततः एक संगठित, प्रबुद्ध और विचारप्रधान समुदाय बुद्धि और नैतिक भावना की बुद्धिसंगत (Rational) अपील द्वारा आज्ञापालन प्राप्त कर सकता है।[१२]

जब समाज की सर्वोच्च इच्छा (Will) आज्ञापालन को प्राप्त करने और संचालित करने के लिये संगठित है, तब सरकार का जन्म होता है और वह प्रभुसत्ता की भांति सामाजिक मन की विद्यमान अवस्थाओं और परिस्थितिजन्य दबाव के अंश से निर्धारित होती है। अराजकता और असुरक्षा के काल में शक्तिशाली व्यक्तित्व अपने प्रतियोगियों को कुचल देता है और अराजकता के प्रति घृणा से उत्पन्न समुदाय के सक्रिय सहयोग से एक निरंकुश सरकार की स्थापना करता है। जहां भिन्नता और विरोध की अपेक्षा अधिक सहज सहयोग और सोचने की अधिक एकता होती है, मनमानी शक्ति के विरुद्ध पर्याप्त प्रतिरोध है वहां सरकार सीमित अल्पमत के शासन का रूप धारण करती है। जहां क्रांतिकारी अवस्थाये विद्यमान है, चाहे वे राजनैतिक हो या औद्योगिक विद्रोह के परिणामस्वरूप, निरकुश बहुमत शासन की स्थापना की प्रवृत्ति होती है। अंततः एक ऐसे समुदाय मे, जो समग्ररूप से एकतत्वीय है और लगभग समान योग्यता और स्थिति-वाले व्यक्तियो से मिलकर बना है, सरकार का रूप सीमित बहुमत शासन है।[१३] बादवाले रूप में दमन, जिसके द्वारा सरकार सामाजिक नियंत्रण को संचालित करती है, और व्यक्तित्व के पूर्ण विकास से संबंधित स्वाधीनता के बीच, जो सामाजिक संगठन का उद्देश्य है, सही संतुलन को सुनिश्चित करने के लिये संवैधानिक सीमाये निर्दिष्ट की जाती है।[१४]

किंतु प्रोफ़ेसर गिडिंग्स का कहना है कि लिखित संविधान स्वाधीनता की गारंटी नहीं कर सकता; यह प्रभुसत्ता की रचना, जो वास्तविक प्रभुसत्ता का सविधान है, निर्धारित होती है। वह सूत्र, जिससे प्रभुसत्ता का सबसे प्रजातांत्रिक रूप एक सूत्र में बंधा रहता है, बहुमत के निर्णय को मानने का समझौता है: बहुमत साधन के संगठन के रूप मे दो अवस्थायें अंतर्हित है। (१) बहुमत और अधिकांश अल्पमत द्वारा स्वीकृत कुछ अधिकारों का बहुमत उल्लंघन नही कर सकता या नही करता, और इस प्रकार उनकी समस्त अल्पमत को गारंटी है। ये अधिकार एक संविधान मे वर्णित होने चाहिये जोकि सामान्यतः अल्पमतों और प्रजातंत्रों के लिये आवश्यक है। फिर भी स्वाधीनता की सुरक्षायें (Safe-guards) इस संविधान में निहित नही बल्कि इस अवस्था के क़ायम रहन और दूसरी की स्थापना में निहित है। (२) अल्पमतों को इसलिये कि वे अपने अल्पमत को बहुमत में बदल सकें भाषण, लेखन, सभा करने और अनुशासित और शांतिपूर्ण आदोलन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। अल्पमत का दमन समाज के संगठन को निम्न स्तर पर गिरा देता है, राष्ट्रवाद और प्रभुता के विभिन्न रूप जिसके प्रमुख लक्षण हैं।[१५]

३. सामाजिक संगठन की प्रकृति

गिडिंग्स द्वारा मानव-समाज के उद्गम और विकासवाद में अंतर्हित प्रक्रियाओं के इस अपूर्ण विवरण देने के बाद अब हम उसके सामाजिक संगठन के विश्लेषण का संक्षेप देने का प्रयास करेंगे। एक समुदाय (Community) संगठन के जो रूप है : एक "सामाजिक रचना" (Social composition) कहलाता है जोकि एक निर्दिष्ट स्थान पर साथ रहनेवालों को मिलाती है; दूसरा, एक निर्माता समाज (Constituent Society) है जो उन सबको मिलाता है जो विशेष प्रकार की क्रिया करने या विशेष हितों को क़ायम रखने के इच्छुक हैं। सामाजिक रचना के प्रत्येक समूह को एक "घटक समाज" (Component society) कहा जा सकता है। घटक समाजों को प्रारंभिक कबायली रूप जननिक (Genetic aggregation) से उत्पन्न हुए थे; जबकि बाद के नागरिक घटक समाज इसके अतिरिक्त इकट्ठे होने (Congregation) की उपज है। कबायली समाज साहचर्य के सूत्र के रूप में रिश्तेदारी (Kinship) पर आग्रह करते है। नागरिक समाजो ने प्रजातीय एकता के इस सूत्र को तोड़ दिया है। समाज के नागरिक संगठन के विकास की दिशा का मार्ग, जहां रिश्तेदारी का कम महत्त्व है, ढीले तौर से बंधे हुए, यहां तक कि पृथक्कृत मातृनामी, सामान्यत: अधिक आदिम समूह के अधिक बंधे हुए और शक्तिशाली पितृनामी समूह, एक बर्बर और पशुपालन-सामंतवाद की स्थापना के संक्रमण और एक विविध सामान्य (Demotic) रचना के जिसमे रिश्तेदारी का बंधन काफी नही रहता, उसके स्थिर होने और प्रवास के प्रभाव मे निहित है। पुरुष वंशानुक्रम और पूर्वज-पूजा की स्थापना से गोत्र का नेतृत्व और कबायली मुखियागिरी कुछ परिवारो मे आनुवंशिक हो गई है। जैसे-जैसे मुखिया अपने कबीले से पुरस्कार के रूप मे ढोर और भूमि पाने के फलस्वरूप संपत्तिशाली बना बर्बर सामतवाद का उदय हुआ। उसका यह कर्तव्य हो गया कि वह अपनी भूमि की सीमा की रक्षा करे और इस उद्देश्य के लिये उसने भग्न और विनष्ट आदमियों, अन्य गोत्रों के भूमिहीन और शरणार्थियों का प्रयोग किया और उन्हें अपने सामंती आश्रितों के रूप में एक अंध-आज्ञापालन के सूत्र मे बांध दिया। संगठन के इस स्वरूप के विकास और उसी के साथ कृषि के विकास ने नागरिक समाज की स्थापना की जो पड़ौस, पारस्परिक हित और सहयोग पर आधारित था।

नागरिक समाज में ऐसे निर्माता समाज (Constituent societies) संभव हुए जिनकी सदस्यता जन्म की घटना पर निर्भर न थी, निर्माता समाज घटक (Component) समाजों से उत्पन्न होते है और कृत्य के विशेषीकरण द्वारा उससे पृथक् होते है; वे स्वेच्छा से निर्मित सोद्देश्य समितियां हैं। एकीकरण, पारस्परिक सहयोग और श्रमविभाजन उनकी मुख्य विशेष ताये है "नागरिक समाज में इन सोद्देश्य संगठनों में राज्य प्रमुख है, जिसके द्वारा सामाजिक मन संपूर्ण और उसकी अल्प सोद्देश्य समितियों, समुदाय के एकीकरण और शासन करने के लिये कार्य करता है। इसके कार्य मानव हितों के साथ सहविस्तृत हैं, चूंकि इसका प्राथमिक उद्देश्य सामाजिक एकीकरण को पूर्ण करना है।

ऐसा करने में यह आर्थिक क्रियाओं और सांस्कृतिक कृत्यों में प्रवेश कर जाता है। फिर भी सामाजिक संगठन के लिये विभिन्न उत्पन्न व्यक्तिगत और स्वैच्छिक समितियां, जो अनेक दशाओं में राज्य के कृत्यों को दोहराती हैं, उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं : "अभी तक राज्य एकमात्र राजनैतिक संगठन न होने के कारण, यदि स्वैच्छिक और निजी राजनैतिक समितियां न होतीं, एक स्वतंत्र या गणतांत्रिक रूप में जीवित न रह पाता।" [१७] इसलिये इससे यह अर्थ निकला, चूंकि अनिवार्य राज्य और स्वैच्छिक समिति दोनों ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हैं, अतः "जो कुछ राज्य को छोटा दिखाता या उसकी किसी प्रकार की सामाजिक सेवा करने की शक्ति के विश्वास को नष्ट करता है, जो कुछ निजी उपक्रम और स्वैच्छिक संगठन द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रचलित आदत को हानि पहुंचाता है, वह समाज को खतरे में डालता है और उसके लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति से वंचित करता है।" [१८]

४. सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक बंधन (Constraint)

सामाजिक बंधन की दूसरी समस्या जिसका समाजशास्त्री को सामना करना पड़ता है, उस पर विचार करते हुए उसने अपने दृष्टिकोण की इस प्रकार परिभाषा की है :

"हम यह प्रारंभिक अभ्युपगम (Assumption) प्रस्तुत करते हैं कि मानव समाज की संस्थाओं और इतिहास की समस्त घटनाओं को, जिनमें मनुष्यों के एक स्थान से दूसरे स्थान में निष्क्रमण, अत्यंत उत्साह, बौद्धिक जागृतियां, युद्ध और क्रांतियां सम्मिलित हैं, परिवर्तनीय उद्दीपन (Stimuli) का प्रत्युत्तर माना जा सकता है, और वह प्रत्युत्तर देनेवाले मनों में सम्मिलन के कुछ नियमों या सादृश्य या भिन्नता के कुछ तथ्यों से शासित होते हैं।" [१९]

अर्थात् सामाजिक बंधन और प्ररूप के साथ व्यवहार और चरित्र की अनुरूपता सामाजिक मन की क्रिया के कृत्य हैं। यह सामाजिक मन कोई प्रविवेक (Abstraction) नहीं है, न ही दूसरी ओर यह व्यक्तिगत मनों का योगमात्र है। यह उनकी अंतर्क्रिया से उत्पन्न उनका एकीकरण है : "सामाजिक मन अंतर्क्रियारत अनेक व्यक्तिगत मनों की घटना है, जो इस प्रकार एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करते हैं कि वे एक साथ संवेदन या उद्वेग अनुभव करते हैं; एक ही निर्णय पर पहुंचते हैं और संभवतः एक साथ कार्य करते हैं। [२०] इसकी उद्दीपन के प्रत्युत्तर, सजातीयता की भावना और सम्मिलित इच्छा के अर्थ में व्याख्या की जानी चाहिये। [२१] समान प्रत्युत्तर से सहमति और सहयोग की घटना उत्पन्न होती है; प्रत्युत्तरों के जातीय, आंशिक और पूर्णता के भेद से विषम अभिरुचि, विरोध, संघर्ष, होड़ और प्रतियोगिता की अनंत घटनायें प्रकट होती हैं। [२२] अंतरुद्दीपन की प्रक्रिया सुझाव, प्रभाव, उदाहरण और अनुकरण से कार्यान्वित होती है, जिसमें विरोध एक गुणक (Co-efficient) है और व्यापक साहचर्य के रूप—जैसे कि यात्रा, व्यापार, कूटनीति और युद्ध—अन्य निर्णायक (Determinants) हैं। समाजीकरण की प्रगति द्वारा अनंत घटनाओं, संबंधों, क्रियाओं, विचारों, विश्वासों, योजनाओं और

आदर्शों का संचय प्राथमिक उद्दीपन की अपेक्षा सामाजिक मन के निर्माण में अधिक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है : "मानवप्राणियों के समूह, उनके विचार और उद्देश्य, उनके लक्ष्य, उनके आदर्श, उनके क़ानून और संस्थायें, वे सब व्यवस्थायें जिनके अंतर्गत हम रहते है निरंतर सामूहिक क्रिया में सदा विद्यमान और सदा-शक्तिशाली कारण हैं।" [२१] इन माध्यमिक उद्दीपनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : विचार प्रेरक (Ideomotor), जो प्रेरक प्रणाली को प्रत्यक्ष उत्तेजित करता है; विचार-उद्वेगात्मक (Ideoemotional), जोकि मुख्यत: उद्वेगात्मक प्रतिक्रियाओं को जाग्रत् करता है; धर्मसिद्ध उद्वेगात्मक (Dogmatic emotional), जो भावना और विश्वास को अपील करता है; और समालोचनात्मक बौद्धिक (Critically intellectual), जो उच्चतर बौद्धिक प्रक्रियाओं को अपील करता है। इन उद्दीपनों के अनुरूप सहमति (Like-mindedness) के वर्गीकरण है जो यह दर्शाते है कि क्या व्यक्ति क्रमश: अनुभूति, उद्वेग, विश्वास या तर्क से प्रभावित होते है। इन मानसिक गुणों और सहमति के रूपों के विस्तार के बीच एक सहसंबध (Correlation) स्थापित किया जाता है, यह सहसंबंध इस नियम में व्यक्त है : "अधिक व्यक्ति विश्वास की अपेक्षा अनुभूति में सहमत है, अधिक व्यक्ति तर्कयुक्त मत की अपेक्षा विश्वास मे सहमत है। धर्मसिद्ध सहमति की अपेक्षा सहानुभूतियुक्त सहमति अधिक विस्तृत है, और विचारयुक्त सहमति की अपेक्षा धर्मसिद्ध सहमति अधिक विस्तृत है।"

सामाजिक मन की इस गति को व्यक्ति की क्रियाओं की रीतियों, उसे ढालनेवाले चरित्र के प्ररूपों और उसमे निहित प्रेरकों और आदर्शों के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। पहला, प्रशंसा (*Appreciation*)—अनुभव के तथ्यो को ग्रहण करना और उन्हे ज्ञान-पसंद और मूल्यों मे संगठित करना है। उसके बाद एक जागरूक व्यक्ति अपने को अपनी परिस्थिति, अपने लिये संभव अवसरों और क्रियाओ के अनुकूल बनाता है, जो चरित्री-करण (*Characterization*) की प्रक्रिया का निर्माण करते है। अंतत: समाजीकरण (*Socialization*) की प्रक्रिया मे जागरूक व्यक्ति अपने को एक दूसरे के अनुकूल बना देते है। प्रशंसा की मानसिक स्थितियो मे निहित संकुल के समानांतर उपरोक्त प्रेरक उद्वेगात्मक और बौद्धिक प्ररूप है। ये उसी प्रकार उन चार अंशों में समानांतर है जिनमें चार प्रकार के स्वभाव—आक्रामणात्मक (Aggressive), उत्तेजक (Instigative), शासक (Domineering) और सृजनात्मक (Creative) प्ररूपों का उपयोग होता है। इस प्रकार चरित्रीकरण की प्रक्रिया मे चरित्र के चार प्ररूप—सबल (Forceful) खुशमिजाज़ (Convivial), कठोर (Austere) और बद्धिगत ईमानदार (Rationally conscientious) प्ररूप—उत्पन्न होते है। पहला साहस और शक्ति के गुणों पर जोर देता है; खुशमिजाज़ सुखप्रेमी प्रकार है; कठोर प्रकार खुशमिजाज़ विलासिता की अतिशयता के विरुद्ध प्रतिक्रिया है; जबकि अंतिम प्रकार कठोर प्रकार के परे प्रगति के विरुद्ध प्रतिक्रिया की उपज है। [२५]

सामाजिक मन की घटना और सामाजिक बंधन के रूप तथा अंश से सहसंबंधित मानव बुद्धिसंगत (Rational) मानवसमाज का प्रकार है। इसके आठ उपविभाग हैं : (१) रक्त-संबंधियों का एकतत्वीय समुदाय, जिनमें सहानुभूति प्रमुख सामाजिक बंधन है--सहानुभूतियुक्त (*Sympathetic*) प्ररूप। (२) खुशमिजाज़ (*Congenial*) प्ररूप, स्वभाव की समानता और विचारों की एकता से आकर्षित समान प्रकार के व्यक्तियों से मिलकर बनता है। इस प्ररूप के उदाहरण में पलावर बैंड, लैटर-डे सेट्स, दलगत राजनैतिक बस्तियों और साम्यवादी बिरादरियों में मिलते है। (३) प्रशंसा-इच्छुक (*Approbational*) स्थायित्व प्ररूप, विविध और कभी-कभी आर्थिक अवसर से आकर्षित अराजक तत्वों का एक समुदाय जहां व्यवहारतः गुणों और आचार की सामान्य प्रशंसा ही एकमात्र सामाजिक बंधन है। (४) निरंकुश (*Despotic*) प्ररूप, जहां निरंकुश शक्ति और भयजनित आज्ञापालन ही सामाजिक बधन है। (५) अधिकारी (*Authoritative*) प्ररूप, जहां मनमानी शक्ति अपने को परपरा और धर्म से मिला देती है और अधिकारी के प्रति आदर एक सामाजिक बंधन है। (६) साजिशी (*Conspirital*) प्ररूप, जहां षड्यंत्र और साजिश सामाजिक बंधन है। (७) संविदात्मक (*Contractual*) प्ररूप, जैसे कि ईराक्वी लीग और १७७८ का कॉनफिडरेशन ऑफ अमेरिकन कॉमनवेल्थ्स, जहां करार या संविदा सामाजिक बंधन है। (८) आदर्शात्मक (*Idealistic*) सामाजिक प्ररूप, जहां जनसख्या सामूहिक रूप से कुछ महान् आदर्शों के प्रति सहयोग देती है, जहां सामाजिक बंधन मन की ग्रहणशीलता, विश्वास, वफ़ादारी और समाजसेवा की परार्थी भावना सामाजिक बंधन है।[२६]

जननिक दृष्टिकोण ने, जिससे गिडिंग्स ने समाजशास्त्र पर विचार किया, उसे सामाजिक नियत्रण की रीतियों और रूपों पर कम ज़ोर देने के लिये प्रेरित किया। उसने आदिकालीन समाज मे कबीले को, नागरिक समाज मे राज्य और नगरपालिका को, या वहां प्रयुक्त सामाजिक नियंत्रण के साधनों को बहुत थोड़ा स्थान दिया है। प्रथा, कानून, चर्च, माता-पिता की अधिसत्ता और विभिन्न स्वैच्छिक समितियों का बहुत सक्षिप्त विवरण दिया गया है।

सामाजिक नियत्रण की तुलना प्राकृतिक चुनाव से की गई है---यह प्ररूप से भिन्नताओं का नियंत्रण है। जीवित रहने के सावयवी संघर्ष मे एक वातावरणीय बंधन कुछ अनुकूलित या अनुकूल्य प्ररूपों के साथ जिनसे कुछ निश्चित सीमाओं के अंतर्गत ही भिन्नता संभव है, सावयवी सरचना और जीवन के साथ अनुरूपता के लिये बाध्य करता है।"[२७] सामूहिक जीवन में "मानव प्राणी स्वभाव से सहज ही बुद्धि से प्ररूप की उन भिन्नताओं के प्रति, जो ध्यान अकर्षित करती हैं, एक प्रबल घृणा व्यक्त करते है।"[२८] आरण्यकों (Savages) और बर्बरों मे ऐसे व्यक्तियों को मार दिया जाता है या त्याग दिया जाता है। सभ्य समाजों में उन पर संदेह किया जाता है या उनसे बचा जाता है, उन पर पहराया नियंत्रण रखा जाता है। आरण्यक और बर्बर समुदायों में आचार की पर्याप्त समरूपता

प्राप्त होती है : "युवा माता-पिताओं द्वारा बच्चों के निर्देशन और पालन-पोषण में बड़ों के विचारयुक्त सहयोग द्वारा संगठित समावर्तन अनुष्ठानों द्वारा, गोत्र और क़बायली परिषदों द्वारा प्रत्येक नई पीढ़ी उन विश्वासों, आदतों और निष्ठाओं में प्रशिक्षित की जाती है जिन्हें समूह अपने अस्तित्व के लिये महत्त्वपूर्ण समझता है।" जबकि सभ्य समुदायों में ऐसे "नियंत्रण, शिक्षायें और आज्ञापालन के लिये बाध्य करनेवाले उपाय" एक दूसरे में इतने गुंथे हुए है कि उन्हें पहचानना कठिन है, पर जब उन्हे समस्त आकस्मिक (Adventitious) विशेषताओं से पृथक् कर दिया जाता है, वे उसी लक्ष्य के साधन पाये जाते है जिनसे "प्ररूप से भिन्नता का निर्धारण, परिसीमन और नियंत्रण होता है, कभी उसके क्षेत्र का विस्तार, कभी संकोच और घनिष्ट अनुरूपता के लिये बाध्य किया जाता है।" [२९]

बंधन की पद्धति को एक शब्द में "अनुशासन" कहा जा सकता है : ये पद्धतियां निम्न वाक्य में अधिक विस्तार से बताई गई हैं : "प्रशंसा और निंदा, बचाव और फटकार, ढील और अनुमति, प्रायश्चित्त और जुर्माने, स्थगन और निष्काशन, शारीरिक दंड और अंगच्छेदन, कारावास और फांसी द्वारा मनुष्यों को बचने, आज्ञापालन, सहायता करने के लिये बाध्य किया जाता है; उनके आचार को आदतों में प्रशिक्षित किया जाता है, उनके प्रयासों को स्वीकार्य तीव्रता और स्थायित्व के अंश मे उद्दीप्त या प्रेरित किया जाता है; उनके चरित्र को स्वीकृत प्ररूपों में ढाला जाता है।" [३०] इन विशेष पद्धतियों को "इस विश्वास से प्रयोग में लाया जाता है कि प्रकार या प्ररूप या मान से ऐसी अनुरूपता सुरक्षा और सहकारी कार्यकुशलता के लिये अनिवार्य है।" [३१]

सामाजिक बंधन वातावरण के दबाव और जनसंख्या की रचना और एकतत्वीयता की सीमा से प्रभावित होती हैं। वातावरण का स्वरूप जनसंख्या की रचना के "अल्प या अधिक विषमतत्वीयता, अल्प या अधिक मिश्रण रूप को निर्धारित क्रियाओं के स्वरूप, जटिलता और विस्तार को प्रभावित करती है।" [३२] इसमें मानसिक गुण, उसकी सहयोग की अंतर्निहित शक्ति, उसकी प्रगति की क्षमता, उसके आदर और उसके प्रजातांत्रिक संगठन की सीमा भी सम्मिलित है। वातावरण निर्धन या समृद्ध है, और सुलभ या पृथक्कृत हैं। निर्धन और पृथक्कृत वातावरण में छितरी, अपेक्षतया सरल तथा एकतत्वीय जनसंख्या बसती है, जहां जीवित रहने के लिये संघर्ष जनता के अधिक अनुपात की "मध्य आयु बारंबारता" (Middle age frequencies) में आता है। एक निर्धन देश में जहां प्रवास (Egress) की सुविधा है, वहां एकतत्वीय जनसख्या रहती है, किंतु जहां पर अधिक अनुकूल देशों के आकर्षण के कारण उसके अधिक पुरुषार्थी सदस्य प्रवास कर जाते हैं। अनेक दक्षिणी सागर के द्वीपों के समूहों की भांति एक समृद्ध किंतु अपेक्षतया पृथक्कृत देश में एक घनी जनसंख्या रहती है जिसमें शक्ति या योग्यता की प्रत्येक विषमता का महत्त्व है। इस अधिक भाग्यशाली देश से खाद्यपूर्ति के दबाव के अंतर्गत पुरुषार्थी तत्व नये घरों की विजय करने के लिये निकल पड़ते है। या, जहां एक अधिक शक्तिशाली नस्ल

ऐसा कर सकती है, वहां सुदूर देश की जनसंख्या में इस समृद्ध प्राकृतिक साधनों पर आक्रमण करने और उनका शोषण करने के लिये आती है। उदाहरण के लिये, विश्व की महान् नदियों के कंठों द्वारा संपन्न समृद्ध और सुलभ वातावरण विजय, आवास (Immigration) और अंतर्विवाह द्वारा एक मिश्रण में ढली मिश्रित और भिन्न जनसंख्याओं का स्थान बनते हैं।

जनसंख्या की रचना उद्दीपन के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं की शक्ति (Vigour) और अनुकूलन-क्षमता को सीमित करती है। एक शक्तिमय प्रतिक्रिया किशोरावस्था और परिपक्वता का लक्षण है; बूढ़ों के लिये अनुकूलन दुःसाध्य है। जनसंख्या की प्रजातीय रचना यह निर्धारित करती है कि उद्दीपन के प्रति उसकी समग्र प्रतिक्रिया अपेक्षतया सरल होगी या जटिल। एक एकतत्वीय जनसंख्या मे विभिन्न समूहों में विरोधों की जटिलता से मुक्त प्रतिक्रिया दर्शाने की आशा की जाती है। एक बहुतत्वीय जनसंख्या बहुसंख्यक उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रिया करती है; उसकी अभिरुचि का क्षेत्र विस्तृत होगा। एक अधिक बहुतत्वीय जनसंख्याओं मे समान व्यवहार उत्पन्न होने से पहले अधिक शक्तिशाली उद्दीपन अपेक्षित होगा।

सामाजिक दबाव असंख्य प्रकार के सहयोग को उत्पन्न करता है जिन्हे समुचित रूप से "जनरीतियां" (Folkways) कहा जा सकता है। जब ये जनरीतियां उद्वेग, विश्वास, चितन और विचारयुक्त शिक्षण द्वारा प्रभावित हो कुछ अंश तक समाज द्वारा कार्यान्वित की जाने लगती है, तब वे "रूढियां" (Mores) बन जाती है। प्रयोग, प्रथा, फैशन, रिवाज, उत्सव, अनुष्ठान, नैतिकता—सामाजिक दबाव के ये समस्त अपरिभाषित और नमनीय रूप मुख्यतः निदा और बहिष्कार के दंडों द्वारा व्यक्ति पर दबाव डालते है।[३३] धर्म और न्याय जैसी अधिक महत्त्वपूर्ण रूढ़ियां, जो "बायकाट कर, अपराधी घोषित कर और अन्य सामाजिक दंडों द्वारा, जिनमे मृत्युदड भी सम्मिलित है,"[३४] सामाजिक दबाव डालते है, उन्हे थीमिस्ट (Themistes) या धर्मराज कहा जाता है।

चुनाव पर सामाजिक बंधन के प्रभाव की तीसरी समस्या में, गिडिंग्स यह स्वीकार करता है कि, यद्यपि साहचर्य अस्वैच्छिक सामाजिक नियंत्रण के परे कुछ नही है, फिर भी यह जीवित रहने मे मदद करता है। यह नस्ल को क़ायम रखने, शक्ति के व्यय और बरबादी को घटाने और बुद्धि की वृद्धि मे सहायता करता है। दीर्घ शैशवकाल के सामाजिक विकास के संबंध के विषय में उसका मत कुछ अंश मे फिस्के से भिन्न है। उसका कहना है कि साहचर्य द्वारा उद्दीप्त अवधारणात्मक विचार, जो फिर मानसिक क्रिया पर प्रतिक्रिया करता है जब तक कि वह मनुष्य की प्रबल अभिरुचि नही बन जाती। परिणामस्वरूप व्यक्ति का मंद विकास और एक दीर्घ शैशव घटित होता है।[३५] समूह के लिये सुरक्षा की अधिक शक्ति प्रदान कर, अधिक दीर्घकाल तक और निश्चित खाद्य-पूर्ति की व्यवस्था कर और नस्ल की परिपक्वता और संतानोत्पत्ति को अधिक निश्चित बनाकर, साहचर्य जीवित रहने में सहायता देता है। यह भिन्नता को अधिक फलदायक बनाता है और

सहिष्णुता, सहानुभूति और करुणा जैसे सामाजिक गुणों को जीवित रहने का मूल्य प्रदान करता है ।

सहिष्णुता पर ज़ोर देकर सामाजिक बंधन चुनाव को संशोधित करता है । सहिष्णुता के स्थापित होने से पहले विद्यमान संघर्ष में "बहुत बलशाली दुर्बल को नष्ट कर देते हैं । तब स्वयं बहुत बलशाली औसत शक्तिवाले व्यक्तियों की संख्यागत श्रेष्ठता द्वारा दबाये जाते हैं । तब बाकी बहुमत उनका रह जाता है जो बल मे लगभग बराबर हैं और दूसरों को हराने की आशा नहीं कर सकते, और उन्हें सहिष्णुतापूर्वक रहना पड़ता है जो समाजीकरण के प्रेरको के पुनर्जन्म और पुनर्क्रिया को संभव बनाता है।" [३६] इन्ही वस्तुगत अवस्थाओं के साथ कुछ आत्मगत परिणाम घटित होते हैं, जिनमें सहिष्णुता का विचार प्रमुख है जो "उन सुखों और सुरक्षाओं को, जो आदतन स्वीकार की जाती हैं", [३७] सूत्रबद्ध कर प्रथा के नियमों मे अभिव्यक्त होते हैं ।

समाज एक चुननेवाला एजेंट है, चूंकि सामाजिक चुनाव जोकि योग्य के जीवित रहन को श्रेष्ठतर के जीवित रहने मे बदल देता है । यह व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही विषय है । "सामाजिक अवस्थायें प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह निर्धारित करती हैं कि उसके व्यक्तित्व के कौन-से तत्व पर ऐसे प्रभाव पड़ेंगे जो उसे सबल या दुर्बल बनाते हैं; कौन-से सुझाव चेतन या अचेतन रूप से उसके विचारों को दिशा, उसकी अनुभूतियों को गुण और अंततः उसके सकल्प को दृढ़ता प्रदान करते है ।" [३८] समाज का लक्ष्य नस्ली जीवितता को खतरे मे डाले बिना व्यक्तीकरण की प्रक्रिया को संचालित करना है । सामाजिक नियंत्रण का कार्य "जीवन के सरक्षण और सुधार के साधन के रूप मे समाज की व्यावहारिक प्रभावशीलता मे वृद्धि करना है ।" [३९] इसमे अंतर्हित सामाजिक अनुशासन समाज-विरोधी तत्वों के विनाश या निरोध को और सहानुभतियुक्त, बुद्धिमान् और आत्मनियंत्रित तत्वो के जीवित रहने के लिये चुनाव और प्रोत्साहन को सुनिश्चित करता है । किंतु मुख्यतः दमनयुक्त और विनाशात्मक होने के कारण, सामाजिक दबाव की उपयोगिता की स्पष्ट सीमायें हैं । यह भिन्नता को कम करता है, विभेदीकरण को सीमित करता है, सहजता को नियत्रित करता है, वैयक्तिकता को अवरुद्ध करता है और सामाजिक संगठन की कठोरता की ओर प्रवृत्त करता है । इसलिये, इसके द्वारा समाजविरोधी तत्वों पर लागू किये गये नियंत्रण और इसके द्वारा सामाजिक जीवन के अनुकूल तत्वो को प्रदत्त स्वाधीनता के बीच एक संतुलन होना चाहिये । यदि यह नस्ली अस्तित्व को खतरे मे डाले बिना वैयक्तीकरण के विकास का अवसर देता है, तो इसने विकासवाद के चुनाव के संघर्ष को प्रगति में बदल दिया है । चूंकि "व्यक्तिगत जीवन की घटती हुई कीमत व्यक्ति की बढ़ती हुई स्वाधीनता, शक्ति और सुख के साथ नस्ल को कायम रखना और विकासवाद की प्रगति है ।" [४०]

५. सहयोग, सामाजिक अनुशासन और सामाजिक संस्थायें

प्रगति की राशि या दर के रूप में कल्पित सामाजिक बंधन के अंतिम परिणामों की

चौथी समस्या पर कहीं अधिक ध्यान दिया गया है। सामाजिक बंधन (Constraint), जो गिडिंग्स के लिये एक इच्छा, सहयोग और अनुशासन का एक रूप है, समाज के संगठन मे मुख्य कारक है। उन काल्पनिक स्थितियों से भिन्न, जहां प्रत्येक मनुष्य का हाथ अपने पड़ोसी पर उठा हुआ था, संगठित समाज सुरक्षा, अवसर, सुखों या सुधारों के लिये एक परस्पर लाभकारी समिति बन गया है: "समाज एक मिश्रित लक्ष्य का साधन है अर्थात् बुद्धिमत्ता और सहानुभूति के निरतर चुनाव द्वारा मनुष्यों के अस्तित्व और सुधार" का साधन है।[४१] सामुदायिक जीवन के विकास का अर्थ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से कही अधिक था; इसका अर्थ व्यक्तियों के लिये अधिक सुरक्षा, सामाजिक व आर्थिक बचत, अधिक निश्चित अधिकार और कानून संहिताओं में उन अधिकारों की, जो विशेषज्ञ व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा व्याख्या और प्रयोग होता है, परिभाषा करना है। प्रशासक-अभिकरण समाज की क्रियाओं को ढालने के लिये आये, किंतु उन्होंने स्वयं सामूहिक संगठन को प्रभावित किया। नागरिक समाज ने बुद्धि को अवसर और समस्यायें दी और आर्थिक, सास्कृतिक और राजनैतिक वातावरण मे प्रयोग और उनके प्रति प्रतिक्रिया मे ऐसी सभ्यता को उत्पन्न किया जो एक बुद्धिमान् मानवता की विस्तृत जटिल सपद् की समर्थक है।

इस सामान्य ववतव्य के बाद हम उन नीतियों के विश्लेषण की ओर मुड़ते हैं, जिनके द्वारा यह सहयोग कार्यान्वित किया गया था। ऐसी नीतियां "समुदाय की रचना, गुण और परिस्थितियों पर विचार कर"[४२] बनाई जाती हैं। ये दो प्रकार की है, आंतरिक और बाह्य। पहली का उद्देश्य समूह मे एकता, स्वाधीनता और समता के कुछ संबंधों की प्राप्ति है; दूसरी का लक्ष्य विभिन्न समूहों के बीच शासन, शोषण और सहायता की नीतियों को सफल बनाना है। एकता की नीतियों को लक्ष्य भाषा और धर्म क़ानून और आचार के मिश्रण तथा सात्मीकरण के नियंत्रण द्वारा समूह की एकता, एकतत्वीयता और सुदृढ़ता को पूर्ण करना है। स्वाधीनता की नीतियां अतिशय एकीकरण के बंधनों के विरुद्ध प्रतिक्रियायें हैं। वे अपने उद्गम के लिये सामाजिक रचना, अपूर्ण सात्मीकरण और संचार की स्वतंत्रता की विविधता पर निर्भर हैं "एकीकरण की कोई भी योजना कभी भी बौद्धिक मन के अशांत व्यक्तिवाद को नष्ट नहीं कर पाती है।" इसलिये जब एकीकरण की नीतियां प्रशासनिक व्यवस्था क़ायम कर लेती है: और अंशत: सार्वजनिक आंदोलन, विनाशात्मक आलोचना और यहा तक कि प्रत्यक्ष विद्रोह के लिये मन को अशत: स्वाधीन और अंशत: भड़का देती है,तब स्वतंत्रता का आदर्श उत्पन्न होता है,जो सांविधानिक क़ानन के रूपों द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की स्थापना और संरक्षण में वास्तविकता प्रदान करता है। समता की नीतियां स्वतंत्रता के दुरुपयोग और उसके परिसीमन के विरुद्ध प्रतिक्रियायें हैं, ताकि स्वतंत्रता और अवसर की समता प्राप्त की जा सके। इन नीतियों में राजनैतिक और क़ानूनी समता, आर्थिक क्रियाओं में राज्यजनित विशेषाधिकारों का उन्मूलन, शिक्षा के समान अवसर और समाज-सुधार के उपाय सम्मिलित है।

आधीन बनाने की नीतियों का परिणाम छोटे प्रजातीय समूहों का बड़ी कबायली व्यवस्थाओं में और छोटे नागरिक राज्यों का महान् राजनैतिक प्रणालियों में एकीकरण होता है। प्रजातीय संघर्ष और वर्गविरोध भी बहुत हद तक आधीन बनाने की विचारयुक्त नीतियों के सूत्रीकरण की अभिव्यक्तियां होती है। शोषण की नीतियों में आर्थिक प्रेरक प्रबल बन गया है। अधिकांश उन्नत आधुनिक सभ्यताओं में सहायता की नीतियों ने उक्त नीतियों का स्थान ले लिया है, वहां "अपेक्षतया सबल लोगों के शक्तिशाली और समृद्ध वर्ग मज़दूरी करनेवाले वर्गो, निकृष्ट नस्लों और आश्रित लोगों को शैक्षणिक सुविधायें, भीषण कष्ट में सहायता और कुछ हद तक आर्थिक अवसर देते है।" [४३] यहां पर उस संबंध को ढूंढना रोचक होगा जो गिडिंग्स ने अतिरिक्त शक्ति (Surplus energy) और सहायता की नीतियों के बीच स्थापित किया है। कुछ सावयव अतिरिक्त शक्ति विकसित कर लेते है, जो उन्हें उन परिस्थितियों में, जो अन्य सावयवों को असहाय बना देती है; जीवित रहने और भावी पीढ़ी को योग्यता की दाय संक्रमित करने या अपनी ही पीढ़ी को सामाजिक दृष्टि से अधिक लाभकर सहायता देने में समर्थ बनाती है। सामाजिक क्षेत्र में अमेरिका, जिसने इस अतिरिक्त शक्ति को विकसित किया है, यूरोप और पूर्वी देशों को सहायता देने में समर्थ हुआ है :

"समाज द्वारा वितरित अतिरिक्त शक्ति मे से, सहानुभूति और उसके सजातीयता की भावना मे उसके सहयोगी तत्व सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस शक्ति के प्राप्त होने पर सबलों द्वारा दुर्बल का रूपांतरण अनिवार्यतः कुछ अंश तक शोषण के बजाय ऊंचा उठानेवाला बन जाता है। उत्थान द्वारा शक्ति का संतुलन प्राप्त होने पर, समता और उदार प्रकार के सफल प्रजातंत्र की संभावना अनिवार्यतः अधिकाधिक बढ़ जाती है।" [४५]

इन नीतियों के विकास में आंतरिक और बाह्य किस्मे अत्यंत जटिल योजनाओं में आपस में मिल जाती है। इस प्रकार राजनैतिक एकीकरण की आंतरिक नीतियां सैनिकवाद उत्पन्न करने के लिये आधीन बनाने की बाह्य नीतियों से मिल जाती है। आक्रमण करने से पहले, आक्रांता राज्य में एकता और सम्मिलन की मांग होती है, और बहुत हद तक समाज का संगठन दमनयुक्त बन जाता है। विजय और बहुतत्वीय जनसंख्या की स्थापना के बाद भाषा, धर्म और आचार में एकता लाने के लिये फौजदारी कानून, कल्याणकारी (Sumptuary) प्रशासन और पृथक्करण द्वारा पुनः एकता की नीतियां सक्रिय हो जाती है। सफल सैनिकवाद शोषण का मार्ग तैयार करता है और उसे प्रोत्साहित करता है; किंतु दीर्घकाल में सैनिकवाद स्वयं अपने विनाश का कारण बनता है। सैनिकवाद के पतन से अभी तक राजनैतिक एकीकरण में प्रयुक्त प्रशासनिक शक्ति, अभी तक अन्य कामों में लगे हुए आर्थिक प्रयास और अभी तक दमन की गई बौद्धिक शक्ति मुक्त होती है, जिसका परिणाम उदारवाद की वृद्धि है। बहुतत्वीय राष्ट्र में जनता, कानून, रिवाजों और प्रथाओं की विविधता का उत्साहवर्धक प्रभाव बढ़ता है, भौतिक और मानसिक नमनीयता उत्पन्न होती है। अन्वेषक, आलोचक और दार्शनिक भावना विकसित होती है। राष्ट्र उदार और

प्रगतिशील बनता है और उसे ऐसी नीतियां अनुसरण करने का सामना करना पड़ता है जो एकता और स्थिरता क़ायम रखने के साथ स्वाधीनता और क्षमता की भी गारंटी देंगी। इस समस्या का समाधान करने के लिये इसे सरकार और कार्यप्रणाली के क़ानूनी और बुद्धिसंगत पद्धतियों को पक्का करना होगा।

दूसरे प्रकार के सामाजिक विकास का मार्गदर्शन करनेवाले राजनैतिक विचार अत्यंत जटिल सामाजिक मूल्यों में रूपांतरित तथा परिवर्तित हो जाते हैं। आत्मगत दृष्टि से ये "किसी लक्ष्य, क्रिया या संबंध की उपयोगिता, या अच्छाई, या प्रतिष्ठा या महत्त्व" के निर्णय हैं।[४६] सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर, ये "सामाजिक तौर से महत्त्व-पूर्ण वस्तुओं के सामाजिक अनुमान हैं।"[४७] इन सामाजिक मूल्यों में सर्वप्रथम समाज के चेतन जीवन की विशषता के प्रकार हैं; उसके बाद सामाजिक एकता; तीसरा, समुदाय की स्पष्ट मिल्कियत और संपत्ति है; जैसे कि भूभाग, पवित्र स्थान, राष्ट्रीय नायक, उत्सव, क़ानून, पूजा और मनोरंजन विकासवाद के क्रम में अंतिम हैं; ये "मूल्य उन विशिष्ट अमूर्त अवस्थाओं से संयुक्त हैं जो सामाजिक एकता और विकास के लिये और सामाजिक प्ररूप को विस्तृत या पूर्ण करने के उद्देश्य से किये गये कुछ प्रकार के प्रयासों के अनुकूल हैं। ये अवस्थाये हैं स्वाधीनता, क्षमता, और भ्रातृत्व"।[४८] एकवचन में सामाजिक मूल्य का अर्थ "किसी सामाजिक आदत संबंध या संस्था के प्रतिजो मनुष्यों को उसे संजोये रखने या रक्षा करने के लिये प्रेरित करे प्रति सम्मान या आदर है।"[४९]

सामाजिक मूल्यांकन के इस रूप का प्रगति से क्या संबंध है? गिडिंग्स ने इसके दो उत्तर दिये हैं जो केवल अपने दृष्किोण मे भिन्न हैं: (१) "समाज का बुद्धिसंगत (Rational) सुधार सामाजिक मूल्यो की समालोचना द्वारा होता है।"[५०] समाज को सही तौर पर प्रत्येक संस्था या प्रथा केवल पुरातन की रक्षा के व्यय और बलिदान का ही नही, बल्कि उसे नवीन बनाने और नई दिशाओं मे उसके विकास को संभव बनाने की उपयोगिता का भी सही-सही अनुमान करना चाहिये। (२) सामाजिक आचार बुद्धि-संगत पसंद से निर्धारित सामाजिक मूल्यों के कुछ मिश्रणों का परिणाम है। सामाजिक मूल्यों को एक विशेष प्रकार से संग्रह कर दीजिये, और सामाजिक पंसद के नियमों में समाविष्ट अपरिवर्तित संबंधों के अंतर्गत एक विशेष प्रकार का सामाजिक आचार उद्भूत होगा। इसलिये प्रगति (क) बुद्धि संगत सामाजिक पसंद (Choice) के नियमों के सूत्रीकरण और (ख) सामाजिक मूल्यों के सम्मिलन पर निर्भर है।

सामाजिक पसंद के नियमों को दो शीर्षकों के अंतर्गत सूत्रबद्ध किया जा सकता है: (१) प्राप्तव्य लक्ष्यों के बीच तरजीह (Preferences) का नियम और (२) हितों (Interests) और सामाजिक पसंदो के बीच संबंध का नियम।[५१] इन दो नियमों, सर्वप्रथम जिनकी रूपरेखा *Principles* मे दी गई थी। बाद में *Descriptive and Historical Sociology*[५२] में पूर्णता से विवेचन किया गया है।

पहला नियम इस प्रकार है :

"समस्त सामाजिक पसंद मे, सबसे प्रभावशाली आदर्श वे हैं जो शक्तिशाली व्यक्ति, शक्तिशाली समुदाय, आदिम अर्थ में चारित्रिक गुण (Virtue) के हैं; प्रभाव मे दूसरा स्थान खुशमिजाज व्यक्ति, समृद्ध और सुखप्रेमी समुदाय, उपयोगितावादी या भोगवादी गुणों के आदर्शों का है, प्रभाव मे तीसरा नंबर अत्यत सादे व्यक्ति, सच्चे या न्यायवान् समुदाय या आत्मसंयम के वैराग्यवादी (Stoic) या तापसी (Puritan) गुणों के आदर्शों का है; प्रभाव मे चौथे स्थान पर बौद्धिक रूप से सच्चे व्यक्ति, उदार और प्रबुद्ध समुदाय, युक्तियुक्तता, मानसिक उदारता और दया के गुणों के आदर्श हैं (किंतु यदि मानसिक और नैतिक विकासवाद को जारी रहना है), तो उच्चतर आदर्शों को अधिकाधिक प्रभावकर होना चाहिये।"

दूसरा नियम हितो के अर्थ में, अर्थात् "भलाई के तत्वो, रीतियो और साधनों" के अर्थ में सूत्रबद्ध किया गया है। विभिन्न अनुभव और अनेक हित समाज के किसी पृथक् वर्ग को "इन अनुभवों द्वारा विकसित मानसिक गुणों के अनुसार पसद करने या निर्णय करने को" प्रेरित करते हैं।[५३] नियम इस प्रकार है :

"एक जनसख्या जिसके थोड़े ही हित हैं, और जो सामजस्यपूर्वक सम्मिलित है, वह अपनी पसंद मे अनुदार है। एक जनसख्या जिसके भिन्न हित हैं, जो अभी तक असामंजस्यपूर्ण रूप से मिली हुई है अपनी पसंद मे क्रांतिकारी है। केवल वही जनसख्या, जिसके हित अनेक, भिन्न और सामजस्यपूर्ण रीति से समन्वित हैं, अपनी पसद मे बराबर प्रगतिशील है।"[५४]

इसलिये कार्यात्मक दृष्टि से, प्रगति एक-एक पग रखकर पहले नियम मे वर्णित उच्चतर आदर्शों की स्थापना और दूसरे नियम मे वर्णित अनेक विविध और सामंजस्यपूर्ण रीति से समन्वित हितों की सृष्टि पर निर्भर है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये कुछ "सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं" (Public utilities) की स्थापना होनी चाहिए। कार्यात्मक महत्त्व मे जीवन, भूभाग और संस्थाओं की सुरक्षा का प्रथम स्थान है, यद्यपि जननिक क्रम में इसका अंतिम स्थान है। इस सुरक्षा में अतर्राष्ट्रीय शाति और घरेलू शांति तथा व्यवस्था दोनो सम्मिलित है : "यथासभव इनको प्राप्त करना और कायम रखना राजनैतिक प्रणाली का सर्वोच्च कार्य है।"[५५] कार्यात्मक क्रम में दूसरा स्थान न्याय भावना (Equity) का है, "सामाजिक जनसंख्या का निर्माण करनेवाले व्यक्तियों, नस्ली तत्वों और वर्गों के भिन्न हितों और दावों के कुछ समझौते और प्रसादन का है।" इन भिन्न हितों और दावों के समायोजन के लिये दुर्बल की स्वतंत्रता को कम करने के सबल की स्वतंत्रता पर कुछ अंकुश अपेक्षित है। स्वतत्रता को संरक्षित तथा मिश्रित करने की एकमात्र पद्धति समता के कुछ वस्तुगत प्रकारों की स्थापना रही है। ऐसी समता से निकटता ही स्वतंत्रता, समृद्धि और प्रबुद्धता को सुनिश्चित करेगी। उपयोगिता के इस

सिद्धांत से उत्पन्न आर्थिक अवसर की अधिक समता के हित मे आर्थिक प्रणाली का सार्वजनिक नियंत्रण और सांस्कृतिक सुविधाओं की और पूर्ण समता की प्रवृत्ति है।[५५] सामाजिक प्रगति के कार्यात्मक सार के रूप ने उन सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं मे कार्यकुशलता की सैद्धांतिक परीक्षा को भी जोड़ देना चाहिये। संगठन संगठितों के लिये लाभकर होना चाहिये और सदस्यों द्वारा लाभकर समझा जाना चाहिये।

यह मानकर कि प्रगति प्राप्त करने योग्य लक्ष्य है। ये सार्वजनिक उपयोगी सेवायें एक अंतिम लक्ष्य का साधन बन जाती है, जो "जीवन के उच्चतर विशेषकर उसके नैतिक और बौद्धिक विकास है·· एक सामाजिक सहयोग और भोग के लिये अनुकूलित सामाजिक प्रकृति या व्यक्तित्व है। यह सामाजिक व्यक्तित्व सामाजिक संगठन का अंतिम लक्ष्य है।"[५७] सामाजिक व्यक्तित्व का विकास भावात्मक (Positive) और निषेधात्मक (Negative) दोनों प्रकार से मापा जाता है। भावात्मक दृष्टि से इसमें जीवनशक्ति, स्वस्थ मनोवृत्ति, नैतिकता और सामाजिकता की वृद्धि निहित है। निषेधात्मक दृष्टि से यह दोषपूर्ण, असामान्य, अनैतिक और पतित व्यक्तियों की संख्या में ह्रास दर्शाती है। "व्यवहारतः इसमें अपने एक सुप्रजनशास्त्र (Eugenics) का कार्यक्रम सम्मिलित है जो अपने भावात्मक पक्ष मे विशुद्ध और स्वस्थ पारिवारिक जीवन स्वास्थ्य और स्वस्थ बच्चे को आत्मनियंत्रण के गुण मे और कर्तव्यपालन की अन्य अविचलित निष्ठा मे दीक्षित करता है," [५८] और, निषेधात्मक पक्ष में, मंद-धी और दोषपूर्ण (Dysgenetic) नस्ल के निर्ममता से दमन पर आधारित है।

६. समाजशास्त्र में परिमाणात्मक (Quantitative) पद्धति

समाजशास्त्र की विवरणात्मक और ऐतिहासिक सामग्री के उपयोग मे गिडिंग्स ने जो स्थिति अपनाई, उस पर एक समाजशास्त्री की हैसियत से वह अपने समय मे प्रायः अकेला ही था। उसके विकासवादी दृष्टिकोण ने उसे सहज और तार्किक रूप से ही समाजतंत्र शास्त्र की वस्तुगत विषयवस्तु को एक संख्याशास्त्रीय विवेचन की ओर अग्रसर होने में समर्थ बनाया। सामूहिक व्यवहार विशिष्ट और मध्यमानीय (Modal) है: "जिस सीमा सुरक्षा और समृद्धि समूह की एकता और सहयोग पर निर्भर है, वहां तक वे प्ररूप के साथ उस अनुरूपता पर निर्भर हैं जितनी कि एकता को सुनिश्चित करने और सहयोग को पूरा करने के लिये पर्याप्त है।" [५९] "समाजशास्त्र अल्पाधिक स्वतंत्रता से सहयोग करने वाले व्यक्तियों के एक समूह के अंदर अपने से भिन्न प्ररूप-नियंत्रण के उद्गम, प्रक्रिया विस्तार और परिणामों का विज्ञान है।" [६०] "समाज एक प्ररूप है, जो अपने जीवित रहने और भावी उद्विकास के लिये अपने से भिन्नता का नियंत्रण करता है।" [६१] इसलिये इसे निश्चित या संख्याशास्त्रीय पद्धति से परिमाणात्मक अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है,[६२] चूंकि प्ररूप की घटना को सदा "बारंबारता" (Frequency) और "मध्यमान" (Mode) के संख्याशास्त्रीय अर्थ मे व्यक्त किया जा सकता है। जब आज उपलब्ध अनेक संख्याशास्त्रीय रिपोर्टों का पूरा महत्त्व अनुभव किया जायेगा, तब संख्यात्मक

समाजशास्त्र में अधिक प्रगति होगी। कुछ संख्याशास्त्रीय शब्दावली और पद्धति-शास्त्र का कुछ विकास भी आवश्यक हो सकता है, क्योंकि जिस प्रकार की बारंबारता की हमारी जनगणना और अन्य रिपोर्टों के न्यासों के विशाल संग्रहों में प्रभुता है, वे आकार की बारंबारता जैसी वर्तमान संख्याशास्त्रीय पद्धतियों द्वारा भलीभांति नही संभाले जा सकते। जन्म और मृत्यु, विवाह और तलाक की दरें संख्या और आकार की मद होने के कारण गणना और मापे जाने योग्य है। किंतु असाक्षर, विदेश और देश-जन्मा, धार्मिक संप्रदायों के अनुयायियों, अपराधियों और आश्रितों इत्यादि एक प्रकार की बारंबारतायें (Frequencies of sort) हैं।

प्रोफ़ेसर गिडिंग्स ने अध्ययन के कुछ व्यावहारिक विषय सुझाये है। विधानसभाओं के द्वारा बनाये गये क़ानूनों के विश्लेषण से सामाजिक दबाव के मापने के देशनांक (Index numbers) प्राप्त करना संभव है।[६३] राज्य और नगरपालिका आयोगों और साथ ही एकीकृत समाज और एकाधिकारी निगमों के बीच प्रभुता के संघर्ष को संख्याशास्त्रीय रूप में जांचा जा सकता है। सामाजिक बंधन का माप मानव भिन्नता की सीमा और सामाजीकरण तथा वैयक्तीकरण का विस्तार जैसी समस्यायें महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से पहली समस्या सामान्यता के ज्ञान और भिन्नता के अर्थ और महत्त्व के मूल्य का एक उदाहरण है।

सामाजिक अंत:परिवर्तन (Mutation) का विस्तार, जिसमें सामाजिक संगठन के सुधारात्मक प्रभाव प्रतिबिंबित होते है, प्रत्यक्ष ही संख्याशास्त्रीय अन्वेषण का विषय है।[६४] हालांकि अनेक समाजशास्त्रीय अन्वेषणों में आवश्यक ऐसी भिन्नताओं और विशेषकर पसंदों और चित्रणों (Characterizations) में आवश्यक माप अभी तक समुचित रूप से स्थापित नहीं हो सके है फिर भी समाजशास्त्र का उद्देश्य और पद्धति "अनुपात (Ratios), मध्यमानों (Modalities), गुणकों (Coefficients) और सहसंबंधों (Correlations) का ढूंढ़ना होना चाहिये।[६५]

"यह प्रश्न कि कितना संयम, कितनी स्वाधीनता, प्ररूप के साथ कितनी अनुरूपता, उससे कितनी भिन्नता (Variation) सामान्य कल्याण के लिये लाभकर है, सार्वजनिक नीति के सब मामलों में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसका सही उत्तर पहले प्रश्न के निर्धारण पर निर्भर है, अर्थात् अपने विकासवाद की एक निर्दिष्ट अवस्था में एक निर्दिष्ट समाज में क्या सामान्य सामाजिक बंधन है, और एक निर्दिष्ट क्षण में उसके हेरफेर का क्या वास्तविक विस्तार है? अतएव आधुनिक समुदायों के लिये तथा नगरपालिकाओं तथा राष्ट्रमंडलों और राष्ट्रों के लिये सामान्य सामाजिक बंधन के निर्धारण और उतार-चढ़ाव मापने की पद्धतियों को पूर्ण बनाना, मेरे विचार में तत्काल भविष्य में समाजशास्त्रीय प्रयास का मुख्य लक्ष्य माना जाता है। मेरा विश्वास है कि यह प्रयास सफल होगा, यह एक सुरक्षित पूर्वोक्ति है।"[६६]

एक मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण से जो एक संख्याशास्त्रीय और वैज्ञानिक भी है सामा-

जिक प्रक्रिया के प्रति गिडिंग्स के रुख का निम्न संक्षेप दिया जा सकता है। उसने एक वाक्य में विज्ञान की विषय-वस्तु की परिभाषा दी है और उसकी पद्धति का निर्णय किया है। "बहुलवादी (Pluralistic) व्यवहार समाज के मनोविज्ञान की, जिसे कि अन्यथा समाजशास्त्र कहा जाता है, विषय-वस्तु है; यह विज्ञान अपनी पद्धति में संख्याशास्त्रीय है, जो पहले बहुलवादी व्यवहार को कारक के अनुसार प्रस्तुत करता है और दूसरे, परिवर्तनीय तत्वों के प्रसंग में उनके कारण को बता उनके, उद्गम, एकीकरण, विभेदीकरण और कार्य की व्याख्या करता है,(१) उद्दीपन(Stimulation) और (२) प्रतिक्रिया की यंत्ररचनाओं से एक दूसरे के साथ (अल्पाधिक) सादृश्य के उद्गम एकीकरण, विभेदीकरण और कार्य की व्याख्या करता है।" [६७] संपूर्ण समाजशास्त्रीय सिद्धांत इन दो परिवर्तनीय कारकों के चारों ओर घूमते है। [६८]

टिप्पणियां

१. फ्रैंकलिन हेनरी गिडिंग्स (१८५५-१९३१) संभवतः अमेरिका के समाजशास्त्रियों में सबसे योग्य था, और विदेशी समाजशास्त्रियों मे संभवतः केवल दुरखीम और हॉबहाउस और मैक्स वैबर ही उसके समकक्ष कहे जा सकते है। वह लेस्टर एफ० वार्ड की तुलना में कम प्रभावोत्पादक विद्वत्तायुक्त था, किंतु उसे अधिक तीक्ष्ण दृष्टि और सैद्धांतिक सूत्रीकरण और विश्लेषण की अधिक क्षमता प्राप्त थी।

गिडिंग्स का जन्म १८५५ में कौनेक्टिकट राज्य के शरमन नगर में हुआ था। उसका पिता एक कट्टर और तापसी कौग्रीगेशनलिस्ट पादरी था, और संभवतः अपनी परिपक्व अवस्था में धार्मिक कट्टरता और तापसीवाद के विरुद्ध उसकी तीव्र प्रतिक्रिया को मुख्यतः उसके बचपन के वातावरण में ढूंढ़ा जा सकता है। उसने यूनियन कालेज मे इंजीनियरी का प्रशिक्षण प्राप्त किया किंतु उसने स्प्रिंग-फील्ड, मेसाचुसेट्स मे पत्रकारिता मे प्रवेश किया, जहां उसने दस वर्ष तक 'स्प्रिंग फील्ड रिपब्लिकन' और 'स्प्रिंग फील्ड यूनियन' मे काम किया उसने १८८८ मे ब्रिन मौर कॉलेज मे राजनीति के प्रोफेसर के वुडरो विल्सन द्वारा रिक्त स्थान को ग्रहण किया और १८९४ मे कोलंबिया विश्वविद्यालय मे समाज शास्त्र के नवजात प्रोफेसर पद को स्वीकार किया। यहां १९३१ मे अपनी मृत्यु से कुछ पहले तक उसने समाजशास्त्र और सभ्यता के इतिहास के प्रोफ़ेसर के रूप में पढ़ाया।

गिडिंग्स का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था और उसमें अपने विचारों के ज़ुबानी प्रतिपादन की अद्भुत योग्यता थी। यदि उसने सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश किया होता तो वह एक गण्यमान्य राजनैतिक वक्ता बनता। उसने अपने विद्यार्थियों को अपने व्यक्तिगत जीवनशक्ति और उत्साह से प्रभावित किया है, किंतु अधिक गंभीर तथा सावधान विद्यार्थी उसकी कक्षाओं के प्रायः लापरवाह और अनौपचारिक संचालन से विक्षुब्ध थे। अन्य कोई अमेरिकन समाजशास्त्री इतनी शक्ति, संक्षेप और संगठित रीति से भाषण नहीं दे सकते जो गिडिंग्स जब चाहता था प्रदर्शित करता था, किंतु उसने बहुत कम ही किसी पाठ्यक्रम को सिलसिले से चलाया, और कभी-कभी तो घोषित विषय से उसके भाषण-

माला का बहुत कम ही बाह्य संबंध दीखता था। १९१४ के बाद यह विशेष रूप से सत्य था। एक विशिष्ट अर्थ में गिडिंग्स एक बौद्धिक "युद्धहताहत" था। वह वस्तुतः जर्मन-विरोध से अभिभूत था, १९१८ के बाद यह बोल्शविक विरोध में परिवर्तित हो गया और अनेक वर्षों तक उसके भाषण शांत समाजशास्त्रीय विश्लेषण की अपेक्षा प्रायः उसकी प्रिय घृणाओं के विरुद्ध कटु आक्रमण बन गये। किंतु चाहे समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरण में उनका योगदान कितना भी कम क्यों न हो, वे सदा रोचक और विचारोत्तेजक थे।

यद्यपि गिडिंग्स स्वभाव से दयालु और सहानुभूतियुक्त था फिर भी उसका व्यक्तित्व विशेष रूप से शासकीय था और वह अपने विचारों मे बड़ा कट्टर था। यदि पूजा नही, तो भी वह अपने विभागीय सहकर्मियों से सैद्धांतिक निष्ठा पर अवश्य आग्रह करता था। इस कारण उसने अपने चारों ओर समकक्ष या पेशेगत प्रतियोगियों की अपेक्षा अपनी हां मे हां मिलानेवाले व्यक्तियों को इकट्ठा कर लिया। इस प्रकार वह अपने समय के अन्य प्रमुख शैक्षणिक समाजशास्त्री शिकागो विश्वविद्यालय के डीन एल्बियन डबल्यू० स्मॉल से सर्वथा भिन्न था, और इस कारण वह शिकागो मे स्मॉल की भांति समाजशास्त्र के प्रभावशाली विभाग के निर्माण से वंचित रहा। (जीवन संबंधी यह सामग्री संपादक द्वारा दी गई है और इसमें व्यक्त रायों के लिए डा० नॉर्थकाट उत्तरदायी नही है।)

२. गिडिंग्स की प्रमुख रचनाओं मे निम्नलिखित है : *Principles of Sociology* (New York, 1896) उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और समाजशास्त्रीय क्षेत्र मे अभी तक छपी अकेली रचनाओं में से संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण है ; *Elements of Sociology* (New York, 1898) गिडिंग्स के प्रारंभिक समाजशास्त्रीय विचारों का सर्वश्रेष्ठ संक्षिप्त वक्तव्य है ; *Democracy and Empire* (New York, 1900) सार्वजनिक प्रश्नों और अमेरिकन साम्राज्यवाद के पक्ष मे गिडिंग्स के विचारों का सर्वश्रेष्ठ संश्लेषण है; *Inductive Sociology* (New York, 1901) सिद्धांतों और समस्याओं तथा अगली गवेषणाओं के लिये सुझावों का पाठ्यक्रम ; *Descriptive and Historical Sociology* (New York, 1904) उदाहरण के पाठों के साथ समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के विकास का और अधिक संक्षेप; *The Responsible State* (Boston, 1918) राजनीति विज्ञान पर समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रयोग जो गिडिंग्स की युद्धकालीन मानसिक अवस्था और जर्मन विरोध से आक्रांत है ; *Studies in the Theory of Human Society* (New York, 1922); *Principles of Sociology* के प्रकाशन के बाद से सैद्धांतिक समाजशास्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण पुनर्वक्तव्य ; *The Scientific Study of Human Society* (Durham, N. C. 1924) समाजशास्त्र में आगमनात्मक और संख्याशास्त्रीय पद्धति के पक्ष में गिडिंग्स की सबसे विस्तृत यक्तियां ; *The Mighty Medicine* (New York, 1930) शिक्षा और धर्म में समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रयोग और मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित रचना *Civilization and Society* (New York, 1930), जिसमें उसके सिद्धांतों का संक्षेप है। गिडिंग्स के जीवन और समाज-

शास्त्र को उसकी देनों के सर्वेक्षण के लिये देखिये H. W. Odum, *American Masters of Social Science* (New York, 1927), chap. vii में J. L. Gillin का लेख और F. H. Hankins, "Franklin Henry Giddings, 1855–1931; Some Aspects of His Sociological Theory," *American Journal of Sociology*, November, 1931, pp. 349–67. वैयक्तिक पक्ष के लिये गिलिन और सैद्धांतिक पक्ष के लिये हैंकिस सबसे श्रेष्ठ है।

३. मिलाइये *Sociology* (New York, 1911), p. 32.

४. *Theory of Human Society*, p. 259.

५. *Descriptive and Historical Sociology*, 289 ; *Theory of Human Society, passim*

६. *Principles of Sociology*, p. 114.

७. *Sociology*, p. 32 ; *Theory of Human Society*, pp. 267-68.

८. *Ibid.*, p. 261.

९. *Theory of Human Society*, p. 274.

१०. अप्रकाशित भाषणों से उद्धृत ; *Theory of Human Society*, p. 87 भी मिलाइये।

११. अप्रकाशित भाषणों से उद्धृत *Theory of Human Society*, p. 87. भी मिलाइये।

१२. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 359 ; *The Responsible State*, chap. iii.

१३ मिलाइये *Descriptive and Historical Sociology*, p. 373.

१४. *Principles of Sociology*, p. 421.

१५. मिलाइये *The Responsible State*, pp. 75–78.

१६. *Theory of Human Society*, pp. 269–72.

१७. *Inductive Sociology*, p. 217.

१८. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 515.

१९. "Theory of Social Causation," *Publications of the American Economic Association*, 1903, p. 144.

२०. *Principles of Sociology*, p. 134 ; *Theory of Human Society*, p. 266.

२१. *Inductive Sociology*, p. 68.

२२. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 128.

२३. *Ibid.*, p. 176.
२४. *Ibid.*, p. 127.
२५. *Democracy and Empire*, p. 317–20.
२६. *Descriptive and Historical Sociology*, pp. 11—13.
२७. *Theory of Human Society*, chap. xii ; p. 202.
२८. *Ibid.*, p. 203.
२९. *Ibid.*, p. 204.
३०. *Ibid.*, p. 206.
३१. *Ibid.*
३२. *Ibid.*, p. 147 ; मिलाइये chap. iii.
३३. *Ibid.*, pp. 192—94, 262.
३४. *Ibid.*, p. 264.
३५. *Principles of Sociology*, p. 229.
३६. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 315.
३७. *Principles of Sociology*, p. 142.
३८. *Ibid.*, p. 380.
३९. *Sociology*, p. 34.
४०. *Ibid.*, p. 36 ; Theory of Human Society, pp. 118-19.
४१. *Theory of Human Society*, p. 246 chap. xiv.
४२. *Descriptive and Historical Sociology*, pp. 395 ff ; *Theory of Human Society*, p.. 278–81. भी मिलाइये ।
४३. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 415.
४४. *Theory of Human Society*, p. 280.
४५. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 416.
४६. *Ibid.*, p. 393.
४७. *Principles of Sociology*, p. 147.
४८. *Ibid.*, p. 149.
४९. *Democracy and Empire*, p. 59 ; *Theory of Human Society*, p. 173. भी मिलाइये ।
५०. *Democracy and Empire*, p. 59.
५१. *Principles of Sociology*, pp. 409–11.
५२. P. 351.
५३. *Inductive Sociology*, p. 181.
५४. *Ibid.*

५५. *Descriptive and Historical Sociology*, p. 526.

५६. *Ibid.*, pp. 526—28.

५७. *Ibid.*, p. 523.

५८. *Principles of Sociology*, p. 352.

५९. *Political Science Quarterly*, XXIV, 757 ; *Theory of Human Society*, pp. 202, 206—8, 282, 286.

६०. *Political Science Quarterly*, XXIV, 578.

६१. *Ibid.*, p. 580 ; *Theory of Human Society*, pp. 202, 206.

६२. पूर्ण विवेचन के लिये देखिये *Scientific Study of Human Society.*

६३. *Quarterly Publications of the American Statistical Association*, March, 1908.

६४. *Ibid.*, p. 286.

६५. *Ibid.*, p. 300.

६६. *Theory of Human Society*, p. 208.

६७. *Ibid.*, p. 252.

६८. *The Scietntific Study of Society.* जिसके अनेक अध्याय *Journal of Social Forces*, 1923-24में प्रकाशित हुए ; और एक लेख "Stimulation Ranges and Reaction Areas," *Psychological Review*, November, 1924.

अध्याय बारह

चार्ल्स हार्टन कूले : मनोसमाजशास्त्र में अग्रणी

रिचार्ड ड्यूई

इलीनॉय विश्वविद्यालय

१. चार्ल्स हार्टन कूले (Charles Horton Cooley) का जीवन और प्रशिक्षण

इस विद्वान् आदर्शवादी का अघटनाप्रधान जीवन प्रायः एन आर्बर में विश्वविद्यालय की इमारतों के साये में बीता। यहां उसका जन्म १८६४ में हुआ, यह उसने अपने जीवन के सृजनात्मक वर्ष बिताये, और यह १९२९ में उसकी मृत्यु हुई। कष्टमय बचपन के साथ शारीरिक व्याधियों और निजी संदेहों ने कूले के लिये अपने यौवन की थोड़ी ही सुखद स्मृतियां छोड़ीं।[१] फिर भी सभी कुछ बेकार नहीं गया, चूंकि किशोरावस्था के प्रारंभ में ही पढ़ने और अंतःपर्यवेक्षित प्रश्नों के रूप में उसकी बौद्धिक अभिरुचियां व्यक्त हुईं।[२] लगभग पहले पच्चीस वर्षों तक उसका स्वास्थ्य ख़राब रहा जिसने उसे डिग्री कॉलेज में सात वर्ष तक पढ़ने के लिये बाध्य किया।

१८८७ में मिशीगन विश्वविद्यालय से स्नातक बनने के बाद उसने वहीं पर एक वर्ष मिकैनिकल इंजीनियरी का प्रशिक्षण पाया। १८८८ में बे सिटी में ड्राफ्ट्समैन का कार्य करते हुए, उसने अर्थशास्त्रियों में इतिहास का गौण विषय लेकर एम० ए० डिग्री के लिये पढ़ने की इच्छा की।[३] वह अपनी पढ़ाई शुरू करने के लिये जनवरी में स्कूल लौटा, किंतु तीन महीने बाद उसने वाशिंगटन में सिविल सर्विस कमीशन में एक कार्य ले लिया। इसने और इसके साथ जनगणना विभाग में एक अन्य नौकरी ने उसे दो वर्ष तक वाशिंगटन में रोके रखा। १८९० में उसने विवाह किया, और छः महीने यूरोप की यात्रा करने के बाद वह अपना अध्यापक जीवन प्रारंभ करने के लिये १८९२ के द्वितीय सत्र में मिशीगन विश्वविद्यालय लौटा।[४]

बे सिटी और वाशिंगटन में बिताये गये समय को छोड़कर, कूले सदा एन आर्बर में रहा। अन्यत्र जाने के अनेक निमंत्रणों के बावजूद, उसने मिशीगन विश्वविद्यालय छोड़ना स्वीकार न किया।[५] अपने प्रतिष्ठित विधिशास्त्री पिता टॉमस एम० कूले की सक्रिय सार्वजनिक सेवा से भिन्न, चार्ल्स हार्टन शांत था। आंशिक बहरेपन और बोली के दोष से बाधित होने के कारण कूले कभी भी अपनी कक्षाओं में नहीं चमक सका;

"....वह शांत संकोची, अकृत्रिम था...." [६] स्नातक कक्षाओं के अध्यापक के रूप में अप्रभावशाली होते हुए भी,[७] वह अधिक परिपक्व विद्यार्थियों को प्रभावित करने में सफल हुआ।[८]

अर्थशास्त्र के प्रशिक्षकपद को स्वीकार करते हुए भी समाजशास्त्र मे उसकी अभिरुचि बढ़ रही थी। उसकी प्रथम प्रकाशित रचना "दि सोशल सिग्नीफिकेंस ऑफ स्ट्रीट रेलवेज़", जो १८९१ मे आई, सारतः एक परिस्थितिशास्त्रीय (Ecological) अध्ययन थी।[९] कूले ने १८९४ में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की और १८९४–९५ के शिक्षण-सत्र में समाजशास्त्र पढ़ाना शुरू किया; वह पहले सेम्सटर में हफ्ते में तीन घंटे "सिद्धांत" पढ़ाता था और, जैसा कि प्रायः आज भी होता है, दूसरे सेम्सटर में "समस्याओं" पर भाषण देता था।[१०] उसने लिखा है कि समकालीन जीवन पर उसके प्रारंभिक पाठ्यक्रम समाजमनोविज्ञान की अपेक्षा अर्थशास्त्र से अधिक संबधित थे। उसका डॉक्टरेट निबंध, 'दि थियरी ऑफ ट्रांस्पोर्टेशन' "....एक सावयवी समग्र के अर्थ में इस कृत्य की व्याख्या का प्रयास है।"[११] इसने उसके प्रारंभिक अध्ययन की सामग्री जुटाई है। उसके इससे संबंधित विवेचन ने उसे इसी प्रकार सामाजिक प्रक्रिया के अन्य पहलुओं के अध्ययन के लिये प्रेरित किया।

कूले का अध्ययन मुख्यतः इमरसन, गेटे, कोंत, वार्ड, स्पेंसर, डार्विन, गुम्पलोविक्ज़, क्यूतलेत, मेन, मार्गन, मेक्लीगान, वैस्टरमार्क, जेन एडम्स, गिडिंग्स, तार्दे, जेम्स और बाल्डविन पर केंद्रित था। वह हमें बताता है कि इन पर व्यय किये गये समय और श्रम की अपेक्षा कहीं अधिक समय और श्रम "शैफिल के *Bau und Leben des sozialen Korpers* को प्रथम जिल्द के कष्टसाध्य अध्ययन मे व्यय हुआ....." जिसने उसे सामाजिक प्रणाली का वह दृष्टिकोण प्रदान किया जो उसे स्पेंसर से बेहतर लगा।[१३] शैफिल के विषय में यह कहा गया है कि "हृदय से वह डार्विन, स्पेंसर या शैफिल की अपेक्षा शैले और हीगल के अधिक निकट था। शैफिल की चितनप्रणाली ने संसार की एक आचारशास्त्रीय और प्रयोजनमूलक (Teleological) अवधारणा का अनुसरण किया। उसके मत मे जनता के जीवन का सार उसकी सभ्यता है; समाज का आदर्श एक वर्धमान समाजीकरण है।"[१४] यह समस्त समाज पर प्राथमिक समूहो के गुणों के विस्तार के कूले के आदर्श से मिलता है। कूले ने निस्संकोच अपने चितन के स्रोत के लिये डार्विन और बाल्डविन का ऋण स्वीकार किया है, और इमरसन ने भी जितना कि बाहर से नहीं दीखता उससे कहीं अधिक कूले के चितन को प्रभावित किया है।

यहा पर कूले के सब प्रकाशनों की विवेचना की जायेगी। प्रसिद्ध त्रिरचना, 'ह्यूमन नेचर एंड दि सोशल आर्डर' (१९०२, सं० स० १९२२), 'सोशल आर्गनाइजेशन' (१९०९) और 'सोशल प्रॉसेस' (१९१८) के अतिरिक्त 'सोशियोलॉजिकल थियरी एंड सोशल रिसर्च' (१९३०) में संकलित और प्रकाशित अधिकांश निबंधों पर, जिसमें ३४३–४५ पृष्ठों पर उसके इकतीस प्रकाशनों की पूरी सूची भी सम्मिलित है, विचार

किया जायेगा। कूले, ऐंजल और कार की पाठ्य-पुस्तक, 'इंट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी' में कूले के अधिकांश पूर्वकल्प (Hypotheses) अपेक्षतया अमिश्रित रूप में मिलते हैं।

२. कूले की मुख्य समाजशास्त्रीय रचनायें

समाजशास्त्र पर कूले की रचनाओं की संभवतः दो उल्लेखनीय विशेषतायें हैं; सामाजिक घटनाओं की एकतरफा और विशेषवादी व्याख्या से बचना और संकीर्ण दलगतता से, जोकि उसकी पीढ़ी के अनेक समाजशास्त्रियों में मिलती है, स्वाधीनता। हालांकि उसने सामाजिक प्रक्रियाओं पर प्रधानतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया, फिर भी उसने अनेक अन्य दृष्टिकोणों को भी पूर्ण स्वीकृति प्रदान की। मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र की अपनी विशेषता में भी वह एक ही सिद्धांत या सूत्र के महत्त्व पर अनुचित बल देने से बचा और उसने इस बात पर जोर दिया कि सामाजिक प्रक्रिया अनेक कारकों द्वारा नियंत्रित होती है, और किसी समुचित विवेचन में सभी पर ध्यान देना चाहिये। वस्तुतः इस दिशा में वह इतना अधिक आगे बढ़ा कि एक बुनियादी रूप में समाज की उसकी व्याख्या को समाज-मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक समाज-दर्शन माना जा सकता है। उसकी समाज की व्याख्या केवल क्षेत्र मे ही नहीं बल्कि अपनी धारणाओं तथा पद्धतियों में भी दार्शनिक है।

कूले की रचनाओं को पढ़ते समय इस निष्कर्ष से बचना कठिन है कि उसके सूक्ष्म और विद्वत्तापूर्ण सामान्यीकरण मुख्यतः पुस्तकालय के सुखद परिवेश में गंभीरतापूर्वक अध्ययन की गई पुस्तकों से लिये गये थे। उसकी अपनी पुस्तकों में भी सामान्य साहित्य के स्मरणीय ग्रंथों और साथ ही समाजशास्त्र के विशेषज्ञ विवेचनों से प्रायः बराबर ग्रहण किया गया है। थोरो के प्रति, जिसे उसने अन्य किसी लेखक की अपेक्षा अधिक बारंबार उद्धृत किया है, कूले की प्रशंसा कुछ अंश तक अमेरिकन साहित्यिक और दार्शनिक इतिहास की उस रोचक मूर्ति से मानसिक समता पर आधारित हो सकती है। इस संयमित और आदर्शवादी धारणा में कूले ने दृष्टिकोण की वह व्यापकता और स्वस्थता प्राप्त की जो एक ओर समाज-सुधार के समर्थक जोशीले किंतु अवैज्ञानिक समाज के उत्साह और दूसरी ओर प्रयोगशाला-मनोवैज्ञानिक और संख्याशास्त्रीय समाजशास्त्री की प्राय विद्यमान संकीर्णता और क्लिष्टता से बची रही। शानदार अभिव्यक्ति की कला की दक्षत ने कूले की रचनाओं को केवल विषयवस्तु में ही नहीं बल्कि लेखन शैली में भी एक उच्च साहित्यिक गुण प्रदान किया।

इतिहास और समाज की सावयवी (Organic) प्रकृति के प्रति उसका व्यापक और व्यावहारिक दृष्टिकोण सामाजिक घटनाओं के प्रति कूले की व्यापक दृष्टि के लिए बुनियादी था। प्रोफेसर एफ० एच० गिडिंग्स के 'ए थियरी ऑफ सोशल कॉजेशन' निबंध पर, जो १९०३ में न्यू आर्लियंस में पढ़ा गया था, उसकी समालोचना में यह अच्छी तरह रखा गया था।

"इतिहास का सावयवी दृष्टिकोण इससे इन्कार करता है कि कोई एक कारक या कई कारक अन्यों की अपेक्षा अधिक आखिरी है। वस्तुतः यह इससे इन्कार करता है कि तथाकथित कारकों—जैसे कि मन, विभिन्न संस्थाओं, भौतिक वातावरण इत्यादि की—समग्र जीवन से जिसमें कि पशु-सावयव के जीवन की भांति शरीर के समस्त सदस्य भाग लेते हैं, उससे पृथक् कोई वास्तविक सत्ता है। यह मन और पदार्थ, भूमि, जलवायु, वनस्पति पशु-पक्षी, विचार, भाषा और संस्थाओं को एक सुगठ संपूर्ण, एक समग्र वृद्धि के पहलुओं के रूप में देखता है। हम इनमें से किसी एक पर अपना ध्यान एकाग्र कर सकते है, किंतु यह एकाग्रता इतनी दूर तक नहीं जानी चाहिये कि यह संपूर्ण पर प्रत्येक की आधीनता को नजरंदाज कर जाय, या एक को दूसरे से अधिक बड़ा कल्पित करे।" [१४]

चूंकि उसकी सामान्य समाजशास्त्रीय प्रणाली का आधार सामाजिक प्रक्रिया का सावयवी दृष्टिकोण है, अतः समाज और व्यक्ति की अविच्छिन्न पूरक प्रकृति का मत—"स्व" (Self) की सामाजिक सृष्टि की धारणा—कूले के मनोवैज्ञानिक समाज-शास्त्र का केंद्रीय मूल विषय है। वह बार-बार इस बात पर ज़ोर देता है कि जब हम उसके पारस्परिक प्राकृतिक संबंधों पर विचार नहीं करते तब यह या तो व्यक्ति या समाज केवल प्रविवेक (Abstraction) है। व्यक्ति और समाज की अंतर्क्रिया और अंत-र्संबंधों की व्याख्या कूले की पुस्तकों की विषयवस्तु जुटाती है और सामाजिक दर्शन की एक सुसंगत प्रणाली का निर्माण करती है। अब हम समाजशास्त्र के क्षेत्र में कूले की रचनाओं पर विचार कर सकते है।

(क) "मानव प्रकृति और सामाजिक व्यवस्था" (१९०२) [१५]

कूले कहता है, "समाज और व्यक्ति" वस्तुतः इस पुस्तक का विषय है। [१६] डार्विन और बाल्डविन पर अच्छे अधिकार से निस्संदेह प्रभावित, कूले ने पहले से ही विद्यमान प्रवृत्ति को, अर्थात् व्यक्ति और समूह को घनिष्टतया संबंधित घटनाओं के रूप में देखने की प्रवृत्ति को पुष्ट किया। उसकी मान्यता थी कि ".....मानव-संबंधों के एक सामान्य या दार्शनिक वक्तव्य के रूप में प्रयुक्त समाज और व्यक्ति का विरोध मिथ्या और खोखला है।" [१७] वह स्थिति जिसे कूले ने सही माना, यह है ".....कि सामाजिकता की अपेक्षा वैयक्तिकता (Individuality) न तो पूर्व-विद्यमान है और न ही नैतिक स्तर पर निकृष्ट है; प्रत्युत् दोनों ही एक ही वस्तु के पूरक पहलुओं के रूप में सदा साथ-साथ रही है।" [१८] उसने घोषणा की कि मानव के मानसिक यंत्र को सामाजिक और असामाजिक में विभाजित नहीं किया जा सकता, "वह संपूर्ण सामाजिक है.....समाज मानव-जीवन का संपूर्ण अंश है....।" [१९]

व्यवहार पर इस प्रकार विचार कर, कूले ने बाकी पुस्तक में सुझाव और पसंद, सामाजिकता और व्यक्तिगत विचारों, सहानुभूति, सामाजिक स्व, शत्रुता, नेतृत्व, अंतःकरण, व्यक्तिगत पतन और स्वाधीनता की विवेचना की है।

अब सुपरिचित "दर्पण स्व" (Looking-glass Self) की अवधारणा अध्याय ५ का एक छोटा किंतु पृथक् भाग है। कूले के अनुसार इस स्व-विचार के तीन प्रधान अंग हैं : "अन्य व्यक्ति के लिये हमारी आकृति (Appearance) की कल्पना; और उस आकृति पर उसके निर्णय की कल्पना और अहंकार या अनुशोचन जैसी स्व-भावना।"[२०] वह स्वीकार करता है कि दूसरी बात पर, जो स्व-विचार के अर्जन के लिये समाज में भलीभांति कार्य करता है महत्त्वपूर्ण है, यह सादृश्य टूट जाता है।

"अंतःकरण (Conscience) के सामाजिक पहलू" शीर्षक अध्याय १० में प्रायः प्रयुक्त यह वक्तव्य स्पष्ट होता है कि कूले का समाजशास्त्र एक सामान्य मिडवैस्टर्न अमेरिकन समुदाय की ओर उन्मुख है।[२१] मीड के शब्दों में, यह अध्याय "नैतिक निर्णय और प्रवृत्तियों की संपूर्ण यंत्ररचना के अंतर्गत परस्थिति के वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा एक सराहनीय आचारशास्त्रीय विवेचन है।"[२२]

(ख) "सामाजिक संगठन" (१९०९)

"इस पुस्तक में....मेलजोल के विस्तार और वैविध्य पर जिसे मैंने सामाजिक संगठन कहा है, पर आंख लगी हुई है, यद्यपि यह दृश्य है, लेकिन वह कुछ पीछे पड़ गया है।"[२३] समाज की एकता और स्व की सामाजिक प्रकृति पर ज़ोर को, जो 'ह्यूमन नेचर एंड सोशल आर्डर' की विशेषता थी, इस व्यापक दृष्टि में रखा गया है। इस प्रकार हमें पुनः स्मरण कराया गया है कि सामाजिक चेतना से स्व-चेतना अविच्छिन्न है, कि "आत्म और समाज जुड़वा पैदा हुए हैं।"[२४]

अध्याय २ में कूले ने नैतिक मूल्यों की सापेक्षता की अवधारणा की, जोकि अभी तक समाजवैज्ञानिक के संसार तक सीमित थी, विवेचना की है। सुधार सहानुभूतियुक्त होना चाहिये, अर्थात् इसे अपराधी के असामान्य व्यवहार की कैफ़ियत देनी चाहिये।[२५] प्रकृतिवादी व्याख्या वास्तविक सुधार की पहली शर्त है।

अध्याय ३, जो प्राथमिक समूहों (Primary groups) की अवधारणा का मूल स्रोत है, कूले की रचनाओं में सबसे अधिक उद्धृत हुआ है।"[२६] प्राथमिक समूहों से मेरा तात्पर्य उनसे है जो घनिष्ट आमने-सामने के साहचर्य और सहयोग से युक्त है....वे कई अर्थों में प्राथमिक हैं, किंतु मुख्यतः इसमें कि वे व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति और आदर्श के निर्माण में बुनियादी हैं।"[२७] परिवार बच्चों के क्रीड़ासमूह और बड़ों का पड़ोस या समुदाय सबसे महत्त्वपूर्ण है।[२८] इन्हीं समूहों में व्यक्ति की मानव प्रकृति स्पष्ट होती है।

मानव-प्रति की विशेषताओं की विवेचना करते हुए कूले ने "मानसिक एकता" (Psychic unity) के थीम का प्रवेश कराया है : "प्राथमिक समूह में जीवन उन सामाजिक आदर्शों को जन्म देता है जो, समान अनुभव से उत्पन्न होने के कारण संपूर्ण मानव-जाति में बहुत कुछ समान है।"[२९] निष्ठा, सत्य, सेवा, विधि-संगति, स्वाधीनता,

इत्यादि के यह प्राथमिक आदर्श, जिनकी अध्याय ४ और ५ में विवेचना हुई है, प्राथमिक समूहों में अर्जित और संक्रमित किये जाते है। जब सामाजिक अंतर्क्रिया प्राथमिक परिधि से बाहर घटित होती है तब समुचित संगठन को जुटाने की असफलता, नैतिक सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की हमारी असफलता का सार है।[१०] वह यंत्ररचना, जिस पर ऐसा संगठन आश्रित है, संचार (Communication) है, जो "इतना अधिक पूर्ण और तेज़ होना चाहिये कि वह सुझावों के लेने-देने में इतनी शीघ्रता प्रदान कर सके, इसी पर नैतिक एकता निर्भर है।" [११] बुद्धिसंगत संगठन के रूप और रिवाजों को इस संचार-प्रविधि की पूर्ति करनी चाहिये।[१२]

निम्न वक्तव्य में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की जटिलताये स्पष्ट हैं : "संपर्क को सुलभ बनाकर मानव प्रकृति के विस्तार का संचार का कार्य अंशतः तात्कालिक है, किंतु इससे भी अधिक यह बुद्धिमत्ता की वृद्धि, यांत्रिक और मनमाने प्रकार के सगठन के ह्रास और अधिक मानवीय प्रकार के समाज के उदय का समर्थन करने के कारण परोक्ष है।"[१३]

"प्रजातांत्रिक मन" शीर्षक अध्यायों मे प्रजातंत्र में कूले की निष्ठा परिलक्षित है। चेतना का विस्तार "एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इतिहास का केंद्रीय तथ्य है।" [१४] और प्रजातंत्र की सफलता इसका प्रतिबिंब है। जनमत "संचार और पारस्परिक प्रभाव का एक संगठन, एक सहकारी उपज है.....।[१५] पुनः यह प्रजातंत्र का रक्षक है और वस्तुतः संचार और सगठन उसी सीमा तक सफल है जिस सीमा तक प्राथमिक आदर्श विकसित और सचालित हुए हैं। जनसाधारण ही उस भावना और सामान्य बुद्धि में योगदान देते हैं जिनका कि नेता द्वारा, जिसका कि इन जीवंत प्रवृत्तियों को व्यक्त करना ही मुख्य कार्य है और उसे एक सीमित जाहिरा मौलिकता का दावा प्रदान करता है, उपयोग किया जाता है।"[१६] बार्नस् का मत है कि जनता की योग्य नेताओं को चुनने की योग्यता में कूले की निष्ठा[१७] संभवतः कूले के प्रजातंत्र के समर्थन का सबसे कमज़ोर पहलू है।[१८]

सामाजिक वर्गों (Classes) पर कूले का पंचानबे पृष्ठों का विवेचन अमेरिकन समाजशास्त्र में पहले विवेचनों मे से एक था। व जाति को स्थापित करने और उसे क़ायम रखने मे आनुवंशिकता (Heredity) को एकमात्र कारक मानता है, जबकि प्रतियोगिता को घटाने की इच्छा वर्गों की रचना में सहायक है। यह द्रष्टव्य है कि उसने "व्यक्तिगत प्रतियोगिता" में यह निर्देश किया है कि पद (Status), जो वर्ग का आधार है, प्रतियोगिता को घटाता है और पद की अस्थिरता प्रतियोगिता की वृद्धि करती है।

पूंजीवादी वर्गों की वृद्धि और अल्प-आय वालों के संगठन पर विचार करते हुए, कूले ने पुनः सामाजिक संगठन के संयोजन (Symmetry) के विषय की चर्चा की है। उसने पूंजीवादी वर्ग के बारे में एक रोचक बात कही है कि उसमें बहुत कम प्रतिभाशाली मनुष्यों का प्रभुत्व है, चूंकि "केवल बहुत कुछ साधारण मन ही अपने को संपूर्ण हृदय से व्यापारिक आदर्श को अर्पित कर सकता है।"[१९]

कूले अनुभव करता है कि वास्तविक जातिप्रणाली क्रांति की पहली शर्त है, चूंकि वर्गप्रणाली निम्न स्तर के अधिक योग्य व्यक्तियों को उच्च स्तर पर आने की अनुमति देती है। वे धनिक वर्गों से अपने को मिला लेते हैं और अल्प-अधिकारप्राप्त वर्ग से बच निकलते हैं, न ही वे उसकी उन्नति का प्रयत्न करते हैं।[४०] यदि जातियां (Castes) हमारी सामाजिक संरचना का अंश होतीं तो ऐसा न होता; किंतु कूले अनुभव करता है कि यहां पर जातियों के विकास की बहुत ही कम संभावना है।[४१]

सुपरिचित पूर्वकल्पों (Hypoheses) की सहायता से कूले ने संस्थाओं का [redacted]तिक विवेचन का प्रथम नेतृत्व किया।[४२] संस्थाओं को "सार्वजनिक मन की संगठित धारणायें" बताते हुए वह लिखता है कि ये संस्थायें व्यक्ति में "बहुत कुछ मुख्यतः अचेतन-मन या क्रिया की आदत में विद्यमान है। क्योंकि संपूर्ण समूह के लिये यह बहुत कुछ समान है.....।"[४३] कुछ व्यक्तियों पर सामान्य संस्थागत नियंत्रण कम हो जाता है और परिवर्तन की आदत पड़ जाती है, समाज मे संक्रमण द्वारा इस बेचैनी की व्याख्या की जा सकती है।"[४४]

मध्यकालीन युग की भांति आधुनिक समाज में भी संस्थाओं द्वारा संचालित परंपरा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है: "बात केवल यह है कि परंपरा इतनी जटिल और वस्तुओं के तथ्य पर इतनी अधिक विस्तीर्ण है कि परंपरा के रूप में इसका गुण कठिनाई से ही दीख पड़ता है।"[४५]

समाज में यंत्ररचना (Mechanism) की अतिशयता के रूप मे वर्णित औपचारिकता (Formalism) अनुचित है, चूंकि यह····"जब मानव-प्रकृति की वैयक्तिकता का दमन करती है या उसकी शक्ति को कुंठित करती या गलत मार्ग पर ले जाती है तब यह बुद्धि और अनुकूलन में बाधा डालती है।"[४६]

"विघटन" (Disorganisation) वाले अध्यायों में कूले ने परिवार, चर्च, आर्थिक प्रणाली, शिक्षा, इत्यादि पर विचार किया है और सामाजिक प्रक्रिया के विशेष पहलुओं की क्रिया का संकेत किया है।

"सार्वजनिक इच्छा" (Public Will) शीर्षक अध्यायांश में कूले ने···"किसी समूह के जान-बूझकर आत्म-संचालन"[४७] के रूप में सार्वजनिक इच्छा की परिभाषा की है और घोषणा की है कि रुख समुचित सार्वजनिक इच्छा के विकास की ओर है।[४८] प्रजातंत्र में उसकी निष्ठा के लिये यह अविच्छिन्न है।

सार्वजनिक इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप मे सरकार का उचित क्षेत्र काल और स्थिति में सापेक्ष है।[४९] संगठन के संयोजन की प्राप्ति आवश्यक है और सरकार के कार्यों को इस लक्ष्य के अनुरूप बनाना चाहिये; हाल में सरकारी प्रभाव में विस्तार अन्य संगठनों की वृद्धि के अनुरूप ही है।

"वृहत्तर इच्छा के कुछ पहलू" में कूले का निष्कर्ष आशावादी है। "इस अधिक प्रभावकर सार्वजनिक इच्छा के पीछे समग्र रूप से बौद्धिक और नैतिक प्रक्रियाओं की

वर्धमान कार्यकुशलता ही कारण है। सदा की भांति आज भी मानव-प्रकृति स्वयं ही अपने अधिक स्थायी गुणों में, जो प्राथमिक समूहों में व्यक्त होते हैं और जो संस्थागत परिवर्तनों से बहुत कम प्रभावित होते हैं, सार्वजनिक इच्छा की मार्गदर्शक शक्ति है।[५१] यहां पुनः यह साक्षी है कि समुचितसमाज के कूले का कार्यक्रम संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में प्राथमिक समूह के आदर्शों के विस्तार पर टिका हुआ है। सफल सामाजिक अंतर्क्रिया के सामाजिक सिद्धांतों की खोज हमें इसी ओर ले जाती है।

(ग) "सामाजिक प्रक्रिया" (१९१८)

'सामाजिक प्रक्रिया' ––Social Process को समकालीन समीक्षकों ने पारिभाषित शब्दावली की अनुपस्थिति और "घिसी-पिटी और पंडिताऊ" शैली से बचा हुआ पाया। उसकी अन्य दो पुस्तकों की अपेक्षा सामाजिक प्रक्रिया कम पाठ्य पुस्तक जैसी है, इसमें अन्य रचनाओं का केंद्रीय थीम अर्थात् समाज का सावयवी दृष्टिकोण पूर्णरूप से उभरा है। यहां वह लिखता है :

"यहां मनुष्य-जगत् में हम अपने चारों ओर जीवन का आगे की ओर अभियान देखते हैं। ऐसा लगता है कि एक अज्ञात उद्गम की जीवंत शक्ति दीखती है जो असंख्य दिशाओं और रीतियों में, जोकि अतीत में उसी प्रकार किसी वस्तु के साथ जारी है। सारी चीज एक प्रकार की वृद्धि दीखती है और हम यह जोड़ सकते हैं कि यह एक अनुकूलित वृद्धि है, इससे हमारा यह तात्पर्य है कि जीवन के जिन रूपों—मनुष्य, मनुष्यों की समितियां, परंपरायें, संस्थायें, रूढ़ियां, सिद्धांत तथा आदर्श पृथक् या स्वतंत्र नहीं है, बल्कि इनमें से प्रत्येक की वृद्धि अन्यों के संपर्क और अंतर्क्रिया से घटित होती है। इस प्रकार अभियान की एक अवधि को अन्य अवधियों से अनुकूलनों की एक शृंखला माना जाता है।[५२]

समाज की सावयवी (Organic) प्रकृति के कूले के विचार का संभवतः श्रेष्ठतम संक्षेप निम्नलिखित है :

"तब यदि हम यह कहते है कि समाज एक सावयव है तो मै समझता हूं कि हमारा अर्थ यह है कि यह रूपों या प्रक्रियाओं का एक संकुल (Complex) है जिनमें से प्रत्येक अन्यों से अंतर्क्रिया द्वारा जीवित है और बढ़ रहा है, यह संपूर्ण ऐसा एकीकृत है कि जो एक अंग पर घटित होता है वह बाकी सबको प्रभावित करता है। यह पारस्परिक क्रिया का एक विस्तृत तंतुजाल है, जो असंख्य प्रणालियों में विभेदीकृत है, जिनमें से कुछ बिल्कुल पृथक् है, अन्यों को आसानी से नही ढूंढ़ा जा सकता, और सभी इस हद तक गुंथी हुई है कि आप अपने दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न प्रणालियों को देखते हैं....।"

"जीवन को समग्रता में देखना" या कम-से-कम इतने वृहत् रूप में देखना जितना कि हमारी सीमिततायें हमें इजाज़त देती है, सावयवी दृष्टिकोण का लक्ष्य है। फिर भी यह किसी प्रकार विशेष दृष्टिकोणों से, जैसे कि आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक, धार्मिक दृष्टिकोणों से समाज के अध्ययन की निंदा नहीं करता। यह इसलिये लाभकर है क्योंकि संपूर्ण इतना अधिक फैला हुआ है कि इसको समझने के लिये हमें कभी एक, कभी दूसरे दृष्टिकोण

से विचार करना होगा और बारी-बारी से इनमें से प्रत्येक पहलू पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा, और फिर यथासाध्य इस सबका संश्लेषण करना होगा····।"

"सावयवी दृष्टि का यह परिणाम निकलना चाहिये कि हम विशिष्टता का उत्साह मे स्वागत करते हैं किंतु फिर भी यह स्वीकार करते हैं कि यह आंशिक और अस्थायी है, जिसे समय-समय पर संपूर्ण मे पुनः जज्ब हो जाने और जन्म लेने की आवश्यकता है। विरोधी विशिष्टवादों का हो-हल्ला आज से एक शताब्दी पहले के धार्मिक सिद्धांतों की अवस्था से मिलता है जबकि यह पहले से ही मान लिया जाता था कि धर्म का एक ही सच्चा रूप है और दर्जनों परस्पर-विरोधी प्रणालियां उस रूप का दावा कर रही हैं। किसी भी क्षेत्र में सावयवी अवधारणा के लिये यह अपेक्षित है कि हम अपने मतभेदों का एक वृहत्तर एकता के अर्थ मे अनुसरण करें।

अधिकांश पुस्तक "सामाजिक प्रक्रिया के व्यक्तिगत पहलू", "पतन", "समूह", "संघर्ष", "मूल्यांकन" इत्यादि विभागीय शीर्षकों के अंतर्गत लिखे गये पहली रचनाओं के पुनर्वक्तव्य के रूप मे पहचाने जा सकते हैं। यह एक अत्यत पठनीय पुस्तक है जिसमें कूले द्वारा पोषित पूर्वकल्पों के पहलू सावधानी से पुनर्व्यक्त किये गये हैं।

(घ) "समाजशास्त्रीय सिद्धांत और सामाजिक गवेषणा"

कूले ने जिन कई लेखों और विशिष्ट अध्ययनों को प्रकाशन के योग्य समझा उन्हें संकलित किया और ये 'सोशियोलॉजिकल थियरी और सोशल रिसर्च' मे सम्मिलित हैं। इस पुस्तक में एक मुख्यतः आत्म-चरितमूलक एक संक्षिप्त लेख भी सम्मिलित है, जो कूले ने नही चुना था, इसमे मिशीगन विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र के विकास का विवरण है। ऊपर दी गयी जीवन संबंधी सामग्री के कारण इसे निम्नलिखित सपादित लेखों की सूची में सम्मिलित नही किया गया है।

१. **"यातायात का सिद्धांत"** (*Theory of Transporation*)—यह कूले का डॉक्टरेट निबंध है, जिसका उद्देश्य यातायात की सुविधाओं से आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सबंध को अधिक पूर्णता से दर्शाना है। उसने समाजशास्त्र द्वारा समाज के बढ़ते हुए विश्लेषण में अपनी योजना का आधार देखा; इस प्रकार समस्या के प्रति जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण स्थापित हुआ। वह यातायात के मार्गों के निर्धारण और जनसंख्या-केंद्रों के बाद की वृद्धि मे सामाजिक और भौतिक में अंतर्क्रियात्मक संबंध दर्शाता है। उसकी उक्ति कि "जहां कहीं भी यातायात में बाधा पड़ती है जनसंख्या और संपत्ति के इकट्ठा होने की प्रवत्ति होती है" अब शास्त्रीय बन चुकी है। मानसिक कारकों मे उसकी परवर्ती अभिरुचि यहां पर नहीं दिखाई दी।

२. **"प्रतिभा, ख्याति और नस्लों की तुलना"** (*Genius Fame and Comparison of Races*)—फ्रांसिस गाल्टन की "आनुवंशिक प्रतिभा"—*Hereditary Genius* ने इस रचना में प्रस्तुत इस थीसिस की कि ख्याति सामान्यतः प्रतिभा की एक पर्याप्त परीक्षा है, कूले को इसका खंडन करने के लिये प्रेरित किया.[५४] उसके

लंबे जवाब मे इस उद्देश्य के लिये की गई गवेषणा परिलक्षित होती है, जिसमे अन्य बातों के अतिरिक्त कृपिशास्त्रीय सादृश्य पुनर्जागरण-काल के इटालियन चित्रकारों और अमेरिकन बेसबॉल को, इस दावे को कि प्राणिशास्त्रीय दाय सबको निर्धारित करती है और प्राणिशास्त्रीय समूह, जैसे कि एंग्लो-सैक्सन, प्राचीन ग्रीक, नीग्रो और लोलैंड के स्कॉट इत्यादि में योग्यता के अंतर है, असिद्ध करने के लिये इकट्ठा किया गया। [५५]

जिस तरीके से कूले ने गाल्टन की स्थिति, [५६] अर्थात् विशेषवादी प्रणिशास्त्रीय स्थिति में अंतर्निहित मिथ्या की ओर संकेत किया है, वह इसके लिये किसी मौलिकता का दावा नही करता। इस प्रश्न पर उस श्रेष्ठ स्थिति से विचार करना है। जहां इन दो कारकों की सापेक्षता को पहले से ही मान लिया था, आज का विद्यार्थी गाल्टन की स्थिति के इतने विस्तृत विवेचन की आवश्यकता के बारे में आपत्ति कर सकता है।

३. "**व्यक्तिगत प्रतियोगिता**" (*Personal Competition*)—कूले कहता है कि वह "····इस दृष्टिकोण से कि यह संपूर्ण रूप से सामाजिक जीवन मे क्या भाग अदा करता है और इसका मनुष्यों के चरित्रों और सुख पर क्या प्रभाव पड़ता है," [५७] व्यक्तिगत प्रतियोगिता पर विचार करना चाहता है। उसने निम्न शीर्षकों के अंतर्गत इस विषय पर विचार किया है : (१) व्यक्तिगत प्रतियोगिता का व्यक्तिगत कार्य : "····प्रत्येक व्यक्ति को प्रणाली मे उसका स्थान प्रदान करना है।" [५८] प्रतियोगिता का एक विकल्प भी है जो समाज मे व्यक्ति की स्थिति को निर्धारित कर सकता है; यह किसी प्रकार का पद (Status) है, जो प्रायः वंशानुगत है। [५९] (२) प्रतियोगिता की तीव्रता : "····प्रतियोगिता की तीव्रता मे कोई भी कम अवश्यभावी रूप से पद के वैकल्पिक सिद्धांत की प्रगति को साथ मे लाता है।" [६०] जैसे-जैसे वर्ग बनते है पद प्रतियोगिता पर हावी होता है। [६१] कूले हमे स्मरण करता है कि समाज मे इन वैकल्पिक सिद्धातों मे अवश्य कुछ लाभ हो सकते है और होने चाहिये। [६२] (३) साहचर्य के साथ प्रतियोगिता का संबंध: "जब चुनाव की प्रक्रिया अपना कार्य कर चुकती है, जब वह इस प्रश्न का उत्तर दे चुकती है कि क्या सर्वोपयुक्त है, तब उसे समाप्त हो जाना चाहिये और अपना स्थान संगठन को दे देना चाहिये।" [६३] प्रतियोगिता और साहचर्य के बीच संयोजन कायम रखने मे असफलता ही हमारे युग की, यदि अधिकांश नही तो अनेक, असफलताओं का कारण है। [६४] (४) सफलता की शर्तें : कूले की शर्तें विचित्र नही है। (५) सफलता और नैतिकता : सफलता और नैतिकता में उद्गम की समानता है जो उनके साहचर्य की संभावना की वृद्धि करती है। (६) प्रतियोगिता और सहानुभूति : प्रतियोगिता प्रतियोगी को सहानुभूतियुक्त समझ देती है। [६५] (७) बेचैनी, असुरक्षा और दबाव : अमेरिकन जीवन की उत्साहपूर्ण अराजक प्रतियोगिता अधिक क्रिया को उद्दीप्त करती है किंतु वहां पर असुरक्षा की भावना पैदा करती है, जहां शिक्षा और संयोजित सामाजिक संगठन द्वारा समाज के सदस्यों को अवसर नहीं मिलता। (८) वैयक्तिकता,

आत्मनिर्भरता, सच्ची लगन : "····(प्रतियोगिता) की चाहे कितनी भी बुराइयां हों····यह वैयक्तिकता आत्मनिर्भरता और सच्ची लगन में वृद्धि करती है।" [६६] (९) सफलता का मान : सफलता वही है जिसे मनुष्य ऐसा समझते हैं।

४. **"बच्चे द्वारा उत्तम पुरुषवाची शब्दों के प्रारंभिक प्रयोग का एक अध्ययन"** (*A Study of the Early Use of Self-words by a Child*)—बाल्डविन की शैली पर कूले ने सामाजिक अवधारणा पर प्रकाश डालने की आशा लेकर अपने बच्चों द्वारा प्रयुक्त प्रारंभिक उत्तम पुरुषवाची शब्दों का अवलोकन किया और उन्हें लिखा। [६७] इस लेख में कूले के तीसरे बच्चे का जिक्र है; वह अपने पहले दो बच्चों काभी कुछ साधारण अवलोकन कर चुका था। यह अवलोकन दूसरे से लेकर तेईसवें महीने तक लिखे गये, जिस काल में कि उत्तम पुरुषवाची शब्दों का प्रयोग सामान्य दीखता है।

अन्यों द्वारा प्रयुक्त "मैं" और "तुम" की सही समझ उन्नीसवें महीने के बीच में हुई और बाईसवें महीने में "मैं" का अनुकरणात्मक प्रयोग शुरू हुआ, किंतु बाकी वाक्यांश से "मैं" पृथक् नहीं हुआ। [६९] तेईसवें महीने में शरीर के प्रसंग में ही नहीं, बल्कि स्वस्थापन की भावना (*Self-assertive feeling*) के प्रसंग में "मैं" का शुद्ध प्रयोग देखा गया। [७०] कूले की मान्यता है कि "मैं" सामाजिक है चूंकि "एक सामाजिक माध्यम में जिससे कि वक्ता अवगत नही है, यह स्व-इच्छा का प्रकाश ही इसका सार है।" [७१]

५. **"अर्थशास्त्र और सामाजिक प्रकिया"** (*Political Economy and Social Process*)—"एक समाजविज्ञान, जो अपने केंद्रीय सिद्धांतों में आचारशास्त्रीय विज्ञान भी नहीं है, सामान्य प्रगति की सहायता के लिये कार्य करने के गंभीरतम दायित्व के प्रति अनिष्ठावान् है," [७२] घोषित करते हुए कूले कहता है कि "ऐसा लगेगा कि अर्थशास्त्र का कुशल किंतु सीमित विज्ञान प्रायः अपने तात्कालिक और बहुत कुछ संक्रमणकालीन पहलुओं में प्रायः संपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया पर विचार करता है।" [७३] वह पूछता है, क्या अर्थशास्त्र की भावना अधिकांश में डार्विनपूर्वीय नहीं है? [७४]

६. **"हरबर्ट स्पेंसर के समाजशास्त्र पर विचार"** (*Reflections upon the Sociology of Herbert Spencer*)—स्पेंसर की व्यक्तिगत विशेषताओं की विवेचना से पहले उसके जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा दी गई। कूले ऐसा अनुभव करता है कि वह स्पेंसर को समाज के एक अवलोकनकर्ता के रूप में अयोग्य घोषित करती है। [७५] उसकी कमी अवश्य ही उसकी बौद्धिक योग्यता में नहीं बल्कि "उन सहानुभूति के गुणों के अभाव में, अंततः जो ज्ञान को हमारा एकमात्र प्रत्यक्ष स्रोत है, निहित थी।" [७६] कूले द्वारा स्पेंसर की समालोचना इस भावना से उत्पन्न और संचालित है। वह स्पेंसर की रचनाओं के सादृश्य में गुण और वास्तविक जीवन से उनकी पृथकता की ओर तथा उसकी "भौतिकशास्त्र

और प्राणिशास्त्र से गृहीत अवधारणाओं को सामाजिक क्षेत्र में विस्तृत करने" [७७] की ओर निर्देश करता है।

(ङ) गवेषणा पर कूले के विचार

प्रायः पद्धतिशास्त्र पर विशिष्ट रचनायें कूले के नाम के साथ संयुक्त नहीं हैं। [७८] निश्चय ही, उसने सामाजिक व्यवहार से संबंधित सावधानी से लिये गये पूर्वकल्पों (Hypotheses) के विकास और व्याख्या में ही अधिक प्रयास किया। अपनी मृत्यु से कुछ ही पहले १९२९ में, कूले ने अपनी रचनाओं में अंतर्हित पद्धतिशास्त्रीय चिंतन को एक छोटी लेखमाला से पूरा करना उचित समझा। हम नीचे संक्षेप में उनकी विवेचना करेंगे।

पद्धति पर उसके चिंतन का मूल तत्व 'सोशल प्रॉसेस' में स्पष्टतः व्यक्त है। "ज्ञान को अवलोकन और व्याख्या दोनों की ज़रूरत है, इनमें से कोई भी एक दूसरे की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक नहीं है। और विज्ञान की प्रत्येक शाखा को उसकी अपनी ही रीति के अनुसार, जो मुख्यतः एक पूर्वानुभव (Apriori) पद्धतिशास्त्र की अपेक्षा सत्य की वास्तविक खोज में मिलती है, कार्यान्वित किया जाना चाहिये। [७९] "जितनी ही जल्दी हम भौतिक और शरीरक्रियाशास्त्रीय विज्ञान के नियमों से अपने को घेरना और अपनी परीक्षा करना छोड़ दें उतना ही बेहतर है।" [८०] टॉमस, नानैकी और सुमनर के कार्य के प्रति विशेष अभिरुचि गवेषणा-पद्धतियों पर कूले की स्थिति का संकेत करती है।

"सामाजिक ज्ञान के मूल" में कूले ने अवस्थाओं के उस प्रमुख द्वैत का निर्देश किया है जिससे कि मन को निपटना पड़ता है : (१) पदार्थ (Material) और (२) मानवीय या सामाजिक। [८१] इस बुनियादी विभाजन के लिये विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग अपेक्षित है। हम समाज में रहकर सामाजिक अवस्थाओं का सहानुभूतियुक्त ज्ञान प्राप्त करते हैं। [८२] यह अंतर्क्रियात्मक प्रक्रिया (बाल्डविन की "व्यक्तिगत वृद्धि का द्वंद्ववाद') व्यक्ति को "व्यक्तियों, समाज और अपना ज्ञान प्रदान करती है।" [८३] कूले कहता है, सामाजिक धाराओं से अवगत होने का प्रयास किये बिना उनमें तैरने की प्रचलित रीति की अपेक्षा आलोचनात्मक अंतःपर्यवेक्षण अधिक वस्तुगत है।" [८४]

संख्याशास्त्र और सहानुभूतियुक्त अवलोकन और व्याख्या के बीच कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। दूसरी पद्धति को संख्याशास्त्र से प्रतिस्थापित कर नहीं बल्कि न्यासों के गणितिक प्रयोग की पूर्ति से ही समाजविज्ञान निश्चित बनता है। [८५] "एक गवेषणा पद्धति के रूप में लघु संस्थाओं के केस-अध्ययन" में कूले ने पुनः अपने सिद्धांतों को दुहराया है और विशिष्टतया उचित प्रकार की गवेषणा के प्रकार को दर्शाया है। उसने सामाजिक गवेषणा में अधिक लाभान्वित होने के लिये चलचित्रों के प्रयोग की स्वीकृति दी है। [८६]

"सुमनर और पद्धतिशास्त्र" में कूले ने यह घोषणा की है कि 'फोकवेज़' "अमेरिकन समाजशास्त्र द्वारा प्रसूत सबसे सफल गवेषणात्मक रचना है" [८७] और इस तथ्य के बावजूद भी कि यह देन परिमाणात्मक, संख्याशास्त्रीय, मनोविश्लेषणात्मक, व्यवहारवादी या

केस-अध्ययन की नहीं है । "यह सुझाया गया है कि पद्धतिशास्त्रीय कट्टरपंथी को बहुत गंभीरता से ग्रहण नहीं करना चाहिये। [८९] और "कारगार पद्धतिशास्त्र वास्तविक गवेषणा का अवशेष है।" [९०] "जिन्होंने इसमें योगदान दिया है उन्होंने वह कुछ खोजने के प्रयास में जिसे वह जानने के लिये व्यग्र थे, अनजाने में ऐसा किया।" [९१]

"ग्राम्य सामाजिक गवेषणा मे प्रयुक्त जीवन-अध्ययन-पद्धति" में पुनः कूले ने पाठकों के सम्मुख "एक कालावधि में जीवनसम विवरण····" देने की जो केस-अध्ययन पद्धति का विस्तार है, वकालत की है। [९२] ये "सहानुभूतियुक्त या नाटकीय प्रत्यक्ष बोध" पर आधारित होने चाहिये, यही····हमारे मनुष्य के ज्ञान की वास्तविकता का आधार है।" [९३] यह मानते हुए कि इस विवरणात्मक प्रविधि में ग्राम्य समाजशास्त्रियों का मार्गदर्शन करने के लिये समुचित नमूने उपलब्ध नहीं है, कूले "····कुछ नई, कुछ ऐसी चीज़ की, जो साहित्य की अंतर्दृष्टि के साथ विज्ञान की निष्पक्षता और तथ्यगत सत्य को सम्मिलित करती है," आवश्यकता देखता है। [९४]

३. समाजशास्त्र को कूले की देन

यह कहा जा चुका है कि कूले की तीनों रचनाये "अंग्रेजी भाषा मे अभी तक प्रकाशित मनोसमाजशास्त्र का स्पष्टतम सामान्य वक्तव्य है।" [९५] "जहां तक कि हाल के समाजशास्त्रीय साहित्य का संबंध है, सामाजिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसंग में कुछ ही लेखक इतने बारंबार और इतने भरोसे के साथ उद्धृत किये जाते हैं।" [९६] समाजशास्त्र के मान्य ग्रंथों की अनुक्रमणिकाओं को देखकर बाद के वक्तव्य को आसानी से जांचा जा सकता है। यह विश्वास कर कि यह कूले की देनों को पृथक् करने में सहायक हो सकता है, लेखक ने उन रचनाओं का जिनका कि प्रायः बहुत हवाला दिया जाता है, एक वर्गीकरण किया है।

स्वयं कूले को "····यह विश्वास था कि····उसके····अविशेषवाद (Non-particularism) के स्वयसिद्ध अनुमान के साथ सावयवी वृद्धि की अवधारणा" उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन थी; किंतु उसने एक बार ज़रा मुस्कराते हुए कहा था कि उसका ख़याल है कि, यदि उसे याद रखा गया, तो वह "प्राथमिक समूहों" के लिये रखा जायेगा। [९७] समाजशास्त्र पर लगभग बीस मान्य पुस्तकों के देखने से यह पता चलता है कि कूले की आशंकायें अंशतः सही थी। प्राथमिक समूह और "दर्पण स्व" (Looking-glass self) की अवधारणाओं के—दूसरी की अपेक्षा पहली के—सबसे अधिक अकेले हवाले दिये गये थे। यह तथ्य कि उसका नाम अधिक आसानी से इन अवधारणाओं के साथ जुड़ गया है इसका एक कारण आकर्षक वाक्यांशों को पसंद करने की हमारी प्रवृत्ति है और यह तथ्य भी कि उसने उनका आविष्कार किया।

केवल मौलिकता को ही सामाजिक विचार में देन नही कहा जा सकता, और मैं कूले से सहमत हूं कि समाजशास्त्र को उसकी अकेली देन उस बल देने में पाई जाती है जो

उसने सावयवी वृद्धि की अवधारणा और उसके अविशेषवाद के स्वयंसिद्ध अनुमान को आगे बढ़ाने में दिया। वस्तुतः यदि सावयवी एकता के विचार से संबंधित अनेक हवालों पर एक साथ विचार किया जाय, तो वे प्राथमिक समूह की अवधारणा के हवालों की संख्या से अधिक बैठते हैं। समाजशास्त्र को कूले की देनों पर सरलता से "मूलविषय और भिन्नतायें (Theme and Variations) के शीर्षक के अंतर्गत विचार किया जा सकता है। सावयवी थीम वह धुरी है जिस पर कि कूले की रचनाये, जिसमें "प्राथमिक समूह" और "दर्पण स्व" भी सम्मिलित हैं, घूमती है। स्व एक सामाजिक उपज है, जो प्राथमिक समूह के अनुभवो से अपनी बुनियादी विशेषतायें प्राप्त करती है।

(क) थीम : सावयवी एकता (Organic Unity)

चूंकि एक सावयवी संपूर्ण के रूप मे समाज की सावयवी अवधारणा कूले का बारंबार दुहराया गया थीम है, अतः उसे यहां प्राथमिकता दी गई है। उसने "सावयवी" शब्द का " ...इस अर्थ में प्रयोग किया है कि प्रभाव एक अंग से दूसरे अग मे संक्रमित हो सकते और होते हैं जिससे कि समस्त अग एक अंतर्निर्भर समूह मे बध जाते हैं।" [९८] वे पाठक, जो ड्यूई, मीड, फैरिस द्वारा प्रतिनिधित आधुनिक समाजशास्त्रीय समाज मनोविज्ञान से परिचित हैं, कूले की रचनाओं को समाजशास्त्र की इस अवधि का अच्छा वक्तव्य समझेंगे। ऐसे पाठक उसकी रचनाओं में मूल्य-भारयुक्त सुर और जीवन एक एकीकृत संपूर्ण है इस थीम की अनावश्यक पुनरावृत्ति देखेंगे। पृष्ठ के बाद पृष्ठ में, प्रत्यक्ष या निहितार्थ मे यह मतव्यक्त है कि पृथक् व्यक्ति अनुभव को अज्ञात एक प्रविवेक(Abstraction)है। फिर भी जब कूले ने यह लिखा तो वह नकली आदमियों को संबोधित नहीं कर रहा था। "अधिकांश लोग व्यक्ति और समाज को अल्पाधिक विरोधी ही नही समझते बल्कि वह पहले को दूसरे से पूर्व विद्यमान मानते हैं।" न ही कूले-मीड-ड्यूई की परंपरा से पृथक् व्यक्तियों को समाजशास्त्रीय स्थिति विस्तार से विदित है। समाजमनोविज्ञान के क्षेत्र मे अधिकांश भ्रांत चिंतन [९९] इस क्षेत्र में अन्वेषकों के यह न देखने की कमी का परिणाम हो सकता है कि किसे कूले और उसके उत्तराधिकारी अनुभवगम्य तथ्यगत न्यास, अर्थात् स्व (Self) की सामाजिक प्रकृति और समूह की एकता मानते हैं। [१००]

इस साक्षी के लिये कि सामाजिक सापेक्षता के विषय का विवेचन "उल्टे बांसबरेली को" जैसे स्तर का नहीं है, व्यक्तित्व की अल्पतम इकाइयों की अफलप्रद चेष्टाये, व्यवहार की व्याख्या के लिये जन्मजात प्रेरकों की खोज, व्यवहार के वर्तमान विद्यार्थियों अर्थात् मनोविश्लेषकों, उग्र मार्क्सवादियों और अनेक शरीरक्रियाशास्त्री मनोवैज्ञानिकों द्वारा अभी समर्थनप्राप्त विशेषवादी व्याख्याओं पर गौर कीजिये।

प्रचलित समाजशास्त्रीय रचनाओं (इसमें समाज मनोवैज्ञानिक भी सम्मिलित हैं) का एक सरसरी दृष्टि से अध्यन भी कूले की शब्दावली के निरंतर प्रयोग को प्रदर्शित करेगा; और जहां इसका अभाव है वहां परिस्थितिजन्य व्यवहार और सामाजिक प्रक्रिया की भिन्नताओं के विवेचन में उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम भाग के लेखको द्वारा प्रारंभ

किये गये और कूले द्वारा आगे बढ़ाये गये विचारों का सार स्पष्ट है, उदाहरण के लिये रॉस, वाइस, और बेकर, पार्क और बर्जेस को देखिये। जैसा कि किसी भी बौद्धिक परंपरा के बारे में सत्य है, इस परंपरा में किसी विशेष योगदाता के प्रभाव को बताना कठिन है।

(ख) थीम में भिन्नतायें

१. **प्राथमिक समूह** (Primary group)—उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में लक्षित व्यवहार की समाजशास्त्रीय व्याख्या के मोड़ ने व्यक्तिगत व्यवहार के विद्यार्थियों को विभिन्न वातावरणों की, जिनमें व्यक्ति विचरण करता था, खोज के लिये प्रेरित किया। सामाजिक व्यवहार की व्याख्या के रूप में सहज प्रवृत्तियों (Instincts) पर बढ़ता हुआ संदेह और सामाजिक समस्याओं में जननिक के अध्ययनों की प्रेरणा दी। इस (Genetic) दृष्टिकोण के विस्तृत प्रयोग ने तर्कत: मानवीय सावयव पर प्रारंभिक प्रभावों दिशा में जे० एम० बाल्डविन की रचनाये [१०२] कूले से पहली थी, किंतु कूले ने इस विषय पर मुख्यत: समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार किया और इस प्रकार बाल्डविन को कमी को पूरा यिा। [१०३]

जिस जगत् में रहना है उसे अर्जित करने के लिये कूले ने अपने बच्चों की प्रगति का अवलोकन कर बाल्डविन का अनुसरण किया। उसने ठीक ही यह निर्देश किया कि परिवार, क्रीड़ा समूह और पड़ोस व्यक्ति के जीवन में सबसे प्रभावकर समूह है। व्यक्ति के विकास मे ये समूह प्राथमिक महत्त्व रखते है, और "प्राथमिक समूह" शब्द एक सही शब्द है। इस दिशा में कूले की देन को केवल इस अवधारणा के बहुसंख्यक हवालों से सही-सही नही मापा जा सकता; समाजशास्त्र या समाजमनोविज्ञान, विशेषकर प्रारंभिक पाठ्य और परिवार पर प्राय: प्रत्येक पाठ्य पुस्तक अपने दृष्टिकोण के लिये उस परंपरा की ऋणी है जोकि कूले को विचारधारा का अभिन्न अग है।

२. **स्व** (Self)—स्व की प्रकृति और विकास से संबंधित प्रचलित समाज मनोवैज्ञानिक सिद्धांत विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रयासों की उपज है। समाज मनोविज्ञान के एक क्षेत्र में कूले की एक विचारधारा निश्चय ही अंतर्कालीन है और उसका महत्त्व समाजशास्त्रीय प्रसंग में पहले विद्वानों के चिंतन के स्पष्टीकरण मे, और इस प्रकार आनेवाले विद्यार्थियों को अधिक लाभकर दृष्टिकोण प्रदान करने में निहित है। यह किसी भी प्रकार साधारण देन नही है।

सामाजिक विचारों में उद्गमों को निश्चित करना हर हालत में जोखिम का काम है और विशेषकर ऐसे विस्तृत क्षेत्र मे जो समाज मनोवैज्ञानिक विचारों के अग्रणियो का है। हमारे उद्देश्य के लिये इस विषय पर कुछ प्रतिनिधि रचनाओं का नाम देना पर्याप्त होगा। यह संकेत करना अनुचित न होगा कि इस विषय पर जे० एस० मैकेंज़ी की रचनायें [१०४] प्रारंभिकतम है। तार्दे ने व्यक्तित्व के विकास में अनुकरण की यंत्र रचना को स्थापित करने का असफल प्रयास किया। लगभग उसी समय विलियम जेम्स ने भी कूले की दिशा में एक असफल कदम उठाया और "सामाजिक स्व" की उसके साथियों द्वारा प्रदत्त स्वीकृतियों

के रूप में परिभाषा की।[१०५] क्या यह कूले के "दर्पण स्व" (Looking-glass self) का कीटाणु है ? कार्प हमें स्मरण कराता है कि जेम्स ने "अपने नये दृष्टिकोण के समाज मनोवैज्ञानिक पहलुओं के निरंतर अनुसरण का कोई प्रयास नहीं किया।"[१०६]

बाल्डविन ने जेम्स की अपेक्षा स्व के सामाजिक उद्गम पर अधिक ज़ोर दिया है।[१०७] उसके द्वारा प्रवेश कराया गया यह आग्रह समाज मनोविज्ञान की संपूर्ण आधुनिक अवधि में व्याप्त है[१०८] और वस्तुतः कूले का मूलभूत मत है। फिर भी मानव की सामाजिक प्रकृति के विकास की व्याख्या के लिये एक यंत्ररचना की अपनी खोज में बाल्डविन तार्दे से अधिक सफल नहीं हुआ।[१०९] मीड कहता है, "कूले की स्थिति की श्रेष्ठता चेतना में एक सक्रिय सामाजिक प्रक्रिया को, जिसके अंतर्गत स्व और अन्य उत्पन्न होते हैं, खोजने की स्वाधीनता में निहित है।"[११०] स्व और अन्यों की अनुभव के समान एक ही आधार पर स्थापना समाजमनोवैज्ञानिक सिद्धांत की प्रगति के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी।

यह तो वहां तक रहा जहां तक कि वह सफलतापूर्वक प्रकाश डाल सका। कल्पनाओं को समाज के ठोस तथ्यों के रूप में स्वीकार कर, वह संशोधित व्यवहारवादी दृष्टिकोण से हट जाता है और एक स्ववादी (Solipsistic) स्थिति की ओर बढ़ता है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।[१११] इस विषय पर मीड की समालोचना से निम्न उद्धरण श्रेष्ठ उपसंहार है :

"इसके लिये साक्षी (कि स्व वस्तुगत अनुभव से संबंधित है जिसे हम मानसिक से पृथक् करते है) इस तथ्य मे मिलती है कि उन मानसिक अनुभवों से पहले ही जिनका कि कूले ने हवाला दिया है, मानव सावयव दूसरों की, जिसे वह वाक् हावभाव से संबोधित करता है, उसकी धारणा को ग्रहण कर लेते है, और इस धारणा में अपने को भी संबोधित करते है, और इस प्रकार स्वयं अपने स्व और अन्य स्व को जन्म देते है। संचार की प्रक्रिया में स्वों का सामाजिक जगत् दीखता है जो तात्कालिक वास्तविकता, भौतिक जगत् के उसी स्तर पर, जो हमें घेरे हुए है, खड़ा हुआ है। इसी सामाजिक जगत् से आंतरिक अनुभव उत्पन्न होते है जिन्हें हम मानसिक कहते है, और वे मुख्यतः जैसे कि सामाजिक जगत् की व्याख्या में मानसिक संवेदन और संबोध, हमारे वातावरण की भौतिक वस्तुओं की व्याख्या का कार्य करते है....यदि यह सत्य है तो सामाजिक समूह मानसिक नहीं है बल्कि तात्कालिक रूप से प्रदत्त है, हालांकि उनकी व्याख्या के लिये आंतरिक अनुभव अनिवार्य हैं।"[११२]।

(ग) सामाजिक गतिशास्त्र : सृजनात्मकता (Creativeness) की अवधारणा

कूले का सामाजिक गतिशास्त्र प्रगति की वास्तविकता की व्यापक और संगत श्रद्धा (Faith) में मूलबद्ध था, और उसने प्रगति के आधार को व्यक्ति और समाज की **सृजनात्मकता** की क्षमता में निहित पाया। जैसा कि डा० सैमुअल एन० लेबुल ने कहा है : "एक चिंतनप्रणाली के रूप में कूले आदतन मौलिकता या सृजनात्मकता के चिन्हों का

सहारा लेता है।[111] यह प्रगति के महान् यंत्र के रूप मे आविष्कार पर तार्दे की श्रद्धा से मिलता है, और कूले तार्दे के विचारों का बहुत सम्मान करता था।

कूले की दृष्टि में, व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति दोनों के लिये ही नूतन और मौलिक कच्ची सामग्री है। सृजनात्मकता व्यक्ति और समाज दोनों की आत्म-अभिव्यक्ति का साधन प्रदान करती है। सबसे बुनियादी अर्थ मे, यह व्यक्ति में अतिरिक्त प्राणिशास्त्रीय शक्ति से उत्पन्न होती है और सामाजिक विचारों व संस्थाओं के नवीन रूपों के विकास में अपने को व्यक्त करती है। अनुभूति, कल्पना, सहानुभूति और प्रभाव जैसी शक्तियों के भावुक प्रत्युत्तर मे जनसाधारण में सृजनात्मकता की ओर बड़ी अंतर्निहित प्रवृत्ति है। किंतु उन्हें सृजनात्मकता की इस साधारण प्रवृत्ति की ओर ले जाने, प्रेरित करने और संचालित करने में नेताओं की जरूरत है। इसी कारण कूले प्रजातंत्र में विश्वास और साथ ही नेतृत्व की समस्याओं का गंभीर अध्ययन करता था। प्रजातंत्र में उसकी श्रद्धा मुख्यतः इस विश्वास पर आधारित थी कि जनसाधारण मे, यद्यपि अचूक रूप से नहीं, समझने, सम्मान करने और श्रेष्ठतम नेताओं का अनुसरण करने की योग्यता है। हमारे युग में कार्यात्मक समूह सृजनात्मक सामाजिक क्रिया को उद्दीप्त और संचालित करने में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली है।

कूले ने पूर्णतः स्वीकार किया कि सृजनात्मकता की हमारी अनेक प्रवृत्तियां अबुद्धिसंगत है; किंतु उसने यह कहा कि भविष्य मे हमे अधिकाधिक बुद्धिसगत कारकों और बुद्धिमान् नेतृत्व को पुष्ट करना और उस पर भरोसा रखना चाहिये। यह सामाजिक नियोजन (Social planning) को उचित ठहराता है, किंतु नियोजन को सदैव स्वतंत्रता और स्वाधीनता को स्थान देना चाहिये। इनके बिना न तो व्यक्ति और न ही समाज सृजनात्मकता की दिशा में प्रभावकर रीति से कार्य कर सकता है।

अतः कूले का महत्त्व दो घनिष्टतया संबंधित क्षेत्रो पर निर्भर है: (१) सामाजिक व्यवस्था को एकीकृत करने के साधन के रूप मे सामाजिक प्रक्रिया के विकास पर उसका ध्यान और (२) स्व के जन्म और प्रकृति पर उसका चितन। दूसरे क्षेत्र मे उसने इस समस्या पर मीड के अधिक परिष्कृत विवेचन की ज़मीन तैयार की; पहले क्षेत्र के विषय में हम रीड बेन के वक्तव्य से सहमत हो सकते है कि कूले विशेषवाद-विरोध का प्रतीक है। सामाजिक प्रक्रियाओं के कूले के अच्छे विश्लेषण के बावजूद, यह द्रष्टव्य है कि उसकी रचनाओं में इन प्रक्रियाओं को औपचारिक रूप से क्रमबद्ध करने का प्रयास है।

टिप्पणियां

१. R. C. Angell, Introd. (p. viii) to C. H. Cooley, *Sociological Theory and Social Research* (New York, 1930).

२. *Ibid.*

३. *Ibid.*, p. xii.

४. *Ibid.*, p. viii.

५. Walton H. Hamilton, "Charles Horton Cooley," *Social Forces*, VIII (December, 1930), 186.

६. *Ibid.*, p. 189.

७. Floyd N. House, *Development of Sociology*, (New York, 1936), p.321.

८. देखिये Read Bain, "Cooley a Great Teacher," *Social Froces*, IX (December, 1930), 160–63 ; और Hamilton, *op. cit.*

९ Charles H. Cooley, *Sociology and Social Research* pp. 4-5.

१०. *Ibid.*, p. 6.

११. *Ibid.*, p. 7.

१२. *Ibid.*

१३. *Ibid.*, p. 6.

१४. L. von Wiese और Howard Becker, *Systemetic Sociology* (New York, 1932) pp. 694–95

१४ क. *Publications of the American Economic Association*, V. No. 2 (3rd ser., 1904), 18.

१५. १९२२ के सशोधित सस्करण के परिचय के रूप में कूले ने "Heredity and Instinct in Human Life" शीर्षक अपने लेख को जो मूलत: *Survey* XLIX (January 1, 1923), 454–56 में प्रकाशित हुआ था, जोड़ दिया।

१६. *Human Nature and Social Order* (New York, 1902), p. 1.

१७. *Ibid.*, p. 7.

१८ *Ibid.*, pp. 10-11.

१९. *Ibid.*, p. 12.

२०. *Ibid.*, p. 152.

२१. सोरोकिन ने तो कूले के समाजशास्त्र को परिवार-समाजशास्त्र (Family-sociology) तक कह डाला है । (*Contemporary Sociological Theories* (New York, 1928), p. 436.

२२. "Cooley's Contribution to American Social Thought", *American Journal of Sociology*, XXXV, No. 5 (March, 130), 702.

२३. *Prefaco, Social Organisation* (New York, 1909).

२४. *Ibid.*, p. 5 ; देखिये Ellswroth Faris की समालोचना "The Primary Group : Essence and Accident" *American Journal of Sociology*, XXXVIII (July, 1932), 41.

२५. *Social Organisation*, pp. 13-14.

२६. भूल से "माध्यमिक समूह" शब्द का श्रेय भी कूले को दिया जाता है । उसने इसका प्रयोग नहीं किया ।

२७. *Social Organisation*, p. 23.

२८. *Ibid.*, p. 24.

२९. *Ibid.*, p. 32.

३०. *Ibid.*, p. 53.

३१. *Ibid.*, p. 54.

३२. *Ibid.*.

३३. *Ibid*, p. 90.

३४. *Ibid..*, p. 113.

३५. *Ibid.*, p. 121.

३६. *Ibid.*, p. 198.

३७. *Ibid.*, pp. 143–48.

३८. "Charles Horton Cooley" *Sociological Review*, XV (July, 1923), p. 199, n. 7.

३९. *Social Organisatin*, p. 259.

४०. *Ibid.*, p. 273.

४१. *Ibid.*, p. 276.

४२. देखिये House, *op. cit.*, p. 323.

४३. *Op. cit.*, p. 319.

४४. *Ibid.*, pp. 328–29 ; Harry Elmer-Barnes, *Society in Transition* (New York, 1939) भी देखिये ।

४५. *Social Organisation*, p. 339.

४६. *Ibid.*, p. 342.

४७. *Ibid.*, p. 395.

४८. *Ibid.*, p. 401.

४९. *Ibid.*, p. 403.

५०. *Ibid.*, p. 410.

५१. *Ibid.*, p. 419.

५२. *Social Process*, p. 3.

५३. *Ibid.*, pp. 28, 48, 49-50.

५४. *Sociological Theory and Social Research*, p. 122.

५५. *Ibid.*, p. 144.

५६. *Ibid.*, p. 122.

५७. *Ibid.*, p. 163.

५८. *Ibid.*, p. 164.

५९. *Ibid.*, p. 165.

६०. *Ibid.*, p. 174.

६१. *Ibid.*

६२. *Ibid.*

६३. *Ibid.*, p. 177.

६४. *Ibid.*, p. 178 ऑगबर्न के सांस्कृतिक पश्चायन (Cultural lag) के साथ कूले के संयोजन (Symmetry) का सादृश्य उल्लेखनीय है।

६५. *Ibid.*, p. 213.

६६. *Ibid.*, p. 220.

६७. *Ibid.*, p. 229.

६८. *Ibid.*, p. 233.

६९. *Ibid.*, pp. 230-31.

७०. *Ibid.*, p. 231.

७१. *Ibid.*, p. 232.

७२. *Ibid.*, p. 258.

७३. *Ibid.*, p. 259.

७४. *Ibid.*

७५. *Ibid.*, p. 265.

७६. *Ibid.*, p.266.

७७. *Ibid.*, p. 283.

७८. मीड कहता है कि, "कूले के लिये विकासवाद एक पद्धति की अपेक्षा एक दर्शन था।" (*op. cit.*, p. 703).

७९. P. 398.

८०. *Social Process*, p. 397.

८१. *Sociological Theory and Social Research*, p. 289 ; देखिये John F. Markey, "Trends in Social Psychology," Lundberg, Anderson और Bain, *Trends in American Sociology* (New York, 1929), pp. 145-46.

८२. *Sociological Theory and Social Research*, p. 293.

८३. *Ibid.*

८४. *Ibid.*, p. 299.

८५. *Ibid.*, p. 304.

८६. *Ibid.*, p. 314.

८७. *Ibid.*, p. 325.

८८. *Ibid.*

८९. *Ibid.*, p. 326.

९०. *Ibid.*

९१ *Ibid.*

९२. *Ibid.*, p. 331.

९३. *Ibid.*, p. 333.

९४. *Ibid.*, p. 335.

९५. H. E. Barnes और Howard Becker, *Social Thought from Lore to Science*, II (New York), 1938) p. 985.

९६. Fay Karpf, *American Social Psychology* (New York, 1932).

९७. Bain, *op. cit.*, p. 162.

९८. *Social Process*, p. 26 लिलियनफेल्ड, शैफिल, कूले और वॉर्म जैसे साम्यवादियों की प्रारंभिक रचनाओं की भांति कूले प्राणिशास्त्रीय समाज के साथ सादृश्य को निहित नहीं मानता। "इगलैंड और अमेरिका में सामाजिक समस्या के लेखकों मे संप्रदाय की शब्दावली सामान्यत: अभी अटकी हुई है, किंतु अब मुख्यत: इसका प्रयोग एक भ्रांत विश्लेषण के रूप में किया जाता है"··(Barnes और Becker, *op. cit.*, I, 691, 688–92 ; Von Wieso और Becker, *op. cit.*, p. 693).

९९. *Human Nature and Social Order*, p. 7.

१००. देखिये S. H. Britt, "Social Psychology or Psychological Sociology Which ?" *Journal of Abnormal and Social Psychology*, XXXII (1937) 314 ff. ; "Past and Present Trends in Method and Subject Matter of Social Psychology, " *Social Forces*, XV (1937), 462 ff. ; S. L. Pressey, "Fundamentalism, Isolationism, and Biological Pedantry versus Social-cultural Orientation in Psychology," *Journal of General Psychology*, XXIII (October, 1940), 343—49.

१०१. देखिये Gordon Allport, *Personality* (1937) व्यक्ति-समाज द्वैत के प्रति अंधनिष्ठा से उत्पन्न तार्किक अंधकार के उदाहरण के तौर पर pp. 257, 287–89, 559.

१०२. *Mental Development in the Child and the Race* (New York, 1900) और *Ethical Interpretations in Mental Development* (New York, 1913).

१०३. Karpf, *op. cit.*, p. 291.

१०४. देखिये Barnes और Becker, *op. cit.*, I, 695.

१०५. William James, *Principles of Psychology*, I (New York, 1890), 291.

१०६. *Op. cit.*, p. 253.

१०७. देखिये Baldwin, *The Individual and Society* (Boston, 1911), pp. 18–28 : Karpf, *op. cit.*, pp. 269– 91.

१०८. Karpf., *op. cit.*, p. 291.

१०९. Mead, *op. cit.*, p. 699.

११०. *Ibid.*, p. 700.

१११. मिलाइये T. V. Smith, *Beyond Conscience* (New York, 1934), pp. 112 ff., 260—63 ; G. H. Mead, *Mind, Self and Society* (Chicago, 1934).

११२ "Cooley's Contribution to American Social Thought," p. 204.

११३. S. M. Levin, "Charles Horton Cooley and the Concept of Creativeness," *Journal of Social Philosophy*, April, 1941, p. 216–29 यह सृजनात्मकता के विचार पर आधारित कूले के सामाजिक गतिशास्त्र का पूर्ण और प्रामाणिक अध्ययन है।

११४. "Trends in American Sociological Theory," Lundberg, Anderson और Bain, *op. cit*, p. 821.

११५. मिलाइये Sorokin, *op. cit.*, p. 436. एक मानव और समाजशास्त्री के रूप में कूले के सबसे पूर्ण अध्ययन के लिये देखिये Edward Jandy, *Charles Horton Cooley : His Life and Social Theory* (New York, 1942).

अध्याय तेरह

पीट्रिम एलेग्जेड्रोविच सोरोकिन के समाजशास्त्रीय विचार : "समग्रतावादी" समाजशास्त्र

हैंस स्पीयर

न्यू स्कूल फॉर सोशल रिसर्च

१. सोरोकिन की रचनाओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत पक्ष

पीट्रिम ए० सोरोकिन (Pe'irim A. Sorokin) समकालीन समाजशास्त्र के सबसे प्रचुर लेखकों में से है। अपनी व्यापक ऐतिहासिक अभिरुचियों, तथ्यगत ब्यौरों पर अपने क्रमबद्ध अधिकार और सरल सत्वर सैद्धांतिक तर्क करने की प्रवृत्ति के कारण हमारे युग के समाजशास्त्रियों में उसका प्रतिष्ठित स्थान है। यदि उसने 'सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशास्त्र' –*Social and Cultural dynamics* के चार खंड न लिखे होते, जो उसके समाजशास्त्र को सबसे प्रभावोत्पादक, किंतु सबसे महत्वपूर्ण नहीं, देन है, तब भी वह इस स्थान का अधिकारी था।

सोरोकिन मूलत: रूसवासी है। उसके माता-पिता किसान थे। उसका जन्म १८८९ में तूरिया में हुआ और उसने साइको-न्यूरो लॉजिकल इंस्टीच्यूट सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई और वहीं से १९२२ में समाजशास्त्र पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। १९१४ से १९१६ तक उसने साइको न्यूरो लॉजिकल इंस्टीच्यूट में और १९१७ से १९२२ तक सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय और कृषि अकादमी में पढ़ाया। १९१७ में सोरोकिन एक नरम प्रगतिशील पत्र 'बोलिया नारोदा' का प्रमुख संपादक था। वह अखिल रूसी कृषक सोवियत् की कार्यकारिणी समिति, रूसी गणतंत्र परिषद् का सदस्य था और १९१७ में रूसी प्रधान मंत्री अलेग्जेंडर केरंसकी का सचिव रहा। १९१८ में वह रूसी विधान सभा का सदस्य बना।

रूसी क्रांति के काल में सोरोकिन के अनुभवों ने उसकी राजनैतिक धारणाओं तथा उसके सामाजिक सिद्धांतों पर एक गहरा प्रभाव डाला। साम्यवाद के प्रति उसकी घृणा, उसकी प्रगतिविरोधी और प्रतिक्रियावादी राजनैतिक मत और समग्ररूप से उसका आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के आदर्शों के परित्याग को उसके जीवन की इस अवधि में ढूंढ़ा जा सकता है।

सोरोकिन का दावा है कि रूसी क्रांति के आरंभ में वह समतापरक सिद्धांतों में विश्वास करता था, किंतु क्रांति की अवधि में रूसी में जीवन के उसके अवलोकन ने उसे यह अनुभव

करने के लिये प्रेरित किया कि उसका यह विश्वास पुष्ट नहीं किया जा सकता। उसकी 'लीव्ज फ्रॉम ए रशियन डायरी १९१७-१९२२'[२] में रूसी क्रांति के अनेक रोमांचकारी विवरण हैं। क्रांति के विद्यार्थी के लिये एक मूल्यवान् स्रोत होने के अतिरिक्त, यह डायरी सोरोकिन की बाद की रचनाओं की व्यक्तिगत पृष्ठभूमि को समझने के अनेक संकेत देती है। क्रांति की अवधि में सोरोकिन ने रूसी भाषा में 'समाजशास्त्र की प्रणाली' को (दो जिल्द १९२०) पूरा किया। उसके मार्क्सवादी आलोचकों ने इस रचना में अनेक त्रुटियां निकालीं। उन्होंने समाजराजनैतिक एकता के लिये नस्ली एकतत्वीयता के महत्त्व, यहूदी नस्ल के अपरिवर्तित गुण और सामाजिक विषमता के शरीरक्रियात्मक आधार के लेखक के आग्रह की विशेष रूप से आलोचना की थी।[३]

बौल्शेविक अधिकारियों ने १९२२ में सोरोकिन को मृत्यु-दंड दिया। उसके विद्यार्थियों के बीच-बचाव से यह मृत्युदंड देशनिकाले में बदल दिया गया। १९२३ में सोरोकिन संयुक्त राज्य अमेरिका आ गया। १९२४ से १९३० तक वह मिनसोटा विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का प्राध्यापक रहा और १९३० में उसे हार्वर्ड विश्वविद्यालय में बुला लिया गया।

सोरोकिन की प्रथम अंग्रेजी समाजशास्त्रीय रचना 'दि सोशियोलॉजी ऑफ रिवोल्यूशन'[४] उसकी प्रमुख रचनाओं मे से नहीं है। इसमे उसकी सैद्धांतिक प्रस्थापनायें हैं, जैसे कि सामाजिक संतुलन (Equilibrium), जिन्हें उसने बाद में त्याग दिया।[५] यह प्रधानत: क्रातियों की सामाजिक अवस्थाओं और सामाजिक कारणों का अध्ययन नही है बल्कि मानव व्यवहार के रोगशास्त्र की टीका है। क्राति के कारण और लक्षण दोनों को विभिन्न विरोधी मनोविज्ञानों से जिनका एक दूसरे से सिवाय इस तथ्य को छोड़कर कि वे सब मानव के बुद्धिसंगत आचार के महत्त्व को घटाते हैं, कोई समन्वय नहीं किया जा सकता, व्याख्या की गई है। इस पुस्तक मे सोरोकिन की मुख्य तर्कशैली उन मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से ग्रहण की गई है जिनमें मानव की सहजप्रवृत्त्यात्मक "अबुद्धिसंगत" प्रकृति पर ज़ोर दिया गया है। परेटो के, जिसे सोरोकिन ने रूसी क्रांति के प्रारंभिक कार्य में पढ़ा था, और फ्रायड तथा पैवलोव के प्रभाव के अंतर्गत सोरोकिन ने मानव तर्कबुद्धि की सीमित शक्ति पर ज़ोर दिया। दुर्भाग्य से तर्क की दुर्बलता मानव सहजप्रवृत्ति (Instinct) की पापमय प्रकृति से कार्यान्वित होती है, जो मानव को एक विचित्र जीव बना देती है। जब तर्क और सहज-प्रवृत्ति का संतुलन अचानक बड़े पैमाने पर बिगड़ जाता है तब क्रांति घटित होती है। तब एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव एक स्वच्छंद, सहजवृत्ति-चालित पशु बन जाता है जो प्रथा, नैतिकता और कानून की बेड़ियों को तोड़ फेंकता है। इस प्रकार क्रांति मूलत: अराजकता और बरबादी है, चूंकि सहज प्रवृत्ति मूलत: विनाशात्मक है। क्रांति पाप है, चूंकि मानव पापमय है जब तक कि उसे भय, शक्ति या श्रद्धा से रोका या नियंत्रित न किया जा सके।

जब कि इस पुस्तक में रूसी और पहली क्रांतियों में जनसाधारण के व्यवहार पर रोचक

तथ्य दिये गये है, इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन की ऐतिहासिक अवस्थाओं की समझ प्रदर्शित नहीं होती। विशेष रूप से यह क्रांति लानेवाले विचारकों के विवेचन में असफल है। सोरोकिन के उद्वेगात्मक पूर्वाग्रह के कारण, जो इस पुस्तक की सामान्य संरचना और विशेष वक्तव्य दोनों मे व्याप्त है, 'दि सोशियोलॉजी ऑफ रिवोल्यूशन' समाजशास्त्रीय गवेषणा के इस क्षेत्र मे उल्लेखनीय देन के रूप में स्थान नही पाती; किंतु इसी कारण यह पुस्तक व्यक्ति और लेखक के प्रति लेखक के दृष्टिकोण के व्यक्तिगत पहलू को उद्घाटित करती है।

उसकी अधिक हाल की रचना 'सोशल एंड कल्चरल डाइनैमिक्स'[५] मे सोरोकिन पुनः क्रांति के विश्लेषण पर लौटा है। वहां पर उसने कालांतर में आंतरिक अशांति के उतार-चढ़ाव का अध्ययन किया है और यूनान, रोम और यूरोप के इतिहास मे १,६२२ क्रांतियों और अन्य आंतरिक संघर्षों के सामाजिक क्षेत्र, अवधि, अशांति की तीव्रता और उसमें भाग लेनेवाली जनता का विश्लेषण किया है। यह अन्वेषण क्राति के पहले अध्ययन की अपेक्षा अधिक विस्तृत ऐतिहासिक सर्वेक्षण पर आधारित है। यद्यपि सोरोकिन इस बात को दोहराता है कि अपराध और क्राति के बीच मुख्य भेद केवल विस्तार का है,[६] फिर भी वह अपने प्रारंभिक मानव-निंदक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो को नही दुहराता। इसके बजाय उसने क्रातियो की सामाजिक अवस्थाओ की एक सामान्य व्याख्या प्रस्तुत की है, अर्थात् "आंतरिक अशांति के फूटने की मुख्य और अपरिहार्य अवस्था यह है कि सामाजिक प्रणाली या सांस्कृतिक प्रणाली या दोनों ही अस्तव्यस्त हो जायेगी।" इस वक्तव्य को विशेष ज्ञानवर्धक नही माना जा सकता। फिर भी अनेक लोकप्रिय सिद्धातो पर आक्रमण कर जिन पर उसने आपत्ति की है, सोरोकिन ने अपनी खोजो के महत्त्व को बढ़ाने का प्रयास किया है। इस प्रकार क्रातियो पर उसकी वक्ररेखाओं (Curves) की बारंबारता (Frequency) यह दर्शाती है कि बीसवी शताब्दी इतिहास की सबसे उथल-पुथल की अवधि रही, और वह विस्मय से कहता है : "यह निष्कर्ष अवश्य ही उन 'मीठी सेव की चटनी' जैसे सिद्धांतों के निर्माताओं और उपभोक्ताओं को चौका देगा, कि सभ्यता नियमित व्यवस्थित परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा सार्वभौम शांति की ओर प्रगतिशील है।"[७] अपनी अनेक आक्रमणात्मक रचनाओं की भांति, यहा भी सोरोकिन ने इसकी उपेक्षा की है कि वह जिन पाठको के योग्य है वे इतने अधिक नासमझ नहीं है जितने कि वे विचार जिन पर वह आक्रमण कर रहा है।

फिर भी एक अन्य पुस्तक मे सोरोकिन ने अकाल, महामारी और युद्ध के साथ जो मानव जाति के चार सबसे खतरनाक आपदायें है, क्रांति की भी विवेचना की है। 'आपदा मे मानव समाज'—*Man and Society in Calamity*[८] मानव-मन, मानव-व्यवहार, जीवन प्रक्रियाओं, सामाजिक चलिष्णुता (Mobility), सामाजिक सगठन और सांस्कृतिक क्रियाओं पर इन आपदाओं के प्रभाव का अध्ययन है। पुनः इस पुस्तक में ऐतिहासिक स्रोतों और विशिष्ट अध्ययनों से उद्धरणों की भरमार है, किंतु उसकी तुलना

मे विश्लेषणात्मक खोजें निराशाजनक हैं। सोरोकिन का मुख्य थीसिस "आपदा के प्रभाव का विविधीकरण और ध्रुवीकरण (Polarizatoin) का नियम" है। इस नियम को एक बाज़ारू तथ्य की व्याख्या समझना अनुचित न होगा जबकि इसके अर्थ को निम्न प्रकार समझाया गया है : "एक निर्दिष्ट आपदा के प्रभाव समरूप नहीं हैं—चूंकि समाज के विभिन्न संबंधित व्यक्तियों और समूहों के लिये वस्तुतः वे प्रायः विपरीत है।"

अंग्रेजी भाषा में समाजशास्त्र को प्रथम प्रमुख देन उसकी 'सामाजिक चलिष्णुता'—*Social Mobility* थी जो १९२७ में प्रकाशित हुई थी।[१०] इस रचना में सोरोकिन ने गुरुतोन्मुख (Vertical) और दिगतसम (Horizontal) चलिष्णुता, उसकी प्रकृति' कारणों और परिणामों का विश्लेषण किया है। इस पुस्तक के परिमाणात्मक न्यासों (Quantitative data) की समृद्धि और प्रचुर ऐतिहासिक तथ्य संग्रह ने इसे सामाजिक स्तरीकरण (Stratification) मे अभिरुचि रखनेवाले किसी भी विद्यार्थी के लिये अपरिहार्य पाठ्य पुस्तक बना दिया है। सोरोकिन ने केवल सामाजिक चलिष्णुता की ही नही बल्कि आरंभिक समाजशास्त्रियों द्वारा अध्ययन किये गये सामाजिक वर्गों (Classes) के कुछ विभेदक गुणों की भी, जैसे कि आयु-काल, स्वास्थ्य और शारीरिक लक्षण, बुद्धि और चरित्र के गुणों की, विवेचना की है। इसके अतिरिक्त, पुस्तक मे सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति और कारणों की संक्षिप्त सैद्धांतिक विवेचना भी है। 'सोशल मोबिलिटी' में सोरोकिन के राजनैतिक मतों ने 'सोशियोलॉजी ऑफ रियोल्यूशन' की अपेक्षा अल्प अंश मे अन्वेषण की दिशा को निर्धारित किया है। हालांकि वैज्ञानिक निष्पक्षता के पक्ष मे उनका पूर्णतः दमन नही हुआ है। सामाजिक चलिष्णुता और स्तरीकरण के अध्ययन में उसने परेटो के अनेक विचारो को उपयोगी पाया।[११] विशिष्टतया परेटो और प्रजातंत्र के अनेक आधुनिक आलोचकों के साथ सोरोकिन इसे "आवश्यकता का विषय" समझता है कि राजनीति और व्यापार के नेता अनैतिक होने चाहिये, वे या तो "शेर" हैं या "लोमड़ी।"[१२] इसी के साथ वह आधुनिक बुद्धिवादियों के "सदेहवाद और विनाशात्मक आलोचना" को "किन्ही सुदृढ और पवित्र विश्वासों" के खेदजनक अभाव के परिणाम से उत्पन्न रूप मे प्रस्तुत करता है। इस रचना में सोरोकिन ने इसे आधुनिक समाज की चलिष्णुता का परिणाम बताया है। उसी की अद्वितीय शैली मे इसे इस प्रकार रखा जा सकता है : "हमारे युग के बुद्धिवादी प्रोटेगोरस, गौर्जियस, सुकरात और मोन्टेन के मिश्रण है।"[१३] उसने 'सोशल मोबिलिटी' का चलिष्णु प्रकार के समाज की अपनी व्यक्तिगत पसंद की घोषणा के साथ उपसंहार किया है; जिसे कि वह "इतना अधिक पसंद करता है कि वह उसकी अंत्येष्टि की भविष्यवाणी" करने के लिये तैयार नहीं है।[१४]

उसका दूसरा प्रकाशन, 'समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत'—*Contemporary Sociological Theories*, अपने क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ प्रारंभिक पाठ्य ग्रंथ है। यह अत्यंत संतोष-पूर्वक उसकी प्रभावोत्पादक विद्वत्ता को प्रदर्शित करता है। समीक्षा और आलोचना के

लिये प्रस्तुत सिद्धांतों के अभिन्न सरलीकरण, शैक्षणिक दृष्टि से कुशल विवेचन और तथ्यगत खोजों के प्रकाश में सिद्धांतों पर विचार के सफल प्रयास द्वारा, यह पुस्तक सामाजिक सिद्धांत के इतिहास पर इस प्रकार की अधिकांश रचनाओं को मात करती है। इसकी सहायक साहित्य-सूची पर्याप्त उपयोगी है, चूंकि इस पुस्तक में पांच या छः भिन्न भाषाओं के रचनाओं के काफ़ी हवाले हैं।

ग्राम्य समाजशास्त्र को सोरोकिन की देन 'ग्राम्य समाजशास्त्र का स्रोत ग्रंथ'—*Source Book in Rural Sociology* के तीन जिल्दों में समाविष्ट है,[१६] जोकि संयुक्त राज्य कृषि विभाग और मिनेसोटा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में कार्ल सी० ज़िमरमैन और चार्ल्स जे० गैल्पिन के सहयोग से तैयार की गई थी, और कार्ल सी० जिमरमैन के साथ लिखी गई 'ग्राम्य-नगरी समाजशास्त्र के सिद्धांत'—*Principles of Rural-urban Sociology* [१७] की मार्गदर्शिका में, जो 'सोर्सबुक' का सुंदर संक्षेप है, समाविष्ट है। 'सोर्सबुक' का उल्लेखनीय मूल्य अनेक भिन्न संस्कृतियों में ग्राम्य जीवन के शास्त्रीय अन्वेषणों के चुने हुए अवतरणों के प्रस्तुतीकरण मे निहित है। अनेक समाजों के न्यास ग्राम्य समाजशास्त्री को अमेरिका के समकालीन ग्राम्य जीवन के साथ अन्य अतीत और वर्तमान सभ्यताओं के तुलनात्मक अध्ययनों के लिये प्रचुर तथ्यगत सामग्री प्रदान करते है। अपने "प्रिंसिपल ऑफ रूरल अरबन सोशियोलॉजी' के अंत में दिये गये सोरोकिन के कुछ निष्कर्ष उसी प्रकार के है जोकि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की उसकी रचना में व्याप्त है। इस प्रकार उसने जीवन के प्रति सुखवादी (Epicurean) धारणाओ के बजाय वैराग्यवादी (Stoic) धारणाओं को सुदृढ़ करने और पुनरुद्धार की ओर उन्मुख····गंभीर आध्यात्मिक क्रांति" [१८] की वकालत की है। अन्य बातों के साथ, यह क्रांति उच्च वर्गों की "संतति के बढ़ते हुए लोप को रोकेगी और "नस्ली संपदा की बढ़ती हुई निर्धनता को कम करेगी। [१९]

सोरोकिन की मुख्य रचना 'मानव व्यवहार के समय-बजट'—*Time Budgets of Human Behaviour* [२०] पर विचार करने से पहले एक अन्य अध्ययन का ज़िक्र करना भी ज़रूरी है जोकि उसने क्लेरेंस क्यू० बर्जर के साथ किया था। यह रचना लगभग एक सौ व्यक्तियों द्वारा चार सप्ताह तक रखे गये दैनिक लेखे के संकलन पर आधारित है। इन व्यक्तियों से कहा गया था कि वे सही-सही लिखें कि वे चौबीस घंटे में किन प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहे और प्रत्येक कार्य में उनका वस्तुतःकितना समय खर्च हुआ। इस पुस्तक के एक अंश में "प्रेरणा-अनुसूची" (Motivation schedules) के आधार पर मानव-प्रेरकों की तथ्यगत विवेचना की गई है। जिन व्यक्तियों के समय के लेखे-जोखे का अन्वेषण किया गया उन्होंने दो सप्ताह तक अपनी विभिन्न क्रियाओं के प्रेरक या प्रेरकों को भी लेखबद्ध किया। अंततः लेखकों ने मानव-व्यवहार और सामाजिक प्रक्रियाओं की पूर्वोक्ति (Prediction) पर भी विचार किया है। एक सौ छः व्यक्तियों से एक दिन, कई दिन, एक

सप्ताह या एक महीने पहले, "उन समस्त क्रियाओं की सही-सही सूची बनाने के लिये, जो उन्हें जागने के क्षण से सोने तक निर्दिष्ट दिनों में व्यस्त रखेंगी" पूर्वोक्ति करने के लिये कहा गया। "कोई भी क्रिया जिसमें पांच मिनट तक समय लगे वह अलग लिखी जानी थी...।" जैसा कि संभावना थी, लेखकों ने देखा कि जैसे-जैसे पूर्वोक्ति अधिक आगे की थी वैसे-वैसे उसकी भूलें पर्याप्त थीं और बढ़ती गई। इसमें इतने ही महत्त्व के अन्य परिणाम जोड़ दिये गये; उदाहरण के लिये, "व्यक्ति जिस सामाजिक जीवन में रहता और कार्य करता है वह जितना अधिक स्थिर और बंधा हुआ सा है, दिन-ब-दिन उसका कार्य यंत्रवत् होगा, उसकी पूर्वोक्ति उतनी ही अधिक सही होगी।" [२१]

"लापरवाह" "वैज्ञानिक" पूर्वोक्ति और बड़े पैमाने पर सामाजिक नियोजन के विरुद्ध चेतावनियों से युक्त एक जोशीले अध्याय से इस पुस्तक की समाप्ति होती है। हमे बताया गया है, "कि ग़लत अनुमानों की तुलना में सही अनुमानों की प्रतिशतता विज्ञान पर कल्पित दृढ़ता से आधारित समकालीन पूर्वोक्तियों की अपेक्षा डेल्फी के पिथिया या अपोलो के प्रसिद्ध भविष्यवक्ता जैसी संस्थाओं में कहीं अधिक थी।" [२२]

एक अन्य पुस्तक, "रूस और संयुक्त राज्य'—*Russia and the United States* [२३] युद्धकाल में, जब कि लाल सेना और रूसी जनता के प्रति प्रशंसा की अमेरिकन भावना अत्यंत प्रबल थी, लिखी गई थी। आज यह पुस्तक मुख्यत: इसलिये रोचक है कि यह लेखक के हृदय में बौल्शेविक-विरोधी और रूस-समर्थक भावनाओं के विरोध पर प्रकाश डालती है। यह विरोध रूस-समर्थक भावना के पक्ष में शांत हुआ। सोरोकिन ने "रूसी साम्यवाद, नास्तिकता, 'साम्राज्यवाद' और 'बर्बरता' की अमेरिकन आशंकाओ पर आक्रमण किया और उन्हें सर्वथा बेबुनियाद ठहराया। उसने क्राति की विनाशात्मक अवधि से पहले और बाद मे रूसी जीवन के मूलत: प्रजातांत्रिक स्वभाव को सिद्ध करने का प्रयास किया और यह पाया कि अमेरिका और रूस नैतिक मानों, सामाजिक संस्थाओं, सांस्कृतिक सृजनात्मकता इत्यादि में अत्यंत आश्चर्यजनक समानता प्रदर्शित करते हैं। "दोनों राष्ट्रों की पारस्परिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सौहार्द" भविष्य में दोनो के बीच और भी अधिक घनिष्ट सहयोग की आशा दिलाता है। "घटनाओं के अन्यथा अंधकारमय और अराजक जंगल में ऐसी कल्याणकर नियति की अनुभूति उत्साहवर्धक है।" [२४]

जब परवर्ती घटनाओं के प्रकाश में इस पुस्तक के गुण का मूल्याकन किया जाय तो यह नही भूलना चाहिये कि दोनों राष्ट्रों के "प्रधान स्वार्थ" सही अर्थ में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के शीर्षक के अंतर्गत आते हैं। सोरोकिन ने वस्तुत: अपनी पुस्तक मे कही भी इन स्वार्थों की जांच नहीं की बल्कि अपने विषय पर अधिक स्वाधीनता से, "सामाजिक-सांस्कृतिक" दृष्टिकोण से विचार किया। मंचूरिया, चीन, कोरिया, या बाल्कन राज्यों, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली मध्यपूर्व, इत्यादि की चर्चा करने के बजाय, उसने एक अमेरिकन नागरिक की हैसियत से अमेरिका के मित्रराष्ट्र के प्रति सद्भावना की वकालत की।

हमने यह संकेत देने का प्रयास किया है कि किस प्रकार सोरोकिन की प्रधान रचनायें एक दृढ़ विश्वासयुक्त व्यक्तित्व की, इस प्रकार के विश्वास की, अभिव्यक्तियां है जो आधुनिक प्रजातंत्र में अधिक लोकप्रिय नहीं है। विद्वान् की हैसियत से सोरोकिन उन मूल्यों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है जिन्होंने उसे अपने समस्त कार्यों में अनुप्रेरित किया, फिर भी उसकी पुस्तकें समाजविज्ञान में अनेक अंग-विशिष्ट अध्ययनों और पाठ्यपुस्तकों से इसमें भिन्न है कि लेखक की आत्मा में राजनैतिक लगन और "वैज्ञानिक वस्तुगतता" के बीच एक संघर्ष को स्पष्ट करती है। वे भी वस्तुगतता के आदर्श की, प्रायः उद्घोषणा करते है जो किसी भी चीज़ से अनुप्रेरित होने में असफल रहे है। कोई उचित ही संदेह कर सकता है कि क्या सोरोकिन की रचनाओं मे इस संघर्ष का सदा वस्तुगतता के पक्ष में समाधान हुआ है। जो उसके मूल्य और पसंदों से असहमत हैं वे वस्तुतः पूरे ज़ोर से इससे इन्कार करेंगे कि इसका समाधान हुआ है। कुछ समालोचको का मत है कि सोरोकिन की रचनायें मैक्स वेबर की इस स्थापना की सत्यता कि वस्तुगत सामाजिक विज्ञान के रूप में "मूल्य, निर्णयों" का अंतःप्रवेश समाजशास्त्र को विकृत कर देता है, एक दीर्घ और विस्तृत प्रायः क्लासिक उदाहरण है।

एक अधिक निष्पक्ष उत्तर केवल सोरोकिन के मूल्यों को अधिक स्पष्टता से समझाने के बाद ही दिया जा सकता है। निश्चित रूप में उसकी पसंद क्या है? क्या वे सांप्रदायिक या समालोचनात्मक है? क्या वे उन मनुष्यों की प्रतिक्रियावादी रायों से किसी अर्थ में पृथक् है जो सामाजिक दर्शन पर अधिक समय और श्रम व्यय नही करते? संक्षेप में, क्या वे पूर्वाग्रह (Prejudices) है या विचार? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये हमे सोरोकिन की उस मुख्य रचना पर, जिसमें उसकी सामाजिक रचना का सबसे स्पष्ट निरूपण है, विचार करना चाहिये।

२. "सामाजिक और सांस्कृति गतिशास्त्र" : इसका मूल विषय और पद्धितशास्त्र

'सोशल एंड कल्चरल डाइनैमिक्स' [२५] एक अत्यंत महत्त्वाकांक्षी अध्ययन है। इसमें पिछले पच्चीस हजार वर्षों के सभ्यता के इतिहास पर विचार किया गया है और इसमें समाज-सांस्कृतिक परिवर्तन के रूपों और प्रकारों को जांचने के लिये अनेक सभ्यताओं के इतिहास में विचरण किया गया है।

बुनियादी तौर पर, यह रचना प्रगति के सिद्धांत, जिसने लोकप्रिय रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक समाज वैज्ञानिकों के दार्शनिक विचारों पर प्रभुत्व किया है और आधुनिक पाश्चात्य समाज की रूढ़ियों पर गहरा प्रभाव डाला है, एक महत् पुनर्परीक्षा की है। इस सिद्धांत में मानव की अधिक सुरक्षा और आराम को सुनिश्चित करने के लिये प्रकृति पर मानव के नियंत्रण की आशा ही नहीं बल्कि मानव की पूर्वाग्रह, अज्ञान तथा विनाशात्मक घृणा से सदा बढ़ती हुई मुक्ति भी सम्मिलित है।

अपने स्वर्णकाल में भी इस सिद्धांत पर आपत्ति की गई। अनेक वैज्ञानिक हुये हैं जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि संस्कृतियों का इतिहास सावयवी (Organic) जन्म-वृद्धि-ह्रास-मृत्यु के चक्रों से मिलता है, और बढ़ती हुई उठती रेखा की अपेक्षा इसकी तुलना बारंबार घटित चक्रीय उतार-चढ़ाव (Fluctuation) से की जा सकती है। ऐतिहासिक परिवर्तन के इन दो बुनियादी मतों के विभिन्न परिष्कारों और संशोधनों को, यदि एक ओर छोड़ भी दें, तो भी प्रगति के सिद्धांत की कहीं अधिक क्रांतिकारी समालोचना हुई है : इससे इन्कार नहीं किया गया है कि प्रगति के सिद्धांत के कुछ बुनियादी सिद्धांत सही हैं। संक्षेप में, प्रगति का सिद्धांत इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं को विशेष परिवर्तनीय अंश में नैतिक मूल्य प्रदान करता है; और इसमें यह अंतर्हित है कि जब तक वर्तमान क़ायम है यह अपनी श्रेष्ठता की संतुष्टि से चमक सकता है। यह विशिष्ट "आधुनिक" धारणा आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान की उन्नति, प्रकृति के उपर मानव द्वारा इसके आश्चर्यजनक प्रभावशाली प्रयोग, और परिमाणात्मक पद्धतियों द्वारा अर्जित विपुल प्रतिष्ठा से उत्पन्न हुआ था।[२६]

प्रगति का आधुनिक सिद्धांत इतिहास में बढ़ती हुई दार्शनिक अभिरुचि का भी फल है, और यह दर्शाया गया है कि यह अभिरुचि, जो मोटे तौर पर फ्रांसिस बेकन से प्रारंभ हुई बुद्धिसंगत नैतिक शिक्षाओं की प्रभावक्षमता के प्रति क्रमबद्ध संदेह से उत्पन्न हुई। प्रगति के सिद्धांत और समाविष्ट आचारशास्त्रीय धारणाओं की आधारभूत समालोचना को एक ओर नैतिक निर्णय के लिये ऐतिहासिक अन्वेषणों की संगतता तथा दूसरी ओर इस दार्शनिक समस्या पर विचार करने के लिये परिमाणात्मक पद्धतियों की पर्याप्तता की पुनर्परीक्षा करनी होगी। सोरोकिन इस प्रकार की आधारभूत समालोचना को पूरा नहीं करता। वह बहुत अंश तक परिमाणात्मक पद्धतियों की सहायता से उन दार्शनिक प्रश्नों पर जिन्हें उसने उठाया है, किंतु बिना कभी मूलतः निरर्थक से क्या अच्छा रूप है इस आचारशास्त्रीय समस्या में अपने को उलझाये, उसने इसका विवेचन किया है कि इतिहास की विभिन्न अवधियों में मानव कितना अच्छा था। दूसरे शब्दों में, सोरोकिन के इतिहास का अध्ययन उस सिद्धांत की भावना से परिपूर्ण है जिसका कि वह खंडन करना चाहता है। इस कारण यह रचना, परेटो की भाषा में पाश्चात्य सभ्यता की समालोचना की अपेक्षा पाश्चात्य सभ्यता की एक "अभिव्यक्ति" या परेटो की भाषा में "मिथ्या कर' (Derivative) है।

सोरोकिन इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि, ऐतिहासिक दृष्टिक्रम से देखने पर कोई प्रगति नहीं हुई है, न कोई चक्रीय अभियान (Cyclical movement) हुआ है। उसने जो पाया वह उतार-चढ़ाव (*Fluctuation*) है : संस्कृति के बुनियादी प्ररूपों का उतार-चढ़ाव, सामाजिक संबंधों का उतार-चढ़ाव, शक्ति के केंद्रीकरण का उतार-चढ़ाव, आर्थिक अवस्थाओं में संघर्ष की घटना में सर्वत्र ही उतार-चढ़ाव हैं।

वे न्यास जिनसे ये सामान्यीकरण प्राप्त किये गये हैं उस क्षेत्र से लिये गये हैं जो सभ्यता के समान ही भिन्न हैं। 'सोशल और कल्चरल डाइनैमिक्स' के प्रथम खंड में कला

की शैलियों, दूसरे खंड मे सत्य, आचार और कानून की प्रणालियों ; तीसरे खंड मे परिवार से लेकर राज्य तक, चर्च से लेकर आर्थिक अवस्थाओं तक अनेक समूहों और संस्थाओं के अनेक सामाजिक सबंधों पर विचार किया गया है। इसमे लगभग एक हजार युद्धों और सोलह सौ क्रांतियों का महत् अध्ययन और संस्कृति में व्यक्तित्व और आचार के बीच विद्यमान संबंध की जांच की गई है। अतएव 'सोशल एंड कल्चरल डाइनैमिक्स' में लगा श्रम वस्तुतः विपुल है। यह कार्य अनेक विशेषज्ञों की सहायता से किया गया। फिर भी यदि यह गवेषणा कठोर अर्थ में अनैतिहासिक अन्वेषणों तक सीमित न होती, यह विश्व-कोषीय उपक्रम असंभव होता। ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन उनके निकृष्ट ऐतिहासिक गुणों को समझने के लिये नही बल्कि उन्हें "वर्गीकृत करने" के लिये किया गया था! इतिहासकारों की रचनायें और कभी-कभी मूल अभिलेख भी, जैसे कि क़ानूनवाले भाग में, एक ही प्रश्न को दृष्टि मे रखकर प्रयुक्त किये गये थे। यदि समस्त सांस्कृतिक घटनाओं को कुछ थोड़े वर्गों मे विभाजित किया जाये, तो अन्वेषण के अतर्गत घटनायें इनमें से किस वर्ग मे आती है ? क्या वे अच्छी, संतोषजनक या बुरी है ?

इन वर्गों को बताने वाले शब्द वस्तुतः इतने अधिक सरल नही है। वे एक से दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र मे भिन्न है। उदाहरण के लिये, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत, साहित्य के विषय के वर्गीकरण की विपरीत श्रेणियां है, **धार्मिक** अच्छी, **लौकिक** बुरी, उनकी शैली की, **प्रतीकात्मक** अच्छी. **दृश्य** (Visual) बुरी है, सामाजिक संबंधों के लिये तदनुरूप शब्द है; **परिवारवादी** अच्छे, **संविदात्मक-अनिवार्य** (Contractual-compulsory) बुरे है। पुन. श्रेणियो के समस्त जोडो को एकीकृत कर दिया गया है, चूंकि वे बुनियादी मूल्य एक जोड़े से पैदा हुए है। इन बुनियादी मूल्यों के नाम है **परोक्षवादी** (Ideational) और **प्रत्यक्षवादी** (Sensate)।

इस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओ के एक बार एक बुनियादी देशना (Index) मे रूपांतरित हो जाने पर, अर्थात् किसी एक वर्ग के अतर्गत रख देने पर, घटनाओ के किसी निर्दिष्ट क्रम (Series) के अतर्गत देशनाओं की बारबरता (Frequencies) की विभिन्न कालों मे तुलना करना संभव हो जाता है। अन्य क्रमो के लिये भी ऐसा करके, विभिन्न क्रमो की बारबारता की तुलना की जा सकती है। सस्कृति के विभिन्न विभाग चाहे कितने ही विषमतत्वीय हो; परिवारों को संगीत के सिम्फनी या राज्यो की दर्शन-प्रणाली से तुलना चाहे कितनी ही अजीब क्यों न लगे, एक बार परिवार, सिम्फनी राज्य या दर्शन में बाह्यीकृत (Externalized) मूल्यों के एक समान माप स्थापित होने पर वृत्त को वर्गाकार बनाया जा सकता है।

अनेक अर्थो में इतिहास के प्रति सोरोकिन का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण जाति-शास्त्रीय (Ethnological) सिद्धांत मे पुराने एकपक्षीय विकासवादियों के पद्धतिशास्त्र का स्मरण कराता है, जिन्होने सार्वभौम विकासवाद की एक पूर्वकल्पित और पूर्वनिश्चित योजना से प्रारंभ कर उसके बाद कंकाल रूपरेखा को भरने और विकासवादी योजना की

सत्यता को सिद्ध करने के लिये, उस सांस्कृतिक प्रसंग पर विशेष ध्यान दिया जिससे कि उन्होंने अपने न्यासों को प्राप्त किया, सामग्रियों की खोज की।

संक्षेप में, यह वह कार्यप्रणाली है जिसका कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के सामान्यीकरणों पर पहुंचने के प्रयास में; अर्थात् एक कठोरतया सीमित संख्या के मूल्यों की देशना के रूप में मानवजाति के इतिहास में प्रायः सभी चीजों के सामान्यीकरणों पर पहुंचने के प्रयास में सोरोकिन ने अनुसरण किया है।

ऐतिहासिक न्यासों के इस विवेचन को, जिसमें कि अत्यंत भिन्न-भिन्न घटनाओं को उनके ऐतिहासिक प्रसंग से पृथक् कर एक ही वर्ग में रख दिया गया था, एक इतिहासकार को वस्तुतः विचित्र लगेगा। वह इस बात पर ठीक ही आश्चर्य प्रकट कर सकता है कि इस बोझिल उद्योग का क्या संभव महत्त्व है, जब कि सामान्यीकरण के उच्चतम स्तर पर, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों के निरकुशवाद (Absolutism) की अवधि को दो विश्व युद्धों के बीच की अवधि के समान (*Identical*) दिखाया गया है। न ही उसे इस पर विश्वास होगा कि संख्याशास्त्रीय पद्धति को उचित सावधानी से प्रयुक्त किया गया है, जबकि आर्थिक तथ्यों तक पर अपने प्रयोग में यह निम्न प्रकार के चौकाने-वाले परिणामो पर पहुंचाती है, जिनमे आर्थिक संगठन की सर्वाधिक विषमतत्वीय प्रणालियों को काटते हुए एक काल-वक्ररेखा (Time Curve) खीचने के पक्ष मे ऐतिहासिक परि-स्थितियों के ज्ञान की सर्वथा उपेक्षा की गई है : निम्न बारह वर्षों १११५, १३५०, १४८०, १५८५, १६१०, १६५०, १६८५, १७४०, १७८५, १८००, १९२० और १९२५ मे फ्रांस की सामान्य आर्थिक स्थिति ("बुरा" या "श्रेष्ठ" इत्यादि की अपेक्षा) "सतोषजनक" थी। [२७] एक इतिहासकार तो ऐसी कार्यप्रणालियो और परिणामों को स्वीकार करने मे असमजस मे पडेगा ही, पर एक नीतिशास्त्री तब तक अपने निर्णय को रोक सकता है, जब तक कि वह निश्चित रूप से यह न समझ ले कि सोरोकिन के मूल्यों का क्या पैमाना है। दुर्भाग्य से अच्छे की अपेक्षा क्या बुरा है, इसे सोरोकिन अधिक निश्चितता से जानता है। प्रत्येक प्रत्यक्षमूलक (*Sansate*) वस्तु निश्चित रूप से बुरी है। समकालीन समाज बुरा है, क्योकि समकालीन समाज मे बाह्यव्यक्त मूल्य सुखवादी, उपयोगितावादी और सापेक्षवादी हैं। अपने पाठकों को यह सुझाने के लिये कि अमेरिका और यूरोप दोनो ने प्रत्येक अच्छी, सुंदर और भली वस्तु को भ्रष्ट कर दिया है, सोरोकिन पाश्चात्य सभ्यता के समकालीन संकट के संकुल को बार-बार दोहराना पसंद करता है। उसकी वाक्शक्ति एक विक्षिप्त अध्यापक जैसी है।

यह द्रष्टव्य है कि उसके महत् ऐतिहासिक दृष्टिक्रम में अमेरिका तथा यूरोप के बीच कोई अंतर नहीं है, [२८] न ही प्रजातात्रिक रूप से संगठित समाजों और अप्रजातांत्रिक सामाजिक के बीच कोई मूलभेद है। प्रत्यक्षमूलक "संस्कृति-मनोवृत्ति" का यह लक्षण है कि लोग "मुझे स्वतंत्रता दो या मुझे मृत्यु दो" "नारे" (Slogan) को गंभीरता से ग्रहण करते है, जबकि कहीं अधिक श्रेष्ठ परोक्ष (*Ideational*)

मनोवृत्ति "राजनैतिक और नागरिक अधिकारों और घोषणाओं में, बोलने, लिखने, विश्वास करने, सभा करने और बाह्य क्रियाओं की गारंटी के लिये विभिन्न राजनैतिक उपायों में; संविधान, स्वाधीन सरकार और इसी प्रकार की चीजों में विशेष अभिरुचि नहीं रखती।"[२९] दूसरी ओर समग्रशक्तिवाद (Totalitarianism) का उदय भी प्रत्यक्षवाद का संकेत करता है, यह "प्रत्यक्षमूलक मुक्ति" नहीं है बल्कि व्यक्ति का "प्रत्यक्षमूलक अवरोध" है।

किसी भी तरह हमें प्रत्यक्षवाद के मूल्यों, श्रद्धा की संस्कृति या संस्कृति के आध्यात्मिक प्ररूपों, जो बुद्धि की संस्कृति है, पर पहुंचने के लिये रास्ता कोई न होगा। स्पेंगलर से भिन्न, सोरोकिन विनाश का सीधा-सा पैगंबर नहीं है। अवश्य ही प्रत्यक्षवाद नष्ट हो जायेगा; किंतु एक चित्तशुद्धि (Catharsis) के बाद नये मूल्य, अर्थात् अध्यात्मवाद या परोक्षवाद के पुराने मूल्य पुनः एक बार समाज में अधिक बाह्यव्यक्त होंगे। तब अंत में सब कुछ ठीक होगा, जब तक कि नई संस्कृति पुनः अपनी सीमा पर नही पहुंच जाती, और "व्याप्त परिवर्तन" (Immanent change) की क्रिया से नये प्रत्यक्षवाद के लिये स्थान नहीं करती। संक्षेप में कोई अंतिम क़यामत का दिन नहीं है, केवल एक स्थिति है : बरंबार घटित अधिक सौभाग्यशाली मनुष्यों के बार-बार आनेवाले क़यामत में दिनों की बदलती हुई भविष्यवाणी है।

ऑगस्टाइन की *Civitas Dei* के चौदहवें अध्याय में हम पढ़ते हैं : "सुखवादी ऐपीक्यूरियन दार्शनिक शारीरिक भोग के उपासक थे क्योंकि वे शारीरिक सुख में मनुष्य का उच्चतम कल्याण समझते थे; और····वे अन्य लोग भी ऐसा ही करते हैं जिनका यह मत है कि किसी एक या दूसरे रूप में शारीरिक भलाई ही मनुष्य का उच्चतम कल्याण है।" ऑगस्टाइन के अनुसार जीवन का इससे ऊंचा स्तर वैराग्यवादी स्टॉइकों का है, "जो आत्मा में मनुष्य के सर्वोच्च कल्याण को स्थापित करते हैं।" चूंकि "मनुष्य के घटक भाग आत्मा और शरीर दोनों को ही संपूर्ण मनुष्य को बताने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है", सुखवादी और वैराग्यवादी (और प्लेटोनिस्ट) "मनुष्य के अनुसार" जीवन व्यतीत करते हैं। या कोई कह सकता है कि वे, यदि तर्क को श्रद्धा से पृथक् किया जा सके तो, तर्क (Reason) के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। केवल ईसाई ही अपनी श्रद्धा (Faith) में ईश्वर के अनुसार जीवन व्यतीत करता है।

"प्रत्यक्षवादी" (Sensate), "आदर्शवादी" (Idealistic) और "परोक्षवादी" (Ideational) के बीच सोरोकिन का बुनियादी लेख ऑगस्टाइन के इस उद्धरण में व्यक्त विचारों से साधारण सादृश्य नहीं रहता। सोरोकिन के बुनियादी दर्शन को प्राचीन ईसाई-चिंतन की एक आधुनिक विकृति माना जा सकता है। प्रत्येक संस्कृति मनुष्यों, संस्कृतियों और प्रणालियों के प्ररूपों के विभाजन के सार्वभौम सिद्धांत के रूप में इंद्रियों, तर्क और श्रद्धा के भेद को कायम रखा गया है। हालांकि इन मूल्यों का पदसोपान-क्रम धुंधला है। सापेक्षवादी दृष्टिकोण निरपेक्ष मानव की उदार घोषणाओं से कोमल सापेक्षवादी दृष्टिकोण के पक्ष में सर्वोच्च कल्याण का त्याग कर दिया गया है। उसकी

समस्त रचनाओं में उक्त तीन मूल्यों की श्रेणीबद्धता अंतर्हित है, जोकि विशेषरूप से सोरोकिन के उपेक्षा, घृणा और अरुचि के उन भारों से स्पष्ट है जिन्हें कि सोरोकिन ने सदा हमारे युग की "प्रत्यक्षवादी नालियों" (Sensate sewers) के विवरण में व्यक्त किया है। हालांकि सोरोकिन ने जिस परंपरा का अनुसरण कर तीनों मूल्यों को पृथक् किया है उससे परिचित होने के आधार पर जैसा कि आशा की जाती थी, वह धर्म के सत्य को सर्वोच्च नहीं ठहराता। इसके बजाय वह परोक्षवाद की अपेक्षा आदर्शवाद को ज्यादा पसंद करता है। पुनः परोक्षवाद को प्रत्यक्षवाद और आदर्शवाद के बीच एक समझौते के रूप में रखा गया है, और जो अगले भेदों को धुंधला कर देता है। अंततः "सोशल एंड कल्चरल डाइनैमिक्स" में प्रयुक्त पद्धतियां "प्रत्यक्ष विज्ञान" की हैं, जिसने एक दुर्भावनापूर्ण आलोचक को यह कहने के लिये प्रेरित किया कि यह रचना आधुनिक समाज-विज्ञान पर एक भंडैती (Satire) हो सकती है।

तीन प्रकार के सत्य को पहले दार्शनिक प्रणालियों और साथ ही सांस्कृतिक युगों के वर्गीकरण के लिये पृथक् किया गया और उनका उपयोग किया गया। वे अक्षय हैं, परिणामतः सापेक्षवाद-विरोधी (Antirelativist) सोरोकिन ने ऐतिहासिक सापेक्षवाद की एक पूर्ण प्रणाली प्रस्तुत की है। हालांकि इस रचना के चौथे खंड में अचानक इस सापेक्षवाद को त्याग दिया गया। पहले तीन खंडों में सोरोकिन तीन बुनियादी "सत्य की प्रणालियों" का ज़िक्र करता है और तीन भिन्न प्रकार के सत्य के बहुसत्तावाद (Pluralism) को स्पष्ट स्वीकार करने के बजाय पाठक को इस असमंजस में डाल देता है कि लेखक का "सत्य" से क्या अर्थ है। चौथे खंड में **समग्र सत्य** (Integral truth), "जिसमें सत्य के समस्त तीन रूप समाविष्ट हैं" शीर्षक के अंतर्गत सत्य के दो नये प्रकारों [10] और **निरपेक्ष सत्य** (Alsolute truth) का, जो ईश्वर के लिये सुरक्षित है, प्रवेश कराया गया है। सोरोकिन द्वारा समग्र सत्य को "तीन आयामवाला" (Three-dimensional) कहा गया है, क्योंकि तर्क प्रतिभान (Intuition), इंद्रियां इसके मूल स्रोत हैं। सोरोकिन का दावा है कि उसके "समग्रतावादी समाजशास्त्र" ने समाजविज्ञानों में "एक गंभीर क्रांति" ला दी है, क्योंकि सत्य की किसी भी अन्य प्रणाली में, बोधात्मक (Cognitive) अर्थ में किसी भी मूल्यवान् तत्व को त्यागने के बजाय समग्रतावादी पद्धति (Integralist method) में यह समाविष्ट है। अतएव उनमें से किसी एक को पृथक् रूप में लेने की अपेक्षा यह अधिक पूर्ण और अधिक पर्याप्त है।[11]

समग्र सत्य उस "संश्लेषणात्मक"(Synthetic) प्रकार के सत्य से मिलता है जिससे कार्ल मानहीम ने अपने "ज्ञान के समाजशास्त्र" को तत्वमीमांसात्मक (Epistemological) परिस्थिति से निर्धारित प्रकार के चिंतन के "दृष्टिक्रमवाद" (Perspectivism) से उत्पन्न कठिनाइयों से बचाने के लिये आविष्कृत किया था। सोरोकिन और मानहीम दोनों ने अपने द्वारा अस्वीकृत दर्शनों के सापेक्ष और "आंशिक" (Partial) सत्य का ज़िक्र करते हैं, और फिर वे सापेक्षवाद के दलदल से एक "परम सत्य" (Supertruth)

के दावे के साथ बाहर निकलते हैं। मानहीम ने प्रस्तावित किया है कि उसके "ज्ञान का समाजशास्त्र" समस्त समाजविज्ञानों का आधार बन सकता है; सोरोकिन का दावा है कि उसका समग्र सत्य किसी एकपक्षीय सत्य की अपेक्षा निरपेक्ष सत्य के अधिक निकट है। यह दावा उन सबकी विशेषता है जो इतिहासवाद (Historicism) के साथ दर्शन को मिलाना चाहते है, इसके गंभीर खंडन की कोई आवश्यकता नही। किंतु एक बौद्धिक जिज्ञासा के रूप में इस पर ध्यान दिया जा सकता है कि सोरोकिन अतीत के समस्त दार्शनिकों की, जिन्हें वह क्रमशः प्रत्यक्षवाद (Sensate), आदर्शवाद (Idealistic) या परोक्षवाद (Ideational) का प्रतिनिधि मानता है, एकपक्षीयता के ऊपर अपने चिंतन को ऊंचा उठाने में नहीं हिचकता : "इसीलिये आंशिक या एकपक्षीय सत्य की तुलना में सत्य की समग्र प्रणाली.. .इनमे से प्रत्येक प्रणाली की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है।" [१२]

सोरोकिन की रचना के चार खंडों में समाविष्ट बहुसख्यक विवेचनो के साथ न्याय करना इस अध्याय की परिधि में असंभव है। फिर भी, इनमें से दो को संक्षिप्त विश्लेषण के लिये अलग किया जा सकता है, क्योंकि वे इस रचना की सरचना को, अर्थात् सास्कृतिक एकीकरण की समस्या और सामाजिक परिवर्तन के सामान्य सिद्धांत को समझने के लिये विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

सोरोकिन ने "सांस्कृतिक एकीकरण" (Integration) के विभिन्न अर्थो मे भेद किया है। सांस्कृतिक तत्व (१) केवल काल (Time) और दिक् (Space) मे सहवर्ती होते किंतु अर्थ में स्वतत्र और परस्पर-विरोधी ; (२) एक "वाह्य" कारक के साथ अनुकूलन (Adaptation) होने के कारण एक दूसरे से सयुक्त ; (३) कार्यतः (Functionally) या कार्य-कारण रूप में अंतर्निभर और (४) "अंतरतः" (Internally) या "तर्क-सार्थकरूप मे" (Logico-meaningfully) संयुक्त हो सकते हैं।

उच्चतम प्रकार के एकीकरण के लिये "तर्क-सार्थक" शब्द का चुनाव दो कारणो से दुर्भाग्यपूर्ण है। कार्यात्मक और वाह्य और दोनों प्रकार के एकीकरण सार्थक हैं। उदाहरण के लिये, एक कार मे मोटर और बैटरी का सबध कार्यात्मक है, रेफ्रीजरेटर ग्रीष्मकालीन सूती सूटों और हल्के वस्त्रों का वाह्य है ; फिर भी यह तथ्य कि कार से चलने की आशा की जाती है और यह कि रेफ्रीजरेटर और सूती सूट दोनो ही गरम मौसम से संबंधित है, यह संकेत करता है कि इन दोनों ही उदाहरणों मे एकीकरण बिल्कुल निरर्थक नही हैं। पुनः सांस्कृतिक तत्वों के केवल कुछ ही अंतर्संबंधों के लिये जिनका कि हम ववतव्य या लिखित अभिलेखों जैसी वाक्स्थापनाओ के रूप मे सामना करते है, ही नही, बल्कि स्मारक और संगीत, और विशिष्ट पारिवारिक संगठन, संस्कृति की एक शैली, एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तित्व और विशेष प्रकार की कानून सहिता जैसे भिन्न तत्वों के बीच विद्यमान संबंधों के लिये भी तार्किक एकीकरण का दावा किया गया है। सोरोकिन स्वयं स्वीकार करता है कि अनेक इकाइयां जिन्हें वह तर्क-सार्थक कहता है, "तर्क" (Logic) शब्द के सैद्धांतिक अर्थ में तार्किक इकाइयां नही है।

इसलिये ऐसा लगता है "तर्क-सार्थक एकीकरण" (Logico-meaningful integration) से तात्पर्य उस प्रकार के एकीकरण से है जो एक मनमानी रीति से चुने गये मान (Norm) के प्रसंग मे विद्यमान है, जब कि "कारण-कार्यात्मक एकीकरण" (Causal-functional integration) सपूर्ण की सरचना का संकेत करती है, जिसके अंग कार्यात्मक रूप में अंतर्निर्भर है। वाह्य कारक से उत्पन्न साहचर्य (Association) भी कार्यात्मक है; किंतु इस उदाहरण मे एकीकरण केवल इस तथ्य के अनुसार विद्यमान है कि सामाजिक न्यास गैरसामाजिक तथ्यों (जलवायु, प्राकृतिक साधन इत्यादि) पर निर्भर है। तर्क-सार्थक एकीकरण के महत्त्व पर ज़ोर देकर और उसे एकीकरण का सर्वोच्च रूप घोषित कर, सोरोकिन इस स्थिति मे है कि वह संस्कृति के उन सिद्धांतों का, जो एकीकरण के केवल उसी रूप को मानते है जो वाह्य तथ्य पर आधारित है, अपर्याप्त या दोषपूर्ण कहकर त्याग कर सके। शब्द के सकीर्ण अर्थ मे, दिक्मय (Spatial), सान्निध्य और एकीकरण को भी पृथक् कर, सोरोकिन सस्कृति मे अएकीकृत तत्वो की उपस्थिति को भी स्थान देता है। ऐसे तत्त्वों को समुच्चय (Congeries) कहा गया है। सोरोकिन बारंबार इसका निर्देश करता है कि किसी भी निर्दिष्ट अनुभवमूलक सस्कृति मे तर्क-सार्थक प्रणालियां है और उसके अतिरिक्त समुच्चय भी, हालाकि अपनी रचना के ऐतिहासिक भागों मे वह यह सकेत नही करता कि अन्वेषण के अतर्गत कौन ऐसे तत्व एकीकृत नही हो पाते। सोरोकिन सस्कृति के उन सिद्धांतों पर एतराज करता है जो अएकीकृत तत्वो की सभावना को स्वीकार किये बिना समस्त सांस्कृतिक तत्वों की अतर्निभरता पर जोर देते है। इसी प्रकार वह अणुवादी (Atomistic) सिद्धातो को अस्वीकार करता है जो किसी भी एकीकरण के अस्तित्व से इन्कार करते है, और ऐसा करने मे वह दर्शन के इतिहास को किसी भी अस्वीकृति को मिथ्या रूप से एक प्रक्रिया (Process) मान लेता है जिसका एक एकीकृत अर्थ है, जो एक निर्दिष्ट कालावधि मे विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की अंतर्निभरता की अस्वीकृति है।

सोरोकिन का संस्कृति का विश्लेषण तर्क-सार्थक एकीकरण, अर्थात् मानों (Norms) के प्रसंग मे "संस्कृति के एकीकरण पर केंद्रित है। संस्कृति की वाह्य घटनायें, जैसे कि विषयों, वस्तुओं, घटनाओं को, संस्कृति के आंतरिक पहलुओं के "अवतार" (Incarnations) या "उपलब्धिया" (Realizations) माना गया है। अपने संगठित रूप में संस्कृति के आंतरिक पहलुओं मे चितन की वे प्रणालियां सम्मिलित है, जो एक संस्कृति के "आंतरिक अनुभव से बुनी गई है।" अन्य शब्द जिसका कि प्रायः आतरिक पहलू को बताने में प्रयोग हुआ है "संस्कृति-मनोवृत्ति (Culture mentality) है। सांस्कृतिक के वाह्य पहलुओं को "केवल उसके आंतरिक पहलुओं की अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण किया गया है। इसके परे, वे संस्कृति की एकीकरण प्रणाली का अंश नही रह जाते।" [११] यह उद्धरण इस वक्तव्य की पुष्टि करता है कि "तर्क-सार्थक एकीकरण" का अर्थ प्रमानों के प्रसंग में एकीकरण है। इसके अतिरिक्त यह सोरोकिन के समाजशास्त्र की भौतिकवाद-विरोधी दिशा

की ओर संकेत करता है। वस्तुतः सोरोकिन की प्रणाली को बौद्धिकतावादी (Intellectualistic) माना जा सकता है।

विश्लेषण के उद्देश्य से संस्कृति के वाह्य पहलुओं को—अर्थात् राज्य-संगठन या प्रचलित परिवार-प्रणाली को-केवल तभी संस्कृति का एकीकृत भाग कहा जा सकता है यदि विश्लेषक द्वारा इन सामाजिक संस्थाओं को आदर्शी या भावात्मक अर्थों में व्यक्त किया जा सके और यदि, इसके अतिरिक्त, ये मान बुनियादी मूल्यों, प्रत्यक्ष आदर्शवादी और उनके संगत पाये जायं। हालांकि सोरोकिन इस बोझिल पद्धति के अनुसार आगे नहीं बढ़ता। वह एक छोटा रास्ता पकड़ता है जो पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से चातुर्यपूर्ण है। एक निर्दिष्ट समाज की दर्शन, कला, सामाजिक संस्थाओं, संहिताओं, प्रविधियों और साधनों की ऐतिहासिक प्रकृति को समझने के लिये इन घटनाओं के एकीकरण के विश्लेषण करने से पहले इनका अन्वेषण करने के बजाय जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, वह समस्त कालों में संस्कृति के विभिन्न भागों के वर्गीकरण के एक क्रम (Series) से शुरू करता है। यह सब वर्गीकरण, प्रारंभ से ही और परिभाषा के अनुसार सांस्कृतिक मनोवृत्ति के बुनियादी प्ररूपों से मेल खाते हैं। यही कार्यप्रणाली शब्द के कठोर अर्थों में उसके ऐतिहासिक अन्वेषणों को अनैतिहासिक बना देती है।

अपने सामाजिक परिवर्तन के सामान्य सिद्धांत में सोरोकिन "वाह्यीकृत" (Externalised) सिद्धांतों को अस्वीकार करता है जिनके अनुसार सांस्कृतिक प्रणाली में हुए परिवर्तन वाह्य वातावरणीय कारकों से पैदा होते हैं, उदाहरण के लिये, उद्योगीकरण द्वारा पारिवारिक संरचना के परिवर्तन। सोरोकिन के अनुसार, इन सब सिद्धांतों के विरुद्ध यह तार्किक आपत्ति है कि ये परिवर्तन की समस्या के समाधान की अपेक्षा उसे स्थगित कर देते हैं। मिसाल के लिये : (क) अर्थात् परिवार के परिवर्तन को (ख) से, अर्थात् उद्योगवाद से; और (ख) के परिवर्तन को (ग) से, मान लीजिये जनसंख्या की संरचना से कैफ़ियत देकर; और (ग) के परिवर्तन को (घ) से मान लीजिये, जलवायु के परिवर्तन से कैफ़ियत देने में एक असीमित प्रतिगामिता (Regression) का प्रवेश करा दिया जाता है। इस प्रतिगामिता में यह अन्य कठिनाई एक क्षेत्र में रूपांतरण की जहां कम परिवर्तन घटित होता है, के प्रसंग में कैफ़ियत देने की है, जैसे कि जलवायु के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की कैफ़ियत में विशेष रूप से स्पष्ट है।

इस उदाहरण में और प्रायः अन्य रचनाओं में भी, सोरोकिन जिन सिद्धांतों को अस्वीकार करता है उसे वह उसके सबसे उपयुक्त रूप में प्रस्तुत नहीं करता, जिसकी आलोचना करना उसके लोकप्रिय सरल विवरण की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। इस प्रकार सोरोकिन सामाजिक परिवर्तन की वाह्यतावादी सिद्धांतों में इस पूर्वधारणा को भी जोड़ देता है कि एक सामाजिक सांस्कृतिक प्रणाली के "अपरिवर्तनीयता" के बजाय परिवर्तन की व्याख्या की आवश्यकता है, जबकि स्वयं सोरोकिन ने ठीक ही इस पर ज़ोर दिया कि

जीवन सदा बदल रहा है और परिवर्तन की अपेक्षा अपरिवर्तनीयता की व्याख्या की आवश्यकता है ।

वस्तुतः परिवर्तन का घटित होना एक सार्वभौम तथ्य है, किंतु इस तथ्य के कारणों की खोज, जीव क्या है इस अध्यात्मशास्त्रीय (Metaphysical) समस्या का अंश है । अनेक "वाह्यतावादी" (Externalistic) सिद्धांत विशिष्ट (Specific) परिवर्तनों से संबंधित पूर्वकल्प (Hypothesis) प्रस्तुत करते हैं, स्वयं परिवर्तन का सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करते । इसलिये परिवर्तन और जड़ता (Stagnation) या जीवन या मृत्यु की अध्यात्म-शास्त्रीय समस्या की खोज किये बिना जलवायु या भूगोल पर सामाजिक जीवन की निर्भरता की खोज पूर्णतः संगत है । ऐसे वाह्यतावादी सिद्धांतों की वैज्ञानिक समालोचना को, जो अध्यात्मशास्त्रीय समालोचना से भिन्न है, यह निर्णय करना होगा कि क्या इस कारणात्मक निर्भरता को उल्टा जा सकता है या नहीं; उदाहरण के लिये : क्या जलवायु और भूगोल सामाजिक जीवन पर निर्भर है ? इसे यह जानना होगा कि किस **सीमा तक** और किस **अंश** (Degree) में यह पूर्वकल्प सही है; विशिष्ट परिवर्तनों, इत्यादि की व्याख्या में किस **सीमा तक** और किस **अंश** में अन्य कारणात्मक कारकों का प्रवेश कराया जा सकता है । संक्षेप में, वाह्यतावादी सिद्धांत अनिवार्यतः **व्यापी परिवर्तन** (*Immanent change*) से, जिसका कि सोरोकिन अनुयायी है और जिसकी कि उसने विचारोत्तेजक विवेचना की है, असंगत नही है ।

जब कि सामान्यतः यह सत्य है कि "अपरिवर्तनीय के अन्य किसी उदाहरण की अपेक्षा परिवर्तन की व्याख्या की कही कम ज़रूरत है" यह भी सत्य है कि परिवर्तन के किसी विशिष्ट उदाहरण को व्याख्या की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी कि किसी विशिष्ट अपरि-वर्तन को । यहां अब व्याप्त परिवर्तन के सिद्धांत के अतिरिक्त, सोरोकिन परिवर्तन की "वाह्यतावादी" कारणों को भी स्वीकार करता है, किंतु वह वाह्यतावादी सिद्धांतों को एक गौण (Subsidiary) महत्व ही प्रदान करता है और यह दावा करता है कि अंतः-स्थित परिवर्तन प्राथमिक सिद्धांत है । हालांकि वाह्यतावादी सिद्धांत का कोई भी समर्थक इतना आगे नहीं बढ़ेगा कि वह यह संकेत दे कि वाह्य कारकों के किसी भी प्रयास से राज्य को एक नाइट क्लब में बदला जा सकता है; [१४] वाह्यतावादी सिद्धांतों के सभी समर्थकों ने निहितार्थ में व्याप्ति को उससे अधिक महत्त्व दिया है जितना कि सोरोकिन अपने विरोधियों की बुद्धिमत्ता को देने को तैयार है । दूसरी ओर परिवर्तन में व्याप्त परिवर्तन पर सोरोकिन का ज़ोर विशिष्ट परिवर्तनों की वैज्ञानिक व्याख्या के प्रति बहुत आसानी से उदासीनता की धारणा की ओर प्रेरित करता है । यदि किसी प्रकार सब चीजें के प्राथमिक रूप से परिवर्तन के अंतस्थित सिद्धांत के अनुसार बदलती ह, तो क्यों विशिष्ट सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या के झंझट में पड़ते हैं? यह द्रष्टव्य है कि सोरोकिन सिद्धांत का तार्किक निष्कर्ष पूर्वोक्ति और सामाजिक नियोजन के विषय में उसके संदेहवाद से

बहुत मिलता है। यदि प्रत्येक चीज परिवर्तन के सिद्धांत के अनुसार बदलती है, तब समाज में एक विशिष्ट परिवर्तन लाने के झंझट मे क्यों पड़ते है ?

निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है सोरोकिन की प्रमुख रचना कोंत और स्पेसर जैसे प्रारंभिक समाजशास्त्रियों के विश्वकोषीय प्रयासों की परंपरा को पुनर्जीवित करती है। इस प्रयास को जो महानतम श्रद्धाजलि अर्पित की जा सकती है वह यह है मानव इतिहास को एक एकीकृत दार्शनिक दृष्टि पर पहुंचने के स्पेंगलर और टॉयनबी के जैसे या हुइज़िंगा जैसे हमारे युग के संकट के समकालीन अध्ययन के प्रयासों के साथ तुलना योग्य है। हालाकि ऐसी तुलना में सोरोकिन बहुत अच्छा नही उतरता। यहां तक कि उसके ऐतिहासिक निर्णय, कल्पना और सुरुचि में स्पेंगलर तक उससे श्रेष्ठ है। सोरोकिन के समग्रतावादी (Integralist) समाजशास्त्र की तुलना मे विभिन्न प्रकार के चितन के "प्ररूपों" के बुनियादी भेदों के सूक्ष्म विश्लेषण मे एच० लीसगाग का पुराना अध्ययन *Denkformen* (१९२८) उसमे बेहतर है। 'सोशल एंड कल्चरल डाइनैमिक्स" मे व्यय हुए विपुल प्रयास, इस रचना मे अनेक विचारोत्तेजक विवेचन, विशेषकर समकालीन समाजविज्ञान द्वारा सजोयी गई अनेक भूलों पर सोरोकिन के साहसपूर्ण आक्रमणों का उचित सम्मान करते हुए भी हम इस निष्कर्ष पर पहुचने से नही बच पाते कि पूर्ण रूप से यह रचना निजी पूर्वाग्रहो (Prejudices) के बारबार निरंतर प्रवेश से पीडित है और इसमे योरोपीय और अमेरिकन समाजविज्ञानो की कमियो का : अस्पष्ट अध्यात्मशास्त्र और आंकडो और वक्ररेखाओ की पकड़ से बाहर दार्शनिक समस्याओं पर परिमाणात्मक प्रविधियो (Quantitative techniques) के प्रयोग का मिश्रण है।

टिप्पणियां

१. Hans Kasspohl द्वारा Pitrim Sorokin के *Sociology of Revolution* (1925), *Die Soziologie der Revolution* (Munich, 1928), p.18. जर्मन सस्करण का परिचय।

२. New York, 1924.

३. Kasspohl, *op. cit.*, p. 16.

४. Philadelphia, 1925.

५. उस सिद्धांत की उसकी समालोचना के लिये देखिये "Lo Concept d'equilibree st-il necessaire aux sciences sociales ? *Revue internationale de sociologie*, September-October, 1936. इस लेख का संक्षिप्त रूपांतर Sorokin की *Social and Cultural Dynamics*, IV (New York, 1941), 677–93. में दिया गया है।

६. (New York, 1937)., pp. 383–508.

७. *Ibid.*, III, 510.

८. *Ibid.*, III, 478.

९. New York, 1943.

१०. New York, 1927.

११. *Contemporary Sociological Theories* (New York, 1928), p. 60, n. 83.

१२. उस प्रसंग के लिये जिसमे सोरोकिन ने परेटो के इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, मिलाइये *Social Mobility*, p. 310.

१३. *Ibid.*, p. 520.

१४. *Ibid* , p. 544.

१५ New York, 1928.

१६. Minneapolis, 1930-31.

१७. New York, 1929

१८. *Principles of Rural-urban Sociology*, p. 635.

१९. *Ibid.*, p. 632.

२०. Cambridge, Mass , 1939.

२१. *Time Budgets of Human Behaviour*, p. 170 (italics Sorokin's and Berger's).

२२. *Ibid.*, p. 179.

२३. New York, 1944.

२४. *Russia and the United States*, p. 209.

२५. Vols. I–III (New York, 1937) ; Vol. IV (1941). इन चार जिल्दों का लोकप्रिय रूपांतर बाद मे *The Crisis of Our Age* (New York, 1941) के नाम से प्रकाशित हुआ। अपनी प्रमुख रचना में प्रयुक्त पद्धतिशास्त्र की *Socio-Cultural Causality, Space, Time*, (Durham, N. C., 1943) में विवेचन और संक्षेप किया गया है ।

२६. इस विषय के दो अत्यंत गंभीर विवेचनों के लिये मिलाइये Edmund Husserl, "Die krisis der europaischen Wissenschaften und die transcendentale Phaenomenologie." *Philosophia*, I (1936), 77–176 ; और Jacob

Klein, "Die griechische Logistik und die Entstehung der Algebra," *Quellen und Studien zur Geschichte der Mathematik*, Abteilung B : *Studien* II (Berlin, 1934), 18–105, और III (Berlin, 1936), 122–235.

२७. *Social and Cultural Dynamics* III, 236, Fig. 4.

२८. देखिये "Socio-cultural Trends in Euro-American Culture during the Last Hundred Years "*A Century of Social Thought* (Durham N. C. 1939) pp. 96–125. इस निबंध में सोरोकिन ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि "कोई दावा कि अमेरिकन और योरोपीय संस्कृतियां भिन्न हैं ग़लत है। सस्त मूलभूत गुणों में वे···एक समान है।"

२९. *Social and Cultural Dynamics*, III, 167.

३०. *Ibid.*, Vol. IV, p. 763.

३१. *Socio-cultural Causality, Space, Time*, p. 230.

३२. *Social and Cultural Dynamics*, IV, 764.

३३. *Ibid.*, I, 55.

३४. उदाहरण सोरोकिन का है। (मिलाइये *Ibid.*, IV, 604)

अध्यायानुसार प्रमुख पारिभाषिक शब्द-सूची

1. Convergencies	एकताएं
Contract theory	संविदा-सिद्धांत
Critical-metaphysical	आलोचनात्मक-अध्यात्मशास्त्रीय
Dogma	धर्मसिद्ध व्यवस्था; फ़तवा
Determinism	नियतिवाद
Divergencies	भिन्नताएं
Hierarchy	पदसोपान, श्रेणीबद्धता
Theological	धर्मशास्त्रीय, ईश्वरशास्त्रीय
Great Being	महत् अस्तिता
High Priest	प्रधान पुरोहित
Metaphysics	अध्यात्मशास्त्र
Positivism	विज्ञानवाद, तथ्यवाद, अस्तिवाद
Providential Order	नियतिशासित व्यवस्था, दैवकृपा-विधान
Sociocracy	समाजतंत्र
Triad system	त्रयी प्रणाली
2. Analogy	सादृश्य
Empricism	अनुभववाद
Ethnology	जातिशास्त्र
Evolution	विकासवाद
Genesis	सृष्टि
Individuation	व्यक्तीकरण
Equilibrium	संतुलन
Organism	सावयव
Sensorium	संवेदन-केंद्र
Synthetic philosophy	संश्लेष्णात्मक दर्शन
3. Creative synthesis	सृजनात्मक संश्लेषण
Cosmic mechanics	ब्रह्मांडीय यंत्ररचना
Constrained aggregate	आबद्ध समूह
Function	कृत्य, कार्य
Gynaecocracy	स्त्रीतंत्र
Karyokinesis, social	फलीकरण, सामाजिक
Reproductive	संतानोत्पादक
Plutocratic	धनिकतंत्रीय
Phylogenetic	प्रजातिमूलक
Primitive	आदिकालीन, आदिम

Politarchic	राज्यशासी
Restraint	निरोध
Sympodical development	वटशाखात्मक विकास
Synergy	सहकार्यशक्ति
Ontogenetic	व्यक्तिचरितमूलक
Telesis, social	निर्देशन, उद्देश्य, सामाजिक
Zoism	मिश्रित जीवीकरण
4. Conflict school	विरोध-संप्रदाय
Consanguinity	समरक्तता
Adjustment	समायोजन
Assimilation	सात्मीकरण
Amalgamation	सम्मिश्रण
Conquest state	विजयराज्य
Ethnic	प्रजातीय
Folk	जन
Interest group	स्वार्थ, हित, अभिरुचि-समूह
Life Pattern	जीवन-प्रतिमान
Protocracy	आदितंत्र
Polygenism	बहुजननवाद
5. Autonomous	स्वतंत्र
Altruism	परार्थवाद
Angewandte sociology	प्रायोगिक समाजशास्त्र
Corporation	निगम
Gemeinschaft	समुदाय
Gesellschaft	समाज
Heteronomous	विविधाश्रित व्यवस्था
Reine sociology	विशुद्ध समाजशास्त्र
Facts	तथ्य
Superindividual	वैयक्तयातीत
Kurwille	तर्कयुक्त इच्छा
Normal	सामान्य
Wesenwille	सहज इच्छा
6. Ascetic	तापसी
Affectual action	रागात्मक क्रिया
Charismatic	करिश्माई

Grace	कृपा, अनुकंपा
Idealistic	अध्यात्मवादी
Ideal type	प्रत्यय, तर्क-प्ररूप
Logical	तर्कपूर्ण, तर्कयुक्त
Normative	मानात्मक
Otherworldly	परलोकवादी
Rationality, formal	बुद्धिसंगति, सैद्धांतिक
Rationality, substantive	बुद्धिसंगति, व्यावहारिक
Rationalisation	युक्तीकरण (उद्योग के प्रसंग मे); तर्काभास
Ritual	अनुष्ठान, कर्मकांड
Wertrationalitat	सहज तार्किक इच्छा
Zweckrationalitat	सोद्देश्य तार्किक इच्छा
7. Agelic realism	सामूहिक यथार्थवाद
Appearance of normality	सामान्यता की प्रतीति
Collective representations	लोकप्रतिबिंब
Exteriority	वाह्यता
Emergence	उद्गम
Generality	साधारणता
Illusion	अध्यास
Intuition	प्रतिभान
Innovation	नवप्रवर्तन
Naturistic	स्वभाववादी
Substratum	आधार
Suicide anomique	मानशून्य आत्महत्या
Temporal	कालमय
Sensory	इंद्रियगम्य
8. Affirmations	घोषणाये
Derivations	भ्रात तर्क
Elite	अभिजात वर्ग
Pseudo-experimental	छद्म-परीक्षणात्मक
Residues	अवशिष्ट
Verbal proofs	शब्द-प्रमाण
9. Harmony	समन्वय, सामंजस्य
Referendum	जनमत-हवाला
Teleological	प्रयोजनमूलक

10. Challenge and Response	चुनौती और प्रत्युत्तर
Crisis	चरम स्थिति
Etherialization	ऊर्ध्वीकरण
Parochial states	लघुराज्य
Saviour	रक्षक
Theodicy	दैवी न्याय
Withdrawal and Return	निवृत्ति और पुनरागमन
Yin	प्रकाश-प्रतीक
Yan	अंधकार-प्रतीक
11. Appreciation	महत्व-वृद्धि
Component society	घटक समाज
Constituent society	निर्माता समाज
Dogmatic-emotional	धर्मसिद्ध–उद्वेगात्मक
Eugenics	सुप्रजननशास्त्र
Interstimulation	अंतरुद्दीपन
Ideomotor	विचार-प्रेरक
Pluralistic	बहुलतावादी
Preferences	तरजीह, वरीयता
Puritan	तापसी
12. Communication	संचार
Complex	संकुल
Conscience	अंतःकरण
Looking-glass self	दर्पण स्व
Self-assertive feeling	स्व-स्थापन भावना
13. Differentiation	विभेदीकरण
Diversification	विविधीकरण
Epicurean	सुखवादी
Horizontal mobility	दिगंतसम चलिष्णुता
Ideational	परोक्षवादी
Idealistic	आदर्शवादी
Immanent change	व्याप्त परिवर्तन
Polarization	ध्रुवीकरण
Predestination	पूर्वनिश्चित लक्ष्य
Sensate	प्रत्यक्षवाद
Stratification	स्तरीकरण
Vertical mobility	गुरुतोन्मुख चलिष्णुता